हिन्दी समिति ग्रन्थमाला संख्या—९८

स्टार्च और उसका व्यवसाय

लेखक

डा० सन्त प्रसाद टंडन, एम० एस-सी०, डी० फिल०

एफ० एन० ए० एस०

प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

प्रकाशकीय

आधुनिक युग मे वैज्ञानिक अनुसधानो के फलस्वरूप हमारे वाणिज्य-व्यवसाय मे अभूतपूर्व क्राति और उन्नति हुई है। पदार्थों पर भाँति-भाँति के रासायनिक प्रयोगो द्वारा नयी-नयी वस्तुओ का आविष्कार किया गया है, जिनकी माँग और खपत ससार के बाज़ारो मे अधिकाधिक बढ रही है। स्टार्च भी ऐसा ही एक पदार्थ है, जिसका उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। यह खाद्य, वस्त्र, कागज आदि अनेक जीवनोपयोगी वस्तुओ के हेतु काम आता है। डा० सत प्रसाद टडन ने 'स्टार्च' विषय पर सरल एवं सुस्पष्ट शैली में प्रस्तुत पुस्तक लिखकर विद्यार्थियो और व्यवसायियो का समान रूप से हित किया है।

हमे विश्वास है, रसायन शास्त्र के विद्यार्थियो और विज्ञान मे रुचि रखनेवाले हिन्दी-हितैषी पाठको द्वारा उनकी कृति का समुचित स्वागत होगा। राष्ट्रभाषा के वाङमय की अभिवृद्धि मे डा० टडन का योग श्लाघनीय है। समिति उनके प्रति आभारी है।

सुरेन्द्र तिवारी
सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

मनुष्य की दो प्रमुख आवश्यकताओ, भोजन और वस्त्र, की पूर्ति कार्बोहाइड्रेट वर्ग के पदार्थों द्वारा होती है। स्टार्च कार्बोहाइड्रेट वर्ग का एक यौगिक है जिसका हमारे भोजन मे विशेष स्थान है। गेहूँ, चावल, आलू आदि खाद्य पदार्थो का मुख्य अवयव स्टार्च है। खाद्य का एक मुख्य अवयव होने के अतिरिक्त स्टार्च का बडा उपयोग आजकल कितने ही विभिन्न उद्योगो मे भी होता है। यह आसजक (adhesive) बनाने, कपडो पर माडी तथा कलफ देने, छपाई का मसाला तैयार करने आदि अनेक कामो मे आता है। स्टार्च से बहुत-से ऐसे रासायनिक यौगिक भी बनाये जाते है जिनका विभिन्न उद्योगो मे बडा महत्त्व है। ग्लूकोस, ऐलकोहल, ऐसीटोन, ब्यूटिल ऐलकोहल आदि इसी प्रकार के यौगिक है जो स्टार्च से प्राप्त किये जाते है। अत. आज के युग मे स्टार्च का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और इस कारण इसका अध्ययन विशेष उपयोगी है। पिछले ५०-६० वर्षों मे स्टार्च का विशद अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन और खोज के फलस्वरूप स्टार्च की सरचना का पर्याप्त ज्ञान हमे हुआ है और इसका सश्लेषण करने मे भी हम सफल हुए है। इन सब खोजों के फलस्वरूप इधर पिछले कुछ वर्षों मे स्टार्च व्यवसाय की बहुत उन्नति हुई है।

इस पुस्तक मे स्टार्च तथा उससे प्राप्त होनेवाले पदार्थों का अध्ययन उद्योगो मे उनके उपयोग किये जाने की दृष्टि से ही मुख्य रूप से किया गया है, साथ ही रासायनिक पक्ष भी छोडा नही गया है। स्टार्च के रासायनिक रूप तथा उसके भौतिक और रासायनिक गुणो की भी यथेष्ट चर्चा की गयी है। जीवजगत् मे स्टार्च का संश्लेषण किस प्रकार होता है और उसके उपापचय का क्या रूप है, इसकी भी विवेचना आधुनिकतम खोजों के द्वारा ज्ञात तथ्यो के आधार पर की गयी है। यह प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक बहुत क्लिष्ट न होने पाये, जिससे यह केवल खोज का कार्य करने वाले विद्यार्थियो के उपयोग तक ही सीमित न रहे। सक्षेप मे तथा सरल ढग से ही नवीन वैज्ञानिक तथ्यो का विवेचन किया गया है। लेखक का यह विश्वास है कि जो सामग्री इसमें प्रस्तुत की गयी है उसे समझने मे रसायन का साधारण ज्ञान रखने वाले किसी भी व्यक्ति को कोई कठिनाई नही होगी।

स्टार्च-व्यवसाय मे 'किण्वन और एजाइम क्रिया' का विशेष महत्त्व है, कुछ खाद्य पदार्थों से स्टार्च प्राप्त करने मे इन क्रियाओ की सहायता ली जाती है। स्टार्च का विभिन्न रासायनिक पदार्थों मे परिवर्तन तथा स्टार्च का सश्लेषण भी कुछ अश तक इन्ही क्रियाओ पर आधारित है। अत॰ स्टार्च के रासायनिक रूप तथा इसके सम्बन्ध की क्रियाओ का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'किण्वन और एजाइम क्रियाओं' का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इसी दृष्टि से पुस्तक के आरम्भ मे एक अध्याय मे 'किण्वन और एजाइम' का विवेचन किया गया है और एक दूसरे अध्याय मे उन एजाइमो की चर्चा की गयी है जिनका मुख्य रूप से स्टार्च से सम्बन्ध है। जीव-जगत् मे होनेवाली प्रत्येक क्रिया एज़ाइम द्वारा होती है। अत॰ एज़ाइमो का महत्त्व बडा व्यापक है और बिना इनका साधारण ज्ञान प्राप्त किये स्टार्च सम्बन्धी रसायन का समझना सम्भव नही है।

इस पुस्तक की सामग्री जुटाने और इसे वर्तमान रूप देने मे कई पुस्तको तथा खोज सम्बन्धी निबन्धो से सहायता ली गयी है। खोज सम्बन्धी लेखो का उल्लेख सम्बन्धित अध्यायों के अन्त मे कर दिया गया है। जिन पुस्तकों से लेखक को विशेष रूप से वर्तमान पुस्तक की रचना करने मे सहायता मिली है, वे निम्न है—

१. Radley—'Starch and its Derivatives' Vol. I and II, published by John Wiley & Sons INC., New York, 1954.

२. Stewart and Graham—'Recent Advances in Organic Chemistry' Vol. II, published by Longmans Green & Co , London, 1948

३ Honeyman—'The Chemistry of Carbohydrates' published by Clarendon Press, Oxford, 1948

४. Haworth—'The Constitution of the Sugars' published by Arnold, London, 1929

५. Dixon and Webb—'Enzymes' published by Longmans Green & Co., London, 1958.

६. Rayond E. Kirk and Donald F. Othmer—'Encyclopedia of Chemical Technology', Vol. 12, published by the Interscience Encyclopedia, INC., New York.

७ Eugene I Rabinowitch—'Photosynthesis and Related Processes', Vol II, Part I, Inter Science Publishers, INC
८ C P Wittingham—'Photosynthesis,' published by Methuen & Co, Ltd, London, 1955.

पुस्तक मे प्रयुक्त वैज्ञानिक शब्दों के हिन्दी पर्याय केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक शब्दावली से लिये गये है। यह शब्दावली अभी पूर्ण नही है। जिन शब्दो के हिन्दी पर्याय इसमे नही मिल सके, उन्हे लेखक ने स्वय सस्कृत कोशो के आधार पर चुना है या गढा है।

स्टार्च के विश्लेषण तथा परिमापन की विधियाँ परिशिष्ट के रूप मे अन्त मे पृथक् दो अध्यायो मे दी गयी है। इन विधियो द्वारा स्टार्च की पहचान तथा मिलावट ज्ञात करने मे सहायता मिलती है।

जैसा मैने आरम्भ मे लिखा है, इस पुस्तक का उद्देश्य जनसाधारण को स्टार्च तथा तत्सम्बन्धी व्यवसाय का साधारण परिचय कराना मात्र है। इस पुस्तक मे दी गयी सामग्री स्टार्च-व्यवसाय मे सलग्न व्यवसायियो के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा लेखक का विश्वास है। किन्तु जो पाठक स्टार्च विषय का अधिक गहरा सैद्धान्तिक अध्ययन करना चाहते है उन्हे अध्यायो के अन्त मे निर्देशित खोजनिबन्धो तथा ऊपर दी गयी सूची की पुस्तकों का अवलोकन करना होगा।

अन्त मे मै उत्तर प्रदेश शासन की हिन्दी समिति के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता हूं जिसकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गयी है। यह समिति हिन्दी साहित्य के भडार की अभिवृद्धि करने मे स्तुत्य कार्य कर रही है। मेरा अनुमान है कि यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी साहित्य की प्रथम पुस्तक होगी और इस दृष्टि से हिन्दी समिति का यह प्रकाशन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सन्तप्रसाद टंडन

विषय सूची

अध्याय १. विषय प्रवेश १—८

कार्वोहाइड्रेट, कार्वोहाइड्रेट का वर्गीकरण, इतिहास और महत्त्व, भारतवर्ष मे स्टार्च का व्यवसाय।

अध्याय २. किण्वन और एंजाइम ९—२२

किण्वन, एजाइम।

अध्याय ३. ऐमिलेस और उनका प्राप्त करना २३—३४

ऐमिलेस एजाइमो का प्राप्त करना, ऐमिलेस का रासायनिक रूप और सक्रियता।

अध्याय ४. स्टार्च को व्यापारिक मात्रा मे प्राप्त करना ३५—८१

गेहूँ से स्टार्च बनाना, चावल से स्टार्च प्राप्त करना, साबूदाना, टैपियोका स्टार्च, अरारोट, मकई का स्टार्च, आलू का स्टार्च, शकरकन्द का स्टार्च, केले से स्टार्च प्राप्त करना।

अध्याय ५. स्टार्च के अवयव तथा गुण-धर्म ८२—९६

स्टार्च के अवयव ऐमिलेस और ऐमिलोपेक्टिन, मोमीय तथा ग्लूटेनीय स्टार्च, स्टार्च के गुण-धर्म, स्टार्च के उपयोग।

अध्याय ६. विलेय स्टार्च तथा स्टार्च के एस्टर और ईथर ९७—१०१

विलेय स्टार्च, स्टार्च के एस्टर, स्टार्च के ईथर।

अध्याय ७. डेक्सट्रिन १०२—११६

बनाने की विधियाँ . सूखी विधि, गीली विधि, मणिभीय गोद, गुण।

अध्याय ८. ग्लूकोस ११७—१४४

स्टार्च से ग्लूकोस बनाने की विधियाँ, स्टार्च से ग्लूकोस बनाने मे रासायनिक अभिक्रियाएँ, ग्लूकोस के गुण-धर्म, ग्लूकोस के उपयोग, ग्लूकोस की सरचना।

अध्याय ९. माल्टोस १४५—१५३

माल्टोस बनाने की विधियाँ, गुण-धर्म, माल्टोस की सरचना।

अध्याय १०. स्टार्च की संरचना १५४—१६६

भौतिक आकार, रासायनिक आकार, ऐमिलेस की सरचना, ऐमिलोपेक्टिन की सरचना।

अध्याय ११. कार्बोहाइड्रेट पदार्थो का संश्लेषण १६७—१८७

पौधो की कोशिकाएँ, पत्ती का आकार, प्रकाश-सश्लेपण, पौधो मे स्टार्च तथा अन्य कार्वोहाइड्रेट का सग्रह, स्टार्च का सश्लेपण।

अध्याय १२. स्टार्च से विविध रासायनिक यौगिको का बनाना १८८—२२०

ऐथिल ऐलकोहल, ऐसीटोन और ब्यूटिल ऐलकोहल, ग्लिसरोल, लैक्टिक अम्ल, २ ३—ब्यूटिलीन ग्लाइकाल।

अध्याय १३. स्टार्च से बने आसंजक २२१—२४७

आटे की लेई, स्टार्च आसजक, सूखा आसजक।

अध्याय १४. डेक्सट्रिन से बने आसंजक २४८—२५५

अध्याय १५. स्टार्च और भोजन व्यवसाय २५६—२७८

अध्याय १६. स्टार्च और कागज उद्योग २७९—२८७

अध्याय १७. स्टार्च और वस्त्र उद्योग २८८—३०४

अध्याय १८. विविध उपयोग ३०५—३१६

धुलाई मे स्टार्च का उपयोग, प्रसाधन सामग्रियों मे स्टार्च का उपयोग, दवाओ मे स्टार्च पाउडर का उपयोग, बागबानी मे स्टार्च का उपयोग, विस्फोटक तथा ईधन के सम्बन्ध मे स्टार्च का उपयोग, अन्य उपयोग।

अध्याय १९. स्टार्च-उद्योग के उपजात और उनका उपयोग ३१७—३१८

अध्याय २०. स्टार्च तथा स्टार्च-पदार्थों का परिरक्षण ३१९—३२२

अध्याय २१. स्टार्च का परीक्षण और विश्लेषण ३२३—३४३

अध्याय २२. स्टार्च का परिमापन ३४४—३५०

अध्याय २३. डेक्सट्रिन का विश्लेषण ३५१—३५९

अनुक्रमणिका ३६०—३६१

शब्दकोश ३६२—३६७

अध्याय १

विषय प्रवेश

कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट कार्बनिक यौगिको (organic compounds) का एक बड़ा समूह है जिसके अन्तर्गत शर्कराएँ (sugars), स्टार्च (starch), डेक्सट्रिन (dextrins) और सेल्यूलोस (cellulose) आदि पदार्थ हैं। मनुष्य के लिए कार्बोहाइड्रेट समूह के पदार्थो का बडा महत्त्व है। शर्कराएँ तथा स्टार्च हमारे भोजन के आवश्यक अग हैं। सेल्यूलोस पौधो की कोशिकाओ की भित्ति बनाता है, और इस प्रकार पौधो के पजर (skeleton) का मुख्य पदार्थ है। इसी पजर द्वारा पौधो के जीव-पदार्थ रक्षित रहते है और इसी पर उनका समस्त रूप तथा आकार आधारित रहता है। अत सेल्यूलोस हमारी कृषि का भी आधारभूत है। लकडी के रूप मे सेल्यूलोस ईंधन के काम मे तथा फर्नीचर और मकान बनाने के काम मे आता है। इससे कागज, सिनेमा की फिल्म तथा अनेक विस्फोटक पदार्थ भी बनाये जाते है। रुई के रूप मे सेल्यूलोस का उपयोग कपडा बनाने मे होता है। कृत्रिम रेशम भी सेल्यूलोस से ही बनाया जाता है। गोद, जो विभिन्न पेडो से स्राव के रूप मे प्राप्त होता है, कार्बोहाइड्रेट वर्ग का ही पदार्थ है। विभिन्न प्रकार की शराबो तथा अन्य अनेक औद्योगिक रासायनिक यौगिको के भी कार्बोहाइड्रेट स्रोत है।

कार्बोहाइड्रेट कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सिजन इन तीन तत्त्वो से मिलकर बने यौगिक है। ये मुख्य रूप से पौधो मे पाये जाते है। पौधो मे विद्यमान समस्त ठोस पदार्थो का लगभग ७५ प्रतिशत अश कार्बोहाइड्रेट होता है। जन्तुओ मे ये साधारणत बहुत कम मात्रा मे पाये जाते है। आरम्भ मे इस वर्ग के जितने पदार्थ ज्ञात हुए थे उन सब को आणविक-सूत्र $C_{\text{क}} (H_2O)_{\text{ख}}$ (जिसमे 'क' और 'ख' ३ से ऊपर कोई भी सख्या हो सकती है) द्वारा व्यक्त किया जा सकता था। इस कारण यह समझा गया कि ये सब पदार्थ एक प्रकार से कार्बन के हाइड्रेट है, अर्थात् इनमे हाइड्रोजन और आक्सिजन का परस्पर वही अनुपात है जो पानी मे रहता है। इसी आधार पर इस पूरे समूह का नाम कार्बोहाइड्रेट रखा गया, किन्तु अब कुछ ऐसे भी कार्बोहाइड्रेट

ज्ञात है जिनमे हाइड्रोजन और आक्सिजन का अनुपात वही नही है जो पानी मे है। उदाहरणार्थ, रैमनोस (rhamnose) शर्करा का अणुसूत्र $C_6H_{12}O_5$ है। इसके साथ ही अनेक ऐसे पदार्थ ज्ञात है जो कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सिजन के यौगिक है और जिनके अणु मे हाइड्रोजन और आक्सिजन का अनुपात वही है जो पानी मे है, किन्तु फिर भी अपने गुणो की भिन्नता के कारण ये पदार्थ कार्बोहाइड्रेट वर्ग मे सम्मिलित नही किये जा सकते। ऐसे पदार्थों मे ऐसीटिक अम्ल ($C_2H_4O_2$), लैक्टिक अम्ल ($C_3H_6O_3$) तथा फार्मैल्डीहाइड (CH_2O) आदि है। अत कार्बोहाइड्रेट शब्द अब उस अर्थ मे प्रयुक्त नही किया जाता जिस अर्थ मे यह आरम्भ मे इस वर्ग के पदार्थों के लिए किया गया था। यह अब केवल उन समस्त पदार्थों के लिए, जो या तो स्वय बहुहाइड्राक्सी ऐल्डीहाइड (polyhydroxy aldehydes), या बहुहाइड्राक्सी कीटोन (polyhydroxy ketones) के गुणधर्म प्रदर्शित करते है, या जल-विश्लेपित होने पर ऐसे यौगिक उत्पन्न करते है जो बहुहाइड्राक्सी ऐल्डीहाइड या बहुहाइड्राक्सी कीटोन के गुणधर्म प्रदर्शित करते है, प्रयुक्त होता है।

कार्बोहाइड्रेट वर्ग मे निम्नलिखित मुख्य यौगिक सम्मिलित है—

(१) **शर्कराएँ**—इक्षुशर्करा (cane sugar), द्राक्षशर्करा (ग्लूकोस, glucose), दुग्धशर्करा (लैक्टोस, milk sugar), यवशर्करा (माल्टोस, maltose) आदि शर्कराएँ। ये पानी मे विलेय तथा स्वाद मे मीठी और मणिभीय होती है और अधिकतर फलो तथा वृक्षों के तनो मे पायी जाती है। हमारे भोजन मे ये मूल्यवान् अश के रूप मे विद्यमान रहती है।

(२) **स्टार्च**—ये वनस्पति जगत् मे प्रचुर मात्रा मे फैले हुए हैं और भोजन के आवश्यक पदार्थ है। चावल, गेहूँ, मक्का, आलू आदि मे ये मुख्य रूप से पाये जाते हैं। ये सफेद अमणिभीय ठोस है और पानी मे अविलेय है।

(३) **सेल्यूलोस**—पौधो की कोशिका भित्ति (cell walls) तथा पौधो को आधार प्रदान करने वाले विभिन्न ऊतक (tissue) सेल्यूलोस के बने होते है। रुई तथा लकडी मुख्यत सेल्यूलोस से बने पदार्थ है। रुई लगभग शुद्ध सेल्यूलोस है।

यह भी अमणिभीय ठोस है और पानी मे अविलेय है।

कार्बोहाइड्रेट का वर्गीकरण

कार्बोहाइड्रेट समूह निम्न तीन कक्षाओं में विभक्त किया गया है। यह विभाजन इनके जलविश्लेषण से प्राप्त होने वाले पदार्थों के आधार पर किया गया है।

(१) **एकसैकराइड या मॉनोसैकराइड** (Monosaccharides)—ये सरलतम

कार्बोहाइड्रेट हैं। इस कक्षा मे वे सब सरल शर्कराएँ सम्मिलित है जो जल-विश्लेषित नही होती और जो बहुहाइड्राक्सी ऐल्डीहाइड अथवा बहुहाइड्राक्सी कीटोन (polyhydroxy aldehydes or polyhydroxy ketones) की भाँति के गुणधर्म प्रदर्शित करती है। तीन से नौ कार्बन परमाणु तक के मॉनोसैकराइड ज्ञात है। ये सब मणिभीय ठोस है और पानी मे शीघ्र विलेय है तथा स्वाद मे मीठे है। ग्लूकोस, फ्रुक्टोस, गैलेक्टोस, ऐराबिनोस (arabinose) आदि इस कक्षा के उदाहरण है।

मॉनोसैकराइड के पुन दो विभाग किये गये है—**ऐल्डोस** (aldose) और **कीटोस** (ketose)। जो मॉनोसैकराइड बहुहाइड्राक्सी ऐल्डीहाइड के गुणधर्म प्रदर्शित करते है उन्हे ऐल्डोस और जो बहुहाइड्राक्सी कीटोन के गुणधर्म प्रदर्शित करते है उन्हे कीटोस के अन्तर्गत रखा जाता है। ऐल्डोस और कीटोस शर्कराओ का नामकरण उनके अणु मे विद्यमान आक्सिजन परमाणु की सख्या के अनुसार किया जाता है। यदि आक्सिजन के तीन परमाणु मॉनोसैकराइड के एक अणु मे है तो इसे ट्राइ-ओस, यदि चार है तो टेट्रोस, यदि पाँच है तो पेंटोस, यदि छ है तो हेक्सोस आदि नाम दिया जाता है —

ट्राइओस	$CH_2OH\ CHOH\ CHO$	(ऐल्डोस)
	$CH_2OH\ CO\ CH_2OH$	(कीटोस)
टेट्रोस	$CH_2OH\ (CHOH)_2\ CHO$	(ऐल्डोस)
	$CH_2OH\ CO\ CHOH\ CH_2OH$	(कीटोस)
पेंटोस	$CH_2OH \cdot (CHOH)_3 \cdot CHO$	(ऐल्डोस)
	$CH_2OH\ CO\ (CHOH)_2\ CH_2OH$	(कीटोस)
हेक्सोस	$CH_2OH\ (CHOH)_4\ CHO$	(ऐल्डोस)
	$CH_2OH\ CO\ (CHOH)_3\ CH_2OH$	(कीटोस)

केवल पेंटोस (pentoses) और हेक्सोस (hexoses) प्रकृति मे पाये जाते है। अन्य मॉनोसैकराइड प्रसिद्ध कार्बनिक रसायनज्ञ एमिल फिशर (Emil Fischer) द्वारा सश्लेषण की विधि से प्राप्त किये गये थे।

हेक्सोस शर्कराओ मे ग्लूकोस, फ्रुक्टोस और गैलेक्टोस बहुत समय से ज्ञात हैं। अन्य हेक्सोस शर्कराएँ एमिल फिशर द्वारा सश्लेषण से ज्ञात की गयी थी।

कीटो-ट्राइओस के अतिरिक्त अन्य सब मॉनोसैकराइडो मे एक या अधिक असम-मित कार्बन परमाणु (asymmetric carbon atom) मौजूद रहता है, अतः ये प्रकाश-सक्रिय (optically active) होते है और इनमें प्रकाश के ध्रुवन-तल (plane

of polarized light) को घुमाने का गुण होता है। उदाहरणार्थ, ऐल्डोहेक्सोज के अणु मे चार असममित कार्बन परमाणु रहते है, अत यह १६ प्रकाश-सक्रिय समावयवी रूपो मे पाया जाता है जिनमे से ८ दक्षिणावर्ती (dextrorotatory) और ८ वामावर्ती (laevorotatory) होते है।

(२) **लघुसैकराइड या ऑलिगोसैकराइड** (Oligosaccharides)—इस कक्षा मे वे शर्कराएँ सम्मिलित है जो मॉनोसैकराइड अणुओ की एक निश्चित सख्या के परस्पर सघनित होने से बनी है। इस सघनन मे जितने मॉनोसैकराइड अणु सघनित होते है उससे सदा एक अणु कम पानी के अणु पृथक् होते है। उदाहरणार्थ, यदि किसी ऑलिगोसैकराइड के बनने मे दो अणु मॉनोसैकराइड सघनित होते है तो एक अणु पानी पृथक् होता है, यदि तीन अणु मॉनोसैकराइड सघनित होते है तो दो अणु पानी पृथक् होता है। सघनित हुए मॉनोसैकराइड अणुओ की सख्या के अनुसार इनका विभाजन पुन डाइ, ट्राइ, टेट्रासैकराइड आदि मे किया जाता है। उदाहरणार्थ, सुक्रोस या इक्षुशर्करा एक द्विसैकराइड (डाइसैकराइड, disaccharide) है क्योकि यह मॉनोसैकराइड के दो अणुओ—एक अणु फ्रुक्टोस और एक अणु ग्लूकोस—के सघनित होने से बना पदार्थ है —

$$\underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\text{फ्रुक्टोस}}{C_6H_{12}O_6} \longrightarrow \underset{\text{इक्षु शर्करा}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + H_2O$$
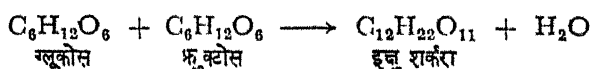
माल्टोस (maltose) तथा लैक्टोस (lactose) भी डाइसैकराइड हैं। माल्टोस दो ग्लूकोस अणुओ के सघनित होने से तथा लैक्टोस एक अणु ग्लूकोस और एक अणु गैलेक्टोस के सघनित होने से बने है —

$$\underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} \longrightarrow \underset{\text{माल्टोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + H_2O$$

$$\underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\text{गैलेक्टोस}}{C_6H_{12}O_6} \longrightarrow \underset{\text{लैक्टोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + H_2O$$
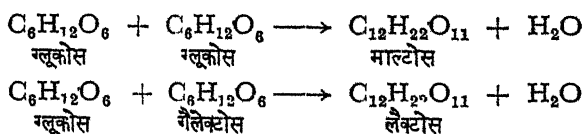
रैफिनोस (raffinose) एक ट्राइसैकराइड है। इसके बनने मे तीन मॉनोसैकराइड अणु सघनित होते है और दो अणु पानी निकालते है:—

$$3C_6H_{12}O_6 \longrightarrow \underset{\text{रैफिनोस}}{C_{18}H_{32}O_{16}} + 2H_2O$$
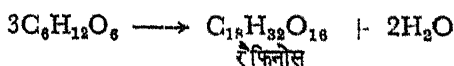
ऑलिगोसैकराइड तनु खनिज अम्लों द्वारा शीघ्र जल-विश्लेषित हो जाते है और उन मॉनोसैकराइड को उत्पन्न करते है जिनके सघनित होने से ये बने हैं। अधिकाश

ज्ञात ऑलिगोसैकराइड मणिभीय ठोस है और पानी मे विलेय है तथा स्वाद मे मीठे है।

(३) **बहुसैकराइड या पालीसैकराइड** (Polysaccharides)—ये भी मॉनोसैकराइड अणुओ के सघनन से बने कार्बोहाइड्रेट है, किन्तु इनके एक अणु के बनने मे मॉनोसैकराइड के असख्य अणु सघनित होते है, और इनकी सख्या ठीक से ज्ञात नही रहती। अत ये बहुत सकीर्ण कार्बोहाइड्रेट है। इनका अणुभार बहुत अधिक होता है और ठीक से ज्ञात नही है। इनके बनने मे यदि मॉनोसैकराइड के n अणु सघनित होते है तो n अणु पानी निकलता है—

$$nC_6H_{12}O_6 \longrightarrow \underset{\text{पालीसैकराइड}}{(C_6H_{10}O_5)_n} + nH_2O$$
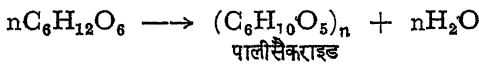
ये अमणिभीय ठोस पदार्थ है और साधारणत पानी मे अविलेय होते है। आणविक सकीर्णता के घटने पर विलेयता मे वृद्धि होती है। इनमे शर्कराओ की भॉति कोई मीठा स्वाद नही होता। तनु खनिज अम्लो के साथ उबालने पर ये जल-विश्लेषित हो जाते है और पूर्ण जल-विश्लेषित होने पर मॉनोसैकराइड उत्पन्न करते है, किन्तु इनका जल-विश्लेषण ऑलिगोसैकराइड की अपेक्षा कठिनता से होता है।

स्टार्च, सेल्यूलोस, ग्लाइकोजेन (glycogen), डेक्सट्रिन आदि इस कक्षा के पदार्थ है।

इतिहास और महत्त्व

कार्बोहाइड्रेट वर्ग के पदार्थो की सर्वप्रथम जानकारी मनुष्य ने कब प्राप्त की, यह ठीक से ज्ञात नही है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि इस वर्ग के पदार्थो मे सर्वप्रथम इक्षुशर्करा का ज्ञान मनुष्य को हुआ होगा। इतिहासज्ञो का यह मत है कि ईख की जन्मभूमि भारतवर्ष है, और ईसा के लगभग ४०० वर्ष पूर्व बौद्धकाल मे उत्तरी भारतवर्ष मे ईख की खेती होती थी। आरम्भ मे कई शताब्दियो तक ईख सम्भवत मुख्य रूप से चूसने के काम मे आती थी, तथा इसका रस पीने के काम मे लाया जाता था। बौद्धकाल मे भारतवर्ष और चीन का परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारतवर्ष से ही ईख चीन मे पहुँची और ईसवी सन् के आरम्भ मे यह अरब के व्यापारियो द्वारा भारतवर्ष से यूरोप ले जायी गयी।

ईख के रस से गुड के बनाये जाने की चर्चा हमारे प्राचीन 'ग्रथो' मे है, किन्तु ऐसा जान पडता है कि चीनी का बनाना हम लोगो ने विदेशियो से सीखा। ईसवी सन् की

नवी तथा दसवी शताब्दी मे मिस्र मे व्यापारिक रूप से चीनी बनाने का कार्य होता था।

यद्यपि स्टार्च का भोजन के रूप मे मनुष्य के जीवन मे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध आदि काल से रहा है, फिर भी यह कह सकना कि पृथक् यौगिक के रूप मे इसकी जानकारी सर्वप्रथम कब हुई बडा कठिन है। किन्तु इतना निश्चित है कि सर्वप्रथम प्राप्त किया गया स्टार्च गेहूँ के आटे से बनाया गया था और ग्रीक निवासियों ने इसे ऐमिलम (amylum) नाम दिया था। ऐमिलम ग्रीक भाषा का शब्द है और आज भी स्टार्च के लिए प्रयुक्त होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि स्टार्च किसी न किसी रूप मे मिस्र मे लगभग ३५०० वर्ष पूर्व ज्ञात था, क्योंकि उस समय के कुछ कागज-पत्रो मे स्टार्च की लेई का उपयोग स्पष्ट जान पडता है। ग्रीक इतिहासज्ञ डाइआँस-करिडीज (Dioscorides, २०० ईसवी पूर्व) ने लिखा है कि सबसे अच्छी जाति का स्टार्च ईजिप्ट के गेहूँ से प्राप्त होता है। इसने इसके बनाने की विधि भी लिखी है। दूसरे इतिहासकार प्लाइनी' (Pliny) ने भी लिखा है कि ईसा के लगभग १३० वर्ष पूर्व कागज की सतह के सज्जीकरण (sizing) के लिए स्टार्च का उपयोग ईजिप्ट मे होता था। जे० वाइसनर' (J. Wiesner) ने यूरोप तथा एशिया के विभिन्न देशों के प्राचीन समय के कागजो के नमूनो की परीक्षा की और इस परीक्षण के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि आठवी शताब्दी के पहले कागज बनाने मे स्टार्च का उपयोग व्यापक रूप से होता रहा हो ऐसा नही जान पडता, किन्तु आठवी और तेरहवी शताब्दी के मध्य काल मे कागज के सज्जीकरण के लिए स्टार्च का बहुत उपयोग होता था, यह निश्चित है। उसके बाद कागज-उद्योग मे स्टार्च का उपयोग बद हो गया और पुन वर्तमान शताब्दी मे आरम्भ हुआ।

प्राचीन ग्रन्थो से ऐसा जान पडता है कि वस्त्रो पर कलफ करने के लिए स्टार्च का उपयोग सभवत' चौदहवी शताब्दी मे आरम्भ हुआ। इससे पूर्व किसी भी देश मे इस कार्य के लिए स्टार्च के उपयोग का प्रमाण नही मिलता। इग्लैड मे रानी एलिजाबेथ के शासनकाल मे सफेद तथा विभिन्न रंग मिश्रित स्टार्च बालो मे लगाने के काम मे आते थे। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ के कुछ वर्षों तक स्टार्च का मुख्य उपयोग बालों तथा चेहरे के लिए प्रसाधन के अर्थ में ही होता था और कागज के सज्जीकरण तथा वस्त्रो पर कलफ करने में कम होता था। इसके बाद से स्टार्च का उपयोग विभिन्न प्रकार के कामों मे बढ़ने लगा।

स्टार्च का व्यापारिक रूप मे बनाना एक प्रकार से सन् १६२२ ईसवी में आरम्भ

हुआ। इसी वर्ष इग्लैण्ड मे एक फैक्टरी ने इसके बनाने की विधि का पेंटेट शासन से प्राप्त कर स्टार्च का व्यापारिक मात्रा में बनाना आरम्भ किया। इसके बाद स्टार्च बनाने की विभिन्न विधियो का पेटेट समय-समय पर विभिन्न देशो मे हुआ और स्टार्च बनाने के व्यापार मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी।

जीवाणु-विज्ञान के जन्मदाता ल्यूवेनहुक[3] (Leeuwenhoek) ने सर्वप्रथम स्टार्च की परीक्षा सूक्ष्मदर्शी द्वारा सन् १७१९ मे की और इसके कणो के आकार पर प्रकाश डाला। ल्यूवेनहुक ने ही सर्वप्रथम स्टार्चकणो के पानी सोखने तथा पानी मे फूलने के गुण की भी जानकारी प्राप्त की। धीरे-धीरे स्टार्च के विभिन्न गुण-धर्मो का विस्तृत अध्ययन रसायनज्ञो ने किया और इन गुणो के आधार पर स्टार्च के विभिन्न उपयोग ज्ञात किये।

वर्तमान युग मे स्टार्च एक महत्त्व का यौगिक है और अनेको उद्योग इस पर निर्भर करते है। ऐलकोहल, जो अनेक उद्योगो का आधारभूत पदार्थ है, मुख्य रूप से स्टार्च के किण्वन (fermentation) से प्राप्त किया जाता है। ग्लूकोस का व्यापारिक मात्रा मे उत्पादन स्टार्च से ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त बहुत-से औद्योगिक पदार्थों का स्रोत भी स्टार्च है, जैसे डेक्सट्रिन, माल्टोस आदि। विभिन्न रासायनिक पदार्थों के प्राप्त करने के लिए स्टार्च का उपयोग होने के अतिरिक्त स्टार्च का स्वय भी सीधे उपयोग विभिन्न कामो मे होता है। पाउडर तथा अन्य प्रसाधन सामग्री तैयार करने मे स्टार्च का उपयोग होता है। वस्त्रो पर कलफ करने, कागज को रध्रहीन बनाने तथा सज्जीकरण करने मे भी स्टार्च का उपयोग आजकल बडी मात्रा मे होता है।

भारतवर्ष मे स्टार्च का व्यवसाय

औद्योगिक महत्त्व के कारण स्टार्च का उत्पादन आज बडी मात्रा मे हो रहा है। स्टार्च बनाने के लिए विभिन्न देशो मे विभिन्न पदार्थ उपयोग मे लाये जाते है। हमारे देश मे स्टार्च मुख्य रूप से मकई से प्राप्त किया जाता है। निम्न मुख्य कारखाने इस समय हमारे देश मे स्टार्च बनाने का काम कर रहे है—

(१) ग्वालियर मेज प्रोडक्टस लिमिटेड, ग्वालियर
(२) पर्ल प्रोडक्टस लिमिटेड, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
(३) एनिल स्टार्च प्रोडक्टस लिमिटेड, अहमदाबाद (गुजरात)
(४) सुखजीत स्टार्च ऐण्ड केमिकल्स लिमिटेड, फगवाडा (पजाब)

(५) मेज़ प्रोडक्टस कठवाडा, अहमदाबाद

(६) हैदराबाद कस्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड (स्टार्च प्रोडक्टस फैक्टरी विभाग), हैदराबाद

(७) लक्ष्मी स्टार्च फैक्टरी लिमिटेड, कुडरा (Kundara) [केरल राज्य]

(८) भारत स्टार्च ऐड केमिकल्स लिमिटेड, यमुनानगर, (अम्बाला) [पंजाब]

इन फैक्टरियो मे मकई से स्टार्च निकालने के बाद जो आमज्जक द्राव (steep liquor) बचता है उसे "मकई का आमज्जक द्राव" (corn steep liquor) कहते है। यह स्टार्च फैक्टरियो के लिए वर्ज्य पदार्थ (waste product) है। पूना के निकट पिम्परी (Pimpri) मे जो पेनिसिलिन बनाने की फैक्टरी है वहाँ इस वर्ज्य पदार्थ का उपयोग पेनिसिलिन फफूँदों को उगाने के लिए भोजन-द्रव्र के रूप मे होता है। इस आमज्जक द्राव मे मकई के पौष्टिक भोजन तत्त्व—प्रोटीन, वसा लवण आदि—विद्यमान रहते है। इसका उपयोग अन्य अणुजीवो के उगाने मे भी किया जा सकता है।

निर्देश

1. Plinius Secundus, Gauis *Naturalis Historia*

2. J Weisner, Papierfabr., 1911, 886.

3. A. Van Leeuwenhoeck, 'Epistolae Physiologicae super compluribus Naturae Arcanus', Epistolae 26, 1719.

अध्याय २

किण्वन और एंज़ाइम

पौधो के बीजो तथा विभिन्न अन्य भागो से स्टार्च पृथक् करने मे तथा स्टार्च से विभिन्न प्रकार के यौगिक बनाने मे किण्वन (fermentation) और एंज़ाइम-क्रिया (enzyme action) का बडा महत्त्व है। अत. स्टार्च बनाने की विधियो का वर्णन करने के पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि किण्वन और किण्वन को उत्प्रेरित करने वाले एंज़ाइम क्या है और इनकी क्रिया कैसे होती है।

किण्वन

वायु मे कुछ समय तक रखा रहने पर दूध तथा गुँधा आटा खट्टा हो जाता है। इसी प्रकार यदि चीनी के शर्बत को हम वायु मे रखा रहने देते है तो २४ घटो के भीतर ही यह भी खट्टा हो जाता है। इस प्रकार के अनेक परिवर्तनो का परिचय हमे अपने प्रतिदिन के जीवन मे प्राप्त होता है जिनमे भोजन पदार्थ वायु मे रखा रहने पर या तो खट्टा हो जाता है या उसके स्वाद मे कोई परिवर्तन हो जाता है। स्पष्ट है कि रखे रहने पर इन सब पदार्थों मे कोई रासायनिक क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप कोई नया पदार्थ उत्पन्न होता है और इस नये पदार्थ के बनने के कारण ही पदार्थ के स्वाद मे अन्तर आ जाता है। इस प्रकार के अनेक रासायनिक परिवर्तनो का ज्ञान, जो वायु मे आपसे आप होते है, हमे बहुत प्राचीन काल से रहा है। दूध से दही का बनना, गुड या शक्कर के शर्बत से शराब तथा सिरका का बनना सब इसी प्रकार के परिवर्तन है। यद्यपि इन परिवर्तनो की जानकारी हमे बहुत प्राचीन काल से रही है पर जब तक इनके रासायनिक रूप और प्रक्रम पर प्रकाश नही डाला जा सका था तब तक इनके महत्त्व का ज्ञान हमे नही था। पिछले लगभग ७० वर्षो के भीतर रसायनज्ञो ने इस दिशा मे अभूतपूर्व खोजे की है जिनसे हमे ज्ञात हुआ है कि ये क्रियाएँ प्रकृति मे व्यापक रूप से होती है और जीव-जगत् की समस्त क्रियाओ की मूलभूत क्रियाएँ है। जीव-जगत् की लीलाएँ इन्ही क्रियाओ पर आधारित है।

कार्बनिक पदार्थों पर होने वाली इन विघटन क्रियाओ को प्राचीन काल मे किण्वन

नाम दिया गया था और यही नाम अब भी प्रचलित है। ये क्रियाएँ या तो अणुजीवों (micro-organisms) की उपस्थिति मे होती है या अणुजीवों द्वारा उत्पन्न कुछ विशेष सकीर्ण नाइट्रोजन-युक्त पदार्थों की उपस्थिति मे। इस प्रकार किण्वन की परिभाषा निम्न भाति की जाती है—

"अणुजीवों या अणुजीवों द्वारा उत्पन्न कुछ विशेष प्रकार के सकीर्ण नाइट्रोजन-युक्त पदार्थों द्वारा कार्बनिक पदार्थों के धीमी गति से विच्छेदित होने की क्रिया को किण्वन (fermentation) कहते हैं।" किण्वन मे सामान्य रूप से कोई गैस (अधिकतर कार्बन डाइआक्साइड) निकलती है और ऊष्मा उत्पन्न होती है। वे अणुजीव तथा वे सकीर्ण नाइट्रोजन-युक्त पदार्थ जो किण्वन-क्रिया को सम्पादित करते है किण्व या फर्मेंट (ferment) कहलाते है।

एंजाइम

आरम्भ मे यह अनुमान किया गया था कि किण्वन-क्रियाएँ सम्भवत आपसे आप होती है और इन्हे सम्पादित करने के लिए किसी प्रेरक की आवश्यकता नही होती, किन्तु यह धारणा शीघ्र ही गलत सिद्ध हो गयी। यह देखा गया कि यदि उस पदार्थ को जो रखने पर किण्वित होता है, आरम्भ मे पर्याप्त ऊँचे ताप तक गरम कर अणुजीवरहित कर दिया जाय और ऐसे बर्तन मे बद कर रखा जाय कि उसमें केवल शुद्ध वायु तो आ-जा सके किन्तु अणुजीव न जा सके, तो फिर इस पर किण्वन-क्रिया नही होती। अतः इससे यह सिद्ध हुआ कि इस क्रिया को प्रेरित करने वाली कोई वस्तु अवश्य है जो किण्वन होने वाले पदार्थ मे वायु से पहुँच जाती है। सूक्ष्मदर्शी परीक्षण द्वारा अब हमे यह ज्ञात हो गया है कि प्रत्येक किण्वन-क्रिया में वायु से अणुजीव सम्बन्धित पदार्थ मे पहुँचते है और किण्वन-क्रिया आरम्भ करते है। प्रत्येक प्रकार का किण्वन किसी विशेष अणुजीव द्वारा सम्पादित होता है। उदाहरणार्थ, शक्कर से किण्वन द्वारा ऐलकोहल का बनना यीस्ट (yeast) नामक अणुजीव द्वारा होता है। यीस्ट फफूंद वर्ग का एक निम्न पौधा है जो केवल एक कोशिका (cell) का बना होता है और सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। अन्य जीवों की भाँति यीस्ट को भी अपने पोषण, वृद्धि तथा अन्य जीवन-क्रियाओं के लिए ऊर्जा प्राप्त करने के हेतु भोजन की आवश्यकता होती है। यह शर्करा पदार्थों पर जीवन व्यतीत करता है और शर्करा के विच्छेदन द्वारा अपनी आवश्यकता के लिए ऊर्जा प्राप्त करता है।

फ्रास के प्रसिद्ध वैज्ञानिक लुई पास्तूर (Louis Pasteur) ने किण्वन के

सम्बन्ध मे बहुत सी खोजे की। पास्तूर का विश्वास था कि शर्करा का किण्वन मुख्य रूप से यीस्ट-कोशिकाओ की जीवन-क्रियाओ के कारण होता है, किन्तु जर्मन रसायनज्ञ लीबिग (Liebig) तथा उनके अनुयायिओ का मत ठीक इसके विपरीत था। इनका मत था कि शर्करा का किण्वन यीस्ट की जीवन-क्रियाओ पर सीधे निर्भर नही करता, वरन् प्रधान रूप से यह एक रासायनिक क्रिया है जो किसी अजीवित रासायनिक पदार्थ द्वारा होती है। यह पदार्थ यीस्ट की कोशिकाओ के भीतर ही रहता है। इन दोनो मतो मे कौन मत सत्य है, इस पर बहुत वर्षो तक विवाद चलता रहा। अन्त मे एडुअर्ड बुकनर (Eduard Buchner) ने सन् १८९७ मे अपने प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध किया कि लीबिग का मत ही ठीक है। बुकनर ने यीस्ट-कोशिकाओ को बालू और पानी के साथ बडे दाब पर पीसा जिससे यीस्ट-कोशिकाएँ विच्छिन्न होकर मर जायँ। इसे फिर छानकर उसने यीस्ट का एक स्वच्छ निष्कर्ष (extract) प्राप्त किया जिसमे कोई भी जीवित यीस्ट-कोशिका मौजूद नही थी। उसने देखा कि इस निष्कर्ष मे शर्करा को किण्वित करने का गुण था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि यीस्ट-कोशिकाओ मे कुछ अजीवित पदार्थ रहते है जिनमे ही वास्तव मे शर्करा को किण्वित करने का गुण होता है, यीस्ट के जीवन से किण्वन का कोई सीधा सम्बन्ध नही रहता। जीव-कोशिकाओ मे रहने वाले ये रासायनिक पदार्थ जिनमे किण्वन करने का गुण होता है **एंज़ाइम** कहलाये। बुकनर के इस प्रयोग के बाद शीघ्र ही फिर यह सिद्ध हो गया कि समस्त प्रकार के किण्वन विभिन्न एजाइमो द्वारा ही होते है जो अणुजीवो मे मौजूद रहते है और किण्वन-क्रियाओ का अणुजीवो की जीवन-क्रिया से कोई सीधा सम्बन्ध नही होता, केवल इतना ही सम्बन्ध होता है कि अणुजीव की कोशिकाएँ इन एजाइमो को उत्पन्न करती है। प्रत्येक जीव की कोशिकाओ मे एजाइम अनिवार्य रूप से विद्यमान रहते है और जीव के भीतर होने वाली विभिन्न क्रियाएँ इन्ही के द्वारा होती है। एज़ाइमो का कार्य मुख्य रूप से उत्प्रेरक (catalyst) के रूप मे होता है। इस कारण इन्हे प्राय **जीव-रासायनिक उत्प्रेरक** (biochemical catalysts) भी कहते है।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक जीवो से सम्बन्धित कार्बनिक पदार्थों की सरचना का अच्छा ज्ञान वैज्ञानिको ने प्राप्त कर लिया था और इस ज्ञान के आधार पर प्रसिद्ध कार्बनिक रसायनज्ञ एमिल फिशर[1] ने यह मत प्रकट किया कि प्रत्येक एजाइम का उसके द्वारा किण्वित होने वाले पदार्थों से कोई सरचना सम्बन्धी सम्बन्ध होता होगा। अत कोई एक एज़ाइम केवल उन्ही पदार्थों को किण्वित करने की शक्ति रखेगा जिनसे उसका सरचना सम्बन्धी सम्बन्ध होगा। प्रयोगो द्वारा यह मत बहुत अश तक ठीक सिद्ध

हुआ। यह देखा गया कि प्रत्येक एंज़ाइम का कार्य सीमित होता है। कोई एक विशेष एंजाइम केवल कुछ निश्चित पदार्थों पर ही क्रिया करता है, अन्य पदार्थों पर क्रिया नही करता। एंजाइम के कार्य की तुलना फिशर ने ताले और चाबी से की। जिस प्रकार किसी एक ताले की चाबी केवल अपने से सम्बन्धित ताले को खोल और बद कर सकती है, अन्य तालो को नही, उसी प्रकार कोई एक एंज़ाइम केवल कुछ विशेष पदार्थ या पदार्थों पर ही क्रिया कर सकता है, अन्य पर नही। उदाहरणार्थ, यीस्ट मे जाइमेस नामक एक एंज़ाइम रहता है। यह केवल ग्लूकोस और फ्रुक्टोस को ही विच्छेदित कर सकता है, इक्षुशर्करा को नही। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक क्रिया से सम्बन्धित कोई पृथक् एंजाइम होता है। जीव-सृष्टि मे असख्य प्रकार की क्रियाएँ होती है। अत स्पष्ट है कि इन असख्य क्रियाओ को प्रेरित करने के लिए जीव-जगत् मे असख्य प्रकार के एंज़ाइम भी उपस्थित होंगे।

बहुत सी रासायनिक अभिक्रियाएँ (reactions) एंज़ाइमों द्वारा साधारण ताप पर शीघ्रता से होती है, किन्तु एंजाइमो की अनुपस्थिति मे इन्ही रासायनिक अभिक्रियाओ को सम्पादित करने के लिए क्रियाशील अभिकर्मको (reagents) की तथा विशेष ऊँचे ताप और अन्य उपयुक्त अवस्थाओं की आवश्यकता पडती है। एंज़ाइम साधारणत ऊष्मा के प्रति सवेदी (sensitive) होते है और अधिक ऊँचे या अधिक निम्न ताप पर अक्रिय (inactive) हो जाते है। ताप, सान्द्रता तथा अम्लीयता का एंज़ाइम की क्रिया मे बडा महत्त्व है। इनकी अनुकूलतम (optimum) अवस्था रहने पर ही प्रत्येक एंज़ाइम की क्रियाशीलता सबसे अधिक तीव्र रहती है। साधारणत एंज़ाइम की थोडी मात्रा ही सम्बन्धित पदार्थ की बडी मात्रा पर क्रिया करने मे पर्याप्त होती है।

अधिकाश एंज़ाइमो की क्रिया का अनुकूलतम ताप ३७° सें० ग्रे० के आस-पास होता है, किन्तु कुछ एंज़ाइम ९०° सें० ग्रे० ताप तक भी थोडा क्रियाशील रहते है। अधिक ऊँचे ताप पर ये नष्ट हो जाते है। ताप द्वारा एक बार अक्रिय हो जाने के बाद ये पुन ठढा किये जाने पर सक्रिय नही होते।

हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता का भी एंज़ाइमो की सक्रियता पर बड़ा प्रभाव पडता है। विभिन्न एंज़ाइमो के लिए *pH* की अनुकूलतम दशा भिन्न होती है। कुछ खनिज लवणो की उपस्थिति भी, विशेष कर फास्फेट लवण, एंज़ाइमो को अधिक सक्रिय बनाने के लिए आवश्यक है।

एंज़ाइम की सरचना—एंज़ाइमो की सरचना और इनका रासायनिक रूप जानने के लिए यह आवश्यक था कि एंज़ाइम शुद्ध रूप मे प्राप्त किये जायँ। एंज़ाइमों को

शुद्ध रूप मे प्राप्त करने का प्रयत्न सर्वप्रथम जर्मन रसायनज्ञ विल्सटैटर (Willstatter) और उसके सहयोगियो ने सन् १९२२ और १९२८ के बीच मे किया। सबसे पहला एंजाइम **यूरिएस** (urease) है जो सन् १९२६ मे मणिभ के रूप मे प्राप्त हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे अन्य कई एंजाइम शुद्ध मणिभ के रूप मे प्राप्त हुए। इस समय तक जितने भी एंजाइम शुद्ध रूप मे प्राप्त हो सके है वे सब प्रोटीन है। अत इस ज्ञान के आधार पर अब हम निश्चित रूप से यह कह सकते है कि समस्त एंजाइम प्रोटीन है। किन्तु सामान्य प्रोटीनो मे एंजाइमो की भाँति किण्वन तथा अन्य रासायनिक क्रियाओ को उत्प्रेरित करने का गुण नही होता। अत यदि हम यह जान सके कि सामान्य प्रोटीन और एंजाइम मे क्या भेद है तो एंजाइमो के रूप का हमे अच्छा ज्ञान हो जायगा। यह प्रश्न बडा कठिन है और इस सम्बन्ध मे विभिन्न मत वैज्ञानिको ने प्रस्तुत किये है, किन्तु अभी तक कोई एक मत एकदम सत्य प्रमाणित नही किया जा सका है। अधिकाश रसायनज्ञो का यह अनुमान है कि एंजाइम अणु केवल एक प्रोटीन अणु है, जिसमे कोई ऐसा स्थान होता है जहाँ पदार्थ को अधिशोषित करने का गुण होता है। अधिशोषित हो जाने पर उस स्थान पर पदार्थ की सान्द्रता बढ जाती है और फलस्वरूप इसमे रासायनिक क्रिया होती है। एंजाइम-अणु के इस स्थान को **सक्रिय केन्द्र** (active centre) नाम दिया गया है। सक्रिय केन्द्र की सरचना का क्या निर्दिष्ट रूप है और यहाँ अधिशोषण तथा उसके उपरान्त रासायनिक क्रिया किस प्रकार सम्पादित होती है, यह नही जाना जा सका है। केवल मात्र हम इतना ही कह सकते है कि सक्रिय केन्द्र प्रोटीन अणु का वह विशेष भाग है जिसमे किण्वित होने वाले पदार्थ से सयोग करने का गुण होता है और जिसके कारण पूरे अणु मे एंजाइम के गुण रहते है। इस सक्रिय केन्द्र की सरचना पर ही एंज़ाइम की विशेष सक्रियता और गुण निर्भर करते है।

एंजाइमो का विश्लेषण कर यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि उनमे सगठित ऐमिनो अम्ल अन्य प्रोटीनो मे सगठित ऐमिनो अम्लो से क्या कुछ भिन्नता रखते है? इससे केवल यही ज्ञात हुआ है कि एंजाइम भी सामान्य अन्य प्रोटीनो की भाँति ही प्रोटीन है और परस्पर उसी प्रकार एक दूसरे से भिन्न है जैसे अन्य प्रोटीन। अत एंज़ाइमो की सरचना मे कोई विशेष ऐसे ऐमिनो अम्लो की उपस्थिति नही जान पडती जिनके कारण एंजाइमो मे सक्रियता का होना कहा जा सके।

एंजाइमो का नामकरण और महत्त्व—एंजाइमो के नाम साधारणत उनके कार्य के आधार पर रखे गये है। उदाहरणार्थ, यीस्ट मे जाइमेस एंजाइम के अतिरिक्त दो अन्य एंजाइम रहते है। इनमे से एक एंजाइम मे इक्षु-शर्करा को ग्लूकोस और फ्रुक्टोस

मे जल-विश्लेपित करने का गुण रहता है। इक्षु-शर्करा के इस जल-विश्लेषण को अंग्रेजी मे इन्वर्शन (inversion) कहते है। अत इस क्रिया के आधार पर यीस्ट के इस एजाइम को **इन्वर्टेस** (invertase) कहते है। यीस्ट का दूसरा एजाइम माल्टोस शर्करा को ग्लूकोस मे जल-विश्लेपित करता है। इस कारण इस एजाइम का नाम **माल्टेस** (maltase) रखा गया है। इसी प्रकार जो एजाइम स्टार्च को जल-विश्लेपित करते है उन्हे **ऐमिलेस** (amylase) कहते है, क्योंकि स्टार्च का नाम लैटिन भाषा मे ऐमिलम (amylum) है। वह पदार्थ जिस पर एजाइम क्रिया करता है उस एज़ाइम का किण्वभोज (substrate) कहलाता है।

एज़ाइमो का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि जीवों की समस्त क्रियाएँ एजाइम क्रियाएँ है। अत वर्तमान समय मे इनका अध्ययन बडे व्यापक रूप से हो रहा है।

अधिकाश एज़ाइम जल-विश्लेषक है, किन्तु कुछ आक्सीकारक तथा अवकारक भी है। विभिन्न उद्योगो मे एजाइमो का बडा महत्त्व है। लाइपेस (lipase) एज़ाइम जो रेडी के बीज से प्राप्त किया जाता है जर्मनी मे साबुन उद्योग मे वसा का जल-विश्लेषण करने के लिए बहुत प्रयुक्त होता है। व्यापारिक मात्रा मे ऐलकोहल तथा विभिन्न शराबो का बनाना यीस्ट के एज़ाइमो द्वारा होता है। पनीर के उद्यम मे तथा दूध से दही बनाने मे रेनेट (rennet) नामक एजाइम का, जो बछडो के आमाशय से निकाला जाता है, बहुत उपयोग होता है। डायस्टेस (diastase) एजाइम, जो अकुरित जौ के दानो से प्राप्त होता है, सूती कपडो के कारखानो मे रुई तथा सूत के स्टार्च को निकालने (destarching) के लिए उपयोग मे आता है। ऐलकोहल से सिरका बनाने की क्रिया एक आक्सीकारक एज़ाइम द्वारा होती है जो माइकोडरमा ऐसीटी (mycoderma aceti) नामक फफूंद मे रहता है।

जीवो के ऊपर विषो का घातक प्रभाव भी एज़ाइमो से ही सम्बन्ध रखता है। ये पदार्थ एज़ाइमो की क्रिया को अवरुद्ध कर देते है और इसी के फलस्वरूप जीव पर घातक प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, सायनाइड लवणो से जीव की मृत्यु का कारण यह है कि ये लवण **साइटोक्रोम आक्सीडेस** (cytochrome oxidase) एज़ाइम को अक्रिय कर इसकी क्रिया अवरुद्ध कर देते है। फलस्वरूप जीव के भीतर आक्सीकरण की क्रिया रुक जाती है और परिणाम-स्वरूप कुछ मिनटो मे ही जीव की मृत्यु हो जाती है। ये विष एजाइमो को किस प्रकार अक्रिय बनाते है यह अभी तक स्पष्ट नही हो सका है।

जीवों में एज़ाइमों का बनना—प्रत्येक जीव मे एज़ाइमो का बनना एक सतत

होने वाली क्रिया है। जैसे-जैसे प्रकृति मे जीवित पदार्थ की वृद्धि होती है उसी के अनुसार एजाइमो का बनना भी अधिक होता है। जो एजाइम विभिन्न क्रियाओ के फलस्वरूप नष्ट होते रहते है उनका स्थान लेने के लिए भी एजाइमो का सश्लेषण बराबर इतना होता रहता है कि प्रकृति मे इनकी कमी कभी नही होने पाती। अत एजाइमो का जीवो द्वारा सश्लेषण बहुत महत्त्व का है, और यदि यह न हो तो जीवन एक दिन समाप्त हो जाय। एज़ाइमो मे प्रोटीन अणुओ के साथ विभिन्न अन्य पदार्थ भी सयुक्त रहते है। अत प्रत्येक एजाइम के पूर्ण सश्लेषण मे विशेष प्रोटीन का सश्लेषण तथा उस प्रोटीन से सम्बद्ध पदार्थ का सलेषण भी सम्मिलित है। एजाइमो की प्रोटीनो के साथ जो विभिन्न पदार्थ सयोजित रूप मे रहते है वे प्राय कुछ जीवो द्वारा सश्लेषित नही हो पाते और उस दशा मे इन पदार्थों को उन जीवो को बाहर से प्राप्त करना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, फ्लैविन (flavin), जो एक सकीर्ण रासायनिक यौगिक है, जन्तुओ द्वारा सश्लेषित नही किया जा सकता। इसी कारण रीबोफ्लैविन (riboflavin) एक आवश्यक विटामिन है जो जन्तुओ को भोजन के रूप मे मिलना चाहिए। यदि जन्तुओ को यह पदार्थ उनकी आवश्यकतानुसार नही मिल पाता तो उनके शरीर मे फ्लैवोप्रोटीन एजाइम (जैसे जैन्थीन और D-ऐमिनो अम्ल आक्सीडेस) सश्लेषित नही हो पाता और फलस्वरूप इस एजाइम की कमी हो जाती है। इसी प्रकार जिन एज़ाइमो मे कोई धातु-परमाणु प्रोटीन अणु के साथ बन्धित रहता है उनके सश्लेषण के लिए उन धातुओ का भी शरीर मे रहना आवश्यक है और इसी कारण ये धातु स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माने जाते है।

एजाइमो के सश्लेषण मे मुख्य समस्या प्रोटीन के सश्लेषण की है। इस सम्बन्ध मे यद्यपि बहुत अध्ययन हुआ है, पर अब भी इस दिशा मे हमे विशेष सफलता नही प्राप्त हो सकी है। एज़ाइमो का सश्लेषण साधारणत जीव-कोशिकाओ के भीतर होता है और कोशिकाओ के चारो ओर उपस्थित पदार्थों के सगठन तथा उनकी सान्द्रता द्वारा प्रभावित होता है। साधारण रीति से जन्तुओ मे कोशिकाओ के चारो ओर के माध्यम का सगठन स्थायी रहता है और इसी कारण एक जन्तु के किसी भी अग मे उपस्थित एज़ाइम का प्रकार और उसकी मात्रा लगभग एक सी रहती है।

एंज़ाइमों की उत्पत्ति—एज़ाइमो के अध्ययन से हमे यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि एजाइम केवल जीवित पदार्थ द्वारा ही सश्लेषित किये जाते है। प्रत्येक नये एज़ाइम अणु का बनना पहले से उपस्थित एज़ाइमो पर निर्भर करता है। बिना

पूर्व एंज़ाइमों के नया एंज़ाइम संश्लेपित नहीं होता। अतः स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि यदि पहले से बने एंज़ाइमों से ही नये एंज़ाइम बनते हैं तो सबसे पहला एंज़ाइम कैसे बना? यह प्रश्न सीधे जीवन की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखता है। समस्त जीवित पदार्थों में एक ही प्रकार की असममित प्रणाली (asymmetric system) विद्यमान है, अतः इससे ऐसा अनुमान होता है कि सभी वर्तमान जीवित पदार्थों की उत्पत्ति समान अवस्था में तथा समान प्रकार से हुई होगी।

जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में केवल कल्पनाएँ ही की जा सकी हैं, कोई प्रायोगिक प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सका है। जीवन का आधार प्रोटीन है जो ऐमिनो अम्लों से बना है। आरम्भ में ये ऐमिनो अम्ल कैसे बने इसे समझने के लिए ऐसा अनुमान किया गया है कि उस समय वायुमंडल में आक्सिजन नहीं था। वायु केवल हाइड्रोजन, जलवाष्प, ऐमोनिया और हाइड्रोकार्बन गैसों का मिश्रण था। आकाश में उस समय तीव्रता से बिजली उत्पन्न होती थी। संभवतः इस विद्युत के प्रभाव से इन पदार्थों पर परस्पर रासायनिक क्रिया हुई जिसके फलस्वरूप ऐमिनो अम्ल बने। ये ऐमिनो अम्ल फिर पानी में घुल कर विलयन के रूप में एकत्रित हुए। जब इन ऐमिनो अम्लों की सान्द्रता बहुत अधिक हो गयी तो ये परस्पर संघनित होकर प्रोटीन में परिणत हो गये। इस प्रकार बने प्रोटीन में फिर जीवन का वपन कैसे हुआ, यह प्रश्न अभी हमारे सामने है और इसका उत्तर नहीं दिया जा सका है।

एंजाइम-क्रिया का प्रक्रम—इस सम्बन्ध में कई मत समय-समय पर प्रस्तावित हुए हैं। इनमें से कुछ मुख्य मतों की चर्चा नीचे की जाती है:—

बेलिस का मत (Bayliss theory)—एंज़ाइम क्रिया के सम्बन्ध में सबसे पहला मत बेलिस[3] ने सन् १९०६ में प्रस्तुत किया। इस मत के अनुसार एंज़ाइम की सतह पर किण्वभोज (substrate) अधिशोपित होता है और फलस्वरूप किण्वभोज की सान्द्रता एंज़ाइम की सतह पर बढ़ जाती है। सान्द्रता की वृद्धि से किण्वभोज की सक्रिय समात्रा (active mass) में वृद्धि होती है और फलस्वरूप किण्वभोज में क्रिया होती है। इस सिद्धान्त के बाद ही यह कल्पना की गयी कि एंज़ाइम की सतह पर कोई सक्रिय केन्द्र होता है। प्रत्येक एंज़ाइम की किसी एक किण्वभोज के प्रति विशिष्टता का स्पष्टीकरण इस मत द्वारा नहीं हो सकता, अतः इस आधार पर यह त्रुटिपूर्ण है।

निष्पीडन सिद्धान्त (Strain theory)—यह सिद्धान्त वान यूलर[4] (Von Euler) ने प्रस्तावित किया है और विशेष रूप से जल-विश्लेपक एंज़ाइमों की क्रिया के लिए है। इसमें यह कल्पना की गयी है कि किण्वभोज का अणु एंज़ाइम से दो स्थानों पर

सयोग करता है। एजाइम के वे समूह जो सयोग करते है परस्पर कुछ दूरी पर स्थित माने जाते है और इस कारण जब ये किण्वभोज अणु के दो भागो (उदाहरणार्थ, क-ख) से सयोग करते है तो किण्वभोज अणु के इन दोनो भागो को बन्धित करने वाला बन्ध थोडा खिचता है और इस खिचाव के कारण यह बन्ध कमज़ोर हो जाता है। अत इस बन्ध के स्थान पर अणु सरलता से विच्छेदित हो जाता है।

क्वास्टेल का डीहाइड्रोजिनेस एज़ाइम की क्रिया के सम्बन्ध का सिद्धान्त (Quastel's theory of dehydrogenase action)—क्वास्टेल[५,६] के अनुसार एज़ाइम की सतह पर एक विद्युत्-आवेश रहता है जिसके कारण एक स्थानीय विद्युत्-क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। यह विद्युत्-क्षेत्र किण्वभोज अणु का ध्रुवीयग (polarization) करता है। मान लीजिए, किसी किण्वभोज अणु मे कोई आकार -CH=CH- है जिस पर विद्युत्-क्षेत्र का प्रभाव पड रहा है और इसके कारण इलेक्ट्रान थोडा बायी ओर विस्थापित हो गये है। ऐसी दशा मे प्रोटान का विस्थापन भी साथ ही विपरीत दिशा की ओर होगा और यदि विद्युत्-क्षेत्र की तीव्रता पर्याप्त है तो यह प्रोटान पूर्ण रूप से बायी ओर के कार्बन से दाहिनी ओर के कार्बन पर विस्थापित हुआ माना जा सकता है। अत अब इसका आकार निम्न होगा $-\check{C}-CH_2-$। यह आकार सक्रिय होगा क्योकि बायाँ कार्बन असतृप्त है। यह अब सरलता से या तो दो हाइड्रोजन परमाणु से सयोग कर $-CH_2-CH_2-$ मे या पानी के एक अणु से सयोग कर $-CHOH-CH_2-$ मे परिवर्तित हो सकता है। इसी प्रकार यह अन्य अभिकर्मको से भी सयोग कर सकता है।

क्वास्टेल के अनुसार किण्वभोज अणु के इन दो कार्बन परमाणुओ से सयुक्त समूहो का प्रभाव ध्रुवीयण पर पडता है। यदि कोई इलेक्ट्रान-आकर्षक समूह दाहिनी ओर के कार्बन से बन्धित है तो इसके प्रभाव से ध्रुवीयण कम होगा और फलस्वरूप एजाइम की क्रिया भी कम तीव्र होगी, किन्तु यदि इलेक्ट्रान-प्रतिकर्षक समूह दाहिने कार्बन से सम्बन्धित हे तो ध्रुवीयण अधिक होगा और एजाइम क्रिया भी तीव्र होगी।

इस सिद्धान्त के अनुसार डीहाइड्रोजिनेस एज़ाइम की सतृप्त अम्लो की क्रिया का प्रक्रम निम्न अनुसार प्रदर्शित किया जा सकता है —

$$
\underset{(१)}{\begin{array}{c} R \\ | \\ CH_2 \\ | \\ CH_2 \\ | \\ COOH \end{array}}
\rightleftharpoons
\underset{(२)}{\begin{array}{c} R \\ | \\ CH_2 \\ | \\ CH_2 \\ | \\ COO^- \end{array}}
+ H^+ \rightleftharpoons
\underset{(३)}{\begin{array}{c} R \\ | \\ CH_2 \\ | \\ CH^- \\ | \\ COOH \end{array}}
+ H^+ \rightleftharpoons
$$

$$
\underset{(४)}{\begin{array}{c} R \\ | \\ CH^- \\ | \\ CH_2 \\ | \\ COOH \end{array}}
+ H^+ \rightleftharpoons
\underset{(५)}{\begin{array}{c} R \\ | \\ C< \\ | \\ CH_2 \\ | \\ COOH \end{array}}
+ 2H^+ \rightleftharpoons
\underset{(\ )}{\begin{array}{c} R \\ | \\ CH \\ \| \\ CH \\ | \\ COOH \end{array}}
+ 2H^+
$$
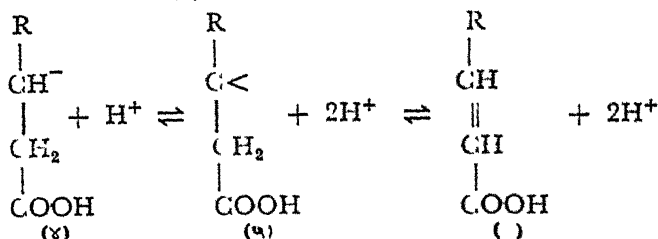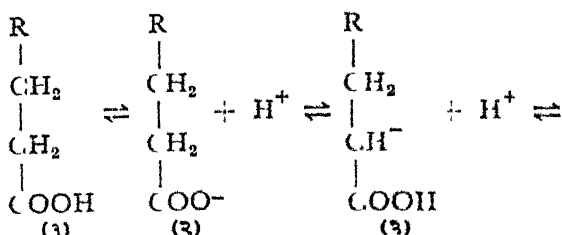
ऊपर के सूत्रो मे सूत्र (५) सक्रिय रूप है। इस प्रकार ऊपर के प्रक्रम के अनुसार किण्वभोज के अणु मे से दो हाइड्रोजन परमाणु पृथक् हो जाते है और अन्य किसी हाइड्रोजन स्वीकारक अणु का अवकरण करते है।

फ्यूमरेस एंजाइम को क्रिया का सिद्धान्त—फ्यूमरेम एंजाइम फ्यूमरिक अम्ल के द्विबन्ध को जलयोजित करता है और यह ऐसे एंजाइमो का एक अच्छा उदाहरण है जो योग-क्रियाओ को उत्प्रेरित करते हैं।

मैसी* (Massey) ने सन् १९५३ मे इस एंजाइम की क्रिया की व्याख्या के लिए अपना सिद्धान्त प्रस्तावित किया। इसके अनुसार एंजाइम की सतह पर विरुद्ध आवेशात्मक समूह उपस्थित रहते है जो फ्यूमरेट के द्विबन्ध का ध्रुवीयण करते है। इस ध्रुवीयण के फलस्वरूप द्विबन्ध के कार्बन पानी के एक अणु से योजित हो जाते है।

क्वास्टेल ने अपने सिद्धान्त मे यह कल्पना की थी कि द्विबन्ध के कार्बनो द्वारा किण्वभोज का अणु एंजाइम से सम्बन्धित होता है, किन्तु यह ठीक नही जान पडता क्योकि बहुत से द्विकार्बाक्सिल अम्ल जिनमे द्विबन्ध नही होता एंजाइम से सयोजित होते है। साथ ही यह भी देखा गया है कि ऐसे अणु जिनमे द्विबन्ध के साथ केवल एक ही कार्बाक्सिल समूह रहता है क्रिया नहीं करते। मैसी के मत से अनुसार किण्वभोज के दोनों कार्बाक्सिल समूह आयनित हो जाते हैं और फिर इन आयनित समूहो द्वारा किण्वभोज का अणु एंजाइम से सयुक्त हो जाता है।

विभिन्न हाइड्रोजन आयन सान्द्रता (*p*H) का एंजाइम की सक्रियता पर क्या प्रभाव पडता है, इसका अध्ययन मैसी ने किया है और उसके आधार पर यह निष्कर्ष

निकाला है कि एजाइम के सक्रिय केन्द्र मे एक भास्मिक तथा दूसरा आम्लिक समूह रहता है। एंज़ाइम का विघटन-स्थिराक लगभग हिस्टीडीन और टाइरोसिन के समान है। अत अनुमान किया जाता है कि इनमे उपस्थित समूहो के विरुद्ध आवेश द्वारा ही सम्भवत द्विबन्ध का ध्रुवीयण होता है और ध्रुवीयण के बाद किण्वभोज का अणु एंज़ाइम के अणु के समीप स्थित हो जाता है।

$$\begin{array}{ccccccc} & & \delta- & & \delta+ & & \\ O=C & — & CH & = & CH & — & C=O \\ | & & & & & & | \\ O^- & & & & & & O^- \end{array}$$

/// + //// + ///// − ///// + ///
(–NH$_3$) (Im) (Ph) (–NH$_3$)
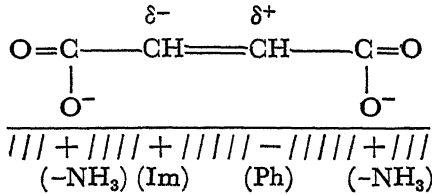
जलयोजित होने की क्रिया मे पानी का हाइड्रोजन द्विबन्ध के बाये कार्बन से और हाइड्राक्सिल समूह दाहिने कार्बन से सयुक्त होगा।

$$\begin{array}{ccccccc} & & H & & OH & & \\ & & | & & | & & \\ O=C & — & CH & — & CH & — & C=O \\ | & & & & & & | \\ O^- & & & & & & O^- \end{array}$$
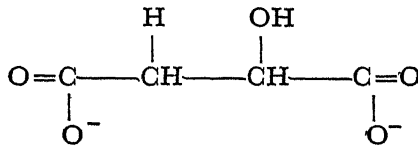
जल-विश्लेषक एजाइमो की क्रिया का प्रक्रम—इस सम्बन्ध में कई मत प्रस्तावित हुए है। हम यहाँ केवल दो प्रमुख मतो की चर्चा करेंगे।

(क) टेलर का सिद्धान्त[c] (Taylor's Theory, 1938)—इस सिद्धान्त मे यह माना गया है कि किण्वभोज के अणु के जल-विश्लेषण होने वाले बन्ध का ध्रुवीयण होता है। एजाइम और किण्वभोज के अणु परस्पर सयोजकता बन्धो द्वारा सयोजित होते है जिसके कारण एक विद्युतीय निष्पीडन उत्पन्न होता है जो किण्वभोज के अणु के उस बन्ध को प्रभावित करता है जहाँ क्रिया होनी है। इस मत के अनुसार एस्टर के जल-विश्लेषण का प्रक्रम निम्न मानचित्रो द्वारा स्पष्ट किया गया है —
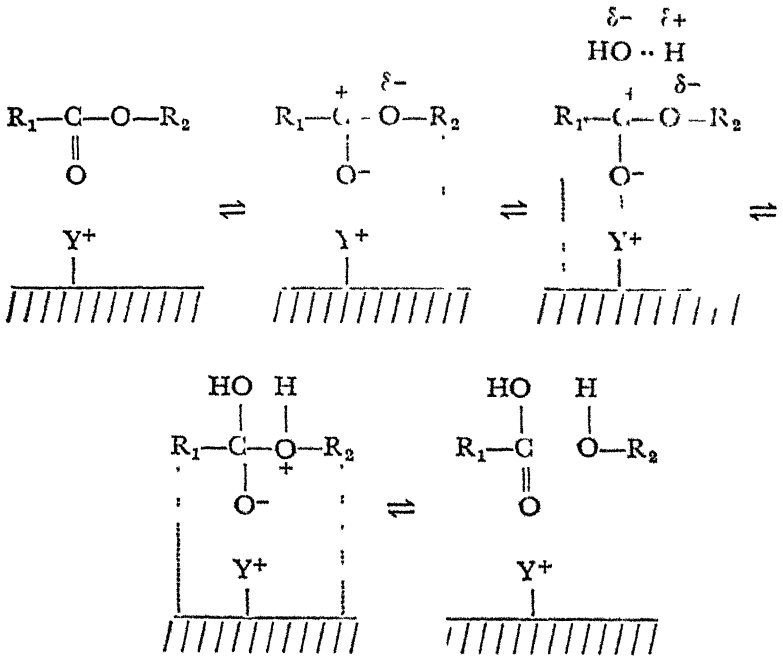
ऊपर के मानचित्रों मे बिन्दुरेखाओ द्वारा एंज़ाइम को एस्टर के आम्लिक तथा ऐलकोहली दोनों हाइड्रोकार्बन समूह से सम्बन्धित दिखलाया गया है। कार्बोनिल समूह के द्विबन्ध से इलेक्ट्रान आक्सिजन पर विस्थापित होता है जिसके कारण इस समूह का आक्सिजन ऋण-आवेशात्मक तथा कार्बन धन-आवेशात्मक हो जाता है। यह आक्सिजन एंज़ाइम के धन-आवेशात्मक समूह से जो y द्वारा प्रदर्शित किया गया है, सयोग करता है। ऐलकोहली कार्बन पर कार्बोनिल आक्सिजन के कारण ऋण आवेश उत्पन्न हो जाता है। अब इस ध्रुवीयित बन्ध पर पानी का एक अणु योजित होता है जिसके फलस्वरूप एंज़ाइम और किण्वभोज के अणु का एक सकीर्ण यौगिक बन जाता है। यह यौगिक फिर विच्छेदित होता है और इसके फलस्वरूप ऐलकोहल और अम्ल के अणु पृथक् हो जाते है।

इस सिद्धान्त में सबसे बडी त्रुटि यह है कि इसके द्वारा यह स्पष्ट नही होता कि ऐलकोहली आक्सिजन पर ऋण आवेश किस प्रकार से उत्पन्न होता है।

(ख) स्काट का सिद्धान्त—स्काट[^1] ने विशेष रूप से लाइपेस एंज़ाइम की क्रिया के प्रक्रम के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तावित किया है।

लाइपेस मे हाइड्रोजन सल्फाइड (-SH) समूह रहता है जो इलेक्ट्रान-आकर्षक समूह है। स्काट के मत के अनुसार एस्टर का ऋण-आवेशात्मक कार्बोनिल आक्सिजन एजाइम के इस समूह से हाइड्रोजन बन्ध द्वारा सयोजित होता है। इस सयोजन से कार्बोनिल के ऊपर इलेक्ट्रान का घनत्व घट जाता है और अब पानी से हाइड्राक्सिल आयन एस्टर समूह के कार्बन के समीप सरलता से पहुँच जाता है और फिर सयोजित हो जाता है। इस कार्बन और ऐलकोहली आक्सिजन के बीच का बन्ध फिर विच्छेदित हो जाता है और अम्ल तथा ऐलकोहल पृथक् प्राप्त हो जाते है। निम्न मानचित्र से पूरा प्रक्रम स्पष्ट हो जायगा —
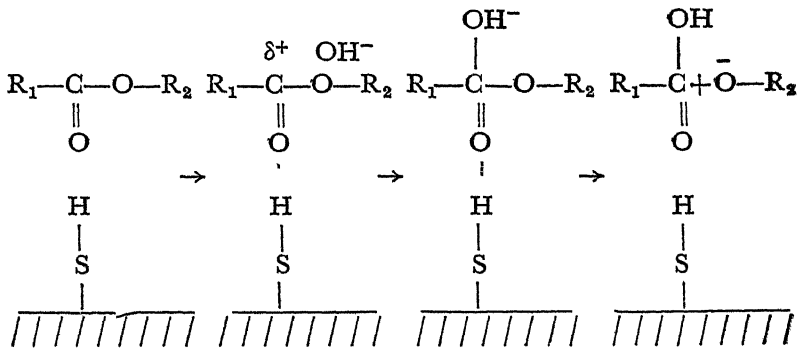
ऊपर केवल कुछ मुख्य मतो की चर्चा की गयी है। इनके अतिरिक्त और भी कई मत प्रस्तावित हुए है, किन्तु कोई भी एकदम ठीक नही सिद्ध हुआ है। ये सभी मत अभी केवल कल्पना मात्र ही समझे जा सकते है। जब तक प्रयोगो के आधार पर किसी मत का प्रतिपादन नही हो जाता तब तक वह मान्य नही हो सकता।

निर्देश

1 *Fischer, E Ber dtsch Chem Ges* **27,** 2985 (1894).

2 Sumner, J. B *F biol Chem* **69,** 435 (1926)

3 Bayliss, W M. 'The Nature of Enzyme Action' (4th Ed) (Longman's Green & Co., London) (1919)

4 Euler, H Von, *Z physiol. Chem* **143,** 79 (1925).

5 Quastel, J H. *Biochem.* F **20,** 166 (1926)

6. Quastel, J. H , & Wooldridge, W R. Biochem. F. **21,** 1224 (1927).

7. Massey, V. *Biochem* F **55,** 172 (1953).

8 Taylor, D. B *Enzymologia* **2,** 310 (1938).

9. Scott, J. E *Nature, Lond* **172,** 777 (1953).

अध्याय ३

ऐमिलेस और उनका प्राप्त करना

जैसा हम पीछे पढ चुके है, वे एन्ज़ाइम जो स्टार्च को जल-विश्लेषित कर सरल यौगिको मे परिवर्तित करते है ऐमिलेस कहलाते है। ऐमिलेस प्रकृति मे व्यापक रूप से पाये जाते है। ये यीस्ट मे तथा जन्तुओ के क्षुद्रान्त्र, पक्वाशय, रुधिर, यकृत और पेशियो मे थोडी मात्रा मे रहते है। मनुष्य तथा कुछ अन्य जन्तुओ की अग्न्याशय ग्रन्थियो मे ये पर्याप्त मात्रा मे रहते है। सोयाबीन तथा गेहूँ और जौ आदि अनाज के बीजो मे तथा विभिन्न पौधो के कदो मे भी ये पाये जाते है। कुछ पौधो की हरी पत्तियो मे भी, जैसे प्याज की हरी पत्तियो मे, ये रहते है। कुछ फफूँदों मे ऐमिलेस बडी मात्रा मे पाये जाते है और ये फफूँद ऐमिलेस प्राप्त करने के अच्छे स्रोत है।

सर्वप्रथम सन् १८१५ मे करचौफ (Kirchhoff) ने यह देखा कि माल्ट मे स्टार्च को जल-विश्लेषित कर शर्करा मे परिणत करने का गुण होता है। कुछ वर्षों बाद सन् १८३३ मे पायेन और परसोज (Payen and Persoz) ने इस क्रिया का अधिक ब्योरे से अध्ययन किया। इन्होने ही माल्ट के इस क्रियाशील पदार्थ को डायस्टेस नाम भी दिया।

ऐमिलेस मुख्यत दो प्रकार का होता है—एक डेक्सट्रिन-उत्पादक (dextrinogenic) और दूसरा शर्करा-उत्पादक (saccharogenic)। पहला एजाइम स्टार्च को मुख्य रूप से डेक्सट्रिन मे तथा दूसरा एजाइम स्टार्च को मुख्य रूप से माल्टोस शर्करा मे जल-विश्लेषित करता है। डेक्सट्रिन-उत्पादक ऐमिलेस को α- ऐमिलेस (एलफा-ऐमिलेस) तथा शर्करा-उत्पादक को β- ऐमिलेस (बीटा-ऐमिलेस) भी कहते है। वर्तमान नामकरण की विधि मे नाम के साथ एजाइम का स्रोत भी इगित कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, जौ के माल्ट से प्राप्त α- ऐमिलेस को जौ-माल्ट-α- ऐमिलेस नाम से सूचित किया जाता है। जिन स्रोतो से केवल एक ही प्रकार का ऐमिलेस प्राप्त होता है उनके नाम मे α- या β- लिखने की आवश्यकता नही समझी जाती। उदाहरणार्थ, जन्तुओ मे तथा जीवाणुओ मे α- प्रकार का ऐमिलेस ही मुख्य रूप से रहता है। अत इनसे प्राप्त ऐमिलेस मे केवल उस अग या जीवाणु का नाम ही

इंगित किया जाता है जहाँ से एंज़ाइम प्राप्त किया गया है, जैसे अग्न्याशय एमिलेस, लार-ऐमिलेस आदि। α- ऐमिलेस की क्रिया में स्टार्च पहले विलेय रूप में परिणत होता है और फिर विघटित होता है। अतः इस एंज़ाइम को प्रायः द्रवीकारक एंज़ाइम भी कहते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि α- ऐमिलेस पहले स्टार्च अणु के समूहों को पृथक्-पृथक् अणु में अलग करता है और इसी कारण स्टार्च विलेय हो जाता है। बाद में एंज़ाइम इन अणुओं का विघटन करता है।

ऐमिलेस एंज़ाइमों का प्राप्त करना

स्टार्च के व्यवसाय में इन एंज़ाइमों का विशेष महत्त्व होना स्वाभाविक है। हम यहाँ इन्हें प्राप्त करने की विधियों का वर्णन करेंगे। ऐमिलेस एंज़ाइम मुख्यतः निम्न स्रोतों से प्राप्त किये जाते हैं:—

(१) ऊँचे पौधों से, जैसे गेहूँ, चावल आदि अन्न के बीजों तथा शकरकंद और सोयाबीन से,

(२) फफूंदों से,

(३) जन्तुओं के रसों से,

(४) जीवाणुओं से।

अन्न से ऐमिलेस प्राप्त करना—अंकुरित बीजों को माल्ट कहते हैं। अंकुरण की क्रिया में बीजों में एंज़ाइम उत्पन्न होते हैं, और ऐमिलेस एंज़ाइम प्राप्त करने के लिए माल्ट अच्छा स्रोत है। माल्ट से प्राप्त ऐमिलेस α- और β-ऐमिलेस का मिश्रण होता है। बिना अंकुरित जौ का दाना β-ऐमिलेस प्राप्त करने के लिए सबसे अच्छा स्रोत है। यह एंज़ाइम दाने के भ्रूणपोष (endosperm) के भाग में मुख्य रूप से रहता है। सोयाबीन तथा शकरकंद में भी यह एंज़ाइम अच्छी मात्रा में रहता है। अन्य अन्न के बीजों में β-ऐमिलेस या तो बहुत कम रहता है या बिल्कुल नहीं रहता। जौ, सोयाबीन तथा शकरकंद का जब अंकुरण आरम्भ होता है तब इनमें α-ऐमिलेस उत्पन्न होता है और भ्रूणपोष में एकत्रित होने लगता है। बिना अंकुरित जौ के दानों में एक अन्य ऐमिलेस एंज़ाइम भी रहता है जिसे ऐमिलोफास्फेटेस (amylophosphatase) कहते हैं। यह स्टार्च को द्रव रूप में परिणत करता है। जौ में से इन्हें एल्यूमिना की सहायता से अधिशोषण द्वारा पृथक् किया जाता है।

डायस्टेस प्राप्त करने के लिए जौ के दानों को नियंत्रित ताप तथा नमी की अवस्था में अंकुरित करने के बाद सम्भाल कर निम्न ताप पर सुखाया जाता है। अंकुरण में तीन एंज़ाइम उत्पन्न होते हैं। एक एंज़ाइम साइटेस (cytase) है जो सुखाने की

क्रिया मे नष्ट हो जाता है, दूसरा एजाइम प्रोटीन पर क्रिया करने वाला एजाइम है और तीसरा एजाइम डायस्टेस है। डायस्टेस एक शुद्ध एजाइम नहीं है। यह कई एजाइमो का मिश्रण है। अकुरण के बाद दानो को सुखाने का ताप जितना कम रखा जाता है उतना ही अधिक डायस्टेस प्राप्त होता है।

सुखाने के बाद अकुरित दानो को पीस कर पानी के साथ मथा जाता है और फिर एक घटे तक रखने के बाद छान लिया जाता है। छने द्रव को निर्वात मे निम्न ताप पर वाष्पित कर एक चाशनी के रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। इस चाशनी को माल्ट-निष्कर्ष (malt extract) कहते है। इसमे डेक्सट्रिन और शर्करा की थोडी मात्रा रहती है जो एजाइम के परिरक्षण (preservation) का कार्य करती है। इस माल्ट-निष्कर्ष का कपडे, आसजक तथा भोजन व्यवसाय मे बडा उपयोग है।

कुछ रसायनज्ञो ने विशेष रीति से अधिक सक्रिय माल्ट-निष्कर्ष बनाया है। उदाहरणार्थ, एच० सी० शर्मन और उनके सहयोगियो[1] (H C Sherman and Co-workers) ने एक ऐसा माल्ट-निष्कर्ष बनाया है जो दो प्रतिशत स्टार्च की लेई पर ४०° से० ग्रे० ताप पर क्रिया करने पर ३० मिनट मे अपनी मात्रा के अनुपात से १०,००० गुना स्टार्च को माल्टोस मे परिणत कर देता है।

एक ऐसा माल्ट-निष्कर्ष, जिसका विशिष्ट गुरुत्व १ २७ है, ऊपर बतलायी विधि द्वारा पहले प्राप्त किया जाता है। इसे फिर २४ घटे तक पानी मे अपोहित (dialyse) होने के लिए रख दिया जाता है। इसके बाद अपकेन्द्री (centrifugal) यन्त्र द्वारा इसमे उपस्थित ठोस द्रव्य को पृथक् कर लिया जाता है। अब जो द्रव बचता है उसे बर्फ मे ठडा करने के बाद उसमे प्रति १०० घ० से० आयतन द्रव के अनुपात से ४५ ग्राम ऐमोनियम सल्फेट घोल दिया जाता है। एक अवक्षेप उत्पन्न होता है जिसे अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा पृथक् कर ५०० घ० से० पानी मे घोला जाता है और इस विलयन को पानी मे अपोहित होने के लिए २० घटे तक रख दिया जाता है। इसके बाद विलयन को जमा कर (हिमीकरण) सान्द्रित किया जाता है। फिर शुद्ध ऐल-कोहल का समान आयतन डालकर अवक्षेपित किया जाता है। जो अवक्षेप आता है उसे छान कर फेक दिया जाता है। अब द्रव मे ऐलकोहल की इतनी मात्रा और डाली जाती है कि द्रव मे इसकी प्रतिशत मात्रा ६५ हो जाय। इस अवस्था मे पुन एक अवक्षेप उत्पन्न होता है। इसे छान कर रख लिया जाता है। अन्त मे शेष बचे द्रव मे ईथर डाला जाता है। पुन. एक अवक्षेप प्राप्त होता है। इस अवक्षेप को भी ऊपर वाले अवक्षेप के साथ मिला दिया जाता है। एकत्र किये गये अवक्षेप को अब १५° से० ग्रे० के नीचे के ताप पर आंशिक निर्वात की अवस्था मे सल्फ्यूरिक अम्ल के ऊपर

शोषित्र मे अधेरे मे सुखाया जाता है। इस प्रकार जो एंज़ाइम प्राप्त होता है उसमे बहुत तीव्र β-ऐमिलेस सक्रियता होती है और α-ऐमिलेस सक्रियता केवल सूक्ष्म मात्रा में ही रहती है।

माल्ट से शुद्ध एंज़ाइम प्राप्त करना—माल्ट मे उपस्थित विभिन्न एंज़ाइमों को पृथक् कर प्रत्येक को शुद्ध रूप मे प्राप्त करने की कई विधियाँ है। α और β-ऐमिलेस विभिन्न अवस्थाओ मे अक्रिय रूप मे परिणत हो जाते है और विभिन्न पदार्थों द्वारा अधिशोषित किये जा सकते है। इनके इस गुण का लाभ इन्हे शुद्ध रूप मे प्राप्त करने मे लिया जाता है। माल्ट-निष्कर्ष को २० से० ग्रे० ताप और pH ४ २ पर रखने पर ४ घटे के भीतर α-ऐमिलेस पूर्ण रूप मे नष्ट हो जाता है, किन्तु β-ऐमिलेस नष्ट नही होता। इसी प्रकार माल्ट के उदासीन विलयन को ६०° से० ग्रे० ताप पर एक घटे तक गरम करने पर β-ऐमिलेस पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।

माल्ट मे से एंज़ाइमो को शुद्ध रूप मे प्राप्त करने की कुछ विधियाँ नीचे दी जाती है—

(१) माल्ट विलयन का pH ३.८ करने के बाद इसे एक नली मे भरे ऐल्यूमिना के भीतर से प्रवाहित किया जाता है। β-ऐमिलेस ही मुख्य रूप से ऐल्यूमिना पर अधिशोषित होता है और α-ऐमिलेस केवल सूक्ष्म मात्रा मे ही अधिशोषित होता है। जो विलयन बचता है उसमे मुख्य रूप से α-ऐमिलेस रहता है। ऐल्यूमिना पर अधिशोषित β-ऐमिलेस को जलीय ऐलकोहल मे घुला कर विलयन के रूप में प्राप्त कर लिया जाता है। α-ऐमिलेस को पृथक् प्राप्त करने के लिए ऐमिलेस मिश्रण को ४० प्रतिशत ऐलकोहल मे घोल कर इस विलयन का pH ४.४ और ७ ६ के बीच मे किया जाता है। इसे फिर आलू या चावल के स्टार्च पर निम्न ताप पर प्रवाहित किया जाता है। α-ऐमिलेस अधिशोषित हो जाता है। स्टार्च को फिर ५० प्रतिशत ऐलकोहल मे बने एक प्रतिशत माल्टोस के विलयन द्वारा धोने से α-ऐमिलेस इस विलयन मे घुलकर निकल आता है। इस विलयन मे से फिर इसे पृथक् कर लिया जाता है।

(२) गेहूँ से β-ऐमिलेस जौ की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। साधारण बिना अंकुरित गेहूँ के आटे को ५० प्रतिशत जलीय ऐलकोहल से निष्कर्षित किया जाता है। जो स्वच्छ निष्कर्ष प्राप्त होता है उसमें फिर इतना ऐलकोहल और डाला जाता है कि निष्कर्ष मे ऐलकोहल ८० प्रतिशत हो जाय। ऐलकोहल की इतनी प्रतिशत मात्रा निष्कर्ष में होने पर एंज़ाइम अवक्षेप के रूप मे पृथक् हो जाता है। इस अवक्षेप को अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा मातृ-द्राव से अलग कर लिया जाता है और फिर

पानी मे घोल कर छान लिया जाता है। यह छना स्वच्छ विलयन शुद्ध β-ऐमिलेस का विलयन होता है।

(३) सोयाबीन से β-ऐमिलेस निम्न प्रकार से प्राप्त किया जाता है —

सोयाबीन को पीसकर ऐसीटोन से उपचारित किया जाता है जिससे इसकी वसा ऐसीटोन मे घुलकर निकल जाय। वसारहित सोयाबीन की ५०० ग्राम मात्रा मे २ लिटर ५० प्रतिशत जलीय ऐलकोहल, जिसमे १ ग्राम सोडियम सल्फाइट घुला रहता है, डाला जाता है। pH ऐसीटिक अम्ल की सहायता से ६-७ के आस-पास रखा जाता है। इसे अब तीन घटे तक कमरे के ताप पर रखा रहने दिया जाता है। बीच-बीच मे इसे विलोडित करते रहते है। इसके बाद इसे चूषक पप (suction pump) द्वारा छानते है और अवशेष को ५० प्रतिशत ऐलकोहल की ४०० घ० से० मात्रा द्वारा धोते है। धोवन को भी शुरू मे छने द्रव मे ही मिला लिया जाता है। इस प्रकार जो निष्कर्ष प्राप्त होता है उसे बर्फ मे रख कर ०° से० ग्रे० तक ठडा किया जाता है। फिर इसमे ऐलकोहल की १२०० घ० से० मात्रा धीरे-धीरे डाली जाती है। ऐलकोहल डालते समय निष्कर्ष को बराबर विलोडित करते रहते है। ऐलकोहल डाल चुकने के बाद इसे लगभग आधा घटे तक शान्त रख दिया जाता है जिससे तलछट नीचे बैठ जाय। अब अधिपृष्ठ-द्रव को निथार कर फेक दिया जाता है। एक गोद सा तलछट प्राप्त होता है। इस तलछट के ऊपर थोडा ऐसीटोन भर कर कुछ मिनट तक रखा रहने दिया जाता है और फिर ऐसीटोन को निथार कर अलग निकाल दिया जाता है। ऐसीटोन से इस भाँति कई बार धोया जाता है। अन्त मे जब तलछट ऐसा हो जाता है कि स्पैचुला (spatula) से दबाने पर चूर हो जाय तो और धोना बन्द कर इसे चर्ण कर लिया जाता है और इसका ऐसीटोन निकाल कर इसे कैल्सियम क्लोराइड के ऊपर रिफ्रीजरेटर मे रख दिया जाता है।

ऊपर की विधि द्वारा सोयाबीन से प्राप्त एजाइम बहुत सक्रिय होता है।

फफूंदो से ऐमिलेस प्राप्त करना—जापान मे मोल्ड फफूंदो का उपयोग स्टार्च पदार्थों से ऐलकोहल बनाने मे बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। ऐस्परजिलस ओराइजी (Aspergillus oryzae) नामक फफूंद की जातियाँ कई एजाइम उत्पन्न करती है जिनमे से कुछ ये है—डायस्टेस, इन्वर्टेस, माल्टेस, ऐमिडेस तथा प्रोटियेस। इस फफूंद की कुछ जातियाँ किसी एक एजाइम को अधिक उत्पन्न करती है और कुछ दूसरी जातियाँ किसी दूसरे एजाइम को। अत इच्छित एजाइम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि फफूंद की वह जाति ली जाय जो उस एजाइम को अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे उत्पन्न करती है। इस फफूंद का शुद्ध सवर्धन (कल्चर) बनाया जाता है। अब एक

अणुजीवरहित (sterilised) पोषक-माध्यम तैयार किया जाता है जिसमें गेहूँ का चोकर, मकई या राई का आटा तथा कुछ लवण रहते हैं। इस पोषक-माध्यम को एक बड़े गोलाकार घूमने वाले बर्तन में रख कर ताप ३०°-४०° सें० ग्रे० और pH ४.० रखा जाता है। फिर फफूंद के शुद्ध संवर्धन की सूक्ष्म मात्रा पोषक-माध्यम पर फैला दी जाती है। दो-तीन दिनों में फफूंद पोषक-माध्यम में वृद्धि कर चारों ओर फैल जाता है और एंज़ाइम उत्पन्न करता है। जब फफूंद की पर्याप्त वृद्धि हो चुकती है तब पोषक-माध्यम को पानी से निष्कर्षित किया जाता है। एंज़ाइम पानी में घुल कर निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हो जाता है। इस निष्कर्ष को छान कर और इसमें कोई परिरक्षक डाल कर बाजार में बिकने के लिए रख दिया जाता है।

यदि चूर्ण रूप में एंजाइम प्राप्त करना होता है तो निष्कर्ष में ऐलकोहल डालकर एंज़ाइम को अवक्षेपित किया जाता है और अवक्षेप को कम ताप पर सुखा कर रख लिया जाता है। ऐस्परजिलस ओराइज़ी से व्यावसायिक मात्रा में एंज़ाइम सर्वप्रथम टैकामीन[3] (Takamine) ने बना कर टैकाडायस्टेस (takadiastase) के नाम से बाज़ारों में बिकने के लिए रखा था। यह स्टार्च को जल-विश्लेपित करने के लिए बड़ा सक्रिय है।

जन्तुओं के रसों से ऐमिलेस प्राप्त करना—घोड़े, सुअर और गाय की अग्न्याशय ग्रन्थियों के रस में स्टार्च को जल-विश्लेपित करने वाले एंज़ाइम बड़ी मात्रा में रहते हैं। अतः इन ग्रन्थियों के रस से ऐमिलेस प्राप्त किया जाता है। रस में सोडियम क्लोराइड का सान्द्र विलयन मिलाने पर ऐमिलेस अवक्षेप के रूप में पृथक् हो जाता है। इस अवक्षेप को कम ताप पर सुखा कर फिर इसमें कोई उदासीन लवण मिलाया जाता है। उदासीन लवण मिलाने का उद्देश्य एंज़ाइम की सक्रियता को घटा कर निर्धारित प्रामाणिक अंश तक लाना होता है क्योंकि शुद्ध एंज़ाइम बहुत अधिक सक्रिय होता है।

एसीटमाइड के जलीय विलयन द्वारा अग्न्याशयिक रस का निष्कर्पण करने से भी एंज़ाइम सुविधापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। अग्न्याशय से प्राप्त शुद्ध एंज़ाइम बहुत सक्रिय होता है। इसका एक भाग लगभग ६००० भाग स्टार्च को चार दिनों के भीतर जल-विश्लेषित कर माल्टोस में परिवर्तित कर देता है।

जीवाणुओं से एमिलेस प्राप्त करना—स्टार्च पर क्रिया करने वाला एंज़ाइम जीवाणुओं से सर्वप्रथम बोयडिन और एफरंट[3,4] (Boidin and Effront) ने व्यापारिक मात्रा में सन् १९१७ में प्राप्त किया था। बैसिलस सबटिलस (Bacillus subtilus) तथा बैसिलस मेसेंटेरिकस (Bacillus mesentericus) जाति के जीवाणु जब पोषक-

माध्यम पर वृद्धि करते है तो वे बहुत शीघ्र अच्छी मात्रा मे डायस्टेस उत्पन्न करते है। यह डायस्टेस बहुत सक्रिय होता है और इसी कारण इसे बाजार मे 'रैपिडेस' (rapidase) के नाम से बिकने के लिए रखा जाता है। इस डायस्टेस मे एक विशेषता यह है कि यह अपेक्षाकृत ऊँचे ताप पर क्रिया करता है। अत कपडे के व्यवसाय मे यह अधिक उपयोगी है।

जीवाणुओ से इस एजाइम को बनाने की विधि मे सबसे पहले निम्न प्रकार से एक पोषक-माध्यम बनाया जाता है—

जल-विश्लेपित सोयाबीन या मूगफली की रोटी मे जल-विश्लेषित स्टार्च डाला जाता है। फिर उपयुक्त मात्रा मे फास्फेट, पोटैसियम, मैग्नीशियम और कैल्सियम लवण मिश्रित किये जाते है। इस पोषक-माध्यम को अब दाब पर १५° से० ग्रे० ताप तक गरम कर जीवरहित (sterilized) किया जाता है। इसे फिर छान कर और ठडा कर बडे-बडे ऊँचे ऐसे बद बर्तनो मे भर दिया जाता है जहाँ वायु से दूसरे जीवाणु इस पर पहुँच कर अकुरित न हो सके। समस्त कार्य मे सफाई का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है, अन्यथा अन्य जीवाणु पोषक-माध्यम मे पहुँच कर अकुरित होते है और फिर शुद्ध एजाइम नही प्राप्त होता। पोषक-माध्यम को बर्तनो मे भरने के बाद इसमे बैसिलस सबटिलस या बैसिलस मेसेंटेरिकस जीवाणु के शुद्ध सवर्धन (कल्चर) से थोडा भाग डाल दिया जाता है और उपयुक्त ताप पर रख दिया जाता है। जीवाणु माध्यम मे तेजी से वृद्धि करते है और डायस्टेस एजाइम उत्पन्न करते है। लगभग एक सप्ताह मे एजाइम पर्याप्त मात्रा मे बन जाता है। अब माध्यम-द्रव को ठढा कर तेज गति से घूमने वाले अपकेन्द्री यन्त्र मे ले जाते है जहाँ जीवाणु द्रव मे से पृथक् हो जाते है। बचे द्रव मे एजाइम रहता है। इसमे कोई प्रतिपूय (antiseptic) मिला कर सुरक्षित रूप से रख लिया जाता है। यदि इस द्रव को सान्द्र करने की आवश्यकता होती है तो इसे निर्वात मे निम्न ताप पर वाष्पित कर सान्द्र कर लिया जाता है। इस द्रव मे प्रोटियोलेस एजाइम भी थोडी मात्रा मे रहते हैं। ऐमोनियम सल्फेट, ऐलकोहल और ऐसीटोन द्वारा अवक्षेपण कर द्रव मे से शुद्ध ऐमिलेस प्राप्त किया जाता है।

मणिभीय ऐमिलेस—यद्यपि ऐमिलेस का पूर्ण शुद्ध करना बडा कठिन है, फिर भी कुछ ऐमिलेस मणिभीय रूप मे प्राप्त किये गये हैं। साधारणत जो अपद्रव्य ऐमिलेस में रहते है वे ऐमिलेस की रक्षा का काम करते है और जितना अधिक ऐमिलेस को शुद्ध किया जाता है उतना ही अधिक वे अक्रिय होते जाते है।

एम० एल० कैल्डवेल, एल० ई० बुहर और एच० सी० शर्मन[4] ने अपने सयुक्त

प्रयत्न से सन् १९३१ में प्रथम बार अग्न्याशय-ऐमिलेस की थोड़ी मात्रा मणिभीय रूप में प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी। इसके बाद सन् १९४७ में के० एच० मायर और उनके सहयोगियों[८-१०] ने मनुष्य और सुअर के अग्न्याशय, मनुष्य की लार तथा बैसिलस सबटिलस से ऐमिलेस मणिभीय रूप में प्राप्त किया। ये सब ऐमिलेस परीक्षण से प्रोटीन सिद्ध हुए हैं, किन्तु इनके मणिभीय आकार, विलेयता तथा अनुकूलतम pH में, जिस पर वे सबसे अधिक सक्रिय होते हैं, एक दूसरे से अन्तर है।

बर्नफेल्ड और उनके सहयोगियों[११] ने सन् १९५० में यह देखा कि मनुष्य के अग्न्याशय तथा लार दोनों के ऐमिलेस एक समान गण के हैं। दोनों ही प्रोटीन सम्बन्धी समान रंग परीक्षण देते हैं और दोनों ही गरम किये जाने पर एक ही ताप पर स्कन्दित होते हैं। विश्लेषण से दोनों में नाइट्रोजन और फास्फोरस की समान प्रतिशत मात्राएँ भी प्राप्त होती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एक ही जन्तु के विभिन्न अंगों में वर्तमान ऐमिलेस एक ही प्रकार का होता है।

जौ के माल्ट से β-ऐमिलेस[१२] तथा ऐस्परजिलस ओरायज़ी से α-ऐमिलेस[१३] मणिभ रूप में कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त हुए हैं।

ऐमिलेस का रासायनिक रूप और सक्रियता—अब तक के प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह माना जाता है कि ऐमिलेस प्रोटीन हैं और उनकी सक्रियता किसी प्रोटीनरहित (prosthetic) समूह के उनमें संयुक्त होने पर निर्भर नहीं करती। उदाहरणार्थ, एच० सी० शर्मन और उनके सहयोगियों[१४] ने एक अधिक सक्रिय β-ऐमिलेस प्राप्त किया जो गुणों में एकदम प्रोटीन की भाँति था। शर्मन ने देखा कि वे क्रियाएँ जो प्रोटीन का स्वभाव-परिवर्तन (denaturing) कर देती हैं इस एंज़ाइम को निष्क्रिय कर देती हैं। अतः इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐमिलेस या तो प्रोटीन हैं या ऐसे पदार्थ हैं जो किसी प्रोटीन पर अधिशोषित हैं और जिसके बिना ये अपनी क्रिया नहीं कर सकते।

कुछ ऐमिलेस में कोई खनिज अवयव रहता है जो उसकी सक्रियता के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ, डायस्टेस का विद्युत्-विश्लेषण (electrolysis) करने पर इसकी सक्रियता नष्ट हो जाती है। इसका कारण यह समझा जाता है कि विद्युत्-विश्लेषण में ऐमिलेस का खनिज अवयव इसके कार्बनिक अवयव से पृथक् हो जाता है। इसी प्रकार लार साधारण नमक की अनुपस्थिति में अक्रिय हो जाती है। यदि लार का अपोहन किया जाता है तो इसमें उपस्थित सोडियम क्लोराइड निकल जाती है और एक अवक्षेप पृथक् हो जाता है जिसमें एंज़ाइम की कोई क्रियाशीलता नहीं रहती, किन्तु यदि इसी अवक्षेप को सोडियम क्लोराइड के विलयन से उपचारित किया जाता है तो

यह विलयन मे घुल जाता है और पुन सक्रिय हो जाता है। यह सम्भव जान पडता है कि सोडियम क्लोराइड लवण एजाइम का अपलयन (peptise) करता हो जिसके फलस्वरूप जो समूह एजाइम पर अधिशोषित है वे सतह पर उपयुक्त अवस्था मे आकर एजाइम को सक्रिय करते हो। प्रकृति मे एजाइम विभिन्न कलिल पदार्थो के घनिष्ठ सम्पर्क मे रहते है। सभवत इसी कारण अम्लीयता, ताप तथा कुछ उन लवणो का, जो प्रोटीन का अपलयन करते है, प्रभाव इनकी सक्रियता पर पडता है। कुछ रसायनज्ञो का यह अनुमान है कि स्टार्चो मे उपस्थित खनिज पदार्थ ऐमिलेस की क्रिया पर इस कारण प्रभाव डालता है कि इससे *p*H मे अन्तर हो जाता है। यदि प्रतिरोधक (buffer) द्वारा *p*H निर्धारित रखा जाता है तो स्टार्च के खनिज पदार्थ से ऐमिलेस की सक्रियता पर कोई प्रभाव नही पडता।

ऐमिलेस तीव्र अम्लो तथा क्षारो की उपस्थिति मे और १००° से० ग्रे० ताप पर अक्रिय हो जाते है। पानी मे ये विलेय होते है या शीघ्र आकीर्ण हो जाते है। नमक तथा ऐलकोहल के तनु विलयनो मे भी ये विलेय है। इन विलयनो मे नमक तथा ऐलकोहल की अधिक मात्रा डालने पर ऐमिलेस अवक्षेपित हो जाते है। अवक्षेपित ऐमिलेस पानी मे पुन घुल जाते है और सक्रिय विलयन देते है।

अग्न्याशय से प्राप्त ऐमिलेस को जब कीटीन (ketone) द्वारा ऐसिटिलीकृत किया जाता है तो एजाइम की सक्रियता तेजी से घटती है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि सक्रियता का घटना ऐमिनो समूह के सयोजित हो जाने के कारण है क्योकि ऐसिटिलीकरण मे सबसे पहले ऐमिनो समूह ऐसिटिलीकृत होता है और मुक्त अवस्था मे नही रहता।

प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि ऐमिलेस की सक्रियता के लिए अनुकूलतम हाइड्रोजन आयन-सान्द्रता ताप के अनुसार भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, α- माल्ट ऐमिलेस की ३०° से० ग्रे० पर अधिकतम सक्रियता *p*H ५ ० पर होती है, किन्तु यदि ताप बढाया जाता है तो अधिकतम सक्रियता के लिए *p*H को भी उसी के अनुसार थोडा बढाना पडता है। *p*H ७ ० तक बढाया जा सकता है। इससे अधिक *p*H और उसी के अनुसार अधिक ऊँचे ताप पर ऐमिलेस की सक्रियता नष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ, ७० से० ग्रे० ताप पर *p*H ६ ८ रखने पर ऐमिलेस की सक्रियता अधिकतम होती है। इस प्रकार ऐमिलेस की सक्रियता के लिए कोई एक अनुकूलतम ताप नही है। *p*H के अनुसार अनुकूलतम ताप भिन्न होता है।

ताप, *p*H तथा सामान्य लवण के अतिरिक्त विभिन्न अन्य लवण, प्रोटीन के विघटित पदार्थ, लाइपिड (lipids) तथा अन्य यौगिको की उपस्थिति का प्रभाव

भी ऐमिलेस की क्रिया पर पडता है। कुछ पदार्थ ऐमिलेस की क्रिया को तीव्र करते हैं और कुछ घटाते है।

अन्य एज़ाइमो की भाँति ऐमिलेस की स्टार्च पर क्रिया भी पूर्ण होने के कुछ पूर्व ही रुक जाती है। कुछ लोगो का यह अनुमान है कि इस क्रिया मे जल-विश्लेषण द्वारा उत्पन्न पदार्थ एजाइम की क्रिया को अवरुद्ध करने का कारण है। किन्तु यह तभी सभव हो सकता है जब जल-विश्लेषण मे उत्पन्न पदार्थो के प्रति एजाइम की बधुता (affinity) हो, पर वास्तव मे ऐसा नही है। के० स्योबर्ग[15] (K Sjoberg) ने एक प्रयोग मे माल्ट-निष्कर्ष द्वारा विलेय स्टार्च पर क्रिया करायी और देखा कि ६० प्रतिशत शर्करीकरण हो जाने के बाद क्रिया रुक जाती है। उसने यह भी देखा कि इस अवस्था के पहुँचने पर यदि जल-विश्लेषण मे उत्पन्न पदार्थो को पृथक् कर दिया जाय तो भी एज़ाइम की क्रिया पर कोई प्रभाव नही पडता और क्रिया पुन आरम्भ नही होती। अत इससे स्पष्ट है कि जल-विश्लेषण मे उत्पन्न हुए पदार्थो के प्रति एजाइम के आकर्षण के अतिरिक्त कोई अन्य कारण एजाइम की क्रिया के रुकने का होना चाहिए।

सी० वुडरली[16] ने यह ज्ञात किया है कि केसीन की उपस्थिति से लार के ऐमिलेस की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है, किन्तु यदि इसी मे ट्रिप्सिन डाल दिया जाय तो क्रिया पुन होने लगती है। ट्रिप्सिन मिलाने से न केवल केसीन का अवरुद्धकारक प्रभाव ही नष्ट होता है, वरन् ऐमिलेस की क्रिया मे भी वृद्धि होती है और इसकी सक्रियता आरम्भ की सक्रियता से भी कुछ अधिक हो जाती है। इस प्रयोग के आधार पर वुडरली ने यह मत प्रस्तुत किया कि केसीन या अन्य प्रोटीन का ऐमिलेस पर अवरुद्धकारक प्रभाव इस कारण पडता है कि ये ऐमिलेस से सयोजित होकर उसे निष्क्रिय कर देते हैं। ट्रिप्सिन प्रोटीन को विच्छेदित करने वाला एजाइम है। अत ट्रिप्सिन मिलाने पर केसीन या अन्य प्रोटीन, जो ऐमिलेस से सयोजित है, विघटित हो जाता है और फलस्वरूप ऐमिलेस फिर मुक्त सक्रिय अवस्था मे आ जाता है। क्नीन तथा सहयोगियो[17] ने एक विलेय पदार्थ गेहूँ तथा राई से प्राप्त किया है जिसमे ऐमिलेस की क्रिया को अवरुद्ध करने का गुण है। अन्य लोगो ने सिद्ध किया है कि यह अक्रियकारक पदार्थ निश्चित रूप से प्रोटीन है। इससे भी वुडरली के मत की पुष्टि होती है।

कुछ पदार्थ, जैसे जीवित यीस्ट-कोशिकाएँ, अडे, रुधिर और सीरम का ऐल्ब्यूमिन जो पहले पेप्सिन से विलेय कर लिया गया है, ऐमिलेस को अधिक क्रियाशील बनाते है। कुछ रसायनज्ञो ने यह प्रदर्शित किया है कि यीस्ट मे ग्लूटाथियोन रहता है और यही ऐमिलेस के लिए सक्रियकारक का काम करता है। कुछ ऐमिनो अम्ल भी ऐमिलेस

की क्रियाशीलता को बढाते हैं। सभवत ये ऐमिलेस की विलेयता मे वृद्धि करते है जिसके कारण इनकी सक्रियता मे भी वृद्धि हो जाती है।

मरक्यूरिक क्लोराइड, तूतिया, पिकरिक अम्ल तथा फार्मैल्डीहाइड ऐमिलेस के लिए विष का काम करते हैं। इनकी उपस्थिति से सक्रियता धीरे-धीरे घटती है और पूरा प्रभाव पडने मे कुछ समय लगता है। पोटैसियम आयोडाइड, फास्फोटग्सटिक अम्ल, ऐटीमनी क्लोराइड, टार्टर ऐमेटिक तथा विभिन्न ऐलकेलायड भी ऐमिलेस पर अक्रियकारक प्रभाव डालते है।

निर्देश

1 H C. Sherman, E C Kendall, and E D Clark, J *Biol Chem*, 1934, **104**, 501

2 J Takamine, J Ind Eng Chem, 1914, **6**, 824

3 A R Boidin and J Effront, U S P 1,227, 374, May 22, 1917

4. J Effront, 'Biochemical Catalysts in life and Industry' 1st ed 1917

5 M L Caldwell, L E Booher, H C Sherman, *Science*, 1931, **74**, 37

6. K H Meyer, E H Fischer, P Bernfeld, *Helv Chim Acta*, 1947, **30**, 64.

7 K H Meyer, E H Fischer and P Bernfeld, *Arch Biochem*, 1947, **14**. 149

8 K H Meyer, E H Fischer, P Bernfeld and A Stramb, *Experientia*, 1947, **3**, 455

9 K. H. Meyer, M Fuld and P Bernfeld, *Experientia*, 1947, 3, 411.

10. K H Meyer, E H Fischer, P. Bernfeld, and F Duckert, *Arch Biochem*, 1948, **18**, 203.

11 P Bernfeld, F. Duckert and E H Fischer, *Helv Chim. Acta*, 1950, **33**, 1064

12 E H. Fischer, K. H. Meyer, G Noelting and A. Piguet, *Arch Biochem*, 1950, **27**, 235

13 L A Underkofler and D K Roy, *Cereal Chem* , 1951, **28**, 18

14 H C Sherman, M L Caldwell and S E Doebbelıng, J *Bıol Chem*, 1934, **104**, 501

15. K. Sjobeıg and E Erıksson, Hoppeseyl *Z Physıol Chem.*, 1924, **139**, 118

16 C Wundeıly, *Helv Chım Acta*, 1940, **23**, 414

17 E Kneen and R. M Sandstedt, *J Amer Chem Soc* , 1943, **65**, 1247

Aıch Bıochem , 1946, **9**, 235

अध्याय ४

स्टार्च को व्यापारिक मात्रा मे प्राप्त करना

व्यापारिक मात्रा मे स्टार्च पौधो के उन भागो से प्राप्त किया जाता है जिनमे यह अधिक परिमाण में मौजूद रहता है। विभिन्न अनाजो के बीजो मे स्टार्च मुख्य अवयव है। आलू मे भी स्टार्च की मात्रा बहुत रहती है। निम्न तालिका मे कुछ पदार्थो मे मौजूद स्टार्च की प्रतिशत मात्रा दी गयी है :—

	स्टार्च की मात्रा
गेहूँ (wheat)	५५ से ६५ प्रतिशत
जौ (barley)	४० से ४६ ,,
जई (oats)	३० से ४० ,,
राई (mustard)	४४ से ४७ ,,
मकई (maize)	४५ से ६७ ,,
चावल (rice)	७० से ७६ ,,
आलू (patato)	२० से २५ ,,

जैसा हम ऐतिहासिक पर्यवेक्षण के अध्याय मे बतला चुके है, सर्वप्रथम स्टार्च गेहूँ से प्राप्त किया गया था और आरम्भ के बहुत वर्षों तक इसी से स्टार्च मुख्य रूप से प्राप्त किया जाता रहा। किन्तु आजकल गेहूँ का उपयोग स्टार्च प्राप्त करने के लिए कम होता है। इसके दो कारण है। पहला यह कि गेहूँ महँगा अन्न है और विशेष रूप से भोजन के रूप मे ही इसका उपयोग होता है। दूसरा यह कि गेहूँ मे ग्लूटेन नामक एक प्रोटीन पदार्थ पर्याप्त मात्रा मे (लगभग १२ से १६ प्रतिशत) रहता है जिसके कारण गेहूँ से स्टार्च को पृथक् करने मे कठिनाई पडती है। ग्लूटेन को गेहूँ से निकालने के लिए इसे किण्वित (ferment) किया जाता है जिसके फलस्वरूप कुछ ऐसे दुर्गन्धित पदार्थ उत्पन्न होते है जिनके कारण बडी दुर्गन्ध फैलती है। इसी दुर्गन्ध के कारण यूरोप के विभिन्न देशो मे गेहूँ से स्टार्च बनाने की फैक्टरियो मे समय-समय पर प्रतिबन्ध लगाये गये थे।

आजकल मकई, चावल और आलू का उपयोग स्टार्च बनाने मे अधिक होता है। जिस देश मे जो स्टार्च-यक्त पदार्थ अधिक होता है और सस्ता होता है वहाँ वही पदार्थ स्टार्च प्राप्त करने के लिए उपयोग मे आता है। आलू से स्टार्च बनाना अठारहवी शताब्दी के आरम्भ मे शुरू हुआ था और आजकल सबसे अधिक स्टार्च इसी से प्राप्त किया जाता है। जर्मनी मे तो आलू का स्टार्च ही मुख्य रूप से बनाया जाता है। भारत-वर्ष मे सस्ती होने के कारण मकई का उपयोग स्टार्च प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इधर थोडे समय से केले के तने से स्टार्च प्राप्त करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। विभिन्न स्रोतो से प्राप्त स्टार्च के अपने भिन्न गुण होते हैं और विशेष उपयोगो के लिए इन विभिन्न पदार्थो से स्टार्च निकाला जाता है। टैपियोका स्टार्च टैपियोका (Tapioca) जाति के पौधो की कदिल जडो (tuberous roots) से प्राप्त किया जाता है। टैपियोका दक्षिणी अमेरिका का पौधा है और वही से विभिन्न स्थानो मे फैला। दक्षिणी भारतवर्ष मे आजकल टैपियोका पर्याप्त मात्रा मे उगाया जाता है और इसकी कदिल जड भोजन के काम मे आती है। अरारोट स्टार्च मुख्य रूप से मैरटा एरडिनेसी (Maranta arundinacea) नामक पौधे के प्रकद (rhizome) से प्राप्त किया जाता है। साबूदाना भी स्टार्च पदार्थ है जो सैगो ताड (sago-palm) जाति के पौधो के तनो से प्राप्त किया जाता है। इस जाति के दो पौधे, सैगस रम्फी (Sagus rumphii) तथा सैगस लीवस (Sagus laevus), साबूदाना बनाने मे बहुत उपयोगी होते है। बाजार मे साबूदाना नाम से बिकनेवाला इसी के रूप-रग का एक अन्य पदार्थ साइकस रिवोल्यूटा (Cycus revoluta) नामक पौधे के फलो से प्राप्त किया जाता है। यह पौधा सीलोन तथा सुमात्रा और जावा मे बहुत होता है।

गेहूँ से स्टार्च बनाना

गेहूँ मे स्टार्च के साथ ग्लायडिन (gliadin) और ग्लूटेनिन (glutenin) नामक दो प्रोटीन रहती है जो पानी की उपस्थिति मे परस्पर क्रिया कर ग्लूटेन (gluten) नामक प्रोटीन मे परिवर्तित हो जाती है। ग्लूटेन मे यह गुण होता है कि यह पानी शोषित कर गोद की तरह चिपकने वाला और लसलसा हो जाता है। अत पानी की उपस्थिति मे ग्लूटेन इस रूप मे परिवर्तित होकर स्टार्च-कणो को चिपकाये रखता है और पृथक् नही होने देता। इस ग्लूटेन के वर्तमान रहने के कारण गेहूँ से स्टार्च पृथक् करने मे विशेष कठिनाई होती है। मुख्य समस्या स्टार्च-कणो को ग्लूटेन से पृथक् करने की होती है। स्टार्च को गेहूँ से प्राप्त करने मे या तो ग्लूटेन को विच्छेदित कर नष्ट कर दिया जाता है या बहते पानी मे मल कर और रगड कर बहा दिया जाता है।

गेहूँ मे वर्तमान विभिन्न पदार्थो की औसत मात्राएँ निम्न प्रकार होती हैं —

स्टार्च	६८.०	प्रतिशत
शर्कराएँ	३.२	„
सेल्यूलोस	२ २	„
वसा	१ ७	„
प्रोटीन	११ ०	„
खनिज द्रव्य	१ ९	„
जल	१२ ०	„

गेहूँ से स्टार्च प्राप्त करने की कई विधियाँ है।

किण्वन विधि—इस विधि मे स्टार्च-कणो को पृथक् करने के लिए ग्लूटेन को नष्ट कर दिया जाता है। गेहूँ के दानो को साफ करने के बाद पानी मे इतने समय तक भिगोया जाता है कि दाने मुलायम हो जायँ और अगुलियो से दबाकर चूर किये जा सके। पानी मे गेहूँ को भिगोने की क्रिया साधारणत धातु की बडी नॉदो मे की जाती है जिनकी पेदी शुण्डाकार होती है। प्रत्येक नॉद मे बीच मे एक नल लगा रहता है जिसमे बहुत महीन छेद होते हैं। इन्ही महीन छेदो से पानी नॉद मे गेहूँ के ऊपर गिरता है। गेहूँ के दाने जब फूलकर मुलायम हो जाते है तो इन्हे एक चक्की मे पानी की उपस्थिति मे पीस कर एक पतली लेई के रूप मे कर लिया जाता है। इस लेई को मैश (mash) कहते है।
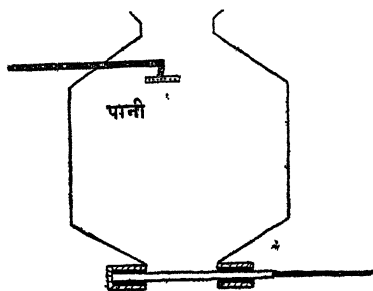
चित्र १—गेहूँ के दानो को पानी में फुलाने की नाँद

मैश मे थोडा खट्टा आटा या इससे पूर्व किण्वित किये गये मैश मे से थोडा द्राव (liquor) डाल कर किण्वन होने के लिए रख दिया जाता है। किण्वन की क्रिया ठीक गति से होती रहे इसके लिए यह आवश्यक है कि किण्वित होने वाले मैश को थोडे-थोडे समय बाद विलोडक (stirrer) द्वारा विलोडित कर दिया जाय। निर्धारित सीमा तक किण्वन होने मे १० दिन से लेकर ३० दिन तक का समय लगता है। गरमी के दिनो में किण्वन ८-१० दिनो मे ही पूरा हो जाता है, किन्तु शीत ऋतु मे अधिक दिन लगते हैं। यह किण्वन एक फफूंद द्वारा होता है जो द्रव की सतह पर वृद्धि कर धीरे-धीरे फैलता है और कुछ एजाइम उत्पन्न करता है। ये एजाइम प्रोटीन तथा अन्य नाइट्रोजन यौगिकों

को विच्छेदित करते है जिसके फलस्वरूप ऐमोनिया, कार्बन डाइ-आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसे निकलती है और विभिन्न अम्ल उत्पन्न होते है जिनमे ऐसीटिक, प्रोपियानिक, ब्यूट्रिक तथा लैक्टिक अम्ल मुख्य है। ऐमोनिया तथा हाइड्रोजन सल्फाइड तीव्र गध वाली गैसे है और इनके निकलने के कारण चारो ओर एक तीव्र दुर्गन्ध फैलती है। हाइड्रोजन सल्फाइड गैस दुर्गन्धमय होने के साथ-साथ विषैली भी होती है। अत यह फैक्टरी के आस-पास के वायुमडल को विषैला और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बना देती है।

किण्वन मे उत्पन्न हुए अम्ल ग्लूटेन पर प्रक्रिया करते है जिसके फलस्वरूप ग्लूटेन का धीरे-धीरे विच्छेदन हो जाता है और यह सरल विलेय पदार्थो मे परिणत हो जाता है। ग्लूटेन के विच्छेदित हो जाने पर स्टार्च-कण जो पहले ग्लूटेन द्वारा परस्पर चिपके रहते है मुक्त होकर पृथक् हो जाते है।

जब किण्वन ठीक सीमा तक हो चुकता है तो इसे रोक दिया जाता है और आगे नही बढने दिया जाता। किण्वन के अधिक हो जाने पर किण्वित द्रव बहुत गाढा हो जाता है, फलस्वरूप स्टार्च-कणो को पृथक् करने मे कठिनाई पडती है। अत किण्वित द्रव के गाढा होने के पहले ही किण्वन को रोक देना आवश्यक होता है। किण्वन को रोक देने के बाद किण्वित पदार्थ को कुछ समय तक शान्त छोड दिया जाता है। अधिपृष्ठ आम्लिक द्रव (supernatant acidic liquid) निथार कर बाहर निकाल दिया जाता है। नीचे के शेष बचे ठोस पदार्थ को कई बार पानी से धोया जाता है और प्रत्येक बार के धोवन को भी निथार कर बाहर फेक दिया जाता है। धोने के बाद अन्त मे जो ठोस अवशेष पेंदी मे बचता है उसे गोलाकार एक बडे बर्तन मे, जिसकी पेंदी महीन जाली की बनी होती है, पहुँचाया जाता है। ऐसा प्रबन्ध रहता है कि इस बर्तन मे पानी बराबर ठोस पदार्थ पर गिरता रहे और बर्तन घूमता रहे। स्टार्च पानी के साथ बहकर जाली से बाहर निकल आता है और चोकर, रेशे तथा अन्य अपद्रव्य जाली के ऊपर रह जाते है। स्टार्च पानी के साथ मिल कर निलम्बन (suspension) के रूप में रहता है और इस निलम्बन को **स्टार्च-दुग्ध** (starch milk) कहते है। स्टार्च-दुग्ध को बडी-बडी टकियो मे, जिन्हे अध साद टकियाँ (settling tanks) कहते है, भर दिया जाता है और कुछ समय तक शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च-कण धीरे-धीरे तली मे बैठ जाते है और पानी अधिपृष्ठ द्रव के रूप मे पृथक् हो जाता है। इस अधिपृष्ठ द्रव को निकाल कर बाहर फेक दिया जाता है। तली मे बचे स्टार्च को स्वच्छ जल से कई बार धोया जाता है और प्रत्येक बार के धोवन को निथारने की विधि द्वारा ही पृथक् कर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार जब स्टार्च भली-भाँति धुल जाता है

और इसके धोवन मे अम्ल का कुछ भी अश नही रहता तब इसे बडे-बडे छिछले सन्दूक की तरह के ऐसे बर्तनो मे भर दिया जाता है जिनकी दीवारे कैनवस या फलालैन की बनी होती है। कैनवस (अथवा फलालैन) से छनकर स्टार्च का पानी धीरे-धीरे बाहर निकल जाता है। अन्त मे इस स्टार्च को पूर्ण रूप से सुखाने के लिए शोषको
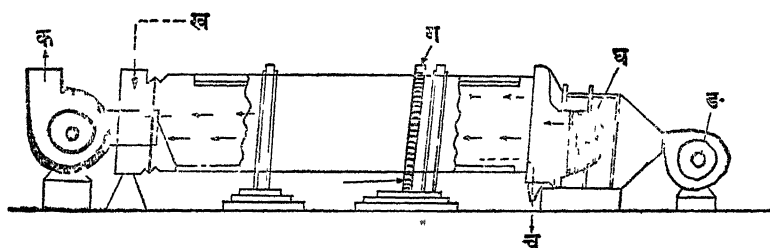
चित्र २—घूर्ण शोषक (rotary dryer)

(क–गैसों का निकास मार्ग, ख–गीले पदार्थ का अन्दर जाने का मार्ग, ग–घुमाने वाला गियर, घ–ऊष्मक, ङ–धौंकनी, च–सूखे पदार्थ का निकास मार्ग)

(dryers) मे पहुँचाया जाता है जहाँ गरम हवा द्वारा स्टार्च सुखाया जाता है। शोषक कई प्रकार के होते है, किन्तु सबमे सिद्धान्त यही रहता है कि एक ओर से गरम हवा शोषक मे घुसती है और दूसरी ओर से स्टार्च प्रवेश करता है। गरम हवा स्टार्च को सुखाती हुई उस ओर से निकल जाती है जिधर से स्टार्च प्रवेश करता है। सूखे स्टार्च को फिर चूर्ण कर पैकटो या बोतलो मे भरकर बाजार मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

आरम्भ मे गेहूँ से स्टार्च किण्वन विधि से ही बनाया जाता था किन्तु इस विधि मे सबसे बडा दोष यह है कि इसमे गेहूँ का मूल्यवान् अश ग्लूटेन नष्ट हो जाता है। अत यह अपव्यय की विधि है। इसके अतिरिक्त इसमे समय भी बहुत अधिक लगता है और साथ ही ऐसी दुर्गन्धित गैसें उत्पन्न होती है जिनके कारण न केवल मजदूरो को काम करना असह्य लगता है, आस-पास के लोगो का रहना भी कठिन हो जाता है। इन सब कारणो से आजकल इस विधि के स्थान मे अन्य विधियाँ उपयोग मे आती है।

मार्टिन विधि (Martin's process)—आजकल गेहूँ से स्टार्च प्राप्त करने के लिए इसी विधि का प्रचार सबसे अधिक है। इस विधि में बहुत सरल मशीनो और उपकरणो का उपयोग होता है, अत फैक्टरी खडी करने और मशीन लगाने मे अधिक व्यय नही करना पडता। साथ ही अच्छी कोटि का स्टार्च अच्छी मात्रा मे प्राप्त होता

है। इसमे ग्लूटेन भी पृथक् प्राप्त कर लिया जाता है और उपयोग में लाया जाता है। इस विधि मे समय भी कम लगता है।

मार्टिन विधि मे गेहूँ का आटा लिया जाता है। आटे को पानी के साथ मिलाकर कडा गूँधा जाता है और लगभग एक घटे तक इसी अवस्था मे पडा रहने दिया जाता है जिससे आटे के भीतर सब जगह पानी पहुँच जाय और ग्लूटेन खूब फूल उठे। अब इस गुँधे आटे को धोने की मशीन (washing machine) मे ले जाया जाता है। इस मशीन मे एक ऐसा बर्तन होता है जिसकी पेंदी मे खाँचे (grooves) बने रहते हैं और दीवारो मे महीन चलनी (sieves) बनी होती हैं। इस मशीन मे रखने के बाद गुँधे आटे पर फुहारे द्वारा बराबर पानी की धारा डाली जाती है और एक बेलन द्वारा जिसकी गोल सतह पर भी खाँचे बने रहते हैं इसको खूब मला जाता है। स्टार्च पानी के साथ निलम्बन के रूप मे (स्टार्च-दुग्ध) बर्तन की दीवारो मे बनी चलनी द्वारा बाहर निकलता रहता है और एक बडी नाँद मे एकत्रित होता है। ग्लूटेन धोने के बर्तन मे बचा रह जाता है। जब सब स्टार्च आटे से पृथक् होकर स्टार्च-दुग्ध के रूप मे नाँद मे एकत्रित हो जाता है तो ग्लूटेन को धोने के बर्तन मे से अलग निकाल लिया जाता है और स्टार्च-दुग्ध को अध साद टकियो मे भरकर शान्त रख दिया जाता है। कुछ समय तक शान्त रखा रहने पर स्टार्च-दुग्ध मे से स्टार्च नीचे तली मे धीरे-धीरे बैठ जाता है और पानी पृथक् होकर ऊपर एकत्रित हो जाता है। इस पानी को निथार कर अलग निकाल दिया जाता है। पृथक् हुए स्टार्च को पानी से कई बार धोया जाता है और प्रत्येक बार के धोवन को ऊपर की भाँति ही निथार कर फेंक दिया जाता है। अन्त मे स्टार्च को किण्वन विधि मे बतलाये अनुसार शोषको मे सुखाकर पैकटो या बोतलो मे भर लिया जाता है।

निम्न मानचित्र मे मार्टिन विधि के विभिन्न पदो को प्रदर्शित किया गया है—
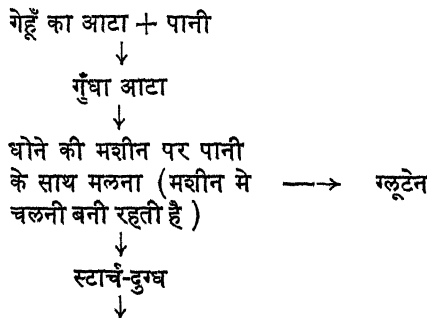
अध सादटकी
(स्टार्च का तली मे जमना
और पानी का पृथक् होना)
↓
गीला स्टार्च ⟶ शोषक ⟶ शुष्क स्टार्च
(सुखाना)

क्षार विधि (Alkalı process)—आर० जे० डिमलर (R J Dımler) और उनके सहयोगियो ने कुछ वर्ष पूर्व यह विधि ज्ञात की है। इस विधि मे आटे को तनु कास्टिक सोडे के विलयन से मिश्रित किया जाता है। तनु कास्टिक सोडा स्टार्च पर कोई क्रिया नही करता, किन्तु ग्लूटेन को घुला देता है और इसका एक कलिल विलयन (colloıdal solutıon) बनाता है। कास्टिक सोडा मिश्रित इस आटे को एक अपकेन्द्री मशीन मे डालकर मशीन को तीव्र गति से घुमाया जाता है। स्टार्च मशीन की दीवारो पर, जो महीन जाली की बनी होती है, पर्त के रूप मे जम जाता है और मातृ-द्राव (mothe: lıquor) जाली के मार्ग से बाहर निकल जाता है। जाली पर एकत्रित हुए स्टार्च को वही पानी के फुहारे द्वारा धो लिया जाता है और फिर खुरच कर प्राप्त कर लिया जाता है और सुखा कर पैकटो या बोतलो मे भर दिया जाता है। जाली से बाहर निकले मातृ-द्राव को भी एकत्रित कर लिया जाता है और बाद मे इसमे से ग्लूटेन अलग निकाल लिया जाता है। इस विधि से गेहूँ मे उपस्थित स्टार्च का लगभग ९० प्रतिशत भाग प्राप्त होता है और इस स्टार्च की शुद्धता लगभग ९८ प्रतिशत तक रहती है।

सल्फ्यूरस अम्ल विधि (Sulphurous acıd process)—इस विधि मे गेहूँ को पहले सल्फर डाइ-आक्साइड के ० ५ प्रतिशत जलीय विलयन मे ३८° से० ग्रे० ताप पर लगभग २४ घटे तक भिगो दिया जाता है और फिर इस भीगे गेहूँ को पानी के साथ चक्की मे पीसा जाता है। पिसा आटा निलम्बन के रूप मे प्राप्त होता है। इस निलम्बन को क्रम से २६ छेद वाली ताँबे की चलनी के ऊपर और फिर उससे महीन रेशम की चलनी के ऊपर प्रवाहित किया जाता है। इन चलनियो के भीतर से होकर स्टार्च तथा ग्लूटेन दोनो ही पानी के साथ निकल जाते है और मोटा आटा तथा चोकर ऊपर बच रहता है। स्टार्च और ग्लूटेन के इस जलीय निलम्बन को फिर अधिक महीन चलनी के ऊपर प्रवाहित किया जाता है। स्टार्च चलनी के ऊपर रुक जाता है और केवल ग्लूटेन का कलिल विलयन ही चलनी के भीतर से होकर बाहर जाता है। इस प्रकार स्टार्च और ग्लूटेन पृथक् प्राप्त हो जाते है। जो मोटा आटा तथा चोकर मोटी चलनियो के

ऊपर बच रहता है उसे फिर चक्की मे पीस कर पहले की भाँति ही छानते है। अन्त मे केवल चोकर तथा रेशे आदि बच रहते है और समस्त स्टार्च निकल जाता है।

सल्फ्यूरस अम्ल मे भिगोने से गेहूँ के ग्लूटेन का लसलसापन तथा चिपकने का गुण नष्ट हो जाता है ओर वह अब न तो स्टार्च-कणो को पृथक् होने से रोकता है और न चलनी पर जमता है।

अन्तिम चलनी मे से छन कर प्राप्त हुए ग्लूटेन के जलीय निलम्बन को अध साद टकियो मे भरकर शान्त छोड दिया जाता है। ग्लूटेन धीरे-धीरे नीचे तली मे बैठ जाता है और पानी ऊपर अधिपृष्ठ द्रव के रूप मे पृथक् हो जाता है। ऊपर से पानी को निथार कर निकाल दिया जाता है और तली मे बैठे ठोस ग्लूटेन को फिल्टर प्रेस मे भेजकर बडे दाब मे छाना जाता है। सब पानी छन कर निकल जाता है और ग्लूटेन थक्के के रूप मे फिल्टर प्रेस के कपडे के छन्ने पर बच रहता है। इसे फिर सुखा कर रख लिया जाता है।

जो स्टार्च महीन चलनियो के ऊपर एकत्रित होता है उसे वही कई बार पानी से धो कर शुद्ध कर लिया जाता हे ओर अन्त मे शोषको मे सुखा कर रख लिया जाता है। इस विधि मे गेहूँ से लगभग ६० प्रतिशत तक स्टार्च प्राप्त होता है और इसकी शुद्धता भी अच्छी होती है।

गेहूँ का स्टार्च महीन सूती कपडो पर कलफ देने के लिए सबसे अच्छा होता है।

चावल से स्टार्च प्राप्त करना

चावल मे विभिन्न पदार्थो का प्रतिशत मात्राएँ निम्न भाँति होती है :—

स्टार्च	७६ प्रतिशत	वसा	० ५ प्रतिशत
अन्य कार्बोहाइड्रेट	१ ५ ,,	जल	१२ ५ ,,
प्रोटीन	८ ० ,,	खनिज द्रव्य	१ ५ ,,

धान से चावल के दानो को पृथक् करने की क्रिया मे तथा चावल की पालिश करने मे कुछ चावल छोटे-छोटे टुकडो मे टूट जाता है। चावल की यह किनकी ही अधिकतर स्टार्च बनाने के काम मे लायी जाती है।

चावल के स्टार्च-कणो का आकार गेहूँ के स्टार्च-कणो की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। अत जलीय निलम्बन मे से चावल का स्टार्च बहुत धीमी गति से नीचे बैठता है। इसीलिए इसे शीघ्र पृथक् करने के लिए अपकेन्द्री यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा स्टार्च को स्टार्च-निलम्बन मे से पृथक् करने मे व्यय कुछ

अधिक पडता है, फिर भी समय की बचत को ध्यान मे रखते हुए यही विधि अधिक सुविधाजनक है।

चावल मे स्टार्च के प्रत्येक कण के चारो ओर ग्लूटेन की एक कडी पर्त रहती है और इस ग्लूटेन को बिना मुलायम किये स्टार्च-कणो को पृथक् नही किया जा सकता। ग्लूटेन को मुलायम करने और स्टार्च-कणो से पृथक् करने के लिए कास्टिक सोडे का उपयोग किया जाता है। चावल से स्टार्च प्राप्त करने की पूरी विधि जो आजकल व्यवहार मे आती है नीचे दी जाती है —

सीमेट या लोहे के बने बडे बर्तन लिये जाते है जिनकी पेंदी दो दीवारो की बनी होती है। अन्दर की दीवार मे छेद होते है, किन्तु बाहर वाली मे छेद नही होते। बाहर वाली दीवार घुमा कर हटायी जा सकती है और इस दीवार के हटने पर केवल छेद वाली पेंदी ही रह जाती है। इस बर्तन मे बडे दाव मे हवा भेजने का भी प्रबन्ध होता है। यह हवा बर्तन मे भरे पदार्थ को विलोडित करने का काम करती है।

ऊपर बतलाये बर्तन मे चावल की किनकी उपयुक्त ऊँचाई तक भरी जाती है और फिर इसमे कास्टिक सोडे का १ ००५ आपेक्षिक गुरुत्व का विलयन इतना डाला जाता है कि सब किनकी इस विलयन मे डूबी रहे और विलयन किनकी के स्तर से थोडा ऊपर रहे। किनकी को २४ घटे तक कास्टिक सोडे के विलयन मे भीगने दिया जाता है। बीच-बीच मे हवा प्रवाहित कर बर्तन मे भरे पदार्थ को विलोडित करते रहते है। २४ घटे बाद कास्टिक सोडे के विलयन को निथार कर निकाल दिया जाता है और दूसरा ताजा विलयन भरा जाता है। एक या दो दिनो तक पुन भिगोने के बाद चावल के कण इतना मुलायम हो जाते है कि इन्हे अगुली और अगूठे के बीच मे रखकर दबाने से ये चूर हो जाते है। अब इस मुलायम किनकी को चक्की मे इतने कास्टिक सोडा विलयन के साथ पीसा जाता है कि एक पतली लेई प्राप्त हो जाय। इस लेई से स्टार्च या तो अप-केन्द्री यन्त्र द्वारा या चलनी द्वारा पृथक् किया जाता है। अपकेन्द्री यन्त्र का व्यवहार ही अधिक होता है क्योकि इसके द्वारा अधिक सरलता से स्टार्च प्राप्त होता है। जो अपकेन्द्री यन्त्र इस काम मे लाया जाता है उसकी दीवारो मे छेद नही होते। यन्त्र का ड्रम इतनी गति से घुमाया जाता है कि यह एक मिनट मे लगभग १४०० परिक्रमा करता है। स्टार्च की पतली लेई को अपकेन्द्री मे डालकर घुमाया जाता है। ड्रम की दीवार पर पर्तो के रूप मे पदार्थ जम जाता है। सबसे बाहर की पर्त मे भारी रेशे आदि रहते है। इससे अन्दर की पर्त स्टार्च की होती है और सबसे अन्दर की पर्त मे ग्लूटेन तथा उसके साथ कुछ स्टार्च मिश्रित अवस्था मे रहता है। अन्दर की पर्त को पहले खुरच कर अलग निकाल दिया जाता है और फिर इसके बाद स्टार्च की मुख्य पर्त को

खुरच कर पृथक् प्राप्त कर लिया जाता है। इस रीति से ग्लूटेन अलग निकल जाता है किन्तु थोडा स्टार्च भी इसके साथ चला जाता है।

ऊपर अपकेन्द्री यन्त्र मे पृथक् होकर जो स्टार्च प्राप्त होता है वह शुद्ध नही होता। इसे शुद्ध करने के लिए इसमे पानी तथा थोडा तनु कास्टिक सोडा विलयन मिलाया जाता है। इस जलीय निलम्बन को फिर एक पक्ति मे प्रबन्धित लकडी के ऐसे सन्दूको मे पहुँचाया जाता है जिनकी पेदी खुली होती है और इस खुली पेंदी मे महीन कपडा बँधा रहता है जो छन्ने का काम करता है। निलम्बन का पानी कपडे से धीरे-धीरे छन कर बाहर निकल जाता है और स्टार्च कपडे के ऊपर ठोस पर्त के रूप मे बच रहता है। ऐसा प्रबन्ध रहता है कि सन्दूके बराबर हिलती रहे जिससे पानी के छनने की गति बहुत धीमी न रहे। एक दिन बाद अधिकाश पानी छन कर निकल जाता है और स्टार्च जम कर सन्दूक के आकार के बडे तथा कडे ढोको (blocks) के रूप मे प्राप्त होता है। इस स्टार्च मे अब भी लगभग ४०-४५ प्रतिशत पानी रहता है। स्टार्च के इन बडे ढोको को आयताकार छोटे-छोटे टुकडो मे काट कर विशेष प्रकार की अँगीठियो (स्टोवो) मे सूखने के लिए रख दिया जाता है। इन अँगीठियो मे ताप लगभग ५०°—६०° से० ग्रे० रखा जाता है और ४८ घटे तक टुकडो को सुखाया जाता है। सूखने पर इन टुकडो के चारो ओर लगभग आधा इच मोटी पीले या भूरे रग की एक पपडी जम जाती है। इस पपडी को खुरच कर निकाल दिया जाता है। बचा टुकडा सूखने पर सफेद रहता है। पीली पपडी को पुन नयी किनकी के साथ मिला कर चक्की मे पीसा जाता है और फेका नही जाता।

स्टार्च को सुखाने की क्रिया बडे महत्त्व की है और इस पर ही स्टार्च का रग और रूप निर्भर करता है। यदि सफेद मणिभीय रूप मे या ढोको के रूप मे स्टार्च प्राप्त करना होता है तो स्टार्च के टुकडो मे से पीली पपडी खुरच कर निकालने के बाद टुकडो को कागज मे लपेट दिया जाता है और प्रथम ४८ घटे तक ३५° से० ग्रे० ताप पर रखा जाता है। इसके बाद ३° डिग्री ताप बढा दिया जाता है। फिर इसी प्रकार प्रत्येक २४ घटे बाद ३° डिग्री ताप तब तक बढाते जाते है जब तक ताप ६०° से० ग्रे० नही आ जाता। इस ताप पर स्टार्च के टुकडो को दो दिनो तक सूखने दिया जाता है। अब स्टार्च लगभग पूरा सूख जाता है। सुखाने की इस पूरी क्रिया मे लगभग दो या तीन सप्ताह लगते है। इस प्रकार सुखाये जाने के बाद भी स्टार्च मे लगभग १२ प्रतिशत पानी रहता है। सूख जाने के बाद स्टार्च के ढोको के चारो ओर लिपटे कागज को निकाल दिया जाता है और इन ढोको को पैकेट अथवा बोतल मे भर कर बाजार मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है। यदि बहुत सफेद स्टार्च प्राप्त करना नही होता तो आरम्भ मे ही स्टार्च को

६०° से० ग्रे० ताप पर सूखने के लिए रख दिया जाता है। स्टार्च दो दिनो मे सूख जाता है। इस प्रकार सुखाये गये स्टार्च का रग थोडा मटमैला होता है।

गेहूँ के स्टार्च की भाँति चावल का स्टार्च भी महीन कपडो पर कलफ देने के लिए बहुत अच्छा होता है। अत आजकल इसका उपयोग गेहूँ के स्टार्च के स्थान मे इस काम के लिए बहुत होने लगा है। चावल के स्टार्च-कण बहुत छोटे होते है, इस कारण लिनेन पर कलफ देने के लिए ठडे पानी के साथ ही इसका उपयोग किया जा सकता है और साथ ही यह चेहरे के पाउडर के रूप मे इस्तेमाल होने के लिए भी बहुत उपयुक्त है। रगीन फोटो बनाने मे भी चावल के स्टार्च को विभिन्न रगो मे रँग कर प्रयुक्त किया जाता है।

चावल से स्टार्च बनाने की विधि के विभिन्न पद निम्न मानचित्र मे साकेतिक रूप मे प्रदर्शित किये गये है—

चावल की किनकी
↓
आमज्जन
(कास्टिक सोडा विलयन मे)
↓
पिसाई
(चक्की मे पानी के साथ)
↓
पतली लेई
↓
अपकेन्द्री यन्त्र
(स्टार्च को अधिकाश पानी से अलग करना)
↓
गीला स्टार्च (अशुद्ध)
↓
शोधन (तनु कास्टिक सोडे द्वारा)
↓
छानना और पानी द्वारा धोना
(कपडो के छन्नो पर)
↓
गीला स्टार्च (शुद्ध) ⟶ शोषक (सुखाना) ⟶ शुष्क स्टार्च
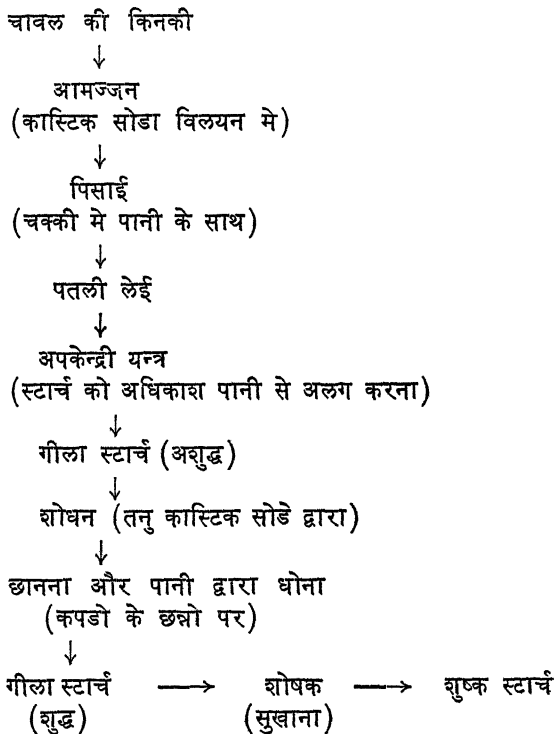
साबूदाना या सैगो स्टार्च (Sago Starch)

साबूदाना ताड वर्ग (palms) के कुछ पेडो के तनो से प्राप्त किया जाता है। इन पेडो मे मुख्य ये है—सैगस रम्फी (Sagus rumphii), सैगस फारनीफेरा (Sagus farnifera), सैगस लीवस (S. laevus) और एरेंगा सैकरीफेरा (Arenga saccharifera)। ये पेड थोडा दलदली स्थानो मे उगते है और अधिकतर पूर्वीय द्वीप-समूहों मे पाये जाते है। साइकड वर्ग के कुछ पेडो से भी साबूदाना बनाया जाता है और प्राय लोग भ्रान्तिवश इन पेडो को भी सैगो ताड कहते है।

सैगो ताड के पेड जब ७-८ वर्ष के होते है तब उनमे फूल लगते है और एक बार फूल निकल चुकने के बाद पेड मर जाते है। इस समय इनकी पूर्ण वृद्धि हो चुकी होती है और ये ३० फुट तक ऊँचे होते है और इनके तने का व्यास जमीन के पास लगभग दो-तीन फुट तक होता है। पूर्ण वृद्धि अवस्था मे पेड के पूरे तने मे मध्य के पिथ (pith) के भाग मे स्टार्च सगृहीत रहता है।

साबूदाना बनाने के लिए सैगो ताड के पेड को जब वह २५-३० फुट तक ऊँचा होता है गिरा दिया जाता है। सब पत्तियो को झाड कर निकालने के बाद पूरे तने को लगभग दो-दो फुट के लम्बे टुकडो मे काट लिया जाता है। फिर प्रत्येक टुकडे के चारो ओर का लगभग दो-ढाई इच मोटा कडा छिलका काट कर निकाल दिया जाता है और अब केवल अन्दर का पिथ का भाग रह जाता है जहाँ स्टार्च भरा रहता है। पिथ को छोटे-छोटे पतले टुकडो मे काट कर पानी मे डाल दिया जाता है और पानी मे ही खूब कूटा-पीटा जाता है। कूटने-पीटने से पिथ मे भरा सब स्टार्च पानी मे निकल आता है और स्टार्च का एक निलम्बन प्राप्त होता है। इस स्टार्च-निलम्बन को ताड की पत्तियो से बनी चटाइयो द्वारा छाना जाता है। स्टार्च-निलम्बन चटाई के छेदो से छन कर बाहर निकल जाता है, किन्तु पिथ के टुकडे तथा रेशे चटाई के ऊपर रह जाते है। चटाई के ऊपर बचे इस अवशेष को पुन पानी मे डाल कर पहले की भाँति ही कूटा-पीटा और मसला जाता है जिससे पिथ मे बचा सब स्टार्च पानी मे निकल आये। इस बार प्राप्त स्टार्च-निलम्बन को भी पहले की भाँति ही चटाई द्वारा छाना जाता है। आवश्यकता होने पर चटाई के ऊपर बचे पिथ के अवशेष को पुन पानी मे पूर्व की भाँति कूट-पीट कर शेष स्टार्च को भी ऊपर की विधि द्वारा ही निकाल लिया जाता है। इस प्रकार कई बार ऊपर की क्रिया करने से पिथ मे भरा समस्त स्टार्च जलीय निलम्बन के रूप मे प्राप्त होता है। इसे स्टार्च-दुग्ध कहते है। स्टार्च-दुग्ध को बडी-बड़ी अध साद टकियो मे भर कर थिरने के लिए शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च-कण धीरे-धीरे तली मे बैठ जाते है और पानी अधिपृष्ठ द्रव के रूप मे पृथक् हो जाता है।

ऊपर से पानी को निथार कर अलग निकाल दिया जाता है और तली मे एकत्रित स्टार्च प्राप्त कर लिया जाता है। यह स्टार्च अभी शुद्ध नही होता और इसमे कुछ रेशे तथा अपद्रव्य मौजूद रहते हैं।

ऊपर बतलायी सब क्रियाएँ उसी स्थान मे की जाती है जहाँ इन पेडो का बाग लगा होता है। जो अशुद्ध स्टार्च प्राप्त होता है उसे शुद्ध करने के लिए निकट के स्टार्च के कारखानो मे भेज दिया जाता है। इन कारखानो मे अशुद्ध स्टार्च को पानी मे मिला कर पुन निलम्बन के रूप मे कर लिया जाता है और फिर कपडो के छन्नो द्वारा छाना जाता है। अपद्रव्य छन्नो के ऊपर रह जाते है और स्टार्च-दुग्ध छन कर प्राप्त होता है। स्टार्च-दुग्ध को अध साद टकियो मे भर कर छोड दिया जाता है। स्टार्च-कण धीरे-धीरे तली मे बैठ जाते है और पानी ऊपर पृथक् हो जाता है। पानी को ऊपर से निथार कर निकाल दिया जाता है और तली मे बैठे स्टार्च को सुखा कर उपयुक्त रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। यदि साबूदाना स्टार्च को चूर्ण रूप मे प्राप्त करना होता है तो गीले स्टार्च को ताड की चटाइयो पर फैला कर धूप मे सुखाया जाता है और फिर चक्की मे चूर्ण कर थैलो मे भर कर बाजारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है। किन्तु यदि दानो (साबूदाना) के रूप मे प्राप्त करना होता है तो गीले स्टार्च को महीन रध्रो के साँचो के भीतर भर कर दबाया जाता है। रध्रो से छोटे-छोटे दानो के रूप मे स्टार्च बाहर निकलता है। इन दानो को ज़ीन या कैनवस के बने खटोलो के झूलो पर फैला दिया जाता है। यन्त्र द्वारा इन खटोलो को गोलाई से घुमाते रहने का प्रबन्ध रहता है। जब ये झूले गोलाई से चक्कर करते है तो इनमे फैले स्टार्च के दाने भी गोलाई से चक्कर करते है और फलस्वरूप गोल हो जाते है। इसके बाद इन दानो को धातुओ की बनी छिछली कढाइयो मे साधारण ताप पर गरम कर सुखा लिया जाता है। अब साबूदाना तैयार हो जाता है और बाजार मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

आजकल सैगो स्टार्च के अतिरिक्त अन्य विभिन्न स्टार्चों से भी दानो के रूप मे बन कर स्टार्च बाजार मे बहुत आता है। यह सब कृत्रिम साबूदाना है। कृत्रिम साबूदाना बनाने के लिए आलू का स्टार्च सबसे अधिक प्रयुक्त होता है और इसके बनाने की विधि भी ऊपर की ही भाँति है। आलू से कृत्रिम साबूदाना बनाने की विधि निम्न प्रकार है —

आलू के गीले स्टार्च को पिडिका या टिक्की (cake) के रूप मे लेकर धातु के साँचो मे डाला जाता है जिनकी पेंदी मे महीन गोल छेद होते है। फिर ऊपर से दबाव डाला जाता है जिससे स्टार्च साँचो के छेदो से दानो के रूप मे निकलता है। साँचे को बराबर हिलाते रहते है जिससे बाहर निकले स्टार्च के दाने परस्पर जुटने न पाये और

पृथक्-पृथक् रहे। इन दानो को फिर छिछले गोल बर्तनो मे फैला कर बर्तनो को गोलाई से घुमाया जाता है। बर्तनो के गोलाई से चक्कर करने से दाने भी गोल हो जाते हैं। आरम्भ मे थोडा-सा सूखा स्टार्च-चूर्ण भी दानो के चारो ओर बर्तन मे डाल दिया जाता है। सूखा स्टार्च गीले दानो के चारो ओर लिपट जाता है और दानो को परस्पर जुट कर चिपकने नही देता। वास्तविक साबूदाने से मिलता-जुलता बनाने के लिए इन दानो को अन्त मे तवे पर थोडा भूना जाता है जिससे ये वास्तविक साबूदाने की भाँति हलके भूरे रग के हो जाते है।

साबूदाना जावा के निवासियो का मुख्य भोजन है।

टैपियोका स्टार्च (Tapıoca Starch)

टैपियोका पौधे के कन्द से स्टार्च प्राप्त किया जाता है। इस पौधे की कई जातियाँ है जिनमे मख्य रूप से दो जातियो, मैनीहाट यूटीलीसीमा (Manıhot utılıssıma) और मैनीहाट पामेटा (Manıl ot palmata), से ही स्टार्च निकाला जाता है। इनके कन्द लगभग १५-२० सेर तक के होते है और इनमे २०-३० प्रतिशत तक स्टार्च रहता है। ये पौधे ब्राजिल (Brazıl), मैडागास्कर तथा पूर्वी द्वीप-समूह (East Indıes) मे बहुत उगाये जाते है। जावा तथा डच-इण्डोचीन मे टैपियोका स्टार्च बहुत बनाया जाता है जो वहाँ का मुख्य उद्यम है। टैपियोका का पौधा दक्षिण भारत मे भी उगाया जाता है। जावा, डच-इण्डोचीन तथा दक्षिण भारत मे भोजन के रूप मे भी इसका बडी मात्रा मे उपयोग होता है। इसके कन्दो को सुखा कर और पीस कर उसके आटे की रोटियाँ बनायी जाती है। कन्दो मे थोडा सायनिक अम्ल (cyanıc acıd) रहता है जिसके कारण इसमे कुछ कडवापन होता है। किन्तु रोटी बनाने मे अधिकाश सायनिक अम्ल उड कर निकल जाता है। टैपियोका के कन्दो से स्टार्च निकालने मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो पानी स्टार्च निकालने की क्रिया मे इस्तेमाल किया जाय उसमे लोहे के लवणो का कोई अश न रहे, अन्यथा कन्दो मे मौजूद सायनिक अम्ल लोहे के लवणो के साथ अभिक्रिया कर नीले रग का फेरिक-फेरोसायनाइड (ferrıc-ferrocyanıde) यौगिक बनाता है जिसके कारण स्टार्च मे नीलापन आ जाता है।

टैपियोका के कन्दो से स्टार्च प्राप्त करने की विधि निम्न प्रकार है —

कन्दो को धोकर और छीलकर पानी के साथ कुचला और पीसा जाता है जिसके फलस्वरूप एक पतली लेई प्राप्त होती है। धोने और छीलने का काम प्राय हाथ से किया जाता है, किन्तु कुचलने और पीसने के लिए विभिन्न प्रकार की मशीनो का प्रयोग किया जाता है। कन्दो के पीसने के बाद जो लेई प्राप्त होती है उसे ताँबे की चलनियो

के ऊपर पहुँचाया जाता है। ऐसा यान्त्रिक प्रबन्ध किया जाता है कि फुहारे द्वारा पानी लेई के ऊपर बराबर गिरता रहे और बेलनो द्वारा लेई मथी जाती रहे। इस प्रकार पानी की उपस्थिति मे बेलनो द्वारा मथे जाने पर लेई का समस्त स्टार्च पानी के साथ एक सफेद पतला निलम्बन बनाता है जो चलनी के भीतर से छन कर बाहर निकल जाता है और रेशे तथा छिलके चलनी की जाली के ऊपर रह जाते हैं। इस स्टार्च-निलम्बन को स्टार्च-दुग्ध कहते हैं। स्टार्च-दुग्ध को फिर अध साद टकियो मे भर कर शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च पर्त के रूप मे तली मे धीरे-धीरे बैठ जाता है और पानी अधिपृष्ठ द्रव के रूप मे पृथक् हो जाता है। ऊपर से पानी को निथार कर फेक दिया जाता है। तली मे बैठे स्टार्च को एक-दो बार पानी से फिर धो लिया जाता है। प्रत्येक बार के धोवन को ऊपर की भॉति निथार कर निकाल दिया जाता है। अन्तिम बार धोते समय पानी मे थोडा सोडियम बाइ-सल्फाइट मिला दिया जाता है। बाइ-सल्फाइट स्टार्च के रग को विरजित कर देता है और स्टार्च स्वच्छ एव अधिक सफेद प्राप्त होता है। इस प्रकार शोधन करने के बाद स्टार्च को धीमी आँच पर गरम किया जाता है जिससे स्टार्च मे मौजूद हाइड्रोसायनिक अम्ल वाष्पित होकर निकल जाय। अन्त मे सैगो स्टार्च की भॉति ही। या तो इसे पुन गीला कर इसके दाने बना लिये जाते है या सुखा कर और पीस कर चूर्ण रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। दानो या चूर्ण को फिर पैकटो तथा डब्बो मे भर लिया जाता है।

जावा के कुछ स्थानो मे टैपियोका के कन्दो को काट और सुखा कर और फिर पीस कर आटे के रूप मे कर लिया जाता है। इस आटे को फिर थैलो मे भर कर विदेशो मे स्टार्च बनाने के लिए भेज दिया जाता है, जहाँ इससे स्टार्च ऊपर बतलायी विधि द्वारा प्राप्त किया जाता है।

अरारोट (Arrowroot)

अरारोट पश्चिमी द्वीपपुज मे बहुत बनाया जाता है और बडी अच्छी जाति का स्टार्च है। यह मुख्य रूप से मैरण्टा एरण्डिनेसी (Maranta arundinaceae) नामक पौधे के प्रकन्द (rhizome) से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकन्द मे लगभग ३० प्रतिशत तक स्टार्च रहता है। इसी वर्ग के दूसरे पौधे, मैरण्टा इण्डिका (Maranta indica), मैरण्टा नोबीलिस (M. nobilis) तथा मैरण्टा रैमोसिसीमा (M ramosisima) के प्रकन्दो से भी अरारोट थोडी मात्राओ मे प्राप्त किया जाता है।

ऊपर बतलाये प्रकन्दो से अरारोट निम्न विधि से प्राप्त किया जाता है — प्रकन्द बडे लम्बे और मोटे होते है। इन्हे पहले पानी मे भिगो कर खूब साफ किया

जाता है जिससे इनमे चिपकी सब मिट्टी निकल जाय। फिर चाकू द्वारा छील कर ऊपर का छिलका निकाल दिया जाता है। छिलके मे एक रेजिन (resin) पदार्थ रहता है और यदि छिलका ठीक से नही निकाला जाता और इसका कुछ अश रह जाता है तो छिलके मे मौजूद रेजिन के कारण प्राप्त स्टार्च का रग पीला या मटमैला रहता है। इसके साथ ही रेजिन की उपस्थिति से अरारोट का स्वाद भी खराब रहता है। छीलने के बाद प्रकन्द को बेलन-चक्कियो (roller mills) मे या खुरचने की चक्कियो (scraping mills) मे भेजा जाता है जहाँ इन्हे कुचल कर या खुरच कर छोटे-छोटे टुकडो मे कर लिया जाता है जो पानी के साथ मिल कर लुगदी (pulp) के रूप मे हो जाते है। इस लुगदी को फिर एक ऐसी चक्की मे भेजा जाता है जिसमे आरी की तरह के ब्लेड लगे रहते हे जो प्रकन्द की कोशिकाओ को फाड देते है। कोशिकाओ के फट जाने से इनमे भरा स्टार्च मुक्त होकर बाहर निकल आता है। इन्ही चक्कियो मे हथौडे भी लगे रहते है जो लुगदी को साथ ही पीट कर पतली लेई के रूप मे परिणत कर देते है। इस लेई को टैपियोका स्टार्च मे बतलायी विधि के अनुसार ही ताँबे की जाली के ऊपर पानी से मथ कर धोया जाता है जिससे सब स्टार्च जलीय निलम्बन के रूप मे छन कर जाली से बाहर निकल आता है और प्रकन्द के रेशे तथा टुकडे जाली के ऊपर अवशेष के रूप मे रह जाते है। इस प्रकार जो स्टार्च-निलम्बन (जिसे स्टार्च-दुग्ध कहते है) प्राप्त होता है उसे महीन कपडे से छान कर उसमे उपस्थित महीन रेशे तथा अन्य छोटे टुकडे निकाल दिये जाते है। छने स्टार्च-दुग्ध को फिर अवसाद टकियो मे भर कर शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च पर्तो के रूप मे धीरे-धीरे तली मे बैठ जाता है और पानी अधिपृष्ठ द्रव के रूप मे पृथक् हो जाता है। पानी को ऊपर से निथार कर फेक दिया जाता है। तली मे बैठे स्टार्च को फिर स्वच्छ जल से कई बार धोया जाता है। अन्त मे धुले शुद्ध स्टार्च को ताँबे की बडी-बडी चद्दरो पर फैला कर हवा मे सूखने के लिए छोड दिया जाता है। सूखते समय स्टार्च पर एक महीन कपडा ढक दिया जाता है जिससे धूल तथा कूडा उड कर स्टार्च मे न मिलने पाये। इस प्रकार वायु मे सुखाये गये अरारोट मे लगभग १२-१४ प्रतिशत पानी रहता है। अधिकतर अरारोट इसी अवस्था मे बाजारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है, किन्तु यदि इसका सब पानी सुखाना होता है तो इसे मन्द आँच पर धीमी गति से सुखाते हैं। सुखाने के लिए विभिन्न प्रकार के शोषको का उपयोग विभिन्न कारखानो मे अपनी सुविधानुसार किया जाता है।

प्रकन्दो से उनके भार के अनुपात मे लगभग २०-२५ प्रतिशत अरारोट स्टार्च प्राप्त होता है।

मकई का स्टार्च (Maize Starch)

मकई का स्टार्च अमेरिका मे सबसे अधिक बनाया जाता है। भारतवर्ष मे भी मकई से ही स्टार्च मुख्य रूप से प्राप्त किया जाता है। अमेरिका के मध्य तथा दक्षिणी भाग मे मकई की खेती बहुत होती है और इस कारण इस क्षेत्र मे मकई का स्टार्च बनाने के अनेक कारखाने स्थित है। इतने कारखाने होने पर भी अमेरिका मे मकई की कुल उपज का केवल तीन प्रतिशत ही स्टार्च अथवा स्टार्च के व्युत्पन्न बनाने के काम मे आता है, शेष मकई जानवरो को चारे के रूप मे खिला दी जाती है। अमेरिका मे स्टार्च बनाने वाले सभी कारखानो ने अपनी-अपनी अनुसन्धान प्रयोगशालाएँ भी स्थापित कर रखी है जहाँ स्टार्च बनाने, उसके उपयोग तथा उससे सम्बन्धित अन्य समस्याओं पर खोज का कार्य होता रहता है। इन खोजो के फलस्वरूप स्टार्च के उद्यम मे अमेरिका मे बडी उन्नति हुई है।

मकई का संग्रह—मकई का दाना जब बिल्कुल पक जाता है तब बहुत समय तक बिना खराब हुए रखा जा सकता है। मकई को सगृहीत कर रखने मे यह ध्यान रखा जाता है कि जिस स्थान मे यह सगृहीत रखी जाय वहाँ नमी न हो। स्थान का सूखा होना बहुत आवश्यक है। पके दाने मे जल की मात्रा १५-१८ प्रतिशत तक होती है। सूखे स्थानो मे सगृहीत रखने पर जल की मात्रा घटकर १० प्रतिशत तक हो जाती है। यदि मकई मे जल की मात्रा १८ प्रतिशत से अधिक रहती है तो मकई के दानो मे मौजूद एजाइम क्रियाशील हो जाते है और मकई के स्टार्च पर क्रिया करना आरम्भ कर देते है, जिसके फलस्वरूप स्टार्च विच्छेदित होता रहता है और इसकी मात्रा मकई मे क्रमश घटती रहती है। यदि नमी कुछ अधिक होती है तो मकई के दानो पर एक फफूंद आक्रमण करता है जिसके कारण दाने बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते है। यह फफूंद वृद्धि कर अपना कवक जाल (mycelium) दानो पर फैलाता है। कवक जाल के तन्तु दानो के छिलके को फोडकर भ्रूण वाले सिरे की तरफ से अन्दर घुसते है। ये पहले भ्रूण मे एकत्रित खाद्य द्रव्य को खाते है और फिर भ्रूणपोष (एण्डोस्पर्म, endosperm) के भोजन द्रव्य को अपना आहार बनाते है। इस प्रकार फफूँद द्वारा मकई का स्टार्च धीरे-धीरे खाया जाकर समाप्त हो जाता है। अत फफूंद तथा एजाइम से मकई की रक्षा करने के लिए यह आवश्यक है कि भण्डार-गृह का स्थान, जहाँ मकई सगृहीत रखी गयी है, एकदम सूखा हो।

मकई का संगठन—मकई के दानो का औसत सगठन निम्न भाँति रहता है —

स्टार्च	.	५५ प्रतिशत
शर्करा तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट	..	१५ प्रतिशत

प्रोटीन	..	१० ५ प्रतिशत
वसा	..	५ ० प्रतिशत
खनिज द्रव्य	..	२ ५ प्रतिशत
जल	..	१२ ० प्रतिशत

मकई के दाने मे चार भाग होते है—(१) बाहरी पतला छिलका जो अन्य भागो को ढके रहता है, (२) भ्रूण या अँखुआ (embryo) जो दाने के एक सिरे पर स्थित रहता है और उगने पर बीजाकुर (seedling) को जन्म देता है, (३) भ्रूणपोष (endosperm) की ऊपर की पर्त जो भ्रूण वाले सिरे के विरुद्ध तरफ के सिरे मे रहती है। इसका रग कुछ हलका होता है, (४) भ्रूणपोष की नीचे की दूसरी पर्त। यह पर्त भ्रूण के पास तथा ऊपर की भ्रूणपोष की पर्त के नीचे रहती है। इसका रग ऊपर की पर्त की अपेक्षा कुछ अधिक गहरा रहता है। भ्रूणपोष मे ही स्टार्च सगृहीत रहता है। स्टार्च के अतिरिक्त भ्रूणपोष की नीचे की पर्त मे ग्लूटेन (प्रोटीन) पर्याप्त मात्रा मे रहता है, किन्तु ऊपर की पर्त मे प्रोटीन बहुत कम रहती है। ऊपर की पर्त मे स्टार्च अपेक्षाकृत बडे कणो के रूप में स्थित रहता है। इस पर्त मे प्रोटीन की मात्रा भी बहुत कम होती है, इस कारण स्टार्च-कणो को पृथक् करने मे विशेष कठिनाई नही पडती। नीचे की भ्रूणपोष की पर्त में स्टार्च के कण बहुत छोटे होते हैं। ये कण यहाँ बडी मात्रा मे उपस्थित अविलेय ग्लूटेन द्वारा परस्पर घने रूप मे चिपके रहते है और सरलता से पृथक् नही होते। अत भ्रूणपोष की इस पर्त के स्टार्च को प्राप्त करने के लिए पहले यहाँ उपस्थित प्रोटीन को मुलायम कर स्टार्च-कणो को उससे पृथक् करने की आवश्यकता होती है और इसमे काफी कठिनाई होती है।
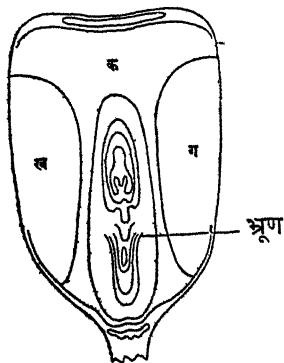
चित्र ३—मकई का दाना (क, ख, ग–भ्रूणपोष)

छिलके मे अविलेय सेल्यूलोस तथा कुछ अन्य कार्बोहाइड्रेट और खनिज द्रव्य रहते हैं। पानी मे भिगोने से छिलका मुलायम पड जाता है और फिर दाने के ऊपर से सरलता से निकाला जा सकता है।

भ्रूण के पदार्थों मे मुख्य रूप से तेल रहता है।

मकई के दानो मे मौजूद प्रोटीन मुख्य दो होती है—ज़ीन (zein) और ज़ीनिन (zeanin)। सूक्ष्म मात्राओ मे प्राय ऐल्ब्यूमिन (albumin) भी रहता है। ज़ीन और ज़ीनिन दोनो ही पानी मे अविलेय है, किन्तु खनिज अम्लो तथा दाहक क्षारो मे विलेय है। जीन जलीय ऐल्कोहल मे भी विलेय है। ऐल्ब्यूमिन पानी मे थोडा विलेय होता है।

मकई के तेल मे मुख्य रूप से पामीटिक, ओलीक तथा लिनोलीक (palmitic, oleic and linoleic) अम्लो के ग्लिसराइड रहते हैं। मकई मे पाये जाने वाले खनिज द्रव्य मे फास्फोरस तत्त्व सबसे अधिक रहता है, इसके बाद पोटैसियम और मैग्नीशियम की मात्रा रहती है। इनके अतिरिक्त कैल्सियम, सोडियम, सिलीकन, क्लोरीन, लोहा तथा गन्धक तत्त्व भी सूक्ष्म मात्राओं मे रहते है। फास्फोरस मुख्य रूप से फाइटिक अम्ल (phytic acid) के लवण के रूप मे रहता है। ये लवण तनु खनिज अम्लो मे विलेय होते है।

मकई के दानो को कूच कर इसे पानी के साथ निष्कर्षित करने पर मकई के विलेय पदार्थ विलयन के रूप मे अलग निकल आते है। इन विलेय पदार्थों मे मुख्य रूप से सरल शर्कराएँ (पेंटोस) रहती है। मकई के दानो मे जो एंजाइम रहते है वे इन शर्कराओ को किण्वित कर लैक्टिक अम्ल मे परिणत करने का गुण रखते हैं। यह अम्ल फाइटेट लवणो को विच्छेदित कर फास्फेट और आइनोसिटाल (inositol) मे परिवर्तित कर देता है और प्रोटीन को विघटित कर क्रमश सरल पेपटाइड, ऐमिनो अम्ल और ऐमोनिया उत्पन्न करता है।

मकई से स्टार्च प्राप्त करना—मकई के दानो से स्टार्च प्राप्त करने मे निम्न क्रियाएँ की जाती है —

मकई के बीजों को सफाई और आमज्जन (Cleaning and steeping of maize seeds)—मकई के दानो मे भूसी, पत्ती तथा मिट्टी, ककड आदि मिले रहते है। इन अपद्रव्यो को सबसे पहले निकालना आवश्यक है। सफाई की क्रिया मे सर्वप्रथम दाना को ओसाई-मिल (winnowing mills) मे पहुँचाया जाता है। यहाँ तेज़ हवा की धारा प्रवाहित की जाती है जो धूल, भूसी, मकई के हलके सूक्ष्म टूटे कण तथा अन्य हलके अपद्रव्यो को उडा कर दानो के ढेर से पृथक् दूसरे स्थान मे एकत्रित कर देती है। फिर बडे चलनो द्वारा दानो को चाला जाता है जिससे बडी ककडियाँ और कोयले के टकडे पृथक् हो जाते है। अनाज को एक स्थान से दूसरे स्थान मे ट्रको आदि मे भर कर भेजने मे प्राय लोहे के टुकडे भी दानों मे मिल जाते हैं। इन्हे चुम्बक की सहायता से अलग कर लिया जाता है।

भूसी, ककड आदि की सफाई के बाद दानो को सीमेण्ट के बने बडे-बडे कुशूलों (धान्यकोष्ठको, bins) मे भर कर सगृहीत कर दिया जाता है। प्रत्येक कारखाने मे इतनी मकई कुशूलो मे सगृहीत रखी जाती है कि कम से कम एक महीने तक फैक्टरी चलायी जा सके। यदि कारखाने मे आयी मकई कुछ नम रहती है तो इसे कुशूलो मे भरने के पहले आवश्यक मात्रा तक सुखा भी लिया जाता है। यदि कारखाने मे अनाज को सुखाने की ठीक व्यवस्था नही रहती तो इस नम अनाज को ही सबसे पहले स्टार्च प्राप्त करने के लिए उपयोग मे ले आते है।

कुशूलो से सम्बन्धित निरन्त पट्टा वाहक (endless belt conveyers) रहते है जिनके द्वारा अनाज कुशूलो से ऐसे स्थान मे पहुँचाया जाता है जहाँ यह तोला जाकर बडी-बडी खाद्यधानियो (सस्यपात्रों, hoppers) मे भर दिया जाता है। खाद्यधानियो मे लगभग ६०° से० ग्रे० ताप का गरम पानी इतना भरा जाता है कि मकई के दाने डूबे रहे। साधारणत तीस घण्टो तक मकई को गरम पानी मे भीगने दिया जाता है। इस क्रिया को **आमज्जन** (steeping) कहते है। आमज्जन का निम्न कार्य होता है —

(१) आमज्जन से दानो के छिलके मुलायम हो जाते है जिससे छिलका सरलता से अलग हो जाता है और फिर दानो मे मौजूद प्रोटीन, स्टार्च आदि भी सरलता से पृथक् किये जा सकते है।

(२) आमज्जन की क्रिया द्वारा मकई मे मौजूद विलेय पदार्थ दानो से निकल कर पानी मे घुल जाते है।

(३) प्राय खेत से विभिन्न जीवाणु, फफूंद तथा अन्य अणुजीव दानो के साथ चिपक कर मकई मे पहुँच जाते है। आमज्जन मे ये अणुजीव अधिकाश मात्रा मे निकल जाते है।

(४) दानो मे मिट्टी तथा भूसी आदि जो अपद्रव्य रहते हैं वे निकल जाते है और दानो की पूरी सफाई हो जाती है।

आमज्जन-क्रिया मे मकई के दाने धीमी गति से पानी सोखते है और फूल कर मुलायम हो जाते है। ये लगभग ३०-४० घण्टो मे पूरा पानी सोख लेते है और इस समय इनमे ३५-४० प्रतिशत तक शोषित जल रहता है।

मकई के दानो से स्टार्च के पृथक् होने की क्रिया की सफलता बहुत अश मे इस बात पर निर्भर करती है कि आरम्भ मे मकई के दानो का आमज्जन ठीक से किया गया था या नही। यदि आमज्जन की क्रिया ठीक ढंग से, ठीक समय तक तथा उपयुक्त विद्युद्विश्लेष्य (electrloytes) की उचित मात्रा की उपस्थिति मे नहीं की जाती तो

यद्यपि स्टार्च-कण प्रोटीन के जाल मे तो ढीले हो जाते है पर तलछटीकरण मे प्रोटीन-कणो से पूर्ण रूप से पृथक् नही हो पाते।

ऊपर वर्णन की गयी विधि को स्टार्च-उद्योग मे गीली विधि (wet met' od) कहते हैं। इस विधि मे एक बडा दोष यह है कि मकई से स्टार्च प्राप्त करने की क्रिया मे मकई पर जीवाणु तथा फफूँदो के आक्रमण का भय रहता है। जीवाणुओ मे लैक्टिक अम्ल जीवाणु तथा फफूँदो मे यीस्ट का आक्रमण विशेष रूप से होता है। जिस पानी मे मकई के दाने आमज्जन के लिए भिगोये जाते है उस पानी मे ही थोडे समय बाद लैक्टिक अम्ल जीवाणु पहुँच जाते है। पिसाई के समय जब ताप कम रहता है तब यीस्ट तथा इसकी तरह के अन्य फफूँद उत्पन्न हो जाते है। इनके आक्रमण करने और क्रियाशील होने पर स्टार्च तथा प्रोटीन का बहुत-सा अश किण्वन द्वारा अन्य पदार्थो मे परिणत हो जाता है, फलस्वरूप स्टार्च कम प्राप्त होता है। साथ ही एक दूसरी कठिनाई यह होती है कि किण्वन मे उत्पन्न हुए पदार्थ स्टार्च-कणो के शीघ्र पृथक् होने मे बाधा उपस्थित करते है। इन अणुजीवो का आक्रमण तथा उनकी वृद्धि रोकने के लिए विभिन्न रासायनिक द्रव्यो का उपयोग किया जाता है। इन द्रव्यो मे सल्फर डाइ-आक्साइड (SO_2) का उपयोग सबसे अधिक होता है, क्योकि यह सस्ता पडता है और इसमे अणुजीवो को शीघ्र नष्ट करने का गुण होता है। यदि सल्फर डाइ-आक्साइड अथवा अन्य कोई अणुजीवनाशक पदार्थ का उपयोग नही किया जाता तो लैक्टिक अम्ल जीवाणु तथा फफूँदो की वृद्धि शीघ्र होती है। ये दोनो विलेय शर्करा पदार्थो का किण्वन करते है जिसके फलस्वरूप लैक्टिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, ऐलकोहल तथा कुछ अन्य पदार्थ उत्पन्न होते है। इनके द्वारा कुछ प्रोटीन पदार्थ का भी विघटन होता है जिसके फलस्वरूप पेपटाइड तथा ऐमिनो अम्ल उत्पन्न होते है। अणुजीवो की मकई के पदार्थ पर अधिक क्रिया होने से, जैसा ऊपर बतलाया गया है, स्टार्च की प्रतिशत मात्रा कम प्राप्त होती है और साथ ही इसके पृथक् करने मे भी कठिनाई उपस्थित होती है। किन्तु अणुजीवो की थोडी क्रिया मकई से स्टार्च सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए आवश्यक भी है। आमज्जन-क्रिया के लिए जिस पानी मे मकई के दाने भिगोये जाते है उसमे दानो की थोडी प्रोटीन घुल कर मिल जाती है। इसमे घुलित पदार्थो को प्राप्त करने के लिए जब इस आमज्जक जल को वाष्पित किया जाता है तो वाष्पको (evaporatoıs) की दीवारो पर तथा भाप के नलो पर यह घुली प्रोटीन स्कन्दित (coagulated) होकर एक कडी पर्त के रूप मे जम जाती है। यदि आरम्भ मे इस प्रोटीन का अणुजीवो द्वारा थोडा विघटन करा दिया जाता है तो प्रोटीन ऐसे पदार्थो मे परिवर्तित हो जाती है जिनमे स्कदित होने का गुण नही रहता और फिर इसकी कोई कडी पपडी वाष्पको की दीवारो पर जमने

नही पाती। किन्तु इस विघटन की क्रिया पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है, और इसे एक सीमा के बाहर नही होने दिया जाता। यदि इस विघटन पर कोई नियन्त्रण नही रखा जाता तो अणुजीवो द्वारा प्रोटीन का यह विघटन बराबर होता रहता है और प्रोटीन-अणु क्रम से सरल अणु मे विच्छेदित होता हुआ अन्त मे ऐमिनो अम्ल तथा कुछ सरल नाइट्रोजन-युक्त भास्मिक पदार्थ उत्पन्न करता है। ये पदार्थ स्टार्च मे मिश्रित हो जाते है और इनकी उपस्थिति के कारण अन्त मे स्टार्च को तलछटीकरण द्वारा पृथक् करने मे कठिनाई होती है। ये नाइट्रोजन वाले पदार्थ स्टार्च-कणो पर मजबूती से अधिशोषित हो जाते है और शीघ्र निकलते नही। अत जो स्टार्च प्राप्त होता है वह भी बहुत शुद्ध नही रहता और उसमे नाइट्रोजन-युक्त यौगिक सूक्ष्म मात्राओ मे अधिशोषित अवस्था मे रहते है। ऐसे अशुद्ध स्टार्च से जब शर्करा बनायी जाती है तो स्टार्च मे मौजूद ये नाइट्रोजन यौगिक कुछ रगीन पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनके कारण शर्करा मे रग रहता है और इसका मूल्य बाजारो मे अच्छा नही मिलता।

आरम्भ मे थोडा लैक्टिक अम्ल का बनना भी स्टार्च पृथक् करने मे सहायक होता है। लैक्टिक अम्ल आमज्जन-क्रिया मे मकई के ग्लूटेन को मुलायम कर देता है। ग्लूटेन के मुलायम हो जाने से इसके द्वारा बन्धित स्टार्च-कणो के बन्धन भी ढीले हो जाते है और फलस्वरूप स्टार्च का पृथक्करण सरल हो जाता है। आमज्जन की क्रिया मे मकई के दानो मे मौजूद कुछ मैग्नीशियम तथा कैल्सियम के लवण घुलकर पानी मे मिल जाते है। लैक्टिक अम्ल इन लवणो को भी क्रमश मैग्नीशियम और कैल्सियम लैक्टेट मे बदल देता है जो विलेय होने के कारण पानी मे घुले रहते है। लैक्टिक अम्ल की अनुपस्थिति मे मैग्नीशियम और कैल्सियम के लवण कम विलेय होते है और वाष्पको तथा भाप के नलो पर वाष्पन के समय कडी पपडी के रूप मे जम जाते है और सरलता से निकाले नही जा सकते। जहाँ एक ओर लैक्टिक अम्ल की थोडी मात्रा लाभप्रद है, वहाँ दूसरी ओर लैक्टिक अम्ल की अधिक मात्रा का रहना हानिप्रद है। लैक्टिक अम्ल के अधिक रहने पर तलछटीकरण की क्रिया मे स्टार्च का पृथक्करण बहुत धीमी गति से होता है और बहुत समय लगता है।

आरम्भ मे जब थोडा किण्वन होता है तो मकई का फाइटिन (phytin) पदार्थ भी विच्छेदित होकर विलेय फास्फेट उत्पन्न करता है। फास्फेट की उपस्थिति मे तलछटीकरण की गति तीव्र हो जाती है, अत. थोडा फास्फेट का रहना भी लाभप्रद है।

विभिन्न रसायनज्ञो ने मकई से स्टार्च प्राप्त करने मे सल्फर डाइ-आक्साइड के उपयोग का इसके अणुजीवनाशक गुण की दृष्टि से अध्ययन किया है। यह ज्ञात हुआ है कि मुक्त सल्फर डाइ-आक्साइड या सल्फ्यूरस अम्ल ० ०२ से ० ०३ प्रतिशत मात्रा में

रहने पर अणुजीवो की वृद्धि को रोक देता है। अणुजीवो की वृद्धि रोकने की इसकी शक्ति ३०° से ५०° सें० ग्रे० ताप पर बहुत बढ जाती है। आमज्जक जल मे जितना सल्फर डाइ-आक्साइड आरम्भ मे मिलाया जाता है वह सब मुक्त रूप मे नही रहता। उसका अधिक भाग बाइसल्फाइट लवण मे परिवर्तित हो जाता है जो कीटोस शर्करा तथा अन्य शर्कराओ के साथ योगशील यौगिक बना कर उस रूप मे बन्धित रहता है। इस बन्धित अवस्था मे सल्फर डाइ-आक्साइड अणुजीवो को नष्ट करने की शक्ति नही रखता। इस प्रकार सल्फर डाइ-आक्साइड की पर्याप्त मात्रा का उपयोग करना पडता है, जिससे बन्धित रूप मे परिवर्तित होने के बाद भी इतनी सल्फर डाइ-आक्साइड मुक्त रूप मे बच रहे कि अणुजीवो की वृद्धि को रोक सके।

सल्फर डाइ-आक्साइड की उपयोगिता का अध्ययन आमज्जक (steeping agent) के रूप मे भी किया गया है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, मकई मे स्टार्च-कण प्रोटीन के जाल मे अन्दर घुसे रहते है और बडी मजबूती से वन्धित रहते है। आमज्जन-क्रिया मे यह जाल पानी शोषित कर फूलता है और फलस्वरूप प्रोटीन जलयोजित हो जाती है। जलयोजित अवस्था मे होने पर प्रोटीन नन्हे-नन्हे गोल कणो मे परिवर्तित हो जाती है। साथ ही प्रोटीन-कणो की द्विवर्तनता (birefringence) नष्ट हो जाती है और इसका थोडा आकीर्णन (dispersion) हो जाता है। इस आकीर्णन के फलस्वरूप प्रोटीन के जाल के वन्ध ढीले हो जाते है और जाल विच्छिन्न हो जाता है। फलस्वरूप स्टार्च-कण सरलता से पृथक् हो जाते है। यदि आमज्जक जल मे थोडा सल्फर डाइ-आक्साइड रहता है तो प्रोटीन के आकीर्णन की क्रिया अधिक तीव्रता से होती है और फलस्वरूप स्टार्च का पृथक्करण भी अधिक सफलतापूर्वक होता है। प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि शुद्ध आसुत जल में ५०° सें० ग्रे० ताप पर मकई के दानो को २४ घण्टे तक आमज्जन के लिए रखने पर ६४ प्रतिशत स्टार्च प्राप्त होता है, किन्तु यदि आमज्जक जल मे ०.१ से ०.३ प्रतिशत तक सल्फर डाइ-आक्साइड घुला दी जाय तो ९० प्रतिशत तक स्टार्च प्राप्त होता है। ऐसीटिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल सल्फर डाइ-आक्साइड की तुलना मे विशेष लाभ-प्रद नही है। किन्तु सल्फर डाइ-आक्साइड के साथ थोडा लैक्टिक अम्ल भी आमज्जक जल मे मिला देने से आमज्जन मे मकई के दाने अधिक शीघ्र मुलायम हो जाते है।

सल्फर डाइ-आक्साइड यद्यपि अच्छा आमज्जक है, फिर भी इसके उपयोग मे कई दोष है। सब से मुख्य दोष यह है कि जिस ताप पर यह अधिक क्रियाशील होता है उस ताप पर यह बहुत वाष्पशील भी है जिसके कारण यह जलीय विलयन से उडकर निकल जाता है। साथ ही इसका जलीय विलयन एक तीव्र अम्ल होने के कारण कारखाने

के उपकरणो पर बहुत सक्षारक (corrosive) प्रभाव डालता है जिससे उपकरण शीघ्र नष्ट हो जाते है। सल्फ्यूरस अम्ल मे एक दोष यह भी है कि यह स्टार्च का थोडा जल-विश्लेषण कर इसके अणु को कुछ सरल बना देता है, जिसके कारण इस स्टार्च से लेई बनाने पर लेई की श्यानता (viscosity) बहुत कम रहती है।

सल्फर डाइ-आक्साइड के ऊपर बतलाये दोषो के कारण इसका उपयोग बहुत सीमित तथा नियन्त्रित रूप मे ही होता है। इसके स्थान मे अन्य आमज्जक के उपयोग के सम्बन्ध मे बहुत खोज की गयी है, किन्तु किसी एक आमज्जक के सम्बन्ध मे सब का मत एक नही है। कुछ रसायनज्ञ किसी एक आमज्जक को अच्छा बतलाते है और कुछ किसी दूसरे को। उदाहरणार्थ, एक रसायनज्ञ ने बतलाया है कि सोडियम बेंजोएट की उपस्थिति मे सल्फर डाइ-आक्साइड का उपयोग करने से अच्छा फल प्राप्त होता है और अकेले सल्फर डाइ-आक्साइड के उपयोग किये जाने मे जो दोष रहते है वे नही रहते। मॉनोक्लोरोबेंजीन और आर्थो-क्लोरोटॉल्युईन का उपयोग भी इस कार्य के लिए सन्तोषप्रद सिद्ध हुआ है और इनके उपयोग का पेटेण्ट भी कराया गया है। कुछ लोगो ने फार्मैल्डीहाइड तथा कुछ अन्य ने ओज़ोन के उपयोग का सुझाव दिया है।

सल्फर डाइ-आक्साइड के उपयोग के बहुत पहले सन् १८५८ मे स्ट्रैटन (Stratton) नामक व्यक्ति ने क्षारीय आमज्जन की विधि ज्ञात की थी और बहुत वर्षों तक इस विधि का प्रचलन रहा, किन्तु बाद मे सल्फर डाइ-आक्साइड का उपयोग ज्ञात हो जाने पर क्षारीय विधि समाप्त हो गयी। अब पुन इस विधि की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित हुआ है।

आमज्जन-क्रिया कई प्रकार से की जाती है। सबसे सरल साधारण विधि में एक बडे लकडी के कुण्ड (vat) मे लगभग आधी ऊँचाई तक मकई के दानों को भर कर उसमे इतना गरम पानी भर दिया जाता है कि मकई के दाने पानी मे डूबे रहे। इस पानी मे उपयुक्त आमज्जक, जैसे सल्फर डाइ-आक्साइड, उचित मात्रा में डाल दिया जाता है। आमज्जक जल का ताप लगभग ५०° से० ग्रे० रखा जाता है और ४० से ४८ घण्टे तक मकई के दाने पानी मे रखे जाते है। इसके बाद आमज्जक जल को ऊपर से निथार कर निकाल दिया जाता है और मकई को चक्की मे भेज दिया जाता है। इस विधि का सबसे बडा दोष यह है कि इसमे अपेक्षाकृत बहुत अधिक पानी मकई के दानो को मुलायम करने तथा उनमे मौजूद विलेय पदार्थों को घुला कर निकालने के लिए लगता है। किन्तु इसके साथ ही इस विधि मे अन्य विधियो की तुलना मे कुछ अच्छाइयाँ भी है। इस विधि में एक कुण्ड मे ही आमज्जन की क्रिया कराने से एक

बडा लाभ यह है कि अणुजीवनाशक पदार्थ ऐसे स्थान मे डाला जाता है जहाँ इसका प्रभाव अधिकतम पडता है। साधारणत जीवाणु तथा फफूँद मकई के दानो के साथ बाहर से तथा कारखाने के पानी के साथ, जो आमज्जन के लिए प्रयुक्त किया जाता है, आमज्जक कुण्ड मे पहुँचते है। इस विधि मे आमज्जक कुण्ड मे ही आमज्जक मिलाने से सीधे इसका पूरा प्रभाव जीवाणुओ और फफूँदो पर पडता है जिसके फलस्वरूप आमज्जक की कम मात्रा से ही काम चल जाता है और जीवाणुओ तथा फफूँदो द्वारा मकई के पदार्थ को किण्वित करने की क्रिया नियन्त्रित की जा सकती है।

आमज्जक की कम मात्रा के इस्तेमाल होने से एक बडा लाभ निम्न होता है —

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, सल्फर डाइ-आक्साइड या अन्य आम्लिक आमज्जक स्टार्च का जल-विश्लेषण भी करते है जिसके कारण स्टार्च की कम मात्रा प्राप्त होती है। अम्ल की जितनी अधिक मात्रा होगी स्टार्च का जल-विश्लेषण भी स्वभावत उतना ही अधिक होगा। ऊपर की एक-कुण्ड की विधि मे आमज्जक की अपेक्षाकृत कम मात्रा इस्तेमाल की जाती है, अत स्टार्च का जल-विश्लेषण विशेष नही हो पाता।

आमज्जक जल मे जितना अम्ल डाला जाता है वास्तव मे दानो के भीतर हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता उसके अनुपात से कम रहती है। मकई के दानो के भीतर फास्फेट और फाइटिन रहते है। ये प्रतिरोधक (buffers) का काम करते है। अत मकई के दाने आमज्जक जल मे से जो अम्ल शोषित करते है उसकी हाइड्रोजन आयन सान्द्रता दानो के भीतर इन प्रतिरोधक पदार्थो द्वारा घटायी जाकर एक सीमा के भीतर नियन्त्रित रहती है। इस प्रकार मकई के दाने के भीतर का स्टार्च जिस विलयन के सम्पर्क मे आता है, उसकी हाइड्रोजन आयन-सान्द्रता इतनी कम रहती है कि स्टार्च पर उसका कोई विशेष जल-विश्लेषक प्रभाव नही पडने पाता और फलस्वरूप स्टार्च की मात्रा मे विशेष कमी नही होती।

मकई के दानो के भीतर के प्रतिरोधक पदार्थ गरम अम्लीय पानी मे विलेय होते है और यदि बहुत अधिक पानी का उपयोग आमज्जन के लिए किया जाता है तो ये बहुत शीघ्र पानी मे घुलकर दानो के भीतर से निकल जाते है। इनके निकल जाने के बाद दानो के भीतर शोषण द्वारा जो विलयन पहुँचता है उसकी हाइड्रोजन आयन-सान्द्रता वही रहती है जो इस विलयन की आरम्भ मे थी। फलस्वरूप दाने के भीतर हाइड्रोजन आयन-सान्द्रता वही रहती है जो आमज्जक जल की रहती है। आमज्जन की कुछ अन्य विधियो मे, विशेष कर प्रतिधारा सिद्धान्त (counter current principle) पर आश्रित विधि मे, दानो के भीतर के प्रतिरोधक पदार्थ अधिक शीघ्र पानी मे घुल कर निकल जाते

है जिससे बाहर के आमज्जक जल की जो अम्लीयता रहती है वही दानो के भीतर की हो जाती है। फलस्वरूप इस अम्लीयता का स्टार्च के जल-विश्लेषण पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पडता है। एक-कुण्ड की विधि मे दाने के अन्दर के प्रतिरोधक पदार्थ इतना शीघ्र नही निकलते और इस कारण दानो के भीतर की अम्लीयता इन पदार्थों के नियन्त्रण के कारण सदा बाहर के आमज्जक जल से कम रहती है। अत. इस विधि से स्टार्च की मात्रा अधिक प्राप्त होती है और यह स्टार्च उत्तम कोटि का भी होता है।

एक-कुण्ड की विधि मे, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, एक बडा दोष यह है कि इसमे पानी का खर्च बहुत अधिक होता है। अत पानी के खर्च को घटाने के लिए आज-कल आमज्जन उन विधियो द्वारा किया जाता है जो प्रतिधारा सिद्धान्त पर आश्रित है। इन विधियो मे पानी निम्न प्रकार से इस्तेमाल किया जाता है —

स्वच्छ ताजा जल स्टार्च को धोकर शुद्ध करने के लिए केवल अन्तिम पद (last stage) मे इस्तेमाल किया जाता है। स्टार्च को धोने के बाद यह धोवन फिर इससे पूर्व की स्टार्च के तलछटीकरण करने की क्रिया मे इस्तेमाल किया जाता है। इसी प्रकार क्रम से अपने पूर्व की क्रिया मे आगे की प्रत्येक क्रिया का धोवन इस्तेमाल होते-होते अन्त मे एक अवशोषण स्तम्भ (absorption tank) मे पहुँचता है जहाँ इसमे सल्फर डाइ-आक्साइड की आवश्यक मात्रा शोषित करा दी जाती है। इसे अब आमज्जन कार्य के लिए आमज्जक कुण्डो मे भेज दिया जाता है। इस रीति से विभिन्न पदो मे इस्तेमाल होकर जब यह पानी आमज्जक कुण्डो मे पहुँचता हे तो इसमे लगभग ४ से १५ ग्राम प्रति लिटर तक विलेय पदार्थ घुले रहते है।

प्रतिधारा आमज्जन की अधिक प्रचलित विधि मे १२-१४ खुले आमज्जक कुण्ड रहते है जो क्रम से पक्ति मे प्रबन्धित रहते है। इस पक्ति के एक सिरे के आमज्जक कुण्ड मे मकई के सूखे दाने भरे रहते है तथा दूसरे सिरे के कुण्ड मे पूरी तरह आमज्जित हुए दाने रहते है। प्रत्येक कुण्ड मे ऐसा प्रबन्ध रहता है कि आमज्जक जल नीचे पेदी से निकल कर नलो मे भ्रमण करता हुआ फिर ऊपर से दूसरे कुण्ड मे गिरता है। इन नलो को भाप द्वारा गरम रखा जाता है। इस रीति से आमज्जक द्रव का ताप आवश्यकता-नुसार रखा जाता है। निश्चित समय तक आमज्जन की क्रिया के होने के बाद प्रत्येक कुण्ड का आमज्जक द्रव क्रम से अपने पूर्व के कुण्ड मे उस दिशा की ओर भरा जाता है जिसमे दाने क्रम से अधिक ताज़े रहते है, अर्थात् बाद मे भरे हुए। इस प्रकार इस विधि मे एकदम ताज़ा पानी उस अन्तिम कुण्ड मे जाता है जिसमे दाने आमज्जन की अन्तिम अवस्था मे रहते हैं और सबसे प्रथम कुण्ड मे, जिसमे एकदम सूखा ताज़ा मकई का दाना भरा रहता है, वह पानी पहुँचता है जो आगे के आमज्जक कुण्डो से होता हुआ आया है।

अत प्रथम आमज्जक कुण्ड के जल मे सबसे अधिक मात्रा मे मकई के विलेय पदार्थ घुले रहते है। इस कुण्ड मे उपयोग होने के बाद इस आमज्जक द्रव को निकाल कर पप द्वारा वाष्पको मे पहुँचाया जाता है जहाँ इसका वाष्पन कर इसमे घुला पदार्थ प्राप्त कर लिया जाता है।

इस विधि का एक सबसे बडा दोष यह है कि जब एक कुण्ड से आमज्जक द्रव दूसरे कुण्ड मे पम्प द्वारा पहुँचाया जाता है तब पहले कुण्ड के दाने कुछ समय के लिए हवा मे खुले पडे रहते है। दानो के इस प्रकार भीगी अवस्था मे खुले रहने से इनमे वायु से जीवाणओ को पहुँचने तथा वहाँ पहुँच कर वृद्धि करने का अवसर मिलता है। दूसरा दोष इस विधि मे यह है कि यदि आमज्जन मे सल्फर डाइ-आक्साइड-जैसे किसी वाष्पशील आमज्जक का उपयोग किया गया है तो इसका बहुत-सा अश आमज्जक द्रव को एक कुण्ड से दूसरे कुण्ड मे पम्प द्वारा पहुँचाने की क्रिया मे उडकर निकल जाता है और इस कारण आमज्जक का काफी मात्रा मे उपयोग करना पडता है जिससे खर्च अधिक पडता है। इसके साथ ही एक कठिनाई यह भी उपस्थित होती है कि सल्फर डाइ-आक्साइड की तरह के जो वाष्पशील आमज्जक उडकर बाहर निकलते है वे वायु मे मिलकर उसे दूषित कर देते है। इन पदार्थो मे सक्षारक और सन्तापक गुण होता है। इनके द्वारा दूषित हुई वायु मे साँस लेने से ये फेफडो मे पहुँच कर हानि पहुँचाते है। अत इन गैसो को बाहर निकालने के लिए आमज्जन गृह मे ऊँचाई पर रोशनदानो का अच्छा प्रबन्ध करना पडता है जिससे ये ऊपर की वायु मे मिल कर उड जायँ। इन सब कामो मे पर्याप्त व्यय करना पडता है जिससे यह विधि महँगी पडती है।

खुले कुण्डो मे आमज्जन करने के दोषो को दूर करने के लिए प्राय बन्द आमज्जक कुण्डो मे आमज्जन किया जाता है। ये बन्द कुण्ड लोहे के बने होते है और ऊपर की ही भाँति पक्ति मे प्रबन्धित रहते है। प्रत्येक कुण्ड की पेंदी से एक नल बगल के दूसरे कुण्ड के मुँह से सम्बन्धित रहता है और इस प्रकार एक सिरे के कुण्ड से आमज्जक द्रव नलो द्वारा बगल के कुण्डो से होता हुआ दूसरे सिरे के कुण्ड तक पहुँच जाता है।

खुली तथा बन्द दोनो प्रकार की आमज्जन विधि से जो स्टार्च प्राप्त होता है वह समान प्रकार का ही होता है। स्टार्च का किस अश तक जल-विश्लेषण हुआ है यह उसकी लेई की श्यानता से ज्ञात किया जाता है। जितना अधिक जल-विश्लेषण होता है उसी के अनुसार श्यानता घट जाती है। जल-विश्लेषण पर नियन्त्रण रखने के लिए सल्फर डाइ-आक्साइड की मात्रा, आमज्जक द्रव के ताप तथा आमज्जन-क्रिया की अवधि पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

मकई के दानो के भीतर मूल अवस्था मे जो स्टार्च रहता है उसकी लेई की

श्यानता स्काट-परीक्षण (Scott test) से १२५ प्राप्त होती है। प्रतिधारा आमज्जन की ऊपर की दोनो विधियो से जो स्टार्च प्राप्त होता है उसकी लेई की श्यानता ९० रहती है। एक-कुड की आमज्जन विधि से समान आमज्जक द्वारा समान अवस्था मे आमज्जन कराने से जो स्टार्च प्राप्त किया जाता है उसकी लेई की श्यानता ११५ रहती है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिधारा आमज्जन विधि मे स्टार्च का जल-विश्लेषण एक-कुड की आमज्जन विधि की अपेक्षा अधिक होता है।

प्रतिधारा आमज्जन विधि मे पानी को भ्रमण कराने तथा आमज्जक को आमज्जक जल मे मिलाने के सम्बन्ध मे कई प्रकार के परिवर्तन इस दृष्टि से किये गये है कि इस विधि के दोषो को कम किया जा सके। इन सब परिवर्तनो मे कार (Kerr) द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध हुआ है। कार की विधि मे केवल तीन आमज्जक कुड एक पक्ति मे प्रबन्धित किये जाते है। एक सिरे पर स्थित पहले कुड मे सूखा मकई का दाना भरा जाता है जो आमज्जन के बाद दूसरे कुड मे भेजा जाता है। दूसरे कुड मे निर्धारित समय तक आमज्जित किये जाने के बाद यहाँ से मकई के दाने तीसरे कुड मे भेजे जाते है और अन्त मे यहाँ कुछ समय तक आमज्जित किये जाने के बाद चक्की मे पिसाई के लिए भेज दिये जाते है। तीसरे (अर्थात् अन्तिम) कुड मे आमज्जक जल डाल कर इसमे ० ०८ प्रतिशत सल्फर डाइ-आक्साइड घोल दी जाती है और आमज्जन केवल एक या दो घटे तक कराया जाता है। आमज्जन की समाप्ति के बाद यहाँ से मकई के दानो को सीधे चक्की मे भेज दिया जाता है और आमज्जक द्रव को पीछे के दूसरे आमज्जक कुड मे भर दिया जाता है जहाँ प्रथम आमज्जक कुड से पहुँचे मकई के दाने भरे रहते है। इस कुड मे आमज्जन २४ घटे तक कराया जाता है। इसके बाद यहाँ से मकई के दाने तीसरे आमज्जक कुड मे पहुँचाये जाते है और यहाँ के आमज्जक द्रव का कुछ भाग पहले आमज्जक कुड मे भरा जाता है तथा शेष भाग फेक दिया जाता है। पहले आमज्जक कुड मे थोडा ताजा पानी भी दूसरे कुड से आये आमज्जक जल मे मिलाया जाता है और इस कुड मे ताजा सूखा मकई का दाना भरा जाता है। इस पहले कुड के आमज्जक जल मे पुन इतनी सल्फर डाइ-आक्साइड मिलायी जाती है कि इसकी प्रतिशत मात्रा ० १२ हो जाय। इस कुड मे आमज्जन-क्रिया लगभग २४ घटे तक करायी जाती है। इसके बाद यहाँ का आमज्जक द्रव बाहर निकाल दिया जाता है और मकई के दानो को दूसरे कुड मे ऊपर बतलाये अनुसार आमज्जन के लिए भेज दिया जाता है। कार की विधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमे सल्फर डाइ-आक्साइड की अपेक्षाकृत कम मात्रा का उपयोग किया जाता है और इस कम मात्रा

द्वारा ही जीवाणुओ और फफूंदो की वृद्धि और क्रियाशीलता नियन्त्रित रहती है। इस विधि से प्राप्त स्टार्च की लेई की श्यानता स्काट-परीक्षण के अनुसार ११० तक रहती है। अत स्पष्ट है कि सामान्य प्रतिधारा आमज्जन विधि की अपेक्षा इसमे स्टार्च का जल-विश्लेषण कम होता है।

मकई के दानों की पिसाई तथा स्टार्च का पृथक्करण (Milling and separation)—आमज्जन के बाद मकई के दानो को क्रम से कई बार पीसा और छाना जाता है। इस क्रिया द्वारा दानो का भ्रूण, छिलका, रेशे तथा अन्य अवाछित पदार्थ निकल जाते है और केवल स्टार्च तथा प्रोटीन पदार्थ बच रहता है।

दानो को पहले मोटी चक्की (coarse mills) मे भेजा जाता है। इन चक्कियो को प्राय भ्रूण पृथक् करने वाली चक्कियाँ (degerminating mills) भी कहते है क्योकि इनका मुख्य कार्य दानो को तोडना और भ्रूण को दानो मे से मुक्त करना है। इनका दूसरा काम दानो के ऊपर के छिलके को ढीला करना तथा भ्रूण-पोष (endosperm) को मोटे कणो मे तोडना है। इस काम के लिए जो चक्की साधारणत प्रयोग मे आती है उसमे ३६ इच व्यास (diameter) की धातु की दो प्लेटे होती है जो दाँतेदार होती है। एक प्लेट अचल रूप से स्थित रहती है और दूसरी लगभग ९०० चक्कर प्रति मिनट की गति से घूमती है।

मोटी चक्की मे पिसने के बाद पिसे पदार्थ मे पानी मिलाया जाता है। जो पानी यहाँ मिलाया जाता है वह आगे की क्रिया का स्टार्च का धोवन होता है। पानी के साथ मिल कर यह मोटा पिसा पदार्थ एक जलपक सा बनाता है जिसे **पंकक** या **स्लरी** (slurry) कहते है। इस स्लरी को पप द्वारा भ्रूण-पृथक्कारक (germ separators) मे भेजा जाता है। भ्रूण-पृथक्कारक V के आकार की लगभग ४ फुट चौडी, ६ फुट ऊँची तथा १५ फुट लम्बी टकियाँ होती हैं जिनमे पेदी के पास पेचदार वाहक (screw conveyers) तथा ऊपर मुँह के पास पैडिलयुक्त पहिये लगे रहते हैं। भ्रूण मे तेल रहता है, इस कारण यह मकई के दानो के अन्य भागो—छिलके, ग्लूटेन, स्टार्च आदि—से हलका होता है। हलका होने के कारण पानी मे भ्रूण ऊपर उतरा आता है और अन्य सब भारी पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं। ऊपर सतह से भ्रूण को झन्नो की सहायता से पृथक् कर दूसरे बर्तन मे निकाल दिया जाता है और नीचे बैठे तलछट को पानी द्वारा बहा कर स्लरी के रूप मे भ्रूण-पृथक्कारक की पेदी के एक किनारे बने छेद के मार्ग से बाहर निकाल कर दूसरे बर्तन मे पहुँचा दिया जाता है।

भ्रूण को एकत्रित कर पानी से अच्छी प्रकार धोया जाता है जिससे इसमे चिपके स्टार्च के कण निकल जायँ। इसे अब शोषको मे भेज कर सुखा लिया जाता है।

सूखे भ्रूण से या तो कोल्हू द्वारा या विलायकों द्वारा निष्कर्षण कर तेल निकाला जाता है। यह तेल मकई के अन्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् पदार्थ है ओर मुख्य रूप से इसका उपयोग साबुन, पेंट तथा कृत्रिम रबर बनाने मे होता है। भ्रूण से तेल निकालने के बाद जो खली बचती है उसमे २० प्रतिशत तक प्रोटीन रहती है और यह खली सरसो तथा बिनौले की खली की तुलना मे जानवरो को खिलाने के लिए अधिक अच्छी होती है।

भ्रूण-पृथक्कारक मे बचा जो तलछट पानी के साथ बहाया जाकर स्लरी के रूप मे प्राप्त होता है उसे ताँबे की एक जाली के ऊपर भेजा जाता है। यह जाली गोलाई मे घूमती रहती है। स्लरी मे उपस्थित महीन कण तथा पानी जाली से छन कर नीचे एक बर्तन मे एकत्रित हो जाता है और छिलका, मोटे कण तथा भ्रूण का अवशेष भाग, जो भ्रूण-पृथक्कारक मे पृथक् नही हो सका है, जाली के ऊपर रह जाता है। जाली के ऊपर बचे अवशिष्ट को दूसरी मोटी चक्की मे भेजा जाता है। इस चक्की में अवशिष्ट दानो को फिर छोटे टुकडो मे तोडा जाता है जिससे पहली चक्की मे पृथक् होने से बचे भ्रूण के भाग पृथक् हो जाते है। अब जो पिसा पदार्थ प्राप्त होता है उसमे पहले की भाँति ही पानी मिला कर स्लरी के रूप मे कर लिया जाता है और दूसरे भ्रूण-पृथक्कारक मे भेज कर पहले की भाँति ही भ्रूण को पृथक् किया जाता है। बचे तलछट को पहले पृथक्करण की भाँति ही ताँबे की जाली के ऊपर छान कर इसके महीन कणो को अलग प्राप्त कर लिया जाता है। जाली के ऊपर जो भाग बच रहता है उसे यदि आवश्यकता होती है तो पुन चक्की मे महीन पीस कर क्रम से महीन जालियो के ऊपर छाना जाता है। इस प्रकार विभिन्न जालियो से छन कर जो द्रव प्राप्त होता है वह स्टार्च का जलीय विलयन होता है और इसे स्टार्च-दुग्ध कहते हैं। जाली के ऊपर अन्त मे जो अवशेष बचता है उसमे मुख्य रूप से मकई का छिलका रहता है। इस अवशेष को प्रेसो मे दबा कर इसका अधिकाश पानी निकाल दिया जाता है और फिर सुखा कर 'मकई के चोकर' के नाम से बाज़ार मे बेच दिया जाता है। इस चोकर मे लगभग १५ प्रतिशत प्रोटीन रहती है और यह गाय, बैलो तथा अन्य जानवरो को खिलाने के लिए पौष्टिक भोजन है।

स्लरी को जाली से छानने पर जो स्टार्च-दुग्ध प्राप्त होता है उसमे मकई की प्रोटीन का पर्याप्त अश मिला रहता है। इसमे से प्रोटीन को निकालने और शुद्ध स्टार्च प्राप्त करने की कई विधियाँ हैं। सबसे सरल विधि मे स्टार्च-दुग्ध को एक अध सादटकी (settling tanks) मे भर कर कई घटो तक शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च धीरे-धीरे नीचे तली मे स्तर के रूप मे बैठ जाता है। जब सब स्टार्च नीचे

बैठ जाता है तब अधिपृष्ठ द्रव को जिसमे प्रोटीन का अधिक भाग घुला रहता है निथार कर अलग निकाल दिया जाता है। फिर पानी की महीन धार द्वारा स्टार्च की सतह को सँभाल कर धोया जाता है। पानी की धार स्टार्च-कणो मे चिपके प्रोटीन के अश को घुला देती है और निथारने की क्रिया द्वारा इस घुली प्रोटीन को भी अलग निकाल दिया जाता है। शेष बचे स्टार्च को अन्त मे सुखा कर रख लिया जाता है। इस विधि से बहुत शुद्ध स्टार्च नही प्राप्त होता क्योकि प्रोटीन का सब अश पूरी तरह से नही निकल पाता।

आजकल जो विधि प्रोटीन के अश को निकालने और स्टार्च को शुद्ध करने की अधिक प्रचलित है वह निम्न भाँति है—

लगभग १२० फुट लम्बी, एक या दो फुट चौडी तथा ६-८ इच गहरी एक ढलुआ मेज (या बेंच) ली जाती है। मेज का ढाल पूरी लम्बाई मे लगभग २-३ इच रहता है। स्टार्च-दुग्ध को पप द्वारा इस मेज़ के ऊपरी सिरे पर पहुँचाया जाता है और मेज़ पर ऊपर से नीचे ढाल की ओर धीरे-धीरे बहने दिया जाता है। मेज का ढाल इतना कम रखा जाता है और स्टार्च-दुग्ध की सान्द्रता इतनी रखी जाती है कि स्टार्च-दुग्ध के मेज़ पर बहने की गति बहुत धीमी होती है। इस धीमी गति से जैसे-जैसे स्टार्च-दुग्ध मेज़ की ढलुआ सतह पर बहता है स्टार्च पर्त के रूप मे मेज पर जमता जाता है और द्रव मेज़ के नीचे के सिरे से टपक कर गिरता जाता है। जो द्रव नीचे के सिरे से बह कर इकट्ठा होता है उसमे स्टार्च-दुग्ध मे मौजूद अधिकाश प्रोटीन तथा मेज पर जमने से बचा कुछ स्टार्च रहता है। इस द्रव को अध साद टकियो मे भर कर कई घटो तक शान्त छोड दिया जाता है। इसमे मौजूद स्टार्च, प्रोटीन तथा अन्य ठोस द्रव्य तली मे बैठ जाते है। अधिपृष्ठ द्रव को ऊपर से निथार कर फेक दिया जाता है। अब तली मे एकत्रित हुए पदार्थ को फिल्टर प्रेस मे भेज कर बडे दाब मे छाना जाता है। पानी छन कर निकल जाता है और ठोस द्रव्य कडी मोटी पपडी के रूप मे छन्ने कपडे के ऊपर बच रहता है। इसे फिर सुखा कर 'ग्लूटेन भोजन' के नाम से बाज़ारो मे बेच दिया जाता है। इसमे लगभग ५० प्रतिशत तक प्रोटीन रहती है और यह गाय-भैंसो के लिए पौष्टिक खाद्य द्रव्य है।

मेज़ पर जब स्टार्च की पर्याप्त मोटी पर्त जम चुकती है तो और स्टार्च-दुग्ध को इस पर प्रवाहित होने से रोक दिया जाता है और कुछ घटो तक मेज को यों ही शान्त छोड दिया जाता है जिससे अधिकाश पानी धीरे-धीरे टपक कर नीचे के सिरे से निकल जाय। स्टार्च की सतह पर ग्लूटेन की भी एक पतली पर्त जमी रहती है। मेज़ पर एकत्रित इस पूरी पर्त को अब साफ पानी से धोया जाता है। धोने की क्रिया मे मेज के ऊपरी सिरे पर

स्वच्छ जल डाला जाता है। यह पानी स्टार्च की पर्त के ऊपर से बहता हुआ नीचे के सिरे से गिरता है और अपने साथ ग्लूटेन की पर्त को बहा कर बाहर निकाल लाता है। इस प्रकार स्टार्च धुल कर साफ और शुद्ध हो जाता है और इसके ऊपर की ग्लूटेन की पर्त निकल जाती है। अब मेज पर से शुद्ध स्टार्च को या तो लकडी की कुदाल द्वारा खोद कर या बडे दाब पर पानी की धारा द्वारा बहा कर अलग निकाल लिया जाता है। पानी द्वारा निकालने मे स्टार्च मे पानी बहुत मिल जाता है और तब इस पानी को निकालने के लिए स्टार्च-निलम्बन को बडे दाब पर फिल्टर-प्रेस मे छाना जाता है। फिल्टर-प्रेसो मे जीन के छन्ने लगे रहते है जिन पर स्टार्च कडी पर्त के रूप मे जम जाता है। इस पर्त को खुरच कर छन्नो पर से निकाल लिया जाता है। स्टार्च-निलम्बन को फिल्टर-प्रेसो मे भेजने के पहले इसमे थोडी सी सल्फर डाइ-आक्साइड गैस मिला दी जाती है। सल्फर डाइ-आक्साइड की उपस्थिति से स्टार्च-निलम्बन मे थोडी अम्लीयता आ जाती है। थोडी अम्लीयता होने पर फिल्टर-प्रेसो मे निलम्बन के छनने की क्रिया अधिक शीघ्रता से होती है। इसके साथ ही सल्फर डाइ-आक्साइड स्टार्च को जीवाणुओ के आक्रमण से सुरक्षित भी रखता है।

फिल्टर-प्रेस से छानने के बाद या मेज पर से कुदाल द्वारा खुरच कर निकालने के बाद जो स्टार्च प्राप्त होता है उसमे लगभग ५० प्रतिशत पानी रहता है। इसे या तो शीघ्र ग्लूकोस बनाने के काम मे ले आते हैं या सुखा कर चूर्ण रूप मे या नन्हे दानो के रूप मे प्राप्त कर लेते है। सुखाने की क्रिया मे आरम्भ मे ताप लगभग ५०° से० ग्रे० रखा जाता है। जब स्टार्च मे जल की लगभग १० प्रतिशत मात्रा रह जाती है तब इसे चक्की मे भेज कर महीन पीसा जाता है और रेशम की महीन चलनी से छान कर चूर्ण रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। यदि स्टार्च को दानो के रूप मे प्राप्त करना होता है (pearl starch) तो आशिक रूप मे ५०° से० ग्रे० पर सुखाये गये स्टार्च को एक ऐसी चक्की मे भेजा जाता है जहाँ इसे नन्हे-नन्हे दानो के रूप मे विच्छिन्न कर दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त चूर्ण अथवा दानो को पैकटो मे भर कर बाजारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

ऊपर की विधि से प्राप्त स्टार्च बहुत शुद्ध होता है। इसमे ०५ प्रतिशत से अधिक प्रोटीन की अपद्रव्यता नही रहती। इसका उपयोग पाकचूर्ण (बेकिग पाउडर, baking powder) बनाने, कपड़ो पर कलफ देने, कागज बनाने तथा लेई बनाने आदि विभिन्न कामो मे होता है।

आजकल विभिन्न कारखानो मे स्टार्च को निलम्बन मे से पृथक् करने के लिए प्राय अपकेन्द्री यन्त्रो का प्रयोग भी किया जाता है। इसमे एक मुख्य लाभ यह

होता है कि पानी कम इस्तेमाल करना पडता है। आजकल इन विधियो मे इतना सुधार हो गया है कि इनके द्वारा जो स्टार्च बनाया जाता है उसमे ० २ प्रतिशत से अधिक प्रोटीन अपद्रव्य के रूप मे नही रहती।

गीली विधि मे पानी के खर्च को घटाने के लिए ऐसा प्रबन्ध रहता है कि स्वच्छ ताजा जल केवल क्रिया के अन्त मे छन्ने या अध साद टकी मे स्टार्च को धोने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह धोवन फिर क्रम से एक के बाद दूसरी पूर्व की क्रिया मे प्रयुक्त होता जाता है और अन्त मे आमज्जन मे उपयोग होने के बाद बाहर निकलता है। इस प्रकार विभिन्न स्थलो मे प्रयुक्त होने के बाद जब यह जल बाहर निकलता है तब इसमे पर्याप्त मात्रा मे घुले हुए पदार्थ मौजूद रहते है। इस द्रव को वाष्पको मे पहुँचा कर इसका वाष्पन किया जाता है। पानी वाष्पित हो कर उड जाता है और द्रव मे घुला ठोस पदार्थ अवशेष के रूप मे बच रहता है। इस अवशिष्ट मे विलेय प्रोटीन, फास्फेट, फाइटेट तथा आयनोसिटाल (inositol) आदि खाद्य द्रव्य मौजूद रहते है। इससे उद्यम मे कुछ रासायनिक पदार्थ बनाये जाते है। ऊपर वर्णित गीली विधि मे प्राप्त उपजात (by-products) का बहुत सा अश, जैसे ग्लूटेन, भ्रूण की खली तथा चोकर आदि, आमज्जक जल की उचित मात्रा मे मिला कर एक गाढ़ी लेई के रूप मे कर लिया जाता है और इसी रूप मे बाजारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है। यह लेई जानवरो को खिलाने के लिए एक पौष्टिक भोजन पदार्थ है।

स्टार्च को सुखाना—स्टार्च को सुखाने के लिए विभिन्न प्रकार के शोषको का उपयोग होता है। आजकल अधिकाश कारखानो मे अविरतपट्टा शोषक (continuous belt drier) का व्यवहार होता है। सुखाने की विधि निम्न भाँति कार्यान्वित की जाती है—

छानने की अन्तिम क्रिया के बाद फिल्टर प्रेस के छन्नो पर लगभग ० ५ इच मोटी चद्दर (sheets) के रूप मे स्टार्च प्राप्त होता है। इन चद्दरो को तोड कर पहले इन्हे एक इच चौडे लम्बे फीतो के रूप मे कर लिया जाता है और फिर लम्बाई से मशीनो द्वारा काट कर दो-दो इच के लम्बे टुकडो मे कर लिया जाता है। ये टुकडे अब धातु के तारो के बने करधनी के आकार के एक पट्टे पर पहुँचाये जाते है। यह पट्टा बराबर क्रम से विभिन्न कमरो मे होता हुआ चक्कर से घूमता रहता है। इन कमरो मे पट्टे के ऊपर गरम वायु प्रवाहित की जाती है जिससे कमरा गरम रहता है। पट्टे के ऊपर का स्टार्च कमरो की गरम वायु द्वारा धीरे-धीरे सूख जाता है। पट्टे की गति इतनी धीमी रखी जाती है कि इसे कमरो मे से होकर एक पूरी परिक्रमा समाप्त करने मे लगभग ४५ मिनट लगते है। इतने समय मे स्टार्च पट्टे पर पूरा सूख जाता

है। गरम कमरो का ताप विभिन्न स्थानो मे ५०° सें० ग्रे० से ११० सें० ग्रे० तक रखा जाता है। अन्तिम कमरे से जब पट्टा जा रहा होता है तब वहाँ इस पर ठडी वायु की धारा प्रवाहित की जाती है जिससे स्टार्च ठडा हो जाय। सुखाने की ऊपर की विधि द्वारा लगभग एक घटे मे स्टार्च सूख जाता है। इस विधि मे स्टार्च का विघटन भी बहुत कम होता है।

ढोकेदार स्टार्च बनाना—ढोकेदार स्टार्च निम्न विधि से बनाया जाता है—

छानने तथा धोने के बाद शुद्ध स्टार्च को पानी के साथ मिला कर स्लरी के रूप मे कर लिया जाता है। इस स्लरी को फिर सन्दूक के आकार के बने छन्नो मे, जिनमे छानने के लिए कैनवस का कपडा लगा रहता है, भेजा जाता है और चूषण-पप (suction pump) की सहायता से छाना जाता है। पानी छन कर निकल जाता है और स्टार्च शकु के आकार के ढोको के रूप मे छन्ने के भीतर बच रहता है। इन शकुओ को सूखने के लिए विशेष प्रकार की भट्टियो मे रखा जाता है। थोडा सूखने पर शकुओ के ऊपर एक पपडी जम जाती है। इस पपडी को खुरच कर निकाल दिया जाता है और शकुओ को फिर उपयुक्त ताप पर उचित सीमा तक सुखा दिया जाता है। इसके बाद इन्हे मशीनो द्वारा इच्छित माप के टुकडो मे तोड कर, कागजो मे बाँध कर तथा लेबल लगा कर बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

कम श्यानता की लेई का स्टार्च (Starch giving paste of lower viscosity)—स्टार्च बनाने की क्रिया मे जब कास्टिक सोडे का प्रयोग बिल्कुल नही किया जाता तो जो स्टार्च प्राप्त होता है उसकी लेई की श्यानता अधिक होती है। यह स्टार्च पाकचूर्ण (बेकिंग पाउडर) के लिए तथा कपडो पर सज्जक (size) के रूप मे उपयोग किये जाने के लिए बहुत उपयुक्त होता है। किन्तु यदि मकई के दाने से (अथवा अन्य किसी स्टार्च-युक्त पदार्थ से) स्टार्च निकालने की क्रिया मे किसी स्थान पर कास्टिक सोडे का प्रयोग किया गया है तो जो स्टार्च प्राप्त होता है, उसकी लेई की श्यानता अपेक्षाकृत कम होती है (अर्थात् यह पतली अवस्था मे ही उबलता है)। यह स्टार्च घुलाई मे कलफ देने के लिए अधिक उपयुक्त है।

आजकल कम श्यानता की लेई प्रदान करने वाला एक विशेष प्रकार का स्टार्च बनाया जाता है जिसे विलेय स्टार्च (soluble starch) कहते है। इसका जलीय निलम्बन अधिक पारदर्शक होता है। यह विलेय स्टार्च साधारण स्टार्च को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से थोड़ा अभिकृत कर और फिर ६०°-७०° ताप पर सुखाने से बनता है। इस प्रकार अभिकृत कराने तथा सुखाने से स्टार्च का कुछ अश डेक्सट्रिन मे परिणित हो जाता है। अत. विलेय स्टार्च मे डेक्सट्रिन की थोडी मात्रा भी सदा रहती है और

इसी की उपस्थिति के कारण इसकी लेई कम श्यानता की होती है। विलेय स्टार्च की माँग बिस्कुट बनाने के कारखानो मे तथा भाप द्वारा कपडो की धुलाई करने के कारखानो मे बहुत है।

निम्न मानचित्र मे मकई से स्टार्च प्राप्त करने की विधि के विभिन्न पद प्रदर्शित किये गये है—

मकई
↓
आमज्जन (गरम पानी मे किसी आमज्जक की उपस्थित मे, जैसे सलफर डाइ-आक्साइड)
↓
पिसाई (मोटी चक्की मे पानी के साथ)
↓
पकक → भ्रूण पृथक्कारक (दो पदो मे) → भ्रूण → कोल्हू मे पेरना या उपयुक्त विलायक द्वारा निष्कर्षण → तेल+खली
↓
तलछट (स्टार्च पकक)
↓
छानना (चलनी पर) → अवशिष्ट → छन्ना प्रेस → चोकर
↓
स्टार्च-दुग्ध
↓
अध साद टकी (या ढलुआ मेज़ या अपकेन्द्री यन्त्र)
↓
गीला स्टार्च + पानी
↓
छन्ना प्रेस (यहाँ दाब पर छान कर स्टार्च का पानी निकाला जाता है)
↓
गीला स्टार्च → शोपक (सुखाना) → शुष्क स्टार्च
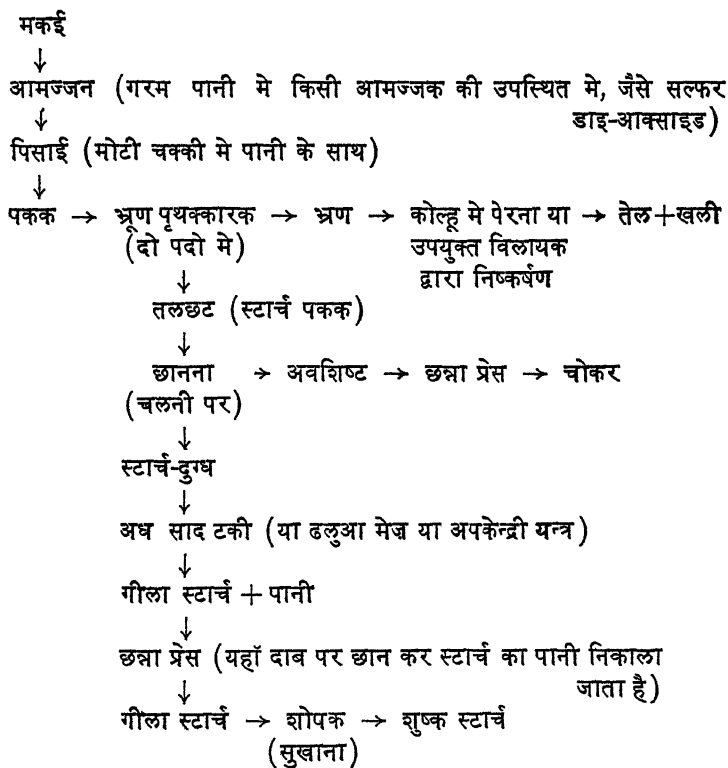
आलू का स्टार्च

आलू का स्टार्च सबसे अधिक जर्मनी मे बनाया जाता है। जर्मनी के अतिरिक्त हालैंड, रूस तथा फ्रान्स मे भी इसका पर्याप्त मात्रा मे निर्माण होता है। आलू के स्टार्च के उद्योग की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसके बनाने के बहुत से छोटे छोटे कारखाने ग्रामो मे आलू के खेतो के पास ही स्थापित रहते है। इससे मुख्य लाभ यह

होता है कि आलू को दूर के किसी दूसरे स्थान से लाना नही पडता ओर इस प्रकार लाने के खर्च की बचत होती है। इसके साथ ही खेतो के पास स्टार्च के कारखानो के रहने से एक दूसरा लाभ यह होता है कि स्टार्च निकालने के बाद अन्त मे आलू का जो अवशिष्ट (waste pulp) लुगदी के रूप मे बचता है वह आस-पास के फार्मों मे ही जानवरो को चारे के रूप मे खिलाने के लिए बिक जाता है। इन दोनो लाभो के कारण गाँवो में स्थापित ये छोटे कारखाने नगरो के बडे कारखानो की होड से अपना बनाया स्टार्च अपेक्षाकृत सस्ते मूल्य मे बेच लेते है। साधारणत इन कारखानो मे आलू से निकालने के बाद स्टार्च को गीली अवस्था मे ही रख लिया जाता है। इस स्टार्च मे लगभग ४०-५० प्रतिशत तक पानी रहता है, और इसे ग्लूकोस बनाने के कारखाने इसी अवस्था मे खरीद लेते है। ग्लूकोस बनाने के लिए यह गीला स्टार्च इन कारखानो को बहुत सस्ता पडता है।

आलू मे विभिन्न पदार्थो का औसत सगठन निम्न भाँति होता है—

स्टार्च	१६ से २३ प्रतिशत	खनिज द्रव्य	१ ० प्रतिशत
अन्य कार्बोहाइड्रेट	२ ५ ,,	जल	७६ ० ,,
प्रोटीन	२ ० ,,		

यद्यपि आलू मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा विभिन्न अनाजो की अपेक्षा कम होती है फिर भी इससे स्टार्च प्राप्त करना सस्ता पडता है। एक एकड भूमि मे आलू की पैदावार इतनी अधिक होती है कि स्टार्च की प्रतिशत मात्रा के कम होने पर भी पूरे एकड की आलू की उपज से जितना स्टार्च प्राप्त होता है वह एक एकड की किसी भी अनाज की समस्त उपज से प्राप्त होने वाले स्टार्च की अपेक्षा अधिक रहता है। एक एकड भूमि मे लगभग १७५ मन आलू पैदा होता है। इस कुल आलू से लगभग ३० मन स्टार्च प्राप्त होगा। इसकी तुलना मे गेहूँ की प्रति एकड पैदावार लगभग १७-१८ मन होती है और इतने गेहूँ से लगभग ११ मन स्टार्च प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रति एकड भूमि के हिसाब से आलू का स्टार्च गेहूँ के स्टार्च की तुलना मे तीन गुना अधिक प्राप्त होता है। इसी कारण उन देशो मे, जहाँ आलू की खेती सरलता से हो सकती है, आलू का स्टार्च ही अधिक बनाया जाता है।

आलू मे स्टार्च की मात्रा बहुत अश तक आलू की जाति, खेत की मिट्टी के प्रकार तथा स्थान के जलवायु पर निर्भर करती है। जर्मनी मे कृत्रिम निषेचन (artificial fertilization) तथा उपयुक्त चुनाव द्वारा एक सुधरी जाति का आलू उपजाया गया है जिसमे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा २५ से ४० तक रहती है। साधारण

जाति के आलू मे स्टार्च केवल १६ से २३ प्रतिशत तक ही रहता है। अमेरिका में स्टार्च बनाने की दृष्टि से आलू अच्छी जाति का नही होता। यहाँ के आलू मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा केवल १२ ही रहती है। इसी कारण अमेरिका मे आलू से स्टार्च बनाना महँगा पडता है, अत बहुत कम बनाया जाता है। आलू का स्टार्च जो कुछ भी थोडा अमेरिका मे बनता है वह साधारणत ऐसे आलुओ से बनाया जाता है जो खेत से खोद कर निकालते समय टूट जाते है या जिनमे कोई और ऐसा दोष आ जाता है जिसके कारण बाज़ार मे इनके बिकने मे कठिनाई होती है। भारतवर्ष मे भी आलू से स्टार्च नही प्राप्त किया जाता क्योकि यह महँगा पडता है। हमारे यहाँ मुख्य रूप से मकई का स्टार्च ही बनाया जाता है।

स्टार्च के कारखाने आलू का मूल्य आलू मे मौजूद स्टार्च की प्रतिशत मात्रा के अनुसार निर्धारित करते है। मोटे तौर से आलू का आपेक्षिक गुरुत्व ज्ञात होने से आलू मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा का अनुमान लग जाता है। नीचे की तालिका मे कुछ विभिन्न आपेक्षिक गुरुत्व (specific gravity) के आलू मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा दिखलायी गयी है—

आलू का आपेक्षिक गुरुत्व	स्टार्च की प्रतिशतता	आलू का आपेक्षिक गुरुत्व	स्टार्च की प्रतिशतता
१ ०८०	१३ ९	१ १२०	२२ ५
१ ०९०	१६ ०	१ १३०	२४ ६
१ १००	१८ २	१ १४०	२६ ७
१ ११०	२० ३		

आलू का आपेक्षिक गुरुत्व शीघ्र ज्ञात करने का प्रबन्ध प्रत्येक कारखाने की प्रयोगशाला मे रहता है। आपेक्षिक गुरुत्व निकालने की साधारण विधि मे लगभग ५ सेर आलू को पहले वायु मे तोलते है और फिर पानी मे। इन आकडो से फिर आपेक्षिक गुरुत्व गणना द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है।

आलू की सफाई (Cleaning)—आलू को सबसे पहले एक धोने की मशीन मे पहुँचाया जाता है। यहाँ पानी से धोकर आलुओ के चारो ओर चिपटी मिट्टी क बहाकर निकाल दिया जाता है। इस मशीन मे एक बडा कुड होता है जिसमे एक धुरा क्षैतिज रूप से लगा रहता है और इस धुरे मे चारो ओर पतवार लगे रहते है। कुड मे आलू भर कर फिर पानी भर दिया जाता है। अब धुरे को यत्र द्वारा गोलाई से चालित किया जाता है। धुरे के साथ उसमे लगे पतवार भी गोलाई से कुड मे घूमते है और आलुओ

को पानी के भीतर खूब चलाते और हिलाते हैं। ऊपर नीचे तथा चारो ओर जब आलू इस प्रकार पतवार द्वारा घूमते हैं तो एक दूसरे से रगड खाते हैं जिससे उनके ऊपर की चिपकी मिट्टी छूट कर पानी मे मिल जाती है। इस पानी को बहा कर निकाल दिया जाता है और यदि आवश्यकता होती है तो एक बार पुन साफ पानी से आलुओ को धो लिया जाता है। यदि आलुओ की मिट्टी ठीक से साफ नही की जाती तो अन्त मे प्राप्त स्टार्च एकदम सफेद नही होता।

आलू की लुगदी बनाना (Preparation of pulp)—धोने के बाद आलुओ को मशीन मे लगे दाँतेदार चाकू द्वारा महीन खुरचा जाता है जिससे आलू की सब कोशिकाये फट जायँ और उनके अन्दर भरा स्टार्च बाहर निकल आये। खुरचने की मशीन एक गोल पीपे के आकार की होती है और एक क्षैतिज धुरे पर गोलाई से तेज़ी
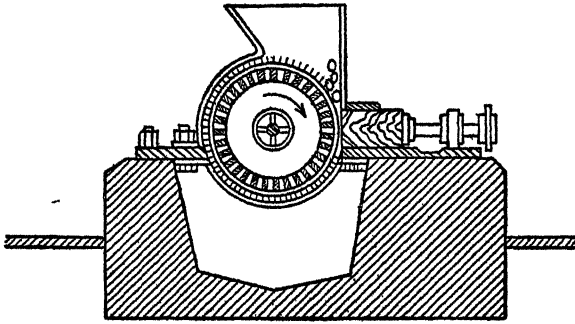
चित्र ४—आलू खुरचने की मशीन

से नाचती है। पीपे के अन्दर की दीवार में चारो ओर आरी की तरह के बहुत से फलक (blades) लगे रहते हैं। फलको के चारो ओर एक धातु की चद्दर का आवरण रहता है। जब आलू इस मशीन मे थोडे पानी के साथ पहुँचता है तो इसके फलको के दाँतो द्वारा विच्छिन्न होकर एक मोटी लुगदी के रूप मे परिणत हो जाता है। पीपे के नीचे लकडी का एक बडा टुकडा (block) लगा रहता है जो आगे-पीछे खिसकाया जा सकता है। पीपे और इस लकडी के टुकडे के बीच मे पतला मार्ग रहता है जिसके द्वारा पीपे के भीतर से लुगदी बाहर निकलती है। यह मार्ग जितना पतला रहता है उतनी ही महीन लुगदी अन्दर से बाहर निकलती है। लकडी के टुकडे को आगे-पीछे खिसका कर मार्ग को आवश्यकतानुसार पतला रखा जाता है। खुरचने की मशीन से बाहर निकलने के बाद लुगदी एक बडी टकी मे एकत्रित की जाती है। इस लुगदी

मे स्टार्च, आलू की वे कोशिकाएँ जो फटने से बच रही है तथा आलू का रस रहता है। लुगदी पर जीवाणुओ तथा फफूँदो के शीघ्र आक्रमण का भय रहता है। अत इनसे सुरक्षित रखने के लिए लुगदी मे तुरन्त ही, जैसे ही यह खुरचने की मशीन से बाहर निकलती है, सल्फ्यूरस अम्ल के तनु विलयन की थोडी मात्रा मिला दी जाती है। गर्मी के दिनो मे विशेष रूप से लुगदी को सुरक्षित रखने का ध्यान रखना पडता है, क्योकि इन दिनो जीवाणुओ और फफूँदो के आक्रमण का अधिक भय रहता है।

लुगदी में से स्टार्च पृथक् करना (Separation of starch from the pulp)—लुगदी मे से स्टार्च पृथक् करने के लिए विभिन्न प्रकार की चलनियो का प्रयोग किया जाता है। मुख्य रूप से दो प्रकार की चलनियो का प्रचलन है—एक सकप चलनियाँ (shaking sieves) जो बराबर आगे-पीछे हिलती रहती है और दूसरी ब्रश-चलनियाँ (brush sieves) जिनमे चलनियो की जाली के ऊपर धातु के ब्रश द्वारा लुगदी चलायी जाती है। लुगदी को पहले मोटी चलनी के ऊपर भेजा जाता है और पानी डालकर धोया जाता है। चलनी की जाली के ऊपर लुगदी मे मौजूद आलू का छिलका, रेशे तथा अन्य मोटा भाग रह जाता है, और स्टार्च तथा उसके साथ कुछ महीन रेशे आदि छन कर निकल आते है। इस छने द्रव को पुन अधिक महीन चलनी के ऊपर छाना जाता है। स्टार्च का जलीय पतला निलम्बन स्टार्च-दुग्ध के रूप मे छन कर प्राप्त होता है और रेशे आदि चलनी की जाली के ऊपर रुक जाते है। पहली मोटी चलनी के ऊपर जो मोटा अवशिष्ट बचता है उसे पुन लुगदी बनाने की मशीन मे नये आलू के साथ मिला दिया जाता है। दूसरी महीन चलनी के ऊपर लुगदी का जो अवशिष्ट बचता है उसमे लगभग ९७-९८ प्रतिशत पानी रहता है और शेष प्रोटीन, आलू की अविच्छिन्न कोशिकाएँ तथा छिलका रहता है। इसमे स्टार्च की मात्रा बहुत कम रहती है, अत इसमे से स्टार्च निकालना लाभप्रद नही रहता। इस कारण इस अवशिष्ट पदार्थ का उपयोग सीधे जानवरो के चारे के रूप मे कर लिया जाता है। प्राय इसे फिल्टर प्रेसो मे भेज कर दाब पर कैनवस कपडो द्वारा छाना जाता है जिससे अधिकाश पानी निकल जाता है और छन्नो पर मोटी पर्त के रूप मे अवशिष्ट बच रहता है। इसे थोडा सुखा कर खली के रूप मे उपयोग करने के लिए रख लिया जाता है और जानवरो को खिलाने के लिए बेच दिया जाता है।

महीन चलनी से छानने के बाद जो स्टार्च-दुग्ध प्राप्त होता है उससे स्टार्च पृथक् करने की दो विधियाँ है—(१) अध सादक टकियो द्वारा, तथा (२) मेज द्वारा।

(१) अध सादक टकियो द्वारा पृथक् करना—स्टार्च-दुग्ध को अध सादक टकियो मे भर कर शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च धीरे-धीरे नीचे तली मे बैठता है और

लगभग ८-१० घटो मे पूरी तरह बैठ जाता है। फिर अधिपृष्ठ द्रव को निथार कर अलग निकाल दिया जाता है। तली मे एकत्रित स्टार्च का रग कुछ पीला या मटमैला रहता है और यह इतनी कडी ठोस पर्त के रूप मे जमा रहता है कि इसे निकालने के लिए इसके ऊपर मजदूरो को खडा होकर फावडे से खोदना पडता है। अध सादटकियो मे से फावडे द्वारा खोद कर निकालने के बाद इस स्टार्च मे पुन इतना पानी मिलाया जाता है कि एक तनु निलम्बन बन जाय। इस निलम्बन को पुन अव-साद टकियो मे भर कर शान्त छोड दिया जाता है। ८-१० घटो बाद जब समस्त स्टार्च नीचे बैठ जाता है तब अधिपृष्ठ द्रव को पहले की ही भॉति निथार कर निकाल दिया जाता है। इस बार स्टार्च की जो पर्त प्राप्त होती है वह पहले से कुछ अधिक साफ होती है किन्तु इसके ऊपर भी एक पतली सी पर्त मटमैले रग की होती है। ऊपर की मट-मैले रग की इस पतली पर्त को खुरच कर अलग निकालने के बाद शेष स्टार्च को खोद कर प्राप्त कर लिया जाता है। इस प्रकार जो गीला स्टार्च प्राप्त होता है उसे या तो इसी अवस्था मे ग्लूकोस और डेक्सट्रिन बनाने के कारखानो के हाथ बेच दिया जाता है या पुन और शुद्ध कर तथा सुखा कर चूर्ण रूप मे पैकटो मे भर कर बाजारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

ऊपर जो मटमैले रग की खुरचन एकत्रित की जाती है उसे शुद्ध कर उसमे से स्वच्छ स्टार्च प्राप्त किया जाता है। इसके लिये खुरचन मे पानी मिला कर इसे स्टार्च-दुग्ध मे परिणत किया जाता है और ऊपर बतलाये अनुसार अध साद टकियो मे थिरा कर फिर पर्त रूप मे प्राप्त किया जाता है। आवश्यकतानुसार ऊपर की क्रिया को कई बार करने से शुद्ध सफेद स्टार्च खुरचनो से प्राप्त हो जाता है।

अध साद टकियो से जो अधिपृष्ठ द्रव पृथक् किया जाता है उसमे भी स्टार्च थोडी मात्रा मे निलम्बित रहता है। इस द्रव को एक बडे कुड मे भर दिया जाता है और थोडा सल्फर डाइ-आक्साइड मिला कर काफी समय तक शान्त छोड दिया जाता है। इसमे निलम्बित अधिकाश स्टार्च धीरे-धीरे नीचे बैठ जाता है। ऊपर से स्वच्छ पानी को निथार कर इसे कारखाने के विभिन्न स्थानो मे विभिन्न क्रियाओ मे इस्तेमाल होने के लिए भेज दिया जाता है। इस प्रकार इस कुड मे ही समस्त अध साद टकियो का अधिपृष्ठ द्रव भरता रहता है और इसी मे से ऊपर का निथरा जल कारखाने मे विभिन्न क्रियाओ मे बराबर इस्तेमाल होता रहता है। इस विधि से पानी का व्यय कम होता है। जब आलू का मौसम समाप्त हो जाता है और स्टार्च बनाने का काम बद करने को होता है तब कुड की तली मे बैठे तलछट को अन्त मे निकाला जाता है। यह स्टार्च बहुत शुद्ध नही होता और इसे इसी रूप मे सुखा कर सस्ता बेच दिया जाता है।

(२) **मेज की विधि से पृथक् करना** (Tabling method)—इस विधि मे पहले स्टार्च-दुग्ध मे थोडा पानी मिला कर इसे कुछ अधिक पतला किया जाता है और फिर एक ढलुआ लम्बी मेज पर बहुत धीमी गति से ऊपर से नीचे को ढाल की ओर बहने दिया जाता है। यह मेज लगभग ९० फुट लम्बी, ४ फुट चौडी और १ फुट गहरी होती है। जब स्टार्च-दुग्ध इस मेज पर धीमी गति से बहता है तो इसमे से स्टार्च-कण नीचे तली मे पर्त रूप मे जमते जाते है। आरम्भ मे बडे स्टार्च-कण पृथक् होकर नीचे बैठते है और बाद मे छोटे, अत मेज की पूरी लम्बाई मे जमी स्टार्च की पर्त मे ऊपर से नीचे की ओर क्रम से स्टार्च-कण छोटे होते जाते है। बहुत नन्हे कण शीघ्र नही बैठ पाते और वे बिना जमे मेज के नीचे के सिरे से पानी के साथ बह कर निकल जाते हैं। इस प्रकार मेज के नीचे के सिरे से जो द्रव गिरता है उसमे स्टार्च के कुछ महीन कण निलम्बित अवस्था मे, आलू मे उपस्थित कुछ लवण विलेय अवस्था मे तथा आलू के रेशे रहते है। इस द्रव को अध साद टकियो मे भेज दिया जाता है जहाँ कुछ समय तक शान्त पडा रहने पर इसमे निलम्बित स्टार्च नीचे तली मे तलछट के रूप मे बैठ जाता है। इसमे रेशे भी मिले रहते है। इस तलछट को निकाल कर तथा पानी के साथ मिश्रित कर पुन उस स्टार्च-दुग्ध मे मिला दिया जाता है जिसे मेज पर बहने के लिए भेजना है।

मेज़ पर जो स्टार्च पर्त के रूप मे जमता है उसे खुरपियो द्वारा खुरच कर निकाल लिया जाता है और पुन पानी के साथ मिला कर पतले स्टार्च-दुग्ध के रूप मे करने के बाद पहले की ही भाँति मेज पर पुन प्रवाहित किया जाता है। आवश्यकता होने पर दूसरी बार मेज पर भेजने के पूर्व इसे चलनी से छान कर इसमे मौजूद रेशो को अलग कर दिया जाता है। इस प्रकार दो बार ढलुआ मेज द्वारा ऊपर की विधि से तल-छटीकरण करने से स्टार्च पर्याप्त अश तक शुद्ध हो जाता है। प्राय मेज द्वारा प्रथम तलछटीकरण के बाद दूसरी बार स्टार्च-दुग्ध को अपकेन्द्री यन्त्र मे भेजकर उसके द्वारा स्टार्च-कणो को पृथक् किया जाता है। स्टार्च-दुग्ध को जब अपकेन्द्री यन्त्र मे डाल कर मशीन को तेजी से घुमाया जाता है तो स्टार्च अपकेन्द्री यन्त्र की जाली के ऊपर पर्त रूप मे जम जाता है और पानी जाली के छेदो से छन कर बाहर निकल आता है। अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा जो स्टार्च प्राप्त होता है उसमे पानी (३५-४० प्रतिशत) मेज की विधि द्वारा प्राप्त स्टार्च (४५-५० प्रतिशत पानी) से कम रहता है।

स्टार्च का शोधन (Refining of starch)—ऊपर की विधि से जो स्टार्च प्राप्त होता है वह एकदम शुद्ध नही होता। मेज पर ही इसे एक-दो बार पोटैसियम परमेगनेट मिश्रित पानी से धोया जाता है और फिर निकाल कर तथा पानी मे मिला

कर पुन स्टार्च-दुग्ध के रूप मे कर लिया जाता है। इस स्टार्च-दुग्ध को पुन पहले की भाँति मेज पर भेज कर स्टार्च को तलछटीकरण द्वारा पथक् कर लेते है। इस बार मेज पर जो पर्त जमती है उसे सल्फर डाइ-आक्साइड मिले जल से धोते है। सल्फर डाइ-आक्साइड रग पदार्थो को अवकृत कर स्टार्च को सफेद कर देता है। पोटैसियम परमैगनेट और सल्फर डाइ-आक्साइड का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि इनकी मात्रा आवश्यकता से अधिक न हो, अन्यथा स्टार्च का कुछ विच्छेदन हो जाता है।

ऊपर की विधि द्वारा शोधन करने के बाद भी जो स्टार्च की पर्त मेज पर जमती है उसकी सतह पर एक मटमैली पतली पर्त रहती है। यह मटमैली पर्त स्टार्च मे अभी भी कुछ अपद्रव्यो के मौजूद रहने के कारण होती है। इस मटमैली पर्त को ऊपर से लकडी के खुरपो से खुरच कर और फिर साफ पानी की धारा के साथ बहा कर निकाल दिया जाता है। इस खुरचन को, जो पानी के साथ निलम्बन के रूप मे पृथक् की गयी है, अशुद्ध स्टार्च मे ही मिला दिया जाता है जिसका शोधन अभी करना है।

शुद्ध स्टार्च को फिर अन्त मे मेज़ पर से फावडे या खुरपो द्वारा निकाल कर अप-केन्द्री यन्त्र मे भेजते है जहाँ इसका अधिकाश पानी निकल जाता है। अपकेन्द्री यन्त्र की जाली पर जमी स्टार्च की पर्त को निकाल कर फिर शोषको मे सुखाया जाता है और पैकटो मे भर कर बेचने के लिए भेज दिया जाता है।

स्टार्च का सुखाना (Drying of starch)—जैसा मकई के स्टार्च मे बतलाया गया है, आलू का स्टार्च भी विभिन्न विधियो से सुखाया जाता है। इन सब विधियो मे गर्म वायु का प्रयोग स्टार्च के पानी को वाष्पित करने के लिए किया जाता है। स्टार्च करधनी के आकार के पट्टा-वाहको द्वारा एक गृह से दूसरे गृह मे पहुँचता है। इन गृहो मे गर्म वायु दूसरी ओर से प्रवेश कर पट्टो पर मौजूद स्टार्च के ऊपर प्रवाहित होती है और स्टार्च के पानी को वाष्पित कर अपने साथ उडा ले जाती है। प्रथम शोषक-गृह मे जो वायु पहुँचती है उसका ताप लगभग ३०° से० ग्रे० रहता है। दूसरे शोषक-गृह मे वायु का ताप लगभग ४५°-५०° रहता है। वाहक बहुत धीमी गति से इन गृहो से होता हुआ आगे बढता है, और इतने समय मे यहाँ की गर्म वायु द्वारा स्टार्च का अधिकाश जल वाष्पित हो जाता है और यह सूख कर ढोको के रूप मे प्राप्त होता है।

एक दूसरी विधि मे एक बडा लम्बा तथा चौडा पीपे के आकार का शोषक इस्तेमाल होता है। यह पीपा इस प्रकार रखा जाता है कि एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर ढाल रहता है। ऊँचे सिरे की ओर से गीला स्टार्च शोषक मे प्रवेश करता है और नीचे के सिरे की ओर से गर्म वायु इसमे प्रवेश करती है। शोषक धीमी गति से गोलाई से

घूमता रहता है। जैसे-जैसे यह घूमता है स्टार्च इसमे ऊपर से नीचे ढाल की ओर धीरे-धीरे सरकता जाता है। यह स्टार्च विरुद्ध दिशा से आने वाली गर्म वायु के सम्पर्क मे आता है। जिस समय तक स्टार्च शोषक के नीचे के सिरे के पास पहुँचता है यह पूर्ण रूप से सूख चुका होता है। इस सिरे से सूखा स्टार्च नीचे गिरता है और थैलो या पैकटो मे भर लिया जाता है।

आलू से स्टार्च बनाने में समस्याएँ तथा सावधानियाँ—(१) आलू से स्टार्च बनाने मे सब से पहली बात जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है यह है कि जो पानी विभिन्न पदो तथा क्रियाओ मे प्रयुक्त हो उसमे लोहे का अश बिल्कुल न हो। यदि लोहे का सूक्ष्म अश भी पानी मे रहता है तो स्टार्च मटमैले या हलके नीले रग का प्राप्त होता है, एकदम स्वच्छ और सफेद स्टार्च नही प्राप्त होता। इसका कारण यह है कि आलू मे टाइरोसिन (tyrosine) नामक एक प्रोटीन रहती है जो लोहे के साथ सयोग कर एक गहरे नीले रग का यौगिक बनाती है।

(२) एक दूसरी समस्या आलू को सगृहीत रखने की होती है। आलू की फसल एक निश्चित मौसम मे तैयार होती है। अत मौसम के अतिरिक्त दिनो मे स्टार्च बनाने के लिए आलू को सग्रह कर रखने की आवश्यकता होती है। सगृहीत अवस्था मे आलू मे निम्न तीन प्रक्रियाओ के होने से आलू से स्टार्च कम मात्रा मे प्राप्त होता है—आलू के पानी के उडने से, आलू मे मौजूद एन्ज़ाइमो की क्रिया द्वारा स्टार्च के आशिक रूप मे शर्करा मे परिणत होने से तथा उत्पन्न हुई शर्करा के आलू की कोशिकाओ के श्वसन के फलस्वरूप नष्ट होने से। ऊपर की तीनो क्रियाओ की तीव्रता ताप पर निर्भर करती है। अत इन क्रियाओ को रोकने तथा नियत्रित रखने के लिए सगृहीत आलू के ताप का नियत्रण बहुत आवश्यक है और यह बहुत कठिन कार्य है। यदि आलू को ०° सें० ग्रे० से नीचे के ताप पर सगृहीत रखा जाता है तो आलू तो ठीक बना रहता है, किन्तु एक कठिनाई यह उपस्थित होती है कि जैसे ही इस ताप से आलू को साधारण ताप पर पुन लाया जाता है यह बहुत शीघ्र सडना आरम्भ करता है। अत आलू को ०° से० ग्रे० से साधारण ताप पर लाते ही तुरन्त उपयोग मे लाना आवश्यक है, किन्तु प्राय सब आलू को एक साथ तुरन्त उपयोग मे लाना सम्भव नही हो पाता। आलू मे उपस्थित एन्ज़ाइम साधारण ताप पर पूर्ण क्रियाशील रहते है और इस ताप पर आलू की कोशिकाओ का उपापचय भी प्रकृत रूप (normal) मे होता है जिसके फलस्वरूप स्टार्च का धीमी गति से विघटन बराबर होता रहता है। साधारण ताप पर श्वसन भी प्रर्याप्त गति से होता है और इसके फलस्वरूप ताप मे भी धीरे-धीरे वृद्धि होती रहती है। यदि ताप की इस उत्तरोत्तर वृद्धि को रोकने तथा नियत्रित रखने का प्रबन्ध

नही किया जाता तो ताप की वृद्धि बराबर होती जाती है और इस वृद्धि के साथ श्वसन की गति भी तीव्र होती जाती है। फलस्वरूप आलू का अकुरण आरम्भ हो जाता है।

०° से० ग्रे० ताप पर आलू को रखने से इसके पानी का उडना तथा इसकी श्वसन क्रिया दोनो लगभग पूर्ण रूप से रुक जाती है, किन्तु एजाइम द्वारा स्टार्च के शर्करा मे परिणत होने की क्रिया एकदम नही रुकती, थोडी होती रहती है। व्यावहारिक दृष्टि से आलू को सगृहीत रखने के लिए सबसे ठीक ताप ६° और १०° से० ग्रे० के बीच का होता है।

(३) आलू यदि कुछ रोगग्रसित होता है या उस पर पाला लग चुका होता है तो इसमे से स्टार्च निकालने मे कठिनाई उपस्थित होती है। इस प्रकार का आलू थोडा मुलायम हो जाता है और इसका स्टार्च के अतिरिक्त कुछ अन्य भाग पानी के साथ एक जलीय निलम्बन मे परिणत हो जाता है। यह निलम्बन स्टार्च-कणो के पृथक् होने मे बाधा उपस्थित करता है जिसके कारण स्टार्च-दुग्ध से तलछटीकरण द्वारा स्टार्च का पृथक्करण सन्तोषपूर्ण नही होता। इसके साथ ही ऐसे आलू से प्राप्त स्टार्च मे कुछ रग भी आ जाता है, और इसमे कुछ रेशे भी मिले रहते है जो सरलता से नही निकाले जा सकते। इन रेशो के कारण इस स्टार्च मे पानी भी अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे रुका रहता है और इसको सुखाने की भी समस्या रहती है।

(४) आलू के स्टार्च मे एक विशेष प्रकार की गध रहती है। इस गध को दूर करने के लिए कई प्रकार के रसद्रव्यो (chemicals) का उपयोग किया जाता है, किन्तु प्रत्येक के साथ स्टार्च के विच्छेदन की आशका रहती है। अत इन रासायनिक पदार्थो का उपयोग करते समय बडे नियत्रण की आवश्यकता होती है। साधारण रीति से गध नष्ट करने के लिए जिन पदार्थो का उपयोग किया जाता है वे निम्न है — क्लोरीन, सल्फ्यूरस अम्ल, ओज़ोन, हाइपोक्लोराइट, सोडियम कार्बोनेट, पोटैसियम परमैंगनेट और कास्टिक क्षार।

आलू से स्टार्च प्राप्त करने की पेशके और टोबलर की विधि (Peschke and Tobler's method)—सन् १९२५ मे ई० पेशके तथा एफ० टोबलर[1] (E. Peschke and F. Tobler) ने एक नयी विधि आलू से स्टार्च निकालने की ज्ञात की है। इस विधि मे बैसिलस फेल्सिनिअस (Bacillus felsincsu) द्वारा आलू की लुगदी को किण्वित किया जाता है। यह जीवाणु सेल्यूलोस को विच्छेदित कर विलेय रूप मे परिणत कर देता है किन्तु स्टार्च पर कोई प्रभाव नही डालता। सेल्यूलोस विलेय रूप में होकर सरलता से निकल जाता है। सेल्यूलोस के निकल जाने

के बाद स्टार्च-दुग्ध से स्टार्च का पृथक्करण तलछटीकरण द्वारा अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है।

शकरकद का स्टार्च

शकरकद मे लगभग २२ से २६ प्रतिशत तक स्टार्च रहता है। इधर कुछ वर्षों से अमेरिका मे शकरकद से स्टार्च पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त किया जाने लगा है। इस स्टार्च के प्राप्त करने की विधि सक्षेप मे निम्न प्रकार है —

बनाना—शकरकद को पहले पानी से भली प्रकार धोकर इसमे चिपकी मिट्टी आदि साफ की जाती है, फिर इसे घन-मिल (hammer mill) मे कुचल कर लुगदी के रूप मे परिणत कर लिया जाता है। अब इस लुगदी मे थोडा चूने का पानी मिला कर खूब फेटा जाता है और ताँबे की चलनियो पर पानी से धोया जाता है। स्टार्च पानी के साथ स्टार्च-दुग्ध के रूप मे छन कर नीचे प्राप्त होता है और रेशे तथा शकरकद के मोटे भाग चलनी की जाली पर रुक जाते है। इस अवशिष्ट को पुन ताज़े शकरकद के साथ घन-मिल मे मिला दिया जाता है।

ऊपर की विधि मे चूने के पानी के दो कार्य है —(१) एक तो यह कि यह शकरकद मे उपस्थित कुछ अपद्रव्यो को जो निलम्बित अवस्था मे रहते है अवक्षेपित कर बडे कणो के रूप मे कर देता है जो चलनियो के ऊपर सरलता से बिना छने बच रहते है और पृथक् हो जाते है। (२) दूसरा यह कि चूने का पानी शकरकद मे मौजूद रगकणो को घुलाने का काम करता है और इन्हे जलीय विलयन के रूप मे स्टार्च से अलग निकाल देता है।

चलनियो से छनकर जो स्टार्च-दुग्ध प्राप्त होता है उसमे अभी भी कुछ रेशे आदि मिले रहते है। इसे अब कुछ अधिक महीन चलनी से छाना जाता है जिसमे मौजूद रेशे आदि पृथक् होकर जाली के ऊपर बच रहते है और स्टार्च के महीन कण पानी के साथ छनकर स्टार्च-दुग्ध के रूप मे प्राप्त होते है। इस स्टार्च-दुग्ध को सीमेट की बनी लम्बी ढलुआ मेज़ पर धीमी गति से बहाया जाता है। स्टार्च धीरे-धीरे पृथक् होकर मेज पर पर्त रूप मे जम जाता है और पानी बह कर नीचे के सिरे से गिर जाता है। मेज की लम्बाई साधारणत १२० फुट, चौडाई २० फुट और गहराई १०-११ इच होती है। मेज़ पर जमे स्टार्च को खुरच कर निकालने के बाद पानी के साथ निलम्बित किया जाता है और पुन पहले की भाँति मेज़ पर तलछटीकरण के लिए प्रवाहित किया जाता है। अब जो स्टार्च की पर्त मेज पर पृथक् होती है उसे पानी के साथ निलम्बित कर उसमे थोडा सोडियम हाइपोक्लोराइट मिलाया जाता है। हाइपोक्लोराइट स्टार्च

मे मौजूद रग को नष्ट करने का काम करता है। हाइपोक्लोराइट की क्रिया के बाद स्टार्च-निलम्बन मे थोडी क्लोरीन रह जाती है। इसे दूर करने के लिए निलम्बन मे थोडा सल्फर डाइ-आक्साइड मिलाया जाता है। इस प्रकार शोधित करने के बाद स्ट.र्च-निलम्बन को अपकेन्द्री यन्त्र मे भेजा जाता है, जहाँ इसका अधिकाश पानी निकल जाता है और स्टार्च ठोस पर्त रूप मे अपकेन्द्री की जाली के चारो ओर चिपका रह जाता है। इस स्टार्च मे अब भी लगभग ३५ प्रतिशत पानी रहता है। अपकेन्द्री यन्त्र से निकाल कर इसे उपयुक्त शोषक मे भेज कर सुखाया जाता है और अन्त मे चक्की मे महीन पीस कर तथा पैकटो मे भर कर बाज़ारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

मेज़ के निचले सिरे से टपक कर जो पानी नीचे गिरता है तथा अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा जो पानी पृथक् होता है उसमे थोडा स्टार्च निलम्बित अवस्था मे रहता है। इसे बडे-बडे कुडो मे, जिनके नीचे का भाग शकु के आकार का होता है, भर कर रख दिया जाता है। लगभग २४ घटे मे इस पानी का स्टार्च धीरे धीरे तली मे बैठ जाता है और स्वच्छ पानी अधिपृष्ठ द्रव के रूप मे पृथक् हो जाता है। ऊपर से निथार कर पानी को फेक दिया जाता है और तली मे बैठे अशुद्ध स्टार्च को बाहर निकाल कर तथा इसमे थोडा चूने का पानी मिला कर इसे मेज़ पर भेजे जाने वाले मुख्य स्टार्च-दुग्ध मे मिला दिया जाता है।

उपयोग—शकरकद का स्टार्च सूती कपडो पर कलफ देने के लिए बहुत अच्छा सिद्ध हुआ है। अन्य स्टार्चो की तुलना मे इसके कलफ से कपडो पर सफेदी, चिकनापन तथा कडापन अधिक आता है। यह कागज़ के लिए सज्जक के रूप मे तथा गोद, लेई और डेक्सट्रिन बनाने मे भी बडा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

शकरकद को सुखा कर और महीन पीस कर जो आटा प्राप्त होता है उसमे स्टार्च लगभग ८०-९० प्रतिशत रहता है। इस आटे का उपयोग भी आजकल लेई बनाने मे बहुत होता है। यह लेई रेशो के सन्दूक तथा कुछ अन्य कामो के लिए बहुत अच्छी होती है किन्तु इसमे कुछ रग रहता है जिसके कारण उत्तम कोटि के रेशो के सन्दूक बनाने मे इसका उपयोग नही हो सकता। अन्य बहुत से कामो मे, जहाँ इसके रग से कोई हानि नही होती, इसकी लेई का बडा उपयोग किया जाता है। इस आटे का कुछ उपयोग डबल रोटी बनाने तथा शराब बनाने मे भी होता है।

केले से स्टार्च प्राप्त करना

केला दक्षिणी एशिया के सभी स्थानो मे बहुतायत से उगता है। इसकी फलियो में खाद्य अवयवो की निम्न मात्राएँ रहती हैं.—

प्रोटीन	३ प्रतिशत
कार्बोहाइड्रेट	३६ ५ ,,
वसा	० २ ,,
खनिज द्रव्य	०.७ ,,
जल	६०.० ,,

केले के कार्बोहाइड्रेट मे मुख्य रूप से स्टार्च होता है। इसके खनिज द्रव्य मे लोहे के लवण भी रहते है। इस प्रकार केले मे खाद्य अवयवो की अच्छी तथा उचित मात्राओ के रहने के कारण यह एक पौष्टिक खाद्य पदार्थ है, और जिन स्थानो मे यह अधिक होता है वहाँ के निवासियो का मुख्य भोजन पदार्थ है। केले की कच्ची फलियो से स्टार्च प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु केले की फलियो का मुख्य रूप से भोजन के रूप मे ही उपयोग होता है। स्टार्च प्राप्त करने के लिए इनका उपयोग नही होता।

केले के हरे तने मे भी स्टार्च की अच्छी मात्रा रहती है और इधर कुछ वर्षों के भीतर की गयी खोजो से ज्ञात हुआ है कि यह स्टार्च प्राप्त करने का अच्छा स्रोत है। स्टार्च निकालने के लिए केले के ताज़े हरे तने को महीन काट कर पानी मे डाल दिया जाता है, और मशीन द्वारा चालित विलोडक द्वारा खूब मथा जाता है। मथने से केले के तने की कोशिकाएँ फट जाती हैं और उनमे सगृहीत स्टार्च पानी मे निकल आता है। इसे फिर चलनी द्वारा छाना जाता है। स्टार्च पानी के साथ निलम्बन के रूप मे छन कर निकल आता है और तने के रेशे आदि चलनी के ऊपर अवशिष्ट के रूप मे बच रहते है। इस स्टार्च-निलम्बन को, जो स्टार्च-दुग्ध कहलाता है, अब साद टकियो मे भर कर शान्त छोड दिया जाता है। स्टार्च नीचे तली मे धीरे-धीरे बैठ जाता है और पानी ऊपर पृथक् हो जाता है। जब पूर्ण रूप से स्टार्च नीचे बैठ जाता है तो ऊपर थिरे हुए साफ पानी को निथार कर फेंक दिया जाता है और तली मे एकत्रित स्टार्च को अलग निकाल कर तथा सुखा कर रख लिया जाता है।

भारतवर्ष मे इधर कुछ वर्षो से केले के तने से स्टार्च प्राप्त करने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, क्योकि मकई तथा अन्य अनाज जिनसे स्टार्च साधारण रीति से प्राप्त किया जाता है भोजन पदार्थ हैं और इनसे प्राप्त स्टार्च महँगा होता है।

निर्देश

१ E. Peschke and F. Tobler, *Faserforsch*, 1925, **4**, 252, *Chem. Zentr.*, 1925, **96**, II, 1233.

अध्याय ५

स्टार्च के अवयव तथा गुणधर्म

स्टार्च के अवयव ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन

स्टार्च वास्तव मे रासायनिक दृष्टि से समाग पदार्थ नही है। यह दो रासायनिक यौगिको—ऐमिलोस (amylose) और ऐमिलोपेक्टिन (amylopectin)—का एक मिश्रण है। ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन दोनो ही बडे सकीर्ण बहुलक (polymers) है और दोनो ही ग्लूकोस अणुओ के परस्पर के सघनन से बने है, किन्तु दोनो की रासायनिक सरचना एक दूसरे से भिन्न है। ऐमिलोस का अणुभार ऐमिलोपेक्टिन के अणुभार की अपेक्षा कुछ कम रहता है, अर्थात् ऐमिलोपेक्टिन का अणु ऐमिलोस की तुलना मे अधिक सकीर्ण है। ऐमिलोस का एक अणु २०० से १००० ग्लूकोस अणुओ के सघनन से बना है, किन्तु ऐमिलोपेक्टिन के एक अणु मे १५०० या इससे भी अधिक ग्लूकोस इकाइयाँ सघनित रहती है। इन दोनो मे ग्लूकोस इकाइयो का सयोजन और प्रबन्ध भिन्न प्रकार का है और इसी के अनुसार इनके गुणधर्म भी एक दूसरे से भिन्न है। शुद्ध ऐमिलोस से धागे तथा फिल्म बनाये जा सकते है जो रुई के धागो की भाँति मज़बूत और लचीले होते है और खीचने से शीघ्र टूटते नही, किन्तु ऐमिलोपेक्टिन से ऐसे धागे और फिल्म नही बनाये जा सकते। ऐमिलोपेक्टिन भगुर होता है और इस कारण इसके फिल्म और धागे नही बन पाते, यदि बनते भी हैं तो चोट लगने से तुरन्त टूट जाते है। इस गुण से इन दोनो के भौतिक आकार पर प्रकाश पडता है।

साधारण स्टार्च के गुण इन दोनो अवयवो की उपस्थित मात्राओ के अनुपात के अनुसार होते हैं।

ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन को पृथक् करना—विभिन्न स्टार्चों मे ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन की प्रतिशत मात्राएँ भिन्न होती हैं। मकई के स्टार्च मे ऐमिलोस लगभग २८ प्रतिशत रहता है और शेष ऐमिलोपेक्टिन होता है। मोमीय मकई तथा ज्वार (sorghum) मे ऐमिलोस बिल्कुल नही रहता, केवल ऐमिलोपेक्टिन ही रहता

है। साधारणत , अनाजो मे ऐमिलोस की प्रतिशत मात्रा १५ से ३० तक रहती है। निम्न तालिका मे कुछ वस्तुओ के स्टार्च मे वर्तमान ऐमिलोस की प्रतिशत मात्राएँ दिखलायी गयी है; शेष ऐमिलोपेक्टिन होता है .—

स्टार्च	ऐमिलोस
मटर	६०.७५ प्रतिशत
साबूदाना	२७.०० ,,
गेहूँ	२४.२६ ,,
मकई	२२.२९ ,,
टैपियोका	१७.० ,,
चावल	१७.० ,,
केला	२०.५ ,,
आलू	२२.० ,,
मोमीय जौ	० ,,
मोमीय मकई	० ,,

स्टार्च मे वसा भी सूक्ष्म मात्राओ मे मौजूद रहती है। इसे पहले निकाल दिया जाता है। पानी तथा मेथिल ऐलकोहल का १५ ८५ के अनुपात मे बना मिश्रण स्टार्च मे उपस्थित वसा को घुलाने के लिए अच्छा विलायक है। जलीय मेथिल ऐलकोहल द्वारा स्टार्च की सब वसा को निकालने के बाद शुद्ध स्टार्च को पानी के साथ ऑटोक्लेव (autoclave) मे दाब पर गरम किया जाता है। स्टार्च का एक समाग विलयन बन जाता है। इस विलयन मे गरम अवस्था मे ही आयतन के हिसाब से १० प्रतिशत मात्रा नार्मल-ऐमिल ऐलकोहल की मिलायी जाती है। इसे फिर धीमी गति से ठडा किया जाता है और अत मे बर्फ द्वारा ठडा किया जाता है। सुई के आकार के मणिभो के रूप मे एक अवक्षेप पृथक् होता है जिसे अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा मातृ-द्राव से अलग कर लिया जाता है। यह अवक्षेप स्टार्च का ऐमिलोस अश होता है। इसे पुन ऊपर की भाँति पानी मे दाब पर घुला कर ऐमिल ऐलकोहल द्वारा अवक्षेपित किया जाता है। इस रीति से कई बार मणिभीकरण करने पर शुद्ध रूप मे स्टार्च का ऐमिलोस अवयव प्राप्त हो जाता है।[1]

ऐमिलोस को ऊपर की विधि से पृथक् करने के बाद जो मातृ-द्राव बचता है उसमे ऐमिलोपेक्टिन मौजूद रहता है। इस मातृ-द्राव मे शुद्ध मेथिल ऐलकोहल मिलाने से ऐमिलोपेक्टिन अवक्षेपित हो जाता है। इसे शुद्ध करने के लिए पुन पानी में दाब पर

घुलाया जाता है और पुन: मेथिल ऐलकोहल द्वारा अवक्षेपित किया जाता है। इस प्रकार कई बार मणिभीकरण करने से शुद्ध रूप मे ऐमिलोपेक्टिन प्राप्त हो जाता है।

एक दूसरी विधि[२] मे डायस्टेस एन्ज़ाइम द्वारा स्टार्च का किण्वन (fermentation) किया जाता है। डायस्टेस केवल ऐमिलोस पर क्रिया करता है और इसे जल-विश्लेषित कर माल्टोस शर्करा मे बदल देता है। डायस्टेस का ऐमिलोपेक्टिन पर कोई प्रभाव नही पडता। डायस्टेस की क्रिया के बाद उत्पन्न हुए माल्टोस को अपोहन (dialysis) द्वारा ऐमिलोपेक्टिन से पृथक् कर लिया जाता है और शुद्ध ऐमिलोपेक्टिन प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार इस विधि से केवल ऐमिलोपेक्टिन ही प्राप्त किया जा सकता है, ऐमिलोस का अश नष्ट हो जाता है।

स्टार्च में ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन का परिमापन (Estimation of amylose and amylopectin in starch)—स्टार्च का ऐमिलोस अवयव आयोडीन का अधिशोषण कर नीला सकीर्ण यौगिक बनाता है, ऐमिलोपेक्टिन आयोडीन के साथ कोई अभिक्रिया नही करता। स्टार्च के साथ आयोडीन विलयन जो नीला रग देता है वह ऐमिलोस द्वारा आयोडीन का अधिशोषण किये जाने के फलस्वरूप है। अत: आयोडीन की प्रतिक्रिया के आधार पर ऐमिलोस का मात्रात्मक परिमापन किया जा सकता है और फिर स्टार्च की तोल मे से ऐमिलोस की मात्रा घटाने पर ऐमिलोपेक्टिन की मात्रा ज्ञात हो सकती है।

शुद्ध ऐमिलोस द्वारा आयोडीन का कितना अधिशोषण होता है, यह पहले ज्ञात कर लिया जाता है (शुद्ध ऐमिलोस १९ प्रतिशत आयोडीन अधिशोषित करता है)। फिर जिस स्टार्च मे ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन का परिमापन करना होता है उसकी एक निश्चित तोल थोडे पानी मे निलम्बित कर उसमे प्रामाणिक आयोडीन विलयन की अधिक मात्रा डाल दी जाती है। जितना आयोडीन ऐमिलोस द्वारा अधिशोषित होता है वह पोटेशियोमेट्रिक अनुमापन द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है। गणना द्वारा फिर यह ज्ञात हो जाता है कि कितना ऐमिलोस स्टार्च की ली गयी मात्रा मे मौजूद है। ऐमिलोस की इस मात्रा को स्टार्च की तोल मे से घटाने पर ऐमिलोपेक्टिन की मात्रा ज्ञात हो जाती है। इन फलो से फिर स्टार्च मे ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन दोनो अवयवो का प्रतिशत ज्ञात हो जाता है।

विभिन्न स्टार्चों के ऐमिलोस की आयोडीन के प्रति प्रक्रिया एकदम समान नही होती। यह अन्तर सम्भवत: विभिन्न ऐमिलोस शृखला की लम्बाई के अन्तर के कारण है, किन्तु यह निश्चित रूप से अभी ज्ञात नही है। इसी प्रकार विभिन्न स्टार्चों के ऐमि-

लोपेक्टिन मे भी परस्पर थोडा अन्तर आयोडीन के प्रति होता है, किन्तु इसका भी वास्तविक कारण अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नही हो सका है।

मोमीय तथा ग्लूटेनीय स्टार्च

कुछ अनाजो का स्टार्च आयोडीन के साथ नीला रग न देकर लाल या पीला आदि कोई अन्य रग देता है। इस स्टार्च का ज्ञान पिछले लगभग ७० वर्षों से है और कुछ वर्षों पूर्व तक यही समझा जाता था कि यह एक नये प्रकार का स्टार्च है, किन्तु स्टार्च की रासायनिक सरचना का स्पष्टीकरण हो जाने से अब हमे यह ज्ञात हो गया है कि इस स्टार्च मे मुख्य रूप से ऐमिलोपेक्टिन रहता है। आयोडीन के साथ नीला रग देने वाले स्टार्चो मे ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन दोनो मिश्रण रूप मे रहते है। आयोडीन के साथ लाल रग देने वाले स्टार्च को तथा जिन अनाजो मे यह पाया जाता है, उन्हें **मोमीय** या **ग्लूटेनीय** (waxy or glutinous) नाम दिया गया है, किन्तु यह नाम भ्रामक है। इस नाम से यह बोध होता है कि इनमे मोम या ग्लूटेन की मात्रा विशेष रूप से रहती है, किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। मोमीय नाम देने का कारण यह है कि जिन अनाजों मे यह स्टार्च पाया जाता है उनके भ्रूणपोष को काटने पर उसकी सतह कडे मोम की तरह दिखलाई देती है। ग्लूटेनीय नाम इनकी लेई के अच्छे आसजक गुण पर आधारित है।

जैसा हम पीछे पढ चुके है स्टार्च का ऐमिलोस अवयव ही आयोडीन के साथ नीला रग उत्पन्न करता है, ऐमिलोपेक्टिन के साथ आयोडीन कोई रग नही देता। अतः मोमीय स्टार्च के साथ जो रग आयोडीन देता है वह वास्तव मे आयोडीन विलयन और स्टार्च के रग के बीच का ही कोई रग होता है।

नीचे की तालिका मे कुछ पौधो के नाम दिये गये है जिनमे यह स्टार्च पाया जाता है —

ग्लूटेनीय चावल (Oryza glutinosa)
ग्लूटेनीय ज्वार (Sorghum vulgare)
मोमीय जौ (Hordeum sativum)
मोमीय मकई (Zea mays)
मोमीय ज्वार (Penicum miliaceum)

जिन स्थानो मे ये मोमीय अनाज पैदा होते है वहाँ लोगो को बहुत प्राचीन काल से यह मालूम था कि यह स्टार्च सामान्य स्टार्च से पकाने पर भिन्न गुण प्रकट करता है। ग्लू-

टेनीय चावल का बहुत उपयोग प्राचीन समय से भारतवर्ष तथा चीन मे आसजक के अर्थ होता रहा है। इसे केवल निर्धन लोग ही भोजन के रूप मे खाते है। कुछ वस्तुएँ बनाने के लिए यह स्टार्च विशेष रूप से उपयुक्त माना जाता है। जापान मे इस चावल का उपयोग एक विशेष प्रकार की रोटी जिसे 'मोची' (mochi) कहते है बनाने मे तथा एक पेय तैयार करने मे बहुत प्राचीन काल से होता रहा है।

ग्लूटेनीय ज्वार भी कई प्रकार की भोजन की वस्तुएँ पका कर बनाने के लिए उपयुक्त समझी जाती है। ऐसा अनुमान है कि चीन मे इमे ईसा के २००० वर्ष पूर्व से उगाया जाता रहा है। इससे यहाँ एक ऐलकोहलिक पेय बडी मात्रा मे प्राप्त किया जाता है।

मोमीय मकई के छिलके का उपयोग उत्तरी बरमा मे सिगार को लपेटने के लिए होता रहा है। इसमे चिपकने का गुण बहुत होता है। भोजन की दृष्टि से यह साधारण मकई की तुलना मे हीन है। इसमे साधारण मकई की अपेक्षा तेल की मात्रा थोडा अधिक होती है। साधारण मकई के स्टार्च की लेई ठडा किये जाने पर शीघ्र ही अपारदर्शक हो जाती है और यदि लेई की सान्द्रता ४ प्रतिशत से अधिक होती है तो यह कडे जेल (gel) के रूप मे जम जाती है, किन्तु मोमीय मकई के स्टार्च की २० प्रतिशत सान्द्रता तक की लेई ठढी किये जाने पर न तो अपारदर्शक होती है और न जेल के रूप मे जमती ही है। अत अपने निम्न गुणो के कारण मोमीय मकई का स्टार्च आसजक के रूप मे उपयोग करने के लिए बहुत उपयुक्त है—लेई की पारदर्शकता, अधिक श्यानता, इसके शीघ्र जेल के रूप मे न जमने का गुण, इसकी अधिक आसजक शक्ति तथा इसके रासायनिक अभिकर्मक द्वारा शीघ्र डेक्सट्रिन मे परिवर्तित होने का गुण। मोमीय स्टार्च से बना डेक्सट्रिन अधिक आसजकता का होता है और इसमे अधिक तरलता (fluidity) होती है जिसके कारण यह लिफाफो पर गोद के अर्थ प्रयुक्त होने के लिए अधिक उपयुक्त आसजक है।

मोमीय स्टार्च को श्लिषीय ताप से नीचे के ताप पर अम्लो द्वारा अभिकृत कर जो तनु अवस्था मे उबलने वाले स्टार्च (thin boiling starch) प्राप्त किये जाते है, उनमे एक बड़ा अच्छा गुण यह होता है कि वे ठडा किये जाने पर भी मुलायम तथा तरल बने रहते है। इसके विपरीत साधारण मकई, आलू और टैपियोका के स्टार्च से बनाये गये तनु अवस्था मे उबलने वाले स्टार्च ठढा होने पर कडे और भगुर जेल के रूप मे शीघ्र जम जाते है। इस गुण के कारण मोमीय स्टार्च का बडा उपयोग रुई के महीन कपडो के सज्जीकरण के लिए होता है। अच्छे कागजो पर भी सज्जीकरण करने में इसका उपयोग होता है।

स्टार्च के गुणधर्म

भौतिक गुणधर्म (Physical properties)—शुद्ध स्टार्च गधरहित तथा स्वादरहित एक स्वच्छ उदासीन चूर्ण है जो ठढे पानी मे तथा अधिकाश कार्बनिक विलायको मे अविलेय है। पूर्ण रूप से सुखाया गया स्टार्च जल-ग्राही होता है। हवा मे सुखाये गये स्टार्च मे पर्याप्त मात्रा मे पानी रह जाता है।

स्टार्च पानी मे यद्यपि अविलेय है पर पानी के सम्पर्क मे रहने पर कुछ अश तक फूलता है। सुखाने पर फिर यह सिकुड कर अपने पहले रूप मे आ जाता है। विभिन्न पदार्थो से प्राप्त होने वाले स्टार्च एक दूसरे से कणो के आकार, रूप तथा नाप मे बहुत भिन्नता प्रदर्शित करते है और इस कारण प्राय सूक्ष्मदर्शी द्वारा स्टार्च-कणो का परीक्षण कर यह जाना जा सकता है कि कोई स्टार्च किस पदार्थ से प्राप्त किया गया है।
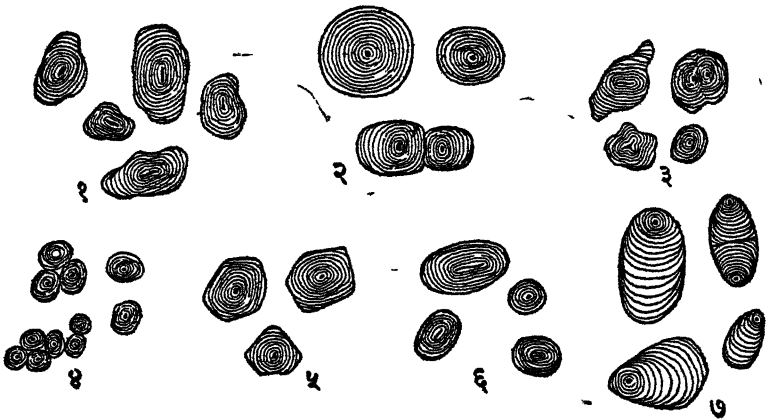
चित्र ५—स्टार्च-कण

[१—मटर के; २—केले के; ३—शकरकंद के; ४—चावल के; ५—मकई के; ६—चने के बीजपत्र के; ७—आलू के]

साधारण रीति से कदो और जडो मे पाये जाने वाले स्टार्च के कण बीजो मे पाये जाने वाले स्टार्च के कणो से अधिक बडे होते है। बीजो के स्टार्च-कणो की लम्बाई साधारणत ३ से २० म्यू तक होती है, किन्तु कदो और जडो के स्टार्च-कणो की लम्बाई १० से १०० म्यू तक होती है। कदो और जडो के स्टार्च बीजो के स्टार्च की अपेक्षा अधिक शुद्ध भी होते है। प्राकृतिक अवस्था मे सभी स्टार्चो के कण द्वि-वर्तनशील (birefringent) होते है।

स्टार्च को पानी मे डालने पर स्टार्च-कण धीरे-धीरे पानी शोषित करते हैं और फूलते है, और इसी के अनुसार इनकी द्वि-वर्तनता घटती जाती है। यह क्रिया ताप की वृद्धि के साथ-साथ ७०° से० ग्रे० तक बढती जाती है। इससे ऊँचे ताप पर पानी के साथ गरम किये जाने पर स्टार्च-कण इतना फूल जाते है कि वे फटने लगते है और पानी के साथ मिश्रित होकर एक कलिल विलयन या श्लिषीय विलयन बनाते है, और इनकी द्वि-वर्तनता पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है। स्टार्च के इस प्रकार श्लिषीय विलयन मे परिवर्तित होने की क्रिया श्लिषीकरण (gelatinization) कहलाती है, और वह ताप जिस पर इसके कणो की द्वि-वर्तनता पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है और यह श्लिषीय रूप मे परिवर्तित हो जाता है, श्लिषीकरण ताप (gelatinization temperature) कहलाता है। यदि पानी की मात्रा अधिक रहती है तो कलिल विलयन बनता है और यदि कम तो श्लिषीय विलयन प्राप्त होता है। प्रत्येक स्टार्च का श्लिषीकरण ताप भिन्न होता है, किन्तु साधारणत ६०° सें० ग्रे० और ८०° से० ग्रे० के बीच मे रहता है। श्लिषीकरण ताप कणो की न.प पर भी बहुत अश तक निर्भर करता है। जिस स्टार्च के कण छोटे होते है उसका श्लिषीकरण साधारणत. उस स्टार्च की अपेक्षा जिसके कण बडे होते है अधिक ऊँचे ताप पर तथा अधिक धीमी गति से होता है। विलयन की हाइड्रोजन आयन-सान्द्रता का भी प्रभाव श्लिषीकरण ताप पर पडता है। कास्टिक क्षार की उपस्थिति मे साधारण ताप पर ही स्टार्च का श्लिषीकरण हो जाता है और कलिल विलयन प्राप्त होता है।

जब स्टार्च-कणो को पानी के साथ श्लिषीकरण ताप से ऊपर लगभग १००° सें० ग्रे० ताप पर गरम किया जाता है तो कण बहुत अधिक फैल जाते है और पारदर्शक तथा भजनशील हो जाते है, और एक गाढी श्यान (viscous) लेई बन जाती है। इस लेई को और अधिक ऊँचे ताप पर, लगभग १२०° सें० ग्रे०, गरम करने पर कण टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते है और उनका आकीर्णन (dispersion) हो जाता है। कणो को भौतिक या यान्त्रिक रीति से छिन्न-भिन्न करने पर उनमे ठडे पानी मे ही आकीर्ण होने का गुण आ जाता है।

जब स्टार्च-कणो को अधिक पानी के साथ गरम किया जाता है तो कणो के फूलने की मात्रा ताप पर निर्भर करती है, अर्थात् एक निश्चित ताप तक गरम करने पर वे एक निश्चित अश तक फूलते हैं और फिर चाहे जितनी देर तक इस ताप पर रहें और अधिक नही फूलते। ताप की वृद्धि करने पर उनका और फूलना पुन. आरम्भ होता है। किन्तु यदि पानी की मात्रा पर्याप्त नही रहती तो कणो का फूलना भी पूर्ण अश तक नही हो पाता।

श्लिषीकृत होने के पूर्व कणो का आकार मणिभीय होता है, जैसा एक्स-किरणो मे लिये गये चित्रो से विदित होता है। श्लिषीकरण ताप पर द्वि-वर्तनता नष्ट हो जाती है और कम मणिभीय अवस्था हो जाती है। अधिक पानी मे ९०°-१००° से० ग्रे० ताप पर कणो की पूर्ण अमणिभीय (non-crystalline) अवस्था हो जाती है।

स्टार्च का एक विशेष गुण यह है कि जब इसका एक जलीय विलयन बना कर शान्त रख दिया जाता है तो विलयन धीरे धीरे अपारदर्शिता (opacity) प्रदर्शित करने लगता है और अन्त मे ठोस कणो के रूप मे अवक्षेपित होने लगता है। स्टार्च के इस गुण को **पश्चगमन** (retrogradation) कहते हैं। पश्चगमन का कारण निम्न है —

स्टार्च मे अणु परस्पर एकत्रित होकर बडे समूह बनाते है। जब स्टार्च पानी मे घोला जाता है तो इसके समूह विच्छिन्न होकर अणुओ मे पृथक् हो जाते है और फलस्वरूप एक अर्ध-पारदर्शक या पारदर्शक कलिल विलयन बनता है। रखे रहने पर इस विलयन के अणु पुन परस्पर धीरे-धीरे जुटने लगते हैं और अन्त मे अपने पूर्व रूप मे आ जाते है जो पानी मे अविलेय होने के कारण अवक्षेपित होकर पृथक् हो जाते हैं। इस प्रकार पश्चगमन का गुण अमणिभीय अवस्था से सगठित मणिभीय अवस्था मे आने के फलस्वरूप है।

पश्चगमन का गुण व्यावहारिक दृष्टि से बडे महत्त्व का है। रोटी के बासीपन मे तथा परिरक्षित सूप (soup), मटर, मकई तथा अन्य भोजन पदार्थों मे, जिनमे स्टार्च डाला जाता है, जो परिवर्तन रखने पर होते हैं वे पश्चगमन के गुण के कारण ही मुख्य रूप से होते है। कपडे और कागज के सज्जीकरण मे तथा आसजक उद्योग में भी इस गुण का महत्त्व है।

जब स्टार्च को चक्की मे महीन पीसा जाता है तब भी इसके कण फट जाते है। इस प्रकार का महीन पिसा स्टार्च ठडे पानी के साथ श्लिषीय विलयन बनाता है।

स्टार्च एक कलिल पदार्थ (colloidal substance) है। इसके जलीय विलयन या श्लिष की श्यानता (viscosity), मजबूती तथा चिपकने की शक्ति आदि गुण बहुत महत्त्व के है। इन गुणो के आधार पर ही विभिन्न स्टार्चो का मूल्य बाजारो मे निर्धारित होता है।

स्टार्च चूर्ण हलका और चिकना होता है और इसमे वस्तु को आच्छादित करने का अच्छा गुण होता है। अपने इन गुणो के कारण स्टार्च चूर्ण का बडा उपयोग प्रसाधन पाउडरो के रूप मे तथा पाकचूर्ण बनाने मे होता है। स्टार्च चूर्ण मे अच्छी शोषण शक्ति भी होती है। अत विभिन्न बहु-सक्रिय रासायनिक पदार्थो को स्टार्च मे शोषित

करा कर उन पदार्थो की सक्रियता को नियन्त्रित किया जा सकता है और इस कार्य के लिए भी स्टार्च का बडा उपयोग है।

रासायनिक गुणधर्म (Chemical properties)—(१) **विच्छेदन** (decomposition)—स्टार्च को जब नियन्त्रित अवस्था मे २००°–२५०° सें० ग्रे० ताप पर गरम किया जाता है तो यह विच्छेदित हो जाता है और गोद की तरह का एक पदार्थ बनाता है जिसे डेक्सट्रिन (dextrin) कहते है। डेक्सट्रिन भी स्टार्च की भाँति ग्लूकोस अणुओ के परस्पर के सघनन से बना यौगिक है, किन्तु यह स्टार्च की अपेक्षा कुछ कम सकीर्ण है। इस प्रकार यह स्टार्च का ही एक व्युत्पन्न है। दूसरे शब्दो मे, जब स्टार्च के अणु मे से कुछ ग्लूकोस अणुओ को पृथक् कर इसकी सकीर्णता घटा दी जाती है तो डेक्सट्रिन बनता है —

$$\underset{\text{स्टार्च}}{(C_6H_{10}O_5)n} \longrightarrow \underset{\text{डेक्सट्रिन}}{(C_6H_{10}O_5)n_1}$$
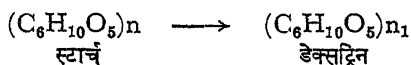
ऊपर के सूत्रो मे n_1 सख्या n से छोटी है।

(२) **अधिशोषण** (adsorption)—स्टार्च मे एक बडे महत्त्व का गुण पदार्थों को अधिशोषण करने का है। स्टार्च आयोडीन विलयन के साथ एक गहरा नीला सकीर्ण पदार्थ बनाता है और यह स्टार्च का एक सूक्ष्म परीक्षण है। यह नीला पदार्थ भी स्टार्च द्वारा आयोडीन के अधिशोषण होने के कारण ही बनता है। अधिशोषण का गुण मुख्य रूप से ऐमिलोस मे होता है, ऐमिलोपेक्टिन मे नही। इसी कारण शुद्ध ऐमिलोपेक्टिन आयोडीन के साथ कोई रग नही उत्पन्न करता, केवल ऐमिलोस ही नीला रग देता है। इस परीक्षण द्वारा ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन को एक दूसरे से पहचाना जा सकता है और साथ ही नीले रग की गहराई का परिमापन कर इन दोनो की प्रतिशत मात्रा भी किसी स्टार्च मे ज्ञात की जा सकती है।

(३) **जल-विश्लेषण** (hydrolysis)—स्टार्च का मुख्य रासायनिक गुण इसका जल-विश्लेषित होकर विभिन्न रासायनिक पदार्थ उत्पन्न करना है। एन्ज़ाइम तथा अम्ल दोनो ही स्टार्च को सरलता से जल-विश्लेषित कर देते है और क्रम से पहले डेक्सट्रिन, फिर माल्टोस और अन्त मे ग्लूकोस उत्पन्न करते हैं —

$$\underset{\text{स्टार्च}}{(C_6H_{10}O_5)_n} \xrightarrow{H_2O} \underset{\text{विलेय स्टार्च}}{(C_6H_{10}O_5)n_1} \xrightarrow{H_2O} \underset{\text{डेक्सट्रिन}}{(C_6H_{10}O_5)n_2}$$

$$\xrightarrow{H_2O} \underset{\text{माल्टोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} \xrightarrow{H_2O} \underset{\text{ग्लूकोस}}{2C_6H_{12}O_6}$$
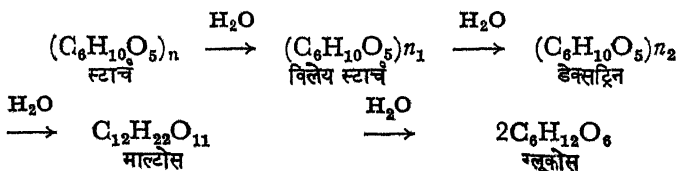
जल-विश्लेषण की क्रिया के ठीक नियत्रण से स्टार्च से वाछित पदार्थ प्राप्त किये जा सकते है।

किसी खनिज अम्ल की थोडी मात्रा स्टार्च के निलम्बन मे डालकर निलम्बन को उबालने से स्टार्च पूर्ण रूप से जल-विश्लेषित हो जाता है और ग्लूकोस उत्पन्न करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्टार्च केवल ग्लूकोस अणुओ के परस्पर के सघनन से बना यौगिक है —

$$\underset{\text{स्टार्च}}{(C_6H_{10}O_5)n} + nH_2O \xrightarrow{H_2SO_4} \underset{\text{ग्लूकोस}}{nC_6H_{12}O_6}$$
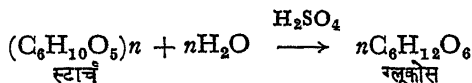
यदि अम्ल द्वारा जल-विश्लेषण की क्रिया नियत्रित रूप से करायी जाती है तो बीच का पदार्थ ऐमिलोडेक्सट्रिन (amylodextrin) प्राप्त होता है। ऐमिलोडेक्सट्रिन का पूर्ण जल-विश्लेषण करने पर अन्त मे ग्लूकोस उत्पन्न होता है।

एजाइमो द्वारा स्टार्च के जल-विश्लेषण की क्रिया ऐमिल-विच्छेदन (amylolysis) कहलाती है। विभिन्न एजाइमो द्वारा स्टार्च का जल-विश्लेषण विभिन्न प्रकार से होता है और विभिन्न पदार्थ प्राप्त होते है।

ऐमिलेस की क्रिया—स्टार्च जिस रूप मे पौधो मे पाया जाता है उस रूप मे स्टार्च पर ऐमिलेस की क्रिया नही होती। स्टार्च की लेई को खूब मथने पर या १२०° से० ग्रे० पर लगभग ३० मिनट तक गरम करने के बाद यह उपयुक्त रूप मे आता है जिस पर ऐमिलेस की क्रिया ठीक से होती है। साधारण रीति से विलेय स्टार्च का विलयन बना कर इस पर ऐमिलेस की क्रिया का अध्ययन किया जाता है।

(क) **α-ऐमिलेस की क्रिया**—हम पीछे पढ चुके है कि यह डेक्सट्रिन-उत्पादक एजाइम है। फफूँदो, अग्न्याशय, लार तथा विभिन्न जन्तुओ के यकृत से प्राप्त ऐमिलेस मुख्य रूप से α-ऐमिलेस होता है।

α-ऐमिलेस की स्टार्च पर क्रिया β–ऐमिलेस की क्रिया की अपेक्षा अधिक जटिल है। आरम्भ मे α-ऐमिलेस स्टार्च-अणु की शृखलाओ का विघटन करता है जिसके फलस्वरूप सरल शृखलाएँ बनती है। इन शृखलाओ की लम्बाई ६ ग्लूकोस इकाइयाँ होती है। ६ ग्लूकोस इकाइयो की शृखलाओ द्वारा सगठित यह सरल पदार्थ डेक्सट्रिन है। इस डेक्सट्रिन का फिर ऐमिलेस द्वारा जल-विश्लेपण बहुत धीमी गति से होता है। अत ऐसा अनुमान होता है कि α-ऐमिलेस लम्बी शृखलाओ पर क्रिया करने मे ही समर्थ है और शृखलाओ की लम्बाई एक सीमा से कम होने पर यह उस पदार्थ के प्रति विशेष क्रियाशील नही रहता।

तत्त्व नष्ट हो जाता हो जिसकी उपस्थिति के फलस्वरूप ही जीवित कोशिकाओ मे ये एज़ाइम स्टार्च को पूर्ण रूप से ग्लूकोस मे विच्छेदित करने मे समर्थ होते हैं। किन्तु इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पौधो मे जिस स्टार्च का उपापचय में उपयोग होता है वह ग्लूकोस मे ही जल-विश्लेषित होकर उपयोग मे आता हो इसका कोई सीधा प्रमाण नही है। यह सत्य है कि जैसे-जैसे स्टार्च की मात्रा पौधो मे घटती है ग्लूकोस की बढती है, किन्तु इसके साथ ही फ्रुक्टोस और सुक्रोस की मात्राएँ भी बढती हैं। अत यह निश्चित रूप से कह सकना कि स्टार्च पौधो मे जल-विश्लेषित होकर सीधे ग्लूकोस उत्पन्न करता है, हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर सम्भव नही है।

हाबसन, व्हीलन और पीट[1] (Hobson, Whelan and Peat) ने सन् १९५० मे आलू से एक नया एज़ाइम प्राप्त किया है जो ऐमिलोपेक्टिन के β-ऐमिलेस द्वारा जल-विश्लेषित होने के फलस्वरूप बने डेक्सट्रिन को शर्करा मे जल-विश्लेषित कर देता है। इस एज़ाइम का नाम R-एजाइम रखा गया है। इस प्रकार अब हमे वे समस्त एजाइम ज्ञात हो गये है, जिनकी क्रियाओ के फलस्वरूप पौधो के भीतर स्टार्च का जल-विश्लेषण ग्लूकोस मे होता है।

नवीन खोजो से अब यह भी ज्ञात हुआ है कि β-ऐमिलेस की ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन पर क्रिया होने पर माल्टोस के अतिरिक्त माल्टोट्राइओस (maltotriose) भी पर्याप्त मात्रा मे बनता है। माल्टोट्राइओस एक ट्राइसैकराइड है जो तीन ग्लूकोस अणुओ के सघनित होने से बना है। माल्टोट्राइओस का जल-विश्लेषण α-ऐमिलेस द्वारा नही हो पाता किन्तु β-ऐमिलेस इसे जल-विश्लेषित कर माल्टोस और ग्लूकोस उत्पन्न करता है।

(४) एस्टरीकरण—स्टार्च के अणु मे हाइड्राक्सिल मूलक भी मक्त अवस्था मे रहते हैं। मोटे तौर से स्टार्च अणु की प्रत्येक ग्लूकोस इकाई मे तीन मुक्त हाइड्राक्सिल मूलक रहते है। अत स्टार्च को ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड से अभिकृत करने पर स्टार्च ट्राइऐसीटेट बनता है —

$$\underset{\text{स्टार्च}}{[C_6H_7O_2(OH)_3]_n} \xrightarrow{(CH_3CO)_2O} \underset{\text{स्टार्च ट्राइ-ऐसीटेट}}{[C_6H_7O_2(OCOCH_3)_3]_n}$$
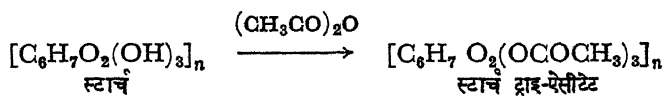
इसी प्रकार कुछ अन्य अम्लो के साथ भी स्टार्च के एस्टर बनते हैं। सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल की उपस्थिति मे सान्द्र नाइट्रिक अम्ल के साथ अभिकृत किये जाने पर यह नाइट्रिक एस्टर बनाता है जो स्टार्च नाइट्रेट या नाइट्रो-स्टार्च कहलाता है —

$$[C_6H_7O_2(OH)_3]_n \xrightarrow{HNO_3/H_2SO_4} \underset{\text{स्टार्च नाइट्रेट}}{[C_6H_5O_2(ONO_2)_3]_n}$$
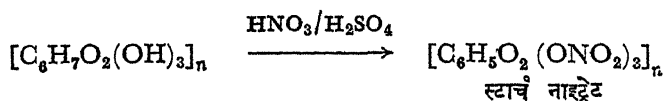
नाइट्रो-स्टार्च एक विस्फोटक पदार्थ है और विस्फोटक के रूप मे इसका बडा उपयोग होता है।

(५) ईथरीकरण—डाइ-मेथिल सल्फेट के साथ कास्टिक क्षार की उपस्थिति मे अभिकृत किये जाने पर स्टार्च एक ट्राइ-मेथिल यौगिक बनाता है जो एक ईथर यौगिक है.—

$$[C_6H_7O_2(OH)_3]_n \xrightarrow{(CH_3)_2SO_4/NaOH} \underset{\text{ट्राइमेथिल स्टार्च}}{[C_6H_7O_2(OCH)_3]_n}$$
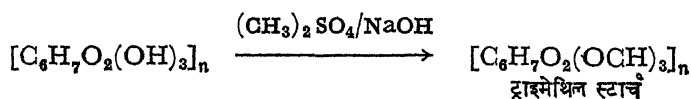
(६) आक्सीकरण—स्टार्च का आक्सीकरण विभिन्न आक्सीकारको द्वारा होने पर विभिन्न पदार्थ प्राप्त होते है। सान्द्र नाइट्रिक अम्ल से स्टार्च को आक्सीकृत करने पर आक्सैलिक अम्ल प्राप्त होता है। इस क्रिया मे स्टार्च का जल-विश्लेषण तथा आक्सीकरण साथ-साथ होता है। पहले जल-विश्लेषण होकर ग्लूकोस उत्पन्न होता है और यह फिर आक्सीकृत होकर आक्सैलिक अम्ल मे परिणत हो जाता है.—

$$(C_6H_{10}O_5)_n \xrightarrow{HNO_3/H_2O} \underset{\text{ग्लूकोस}}{nC_6H_{12}O_6} \longrightarrow$$

$$\underset{\text{आक्सैलिक अम्ल}}{n[2(COOH)_2 + 2CO_2 + 4H_2O]}$$
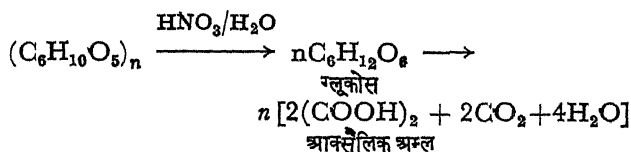
स्टार्च को कार्बन टेट्राक्लोराइड मे निलम्बित कर नाइट्रोजन डाइ-आक्साइड द्वारा आक्सीकृत करने पर पालीग्लूक्यूरोनिक अम्ल (polyglucuronic acid) प्राप्त होता है। पालीग्लूक्यूरोनिक अम्ल मे स्टार्च की प्रत्येक ग्लूकोस इकाई का प्राइमरी ऐलकोहली मूलक (CH_2OH) कार्बाक्सिल मूलक मे आक्सीकृत हो जाता है।

$$\underset{\text{ग्लूक्यूरोनिक अम्ल}}{CHO\text{-}(CHOH)_4\text{-}COOH}$$

पालीग्लूक्यूरोनिक अम्ल के लवणो का उपयोग उद्योग मे आकीर्णक (dispersants), श्लिषकारक (gel formers), स्थायीकारक (stabilizers) तथा गाढक (thikening agents) आदि के रूप मे होता है।

साधारण अवस्था तक स्टार्च को आक्सीकृत करने पर विभिन्न ऐसे पदार्थ प्राप्त किये जाते है जिनके अणु बहुत अधिक विघटित नही हुए है। इन पदार्थों को आक्सीकृत स्टार्च कहते है। इनमे स्टार्च की अपेक्षा अधिक आसजकता होती है। ये शीघ्र घुल जाते है और इनके विलयनो मे स्टार्च विलयनो की अपेक्षा अधिक तरलता तथा पारदर्शिता भी होती है। इसका मुख्य उपयोग कागज और कपडो के सज्जक के रूप में तथा सूत मे माडी के रूप मे होता है। आक्सीकृत स्टार्च अधिकतर सोडियम या कैल्सियम हाइपोक्लोराइट द्वारा स्टार्च का आक्सीकरण कर प्राप्त किये जाते हैं।

साधारण रीति से लगभग ३५ प्रतिशत स्टार्च-निलम्बन को ६-७ प्रतिशत हाइपोक्लोराइट विलयन से ३५° –४०° ताप पर अभिकृत किया जाता है। बीच-बीच मे विलयन को निकाल कर उसकी तरलता देखते रहते हैं। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि आक्सीकरण किस अश तक हुआ है। जब तरलता-परीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि आक्सीकरण निर्धारित सीमा तक हो गया है तब अभिक्रिया को आगे बढने से रोक दिया जाता है। अभिक्रिया को रोकने के लिए इसमे सोडियम बाइ-सल्फाइट की इतनी मात्रा डाली जाती है कि मिश्रण का pH ३ और ६ के बीच में रहे। इसे फिर छान कर और घोल कर सुखा लिया जाता है। उचित नियत्रण द्वारा इच्छित प्रकार का आक्सीकृत स्टार्च बनाया जा सकता है।

(७) **फार्मैल्डीहाइड के साथ प्रक्रिया**—शुष्क स्टार्च पर फार्मैल्डीहाइड की क्रिया कराने पर एक ऐसा पदार्थ प्राप्त होता है जो ५५° से० ग्रे० ताप पर पानी मे घुलकर एक गाढा विलयन बनाता है। यह पदार्थ १०० भाग स्टार्च को १ ८ भाग फार्मैल्डीहाइड के साथ ७६° से० ग्रे० पर एक बद बर्तन मे गरम करने पर बनता है। इस पदार्थ को डेढ गुना पानी के साथ ५५° सें० ग्रे० पर मिला कर एक लेई के रूप मे कर लेने के बाद फिर ८०° सें० ग्रे० पर सुखाने और चूर्ण करने से एक ऐसा पदार्थ प्राप्त होता है जो ठडे पानी मे विलेय होता है। यह पदार्थ १२–१४ गुने पानी मे घुल कर एकदम पारदर्शक आसजक श्लिष देता है जो प्लाइवुड को जोडने के लिए बहुत अच्छा आसजक है।

स्टार्च के उपयोग

स्टार्च का सबसे बडा महत्त्व यह है कि यह हमारे भोजन का मुख्य अवयव है। इसके अतिरिक्त स्टार्च का बडा उपयोग ऐलकोहल, ग्लूकोस, डेक्सट्रिन, माल्टोस तथा कैरामेल (caramel) बनाने मे होता है। कपडो पर कलफ देने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। कपडो पर स्टार्च का कलफ देने के बाद जब इस्तरी की जाती

है तो कलफ का स्टार्च डेक्सट्रिन मे परिणत हो जाता है और इस प्रकार कपडे पर एक चमकीली पर्त डेक्सट्रिन की आ जाती है। इस काम के लिए आलू का स्टार्च अधिक उपयोग मे आता है। इसमे थोडा सुहागा भी मिला दिया जाता है। इससे अधिक चमक आती है। प्राय स्टियरिक अम्ल या पैराफिन मोम के चूर्ण के साथ मिला कर भी स्टार्च का उपयोग कलफ के लिए किया जाता है। इस मिश्रण से भी कपडो पर बडी चमक आती है। चावल के स्टार्च को पानी मे घोल कर सीधे भी कलफ के लिए उपयोग करते हैं।

गेहूँ के स्टार्च की लेई मे चिपकने का गुण बहुत अच्छा होता है, इस कारण इसका बडा उपयोग पुस्तको की जिल्द बँधाई मे तथा इश्तिहार आदि चिपकाने मे होता है।

कैलिको छपाई मे स्टार्च का उपयोग रगस्थापक (mordant) के रूप मे होता है। कागज के सज्जीकरण के लिए भी स्टार्च का उपयोग बहुत होता है।

प्रसाधन पाउडर बनाने मे चावल के स्टार्च का बहुत उपयोग होता है। धातुओ की ढलाई के काम मे साँचो पर छिडकने के लिए भी स्टार्च एक उपयोगी पदार्थ है।

प्रयोगशालाओ मे आयोडीन के आयतनात्मक परिमापन मे स्टार्च का सूचक (indicator) के रूप मे उपयोग होता है।

निर्देश

1. T J Schoch, J. Amer Chem. Soc , 1942, **64,** 2957.

2. Ling and Nanji, J , 1923, **123,** 2666

3. P N Hobson, W. J. Whelan and S Peat, *Biochem* J , 1950, **47,** XXXIX

अध्याय ६

विलेय स्टार्च तथा स्टार्च के एस्टर और ईथर

जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, स्टार्च एक बडा सकीर्ण बहुलक है जो बहुत से ग्लूकोस अणुओ के परस्पर के सघनन से बना है। यदि स्टार्च-अणु मे से हम ग्लूकोस इकाइयाँ क्रम से एक के बाद दूसरी निकालते जायँ तो अणु सरल होता जायगा। सरल होते होते एक ऐसी सीमा आती है कि अणु अन्य सब गुणो मे तो स्टार्च के समान रहता है किन्तु मूल स्टार्च के विपरीत यह गरम पानी मे घुल कर एक स्वच्छ समाग विलयन बनाता है। इस सरल रूप को विलेय स्टार्च कहते है। विलेय स्टार्च के अणु को और अधिक सरल करने पर एक ऐसी सीमा आती है जब पदार्थ मे स्टार्च के गुण नही रह जाते और यह ठडे पानी मे शीघ्र विलेय हो जाता है। इसके विलयन मे गोद की तरह चिपकने का गुण रहता है। इस सरल यौगिक को डेक्सट्रिन कहते है। विच्छेदन की क्रिया और आगे होती रहने पर डेक्सट्रिन का अणु भी क्रमानुसार सरल होता जाता है और अन्त मे माल्टोस और ग्लूकोस बनता है। इस प्रकार स्टार्च अणु को नियत्रित रूप से विच्छेदित करने पर क्रम से निम्न सरल यौगिक प्राप्त होते है —विलेय स्टार्च, डेक्सट्रिन, माल्टोस और ग्लूकोस।

विलेय स्टार्च

साधारण स्टार्च पानी मे कठिनता से घुलकर जलीय निलम्बन बनाता है। यह निलम्बन बहुत अपारदर्शक तथा गाढा होता है। विलेय स्टार्च पानी मे शीघ्र घुल जाता है और एक पारदर्शक स्वच्छ पतला निलम्बन देता है। विभिन्न कामो के लिए यह स्टार्च बहुत उपयोगी है, विशेष कर प्रयोगशालाओ के कामो के लिए, और आजकल यह बडी मात्रा मे बनाया जाता है। यह प्राकृतिक स्टार्च को तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा अभिकृत करने पर बनता है। इसके बनाने की विधि निम्न प्रकार है—

प्राकृतिक स्टार्च को बहुत तनु ऐलकोहली हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ मिश्रित कर ८०° से० ग्रे० पर लगभग आधे घटे तक रख दिया जाता है। इसके बाद नियार कर अम्ल को निकाल दिया जाता है और स्टार्च को पानी से कई बार धो कर सुखा

लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त स्टार्च गरम पानी मे शीघ्र घुल जाता है और एक पतला स्वच्छ विलयन देता है। इस स्टार्च को इसी कारण विलेय स्टार्च कहते है। यह स्टार्च जब कुछ दिनो तक सूखी अवस्था मे रखा रहता है तो पुन अविलेय रूप मे परिणत हो जाता है।

स्टार्च के एस्टर (Esters of Starch)

स्टार्च ऐसीटेट—स्टार्च को ग्लेशियल ऐसीटिक अम्ल के साथ जब लगभग १००° ताप पर कुछ घटे तक गरम किया जाता है तो इसका केवल आशिक ऐसीटिलीकरण होता है। लगभग २५ दिनो तक बराबर गरम करते रहने पर ही पूर्ण ऐसीटिलीकरण हो पाता है। ऐसीटिक अम्ल और ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड के मिश्रण द्वारा पूर्ण ऐसीटिलीकरण होने मे लगभग ४५ घटे लगते है। ऐसीटिक अम्ल और ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड मिश्रण के साथ कोई उत्प्रेरक मिला देने पर स्टार्च का ऐसीटिलीकरण अधिक शीघ्र हो जाता है, किन्तु साथ ही स्टार्च अणु का कुछ विघटन भी होता है जिसके फलस्वरूप जो ऐसीटेट एस्टर बनता है उसमे स्टार्च अणु की लम्बाई कुछ कम रहती है। हाइड्रोजन क्लोराइड गैस या पिरीडीन ऐसीटिलीकरण के लिए अच्छे उत्प्रेरक है। पूर्ण ऐसीटिलीकरण हो जाने पर ट्राइऐसीटेट बनता है। ऐसीटिलीकरण की समाप्ति के बाद द्रव को ठडे पानी मे डालने पर एस्टर अवक्षेपित हो जाता है। इसे फिर छान कर और अच्छी प्रकार धो कर सुखा लिया जाता है।

$$[C_6H_7O_2(OH)_3]_n \xrightarrow[(CH_3CO)_2O]{CH_3COOH} [C_6H_7O_2(OCOCH_3)_3]_n$$

स्टार्च ट्राइ-ऐसीटेट
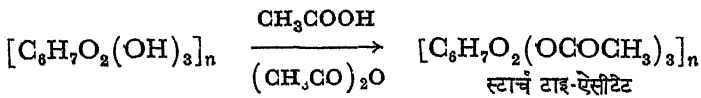
स्टार्च एस्टरो का उपयोग (१) स्टार्च के ईथर बनाने मे, (२) क्लोरीनीकृत स्टार्च ऐसीटेट बनाने मे तथा (३) पेट बनाने मे होता है।

नाइट्रिक एस्टर—स्टार्च के नाइट्रिक अम्ल एस्टर सर्वप्रथम सन् १८३३ मे बनाये गये थे, किन्तु उसके बाद लगभग १०० वर्षों तक इस ओर कोई ध्यान नही दिया गया। स्टार्च नाइट्रेट बडे विस्फोटक पदार्थ है और आजकल इनका बडी मात्रा मे उपयोग विभिन्न विस्फोटक बनाने मे होता है। कुछ समय पूर्व तक अधिकतर टैपियोका स्टार्च से स्टार्च नाइट्रेट बनाये जाते थे, किन्तु आजकल मकई के स्टार्च का उपयोग मुख्य रूप से स्टार्च नाइट्रेट बनाने मे होता है।

इसे बनाने के लिए स्टार्च को दो भाग सधूम नाइट्रिक अम्ल (fuming nitiic acid) और तीन भाग सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल के मिश्रण द्वारा ०° से ५° सें० ग्रे०

तक के बीच के ताप पर अभिकृत किया जाता है। अभिक्रिया के बाद कुल पदार्थ को टडे पानी मे डालने पर स्टार्च नाइट्रेट अवक्षेपित हो जाता है। इसे छान कर और धो कर, फिर सँभाल कर सुखाया जाता है। सुखाते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए और ताप ३०°–३५° से अधिक नही रखना चाहिए, अन्यथा विस्फोटन का भय रहता है।

$$\underset{\text{स्टार्च}}{[C_6H_7O_2(OH)_3]_n} \xrightarrow[H_2SO_4]{HNO_3+} \underset{\text{स्टार्च ट्राइ-नाइट्रेट}}{[C_6H_7O_2(ONO_2)_3]_n}$$
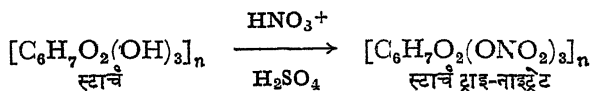
स्टार्च नाइट्रेट को ऐलकोहली क्षार द्वारा अभिकृत करने पर इसका जल-विश्लेषण हो जाता है और जो स्टार्च मुक्त होता है वह विलेय स्टार्च होता है —

$$[C_6H_7\,O_2(ONO_2)_3]_n \xrightarrow{H_2O} (C_6H_{10}O_5)n + nHNO_3$$
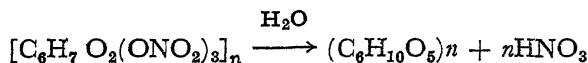
ऊपर के जल-विश्लेषण मे विलेय स्टार्च के प्राप्त होने से यह स्पष्ट है कि नाइट्रोकरण की क्रिया मे (nitration) स्टार्च अणु का थोडा विघटन होता है।

फास्फोरिक एस्टर (Phosphoric acid esters)—स्टार्च के फास्फोरिक एस्टर प्रकृति मे पाये जाते है। आलू मे स्टार्च फास्फोरिक एस्टर के रूप मे रहता है। इस एस्टर मे स्टार्च अणु की प्रत्येक ग्लूकोस इकाई के छठे कार्बन से फास्फोरिक अम्ल एस्टर के रूप मे सयुक्त रहता है।

प्रयोगशाला मे स्टार्च फास्फेट बनाने के लिए स्टार्च को क्लोरोफार्म मे निलम्बित कर उसमे थोडा कैल्सियम कार्बोनेट डाला जाता है और फिर फास्फोरस आक्सीक्लोराइड द्वारा अभिकृत किया जाता है।

सल्फ्यूरिक एस्टर—स्टार्च को क्लोरोफार्म मे निलम्बित कर क्लोरोसल्फोनिक अम्ल द्वारा अभिकृत करने पर स्टार्च सल्फेट बनता है। यदि क्लोरोसल्फोनिक अम्ल के स्थान मे सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है तो एस्टर बनने के साथ साथ स्टार्च अणु का थोडा विघटन भी होता है। पूर्ण एस्टरीकरण होने पर ट्राइसल्फेट बनता है —

$$\underset{\text{स्टार्च}}{[C_6H_7O_2(OH)_3]_n} \xrightarrow{H_2SO_4} \underset{\text{स्टार्च ट्राइ-सल्फेट}}{[C_6H_7O_2(OSO_2OH)_3]_n}$$
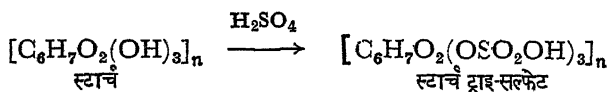
स्टार्च जैथेट (Xanthates of starch)—स्टार्च जैथेट निम्न विधि से बनाया जाता है —

स्टार्च को पहले २० प्रतिशत कास्टिक सोडा विलयन से अभिकृत कर फिर कार्बन डाइ-सल्फाइड से अभिकृत किया जाता है। इस मिश्रण को २४ घटे तक कमरे के ताप पर रखा रहने दिया जात। है और फिर ऐलकोहल मे डाला जाता है। सोडियम स्टार्च जैंथेट अवक्षेपित हो जाता है—

$$\underset{\text{स्टार्च}}{[C_6H_9O_4(OH)]_n} \xrightarrow{NaOH} [C_6H_9O_4ONa]_n \xrightarrow{CS_2} \underset{\text{सोडियम स्टार्च जैंथेट}}{[C_6H_9O_4O\,C\begin{smallmatrix}\nearrow S \\ \searrow SNa\end{smallmatrix}]_n}$$
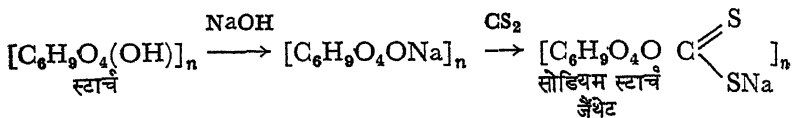
सोडियम स्टार्च जैंथेट का उपयोग लकडी की पतली पर्तों को चिपकाने के लिए आसजक के रूप मे होता है।

स्टार्च के ईथर

स्टार्च के मेथिल और एथिल ईथर अधिक उपयोगी है।

डाइमेथिल स्टार्च—स्टार्च ट्राइऐसीटेट के चूर्ण मे ३० प्रतिशत कास्टिक सोडा विलयन तथा डाइमेथिल सल्फेट का मिश्रण धीरे-धीरे डाल कर आरम्भ मे ५०° से० ग्रे० ताप पर एक घटे तक गरम किया जाता है। फिर ७०° से० ग्रे० ताप पर एक घटे तक और गरम करने के बाद अत मे १०० से० ग्रे० ताप पर आधा घटा तक गरम किया जाता है। अभिक्रिया समाप्त होने के बाद विलयन को ठडा कर तथा उदासीन कर छाना जाता है और ठोस अवशेष को तथा छनित को गरम क्लोरोफार्म से निष्कर्षित किया जाता है। निष्कर्ष मे से क्लोरोफार्म को आसवन द्वारा पृथक् कर देने पर डाइमेथिल स्टार्च प्राप्त हो जाता है।

$$[C_6H_7O_2(OCOCH_3)_3]_n \xrightarrow[(CH_3)_2SO_4]{NaOH+} [C_6H_7O_2(OCH_3)_2OH]_n$$
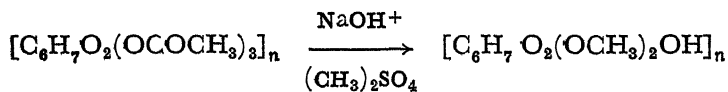
इस विधि से प्राप्त पदार्थ लगभग ८० प्रतिशत डाइमेथिल स्टार्च होता है।

ट्राइमेथिल स्टार्च—स्टार्च ट्राइऐसीटेट के चूर्ण को ऐसीटोन मे घुलाकर डाइ-मेथिल सल्फेट और ३० प्रतिशत कास्टिक सोडा विलयन से आरम्भ मे ५०° से० ग्रे० पर अभिकृत किया जाता है। बाद मे ऐसीटोन को आसवन द्वारा पृथक् कर शेष पदार्थ को आधा घटे तक १००° से० ग्रे० पर गरम किया जाता है। फिर ठडा कर और उदासीन कर छान लिया जाता है। छनित तथा अवशेष दोनों को क्लोरोफार्म से निष्कर्षित करने पर ट्राइमेथिल स्टार्च क्लोरोफार्म के विलयन के रूप मे प्राप्त होता है।

क्लोरोफार्म को अत मे आसवन द्वारा पृथक् करने पर ट्राइमेथिल स्टार्च प्राप्त हो जाता है।

$$[C_6H_7O_2(OCOCH_3)_3]_n \xrightarrow{NaOH^+} [C_6H_7O_2(OCH_3)_3]_n + n[3CH_3COONa]_n$$

स्टार्च ट्राइ-ऐसीटेट $(CH_3)_2SO_4$ ट्राइमेथिल स्टार्च
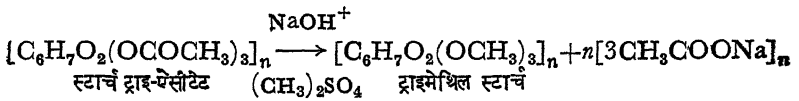
ऊपर की विधियो द्वारा एथिल तथा अन्य ईथर भी बनाये जा सकते है।

मेथिल स्टार्च पानी मे विलेय है। एथिल स्टार्चो मे मॉनोएथिल स्टार्च तो पानी मे विलेय है किन्तु डाइ- और ट्राइएथिल स्टार्च अविलेय है।

अध्याय ७

डेक्सट्रिन

डेक्सट्रिन (dextrin) को 'अग्रेजी गोद' भी कहते है। यह स्टार्च का ही एक अवक्रमण यौगिक (degradation product) है। इसका भी सामान्य सूत्र स्टार्च की ही भॉति $(C_6H_{10}O_5)_n$ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, किन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि स्टार्च मे n एक बहुत बडी सख्या है (कम से कम ३००) और डेक्सट्रिन मे n अपेक्षाकृत एक छोटी सख्या है (लगभग १६-१८)। दूसरे शब्दो मे, स्टार्च मे ३०० या इससे अधिक ग्लूकोस अणु परस्पर सघनित होकर एक बडा बहुलक अणु बनाते है, किन्तु डेक्सट्रिन केवल १६-१८ ग्लूकोस अणुओ के ही सघनित होने से बना अपेक्षाकृत एक सरल बहुलक है। दोनो मे ही ग्लकोस इकाइयो का अपना रासायनिक रूप तथा एक दूसरे से सयोजित होने के बन्ध एक समान है।

डेक्सट्रिन की खोज तथा इसे सर्वप्रथम बनाने का श्रेय करचौफ (Kirchhoff) तथा बी० लैग्रैग (B Lagrange) को है। करचौफ[1] ने सन् १८११ मे यह देखा कि जब स्टार्च को अम्ल की थोडी मात्रा की उपस्थिति मे गरम किया जाता है तो इसके पूर्ण जल-विश्लेषित होने के पूर्व गोद की तरह का एक पदार्थ बनता है। इसी वर्ष थोडे समय बाद लैग्रैग जब स्टार्च को शुष्क अवस्था मे गरम कर रहे थे तो यह देखा कि स्टार्च विच्छेदित होकर एक भूरे पदार्थ मे परिंणत हो गया। यह पदार्थ पानी मे विलेय था और इसके जलीय विलयन मे भी गोद की तरह के गुण थे। इन दोनो वैज्ञानिको द्वारा प्राप्त पदार्थ समान प्रकार का था और बाद मे इसे डेक्सट्रिन नाम दिया गया।

जब स्टार्च को लगभग १६०°–१९०° ताप पर गरम किया जाता है तो यह क्रम से पहले पीले रग के पदार्थ मे और फिर गहरे भूरे रग के पदार्थ मे बदल जाता है। इस भूरे पदार्थ को 'अग्रेजी गोद' (British gum) कहते है। अग्रेजी गोद की खोज एक दुर्घटना का परिणाम है। करचौफ की खोज के कई वर्ष पूर्व डबलिन मे कपडे के एक कारखाने में आग लगी। इस कारखाने मे बहुत सा स्टार्च भडार मे रखा था। आग से यह स्टार्च एक भूरे रग के चूर्ण मे परिवर्तित हो गया। यह चूर्ण पानी मे विलेय था और इसके विलयन मे चिपचिपाहट का गुण था। इसके बाद ज्ञात हुआ कि यही

पदार्थ स्टार्च को अलग से गरम करने पर भी प्राप्त होता है। इसी पदार्थ को अंग्रेजी गोंद नाम दिया गया। अंग्रेजी गोद मे एक विशेष प्रकार की तेज गध होती है। यह पानी मे विलेय है और इसका विलयन गहरे रग का होता है। यदि स्टार्च मे थोडा नाइट्रिक या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर गरम किया जाता है तो अंग्रेजी गोद १६०° से काफी नीचे के ताप पर ही बन जाता है और इसका रग भी कुछ हलका होता है तथा गध भी कम होती है। अम्ल की उपस्थिति मे स्टार्च क्रम से निम्न सरल यौगिको मे विच्छेदित होता है—

स्टार्च → विलेय स्टार्च → ऐमिलोडेक्सट्रिन (amylo-dextrin) → एरिथ्रो-डेक्सट्रिन (erythro-dextrin) → ऐक्रोडेक्सट्रिन (achrodextrin) → माल्टोस → ग्लूकोस।

इस विच्छेदन की क्रिया को नियत्रित रूप से कराने पर इसे इच्छित सीमा पर रोका जा सकता है और उसी के अनुसार इच्छित पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है। स्टार्च और विलेय स्टार्च आयोडीन विलयन के साथ नीला रग देता है, ऐमिलोडेक्सट्रिन बैंगनी रग, एरिथ्रोडेक्सट्रिन भूरा-लाल रग तथा ऐक्रोडेक्सट्रिन हलका-पीला रग (या कोई रग नही) देता है। इन पदार्थों के साथ विभिन्न रग देने वाले आयोडीन के गुण के द्वारा स्टार्च से इन पदार्थों के बनाने की क्रिया पर नियत्रण सरलतापूर्वक रखा जा सकता है और जिस पदार्थ को बनाना होता है उसी सीमा तक स्टार्च का विच्छेदन नियत्रित रूप से किया जाता है।

साधारण रीति से डेक्सट्रिन बनाने के लिए शुद्ध स्टार्च का ही उपयोग किया जाता है, किन्तु प्राय सूखे आलू का महीन पिसा आटा भी उपयोग मे आता है। आलू के आटे से डेक्सट्रिन बनाने मे अधिक अम्ल लेना पडता है तथा विच्छेदन अधिक ऊँचे ताप पर कराना पडता है। डेक्सट्रिन के बन जाने के बाद अपद्रव्य पदार्थों को पृथक् करने के लिए इसे पानी मे घोल कर छाना जाता है और फिर छने विलयन को वाष्पित कर ठोस रूप मे डेक्सट्रिन प्राप्त कर लिया जाता है। स्टार्च से डेक्सट्रिन बनाने मे अपद्रव्यो को पृथक् करने की कोई कठिनाई नही रहती।

मकई, आलू और टैपियोका के स्टार्च से डेक्सट्रिन अच्छी जाति का तथा अधिक सरल रीति से प्राप्त होता है। अत डेक्सट्रिन बनाने के लिए अधिकतर इन्ही स्टार्चो का उपयोग किया जाता है। गेहूँ और चावल का स्टार्च इस काम के लिए बहुत कम उपयोग मे आता है, क्योकि इन स्टार्चो से डेक्सट्रिन बनाने मे कुछ कठिनाई अधिक होती है और साथ ही डेक्सट्रिन भी विशेष अच्छा नही रहता। साधारण रीति से बहुत अच्छा

डेक्सट्रिन बनाने के लिए बहुत शुद्ध स्टार्च लेना पडता है। यदि स्टार्च शुद्ध नही होता तो डेक्सट्रिन भी बहुत अच्छा नही बनता। अत इन सब बातो का ध्यान रख कर जिस प्रकार का डेक्सट्रिन बनाना होता है उसी के अनुसार स्टार्च लिया जाता है।

डेक्सट्रिन बनाने मे उत्प्रेरक के रूप मे हाइड्रोक्लोरिक तथा नाइट्रिक अम्लो का प्रयोग अधिक होता है, किन्तु सल्फ्यूरिक, नाइट्रो-हाइड्रोक्लोरिक, आक्सैलिक और फास्फोरिक अम्लो का उपयोग भी प्राय किया जाता है। आजकल प्राय अम्ल के साथ कोई धातु-क्लोराइड या नाइट्रेट भी मिला दिया जाता है। इन लवणो का प्रभाव यह होता है कि जब स्टार्च को डेक्सट्रिन बनाने के लिए गरम किया जाता है तो हाइड्रोक्लो-रिक तथा नाइट्रिक अम्ल शीघ्र वाष्पित होकर उडने नही पाते। इससे सबसे बडा लाभ यह होता है कि अम्ल की अपेक्षाकृत कम मात्रा प्रयोग करनी पडती है और साथ ही जो डेक्सट्रिन बनता है वह भी सफेद रग का होता है और शीघ्र बनता है। किन्तु इसमे एक मुख्य दोष यह है कि जो खनिज लवण आरम्भ मे अम्ल के साथ मिश्रित किया जाता है वह डेक्सट्रिन मे अपद्रव्य के रूप मे रह जाता है। इस कारण यह डेक्सट्रिन भोजन पदार्थों के लिए उपयोगी होने के उपयुक्त नही होता। अकेले अम्ल के उपयोग से लाभ यह होता है कि जब स्टार्च गरम किया जाता है तो अम्ल वाष्पित होकर निकल जाता है और डेक्सट्रिन मे इसका कोई अश शेष नही रहता। अम्लो का उपयोग करते समय इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाता है कि अम्ल मे कोई ऐसा अपद्रव्य न घुला हो जो अम्ल के उड जाने के बाद बचा रहे। अम्लो मे भी हाइड्रोक्लोरिक और नाइट्रिक अधिक उपयुक्त है क्योकि ये वाष्पशील होने के कारण शीघ्र वाष्पित हो जाते है और इनके वाष्प स्टार्च के अन्दर अच्छी प्रकार भिद जाते है। फलस्वरूप जो डेक्स-ट्रिन प्राप्त होता है वह समाग होता है। इन अम्लो की उपस्थिति मे डेक्सट्रिन बनाने मे ताप का नियत्रण भी अधिक अच्छा रहता है क्योकि ये निम्न ताप पर ही वाष्पित हो जाते है। सल्फ्यूरिक और फास्फोरिक अम्ल अवाष्पशील होते है। अत इनका प्रयोग करने पर स्टार्च के विच्छेदन के लिए अपेक्षाकृत ऊँचे ताप की आवश्यकता होती है और ताप का नियत्रण भी अच्छा नही हो पाता। इन अम्लो के उपयोग से जो डेक्स-ट्रिन बनता है वह भी समाग नही होता।

डेक्सट्रिन बनाने मे ग्लूकोस भी सदा कुछ न कुछ मात्रा मे बनता है। ग्लूकोस की मात्रा अम्ल के प्रकार, ताप तथा गरम करने की अवधि पर निर्भर करती है। इसकी उपस्थिति से डेक्सट्रिन आर्द्रताग्राही (hygroscopic) हो जाता है। अवाष्पशील अम्लो के प्रयोग से जो डेक्सट्रिन प्राप्त होता है उसमे ग्लकोस की मात्रा अपेक्षाकृत कम रहती है।

बनाने की विधियाँ—डेक्सट्रिन बनाने की मुख्य दो विधियाँ है—सूखी विधि (Dry method or Torrefaction process), तथा गीली विधि (wet method)। सूखी विधि मे स्टार्च को या तो अकेले या किसी उत्प्रेरक की उपस्थिति मे शुष्क अवस्था मे गरम किया जाता है। गीली विधि मे स्टार्च को या तो पानी के साथ मिला कर तथा कोई उत्प्रेरक डाल कर गरम किया जाता है या पानी के साथ लेई बना कर लेई को एजाइमो द्वारा अभिकृत किया जाता है।

सूखी विधि (Dry Method)

सूखी विधि से स्टार्च से डेक्सट्रिन बनाने मे जितनी क्रियाएँ करनी पडती है उन्हे निम्न पदो मे बाँटा जाता है—

(१) स्टार्च मे उत्प्रेरक का मिलाना,
(२) स्टार्च का परिपाकीकरण (maturing of starch),
(३) सुखाना,
(४) भूनना (roasting or Torrefaction),
(५) सिक्तीकरण (moistening),
(६) पीसना तथा थैलो मे भरना (grinding and packing)।

स्टार्च में उत्प्रेरक का मिलाना (Mixing of catalysts in starch)—जैसा पहले बतलाया जा चुका है, खनिज अम्ल स्टार्च को डेक्सट्रिन मे विच्छेदित करने मे उत्प्रेरक का काम करते है। अम्लो मे हाइड्रोक्लोरिक तथा नाइट्रिक अम्ल अधिक प्रयुक्त होते है। अम्ल मिलाने के पूर्व स्टार्च को विभिन्न लवणो के विलयनो से भी अभिकृत किया जाता है। एक विधि मे स्टार्च को कैल्सियम हाइपोक्लोराइट विलयन से धोया जाता है। हाइपोक्लोराइट स्टार्च मे मौजूद रग को तथा अन्य अपद्रव्यो को आक्सीकृत कर नष्ट कर देता है और इस प्रकार उपचारित किये गये स्टार्च से जो डेक्सट्रिन प्राप्त होता है वह लगभग रगहीन होता है या बहुत हलके रग का होता है। हाइपोक्लोराइट से धोये गये स्टार्च मे थोडा कैल्सियम क्लोराइड सदा हाइपोक्लोराइट के विच्छेदन के फलस्वरूप मौजूद रहता है। यह भी डेक्सट्रिन के बनने की क्रिया मे उत्प्रेरक का काम करता है और अन्त मे डेक्सट्रिन मे भी बचा रहता है। डेक्सट्रिन से आसजक-विलयन बनाने मे प्राय थोडा कैल्सियम क्लोराइड डाला जाता है। अत ऐसे आसजक तैयार करने के लिए यह डेक्सट्रिन बहुत उपयुक्त होता है, किन्तु भोजन की वस्तुओ के लिए इस डेक्सट्रिन का उपयोग करना ठीक नही होता।

जितना अम्ल मिलाना होता है उसे पहले थोडे से स्टार्च मे डाल कर मिश्रित क

लिया जाता है और फिर इस स्टार्च को शेष समस्त स्टार्च मे डाल कर अच्छी तरह मिला दिया जाता है। अम्ल मिलाने की एक अधिक सन्तोषजनक विधि यह है कि अम्ल को बडे दाव की हवा द्वारा फुहारे के रूप मे स्टार्च पर छोडते है और इस बीच स्टार्च को बराबर विलोडक द्वारा चलाते रहते है। इस रीति से अम्ल मिलाने से स्टार्च के प्रत्येक कण से अम्ल मिल जाता है । साधारणत अम्ल को स्टार्च मे मिलाने के पूर्व इसमे लगभग चार-पॉच भाग पानी मिला कर तनु कर लिया जाता है। यदि किसी खनिज लवण को मिलाना होता है तो इसे भी अम्ल मे ही पहले घोल लिया जाता है।

अम्ल की कितनी मात्रा स्टार्च मे मिलायी जाय यह स्टार्च के प्रकार पर निर्भर करती है। साधारणत आलू के स्टार्च के लिए अपेक्षाकृत कम अम्ल मिलाने की आवश्यकता होती है। मकई और टैपियोका के स्टार्चो के लिए अधिक अम्ल लेना पडता है। प्रत्येक १० किलोग्राम आलू के स्टार्च के लिए लगभग ८ घ० से० हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (या नाइट्रिक अम्ल) तथा प्रत्येक १० किलोग्राम टैपियोका (या मकई) के स्टार्च के लिए लगभग २० घ० से० अम्ल का प्रयोग किया जाता है। अम्ल को चार गुने पानी मे मिला कर तनु करने के बाद स्टार्च मे डाला जाता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को गैस के रूप मे परिणत कर स्टार्च मे मिलाना अधिक अच्छा होता है। गैस स्टार्च मे अधिक शीघ्र शोषित होकर सब जगह एक सी फैल जाती है। साधारणत स्टार्च मे आर्द्रता जितनी कम होती है उतने ही शीघ्र यह अम्ल को शोषित करता है।

स्टार्च का परिपाकीकरण (Maturing of starch)—अम्ल मिलाने के बाद स्टार्च को लकडी की नाँदो मे भर कर कुछ समय तक (एक से पाँच दिनो तक) रखा रहने दिया जाता है। ऐसा करने से अम्ल को धीरे-धीरे स्टार्च के प्रत्येक कण के भीतर प्रवेश करने का अवसर मिलता है। स्टार्च-कणो के भीतर जब अम्ल अच्छी प्रकार विसरित (diffuse) हो जाता है तो स्टार्च विलेय स्टार्च मे परिणत हो जाता है। ऐसे स्टार्च से डेक्सट्रिन अपेक्षाकृत निम्न ताप पर तथा अधिक शीघ्र बनता है और अधिक अच्छा होता है। परिपाकीकरण की क्रिया के बाद स्टार्च को नॉदो मे से निकाल कर सूखने के लिए छिछले कडाहो मे भर दिया जाता है और फिर भूना जाता है। जिन कारखानो मे परिपाकीकरण की क्रिया नही की जाती वहाँ अम्ल मिलाने के बाद सीधे ही स्टार्च को सुखाने तथा भूनने के लिए भेज दिया जाता है।

भूनने के पूर्व स्टार्च को सुखाना (Drying before roasting)—परिपाकीकरण के बाद स्टार्च को भनने के पूर्व सुखाना आवश्यक है। यदि स्टार्च सुखाया नही

जाता तो भूनने पर उसमे उपस्थित पानी की प्रतिशत मात्रा के अनुसार इसका जल-विश्लेषण शर्कराओ मे हो जाता है। साधारणत सुखाने की क्रिया उसी बर्तन मे की जाती है जिसमे स्टार्च को भूना जाता है। भूनने के पहले स्टार्च को सँभाल कर हल्की आँच पर धीरे-धीरे गरम किया जाता है। जब स्टार्च सूख जाता है तब आँच तेज कर भूनने की क्रिया आरम्भ की जाती है। प्राय निर्वात शोपको मे पृथक् रूप से भी स्टार्च को सुखा कर तब भूनने के बर्तन मे भेजते है। सुखाने की क्रिया मे यह ध्यान रखा जाता है कि ताप एक साथ ही बहुत ऊँचा न कर दिया जाय, अन्यथा स्टार्च के ढोके बन जाते है और ढोको की बाहरी सतह पर स्टार्च श्लिषीय रूप मे परिवर्तित हो कर एक पर्त के रूप मे जम जाता है, जिसके कारण अन्दर का पानी बाहर निकलने नही पाता और फलस्वरूप स्टार्च ठीक प्रकार से सूख नही पाता।

स्टार्च को भूनना (Roasting of starch)—आरम्भ मे स्टार्च को अम्ल के साथ आर्द्र करने और फिर परिपाकीकरण करने के बाद साँचो द्वारा छोटे-छोटे आयताकार टुकडो मे परिवर्तित कर लिया जाता था और फिर इन टुकडो को छिछली तश्तरियो मे रख कर एक कमरे मे भेजा जाता था, जहाँ इन्हे ९५°-१५०° से० ग्रे० ताप पर धीमी गति से गरम किया जाता था। किन्तु आजकल सुखाने की क्रिया उन्ही कडाहो मे की जाती है जिनमे स्टार्च को बाद मे भूना जाता है। इन कडाहो मे स्टार्च को भली भाँति चलाने तथा विलोडन का पूरा प्रबन्ध रहता है। सुखाने की क्रिया मे इस बात का ध्यान रखना होता है कि स्टार्च सब स्थान मे समान गति से गरम हो। ऐसा नही होने दिया जाता कि कडाह के किसी एक ओर का स्टार्च अधिक गरम हो गया है और किसी दूसरी ओर का कम। बहुत से कारखानो मे इसके लिए ऐसे कडाहो का प्रयोग किया जाता है जो दो दीवारो के बने होते है। इन दीवारो के बीच मे पानी की भाप भेजने का प्रबन्ध रहता है और इस प्रकार भाप द्वारा स्टार्च गरम किया जाता है। स्टार्च के सूखने के बाद अधिक दाब की भाप भेज कर इसे इतना गरम किया जाता है कि यह विच्छेदित हो कर डेक्सट्रिन मे परिणत हो जाय, किन्तु इस विधि से इतना ऊँचा ताप नही प्राप्त होता कि अग्रेजी गोद बन सके। साधारण डेक्सट्रिन बनाने के लिए १२५° से १८०° से० ग्रे० ताप पर्याप्त होता है, किन्तु अग्रेजी गोद बनाने के लिए २००° से० ग्रे० से ऊँचे ताप की आवश्यकता पडती है। विभिन्न स्टार्च विभिन्न ताप पर डेक्सट्रिन मे परिणत होते है। नीचे कुछ स्टार्चो के सम्बन्ध के ताप दिये गये है जिन पर ये डेक्सट्रिन मे परिणत होते है—

आलू का स्टार्च—१०५° से १३५° से० ग्रे०
टैपियोका स्टार्च—१४०° से १७५° से० ग्रे०
मकई का स्टार्च—१२५° से १४०° से० ग्रे०

डेक्सट्रिन बनाने के ताप का सम्बन्ध स्टार्च मे डाले गये अम्ल की मात्रा से भी है। स्टार्च मे अम्ल की मात्रा जितनी कम डाली जाती है उतने ही ऊँचे ताप की आवश्यकता इसे डेक्सट्रिन मे परिणत करने के लिए होती है। अधिक अम्ल का उत्प्रेरक के रूप मे उपयोग करने से यद्यपि डेक्सट्रिन अपेक्षाकृत निम्न ताप पर बन जाता है पर अम्ल की अधिकता से स्टार्च का शर्कराओ मे जल-विश्लेषण भी अधिक होता है और फलस्वरूप इस डेक्सट्रिन मे शर्कराओ की प्रतिशत मात्रा अधिक रहती है। शर्कराओ की मात्रा यदि दो प्रतिशत से अधिक रहती है तो डेक्सट्रिन आसजक के कार्य के लिए अच्छा नही होता।

दाब का भी प्रभाव डेक्सट्रिन बनने के ताप तथा उसकी जाति पर पडता है। अधिक दाब पर स्टार्च को भूनने पर डेक्सट्रिन अधिक शीघ्र तथा अपेक्षाकृत निम्न ताप पर बन जाता है, किन्तु इस प्रकार बने डेक्सट्रिन मे शर्कराओ की मात्रा अधिक रहती है और इस कारण यह डेक्सट्रिन अच्छे आसजक बनाने के लिए उपयुक्त नही होता। वायुमडल के साधारण दाब पर स्टार्च को भूनने पर यद्यपि डेक्सट्रिन कुछ ऊँचे ताप पर तथा धीमी गति से बनता है, पर इस डेक्सट्रिन मे शर्कराओ की मात्रा बहुत कम रहती है और इस कारण यह आसजक के कार्य के लिए अधिक अच्छा होता है।

स्टार्च को भूनने के लिए विभिन्न प्रकार के यत्रो का व्यवहार किया जाता है। एक यत्र मे स्टार्च गरम किये जाने वाले बर्तन के चारो ओर एक खोल होता है। इस खोल मे तेल भरा रहता है और इसके द्वारा बर्तन गरम किया जाता है। कुछ यत्रो मे सीधे गैस द्वारा बर्तन को गरम करने का प्रबन्ध रहता है और कुछ मे पानी की भाप द्वारा। भाप द्वारा गरम किये जाने वाले यत्रो मे कई सुविधाएँ रहती है। एक तो इनमे ताप का नियत्रण अच्छी प्रकार रखा जा सकता है और दूसरे ऊष्मा सब ओर एक समान फैलती है।

ऐसे यत्र भी बनाये गये है जिनमे बिजली द्वारा स्टार्च को भूनने का प्रबन्ध रहता है, किन्तु अभी ये बहुत सफल नही हुए है।

स्टार्च के भूनने की क्रिया मे ताप धीमी गति से बढाया जाता है। जैसे-जैसे ताप बढता है स्टार्च का पानी धीरे-धीरे भाप के रूप मे निकलता है और १००°-१०५° ताप पहुँचने पर लगभग सब पानी निकल जाता है। जब ताप ११०°-११५° के लगभग पहुँचता है तब एकाएक बहुत सा जल-वाष्प पुन घने धुएँ के रूप मे निकलता है और

ताप एक साथ लगभग १०° सें० ग्रे० बढ जाता है। इस प्रेक्षण (observation) से ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस ताप पर पदार्थ के अणु मे से पानी निकलता है और कोई अजल (anhydrous) पदार्थ बनता है। ऊँचे ताप पर गरम करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि डेक्सट्रिन का रग पीला या गहरा भरा न हो जाय। यह जानने के लिए कि स्टार्च पूर्ण रूप से डेक्सट्रिन मे विच्छेदित हो गया है अथवा नही भूनते समय बीच-बीच मे पदार्थ का परीक्षण किया जाता है। जब सब स्टार्च विच्छेदित होकर डेक्सट्रिन मे परिणत हो चुकता है, तब डेक्सट्रिन को ठढा करने के लिए दूसरे बर्तनो मे डाल दिया जाता है।

अमेरिका मे आजकल एक नयी विधि द्वारा स्टार्च से डेक्सट्रिन बनाया जाता है। इस विधि मे स्टार्च को बहुत ऊँचे ताप पर गरम करने की आवश्यकता नही होती। इस विधि मे वह स्टार्च लिया जाता है जो हवा मे साधारण रीति से सुखाया गया है, शोषको मे नही, अत स्टार्च मे थोडा पानी बचा रहता है। इस स्टार्च को हाइड्रोजन क्लोराइड गैस के सम्पर्क मे इतने समय तक रखा जाता है कि ०.५ प्रतिशत हाइड्रोजन क्लोराइड स्टार्च मे शोषित अवस्था मे हो जाय। इसे फिर लगभग १२ घटे तक शान्त रखा रहने दिया जाता है जिससे हाइड्रोजन क्लोराइड स्टार्च के प्रत्येक कण के भीतर पहुँच जाय। अब इस स्टार्च को लगभग ८०° से० ग्रे० पर गरम किया जाता है। कुछ घटो के भीतर स्टार्च डेक्सट्रिन मे परिणत हो जाता है।

साधारणत. प्रत्येक १०० टन स्टार्च से ८० टन डेक्सट्रिन प्राप्त होता है।

डेक्सट्रिन को ठढा करना और पुनः आर्द्र करना—डेक्सट्रिन बन जाने के बाद भी यदि ताप ऊँचा ही रहने दिया जाता है तो डेक्सट्रिन के विच्छेदित होकर सरल पदार्थो मे परिणत होने का भय रहता है। अत डेक्सट्रिन के बन जाने के बाद तुरन्त इसे ठढा करने की आवश्यकता होती है। डेक्सट्रिन को ठढा करने के लिए विभिन्न प्रकार के यत्र तथा विभिन्न विधियाँ प्रचलित है। ऊहलैड का उपकरण (Uhland's apparatus) इस कार्य के लिए अच्छा समझा जाता है। इसमे छिछले लोहे के कई कडाह एक के ऊपर एक प्रबन्धित रहते है। सब कडाहो के बीच से ऊपर से नीचे तक एक धुरी रहती है जिससे विलोडक जुडे रहते है। धुरी घूमती है और उसके साथ विलोडक गोलाई मे घूमते है। प्रत्येक कडाह का डेक्सट्रिन विलोडक के घूमने से उसके द्वारा बटोरा जा कर क्रम से उसके नीचे के कडाह मे गिरा दिया जाता है और जब एक कडाह से दूसरे कडाह मे डेक्सट्रिन गिरता रहता है तो नीचे से ठढी हवा की धारा ऊपर को प्रवाहित की जाती है। ऊपर से नीचे गिरता हुआ डेक्सट्रिन इस हवा के सम्पर्क मे आता है और शीघ्र ठढा हो जाता है।

एक अन्य उपकरण भी विभिन्न कारखानो मे प्रयुक्त किया जाता है। यह एक लम्बा बेलनाकार खोखला बर्तन होता है जो थोडा सा एक ओर को झुका कर क्षैतिज (horizontal) दशा मे रखा जाता है। बर्तन की पूरी लम्बाई मे बीच मे एक धुरे से सम्बन्धित चौडे पतवार जैसे पख लगे रहते है जो विलोडक का काम करते है। इस बर्तन की दीवार दोहरी होती है और इन दो दीवारो के बीच मे ठढा पानी भ्रमण कराने का प्रबन्ध रहता है। गरम डेक्सट्रिन इस बर्तन मे ऊँचे सिरे की ओर गिराया जाता है। यह डेक्सट्रिन बर्तन के विलोडक द्वारा धीरे-धीरे आगे सरकता जाता है और अन्त मे निचले सिरे से बाहर निकलता है। इस बर्तन मे से होकर जाते समय इसके बाहर की दोहरी दीवारो के बीच मे भ्रमण करते हुए ठढे पानी द्वारा डेक्सट्रिन ठढा हो जाता है। जब तक डेक्सट्रिन नीचे के सिरे पर पहुँचता है तब तक यह बिल्कुल ठढा हो चुका होता है।

कुछ कारखानो मे डेक्सट्रिन को ठढा करने के लिए एक ऊँची मीनार होती है। गरम डेक्सट्रिन इस मीनार मे ऊपर से नीचे को गिराया जाता है और नीचे से ठढी हवा की धारा ऊपर को प्रवाहित की जाती है। नीचे गिरते समय डेक्सट्रिन ऊपर को प्रवाहित होने वाली इस ठढी वायु के सम्पर्क मे आता है और ठढा हो जाता है।

डेक्सट्रिन एक आर्द्रताग्राही (hygroscopic) पदार्थ है और अपने प्रकार के अनुसार ८ से १४ प्रतिशत तक पानी शोषित कर लेता है। जितना पानी इसमे शोषित हो सकता है उतना शोषित करा दिया जाता है और तब बाजार मे बिकने के लिए भेजा जाता है। पानी शोषित कराने का मुख्य उद्देश्य इसके भार मे वृद्धि करना है।

पानी शोषित कराने के लिए विभिन्न विधियाँ काम मे लायी जाती है। साधारण प्रचलित विधि मे डेक्सट्रिन चूर्ण को छिछली तश्तरियो मे फैला कर आर्द्र वायु मे खुला रख दिया जाता है। लगभग ६-७ दिनो मे डेक्सट्रिन अपनी आर्द्रताग्राहिता के अनुसार पूरा जल शोषित कर लेता है। एक अन्य विधि मे डेक्सट्रिन चूर्ण को एक मीनार मे ऊपर से नीचे गिराते है और नीचे से ऊपर की ओर आर्द्र वायु प्रवाहित करते है। डेक्सट्रिन इस आर्द्र वायु के सम्पर्क मे आता है और इसमे से जल शोषित कर लेता है। इस रीति से डेक्सट्रिन मे एक-दो दिनो के भीतर ही जल की पूरी मात्रा शोषित हो जाती है।

गंध और रंग नष्ट करना—डेक्सट्रिन मे प्राय एक गन्ध होती है। मकई और आलू के डेक्सट्रिन मे विशेष रूप से एक तीव्र गन्ध होती है। डेक्सट्रिन मे पीले से गहरे भूरे तक विभिन्न रग भी रहते है। इसकी गन्ध तथा रग को निकालने या कम करने

के लिए ओजोन का उपयोग किया जाता है। डेक्सट्रिन जैसे ही स्टार्च के भूनने की क्रिया मे तैयार होता है इसे ओजोन मिश्रित वायु द्वारा अभिकृत किया जाता है। ओज़ोन गन्ध तथा रग को आक्सीकृत कर नष्ट कर देता है। इस क्रिया से गन्ध बहुत कम हो जाती है या बिल्कुल ही निकल जाती है। रग भी बहुत हलका हो जाता है। सोडियम सल्फाइट या बाइसल्फाइट के जलीय विलयन द्वारा डेक्सट्रिन को आर्द्र करने से भी डेक्सट्रिन की गन्ध तथा उसका रग हलका हो जाता है, किन्तु इसमे एक दोष यह है कि जब उपयोग करते समय डेक्सट्रिन मे कोई क्षार डाला जाता है तो डेक्सट्रिन का रग पुन आ जाता है। ओज़ोन द्वारा रगहीन और गन्धहीन किये गये डेक्सट्रिन मे क्षार की उपस्थिति से पुन रग नही उत्पन्न होता।

पिसाई तथा थैलों में भरना—डेक्सट्रिन चूर्ण मे पानी शोषित कराने पर इसके ढोके बन जाते हैं। इन ढोको को चक्की मे महीन पीस कर चलनी द्वारा छान लिया जाता है। जो मोटा छानन बचता है उसे फिर चक्की मे भेज दिया जाता है। छानने के लिए विभिन्न प्रकार की चलनियो का व्यवहार होता है।

छानने के बाद डेक्सट्रिन चूर्ण बडे-बडे कुशूलो (bins) मे सगृहीत किया जाता है। इन कुशूलो से आवश्यकतानुसार निकाल कर थैलो मे भर दिया जाता है और फिर थैलो की सिलाई कर गोदामो मे भेज दिया जाता है जहाँ से बिकने के लिए ये थैले बाज़ार भेज दिये जाते है। कुशूलो से निकालने, थैलो मे भरने, थैलो को सीने तथा सिले थैलो को गोदामो मे पहुँचाने आदि की सब क्रियाएँ यन्त्रो द्वारा की जाती हैं जिससे सब काम बहुत शीघ्र होता है।

गीली विधि (Wet Method)

इस विधि मे स्टार्च के जलीय निलम्बन मे हाइड्रोक्लोरिक या सल्फ्यूरिक अम्ल की उपयुक्त मात्रा मिलाकर गरम किया जाता है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, स्टार्च का अम्ल की उपस्थिति मे पूर्ण जल-विश्लेषण होने पर केवल ग्लूकोस बनता है। अत इस विधि मे इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि स्टार्च-निलम्बन को अम्ल के साथ इतना ही गरम किया जाय कि उसका जल-विश्लेषण डेक्सट्रिन तक हो और आगे ग्लूकोस मे न होने पाये। यदि जल-विश्लेषण का नियन्त्रण ठीक नही होता तो ग्लूकोस की पर्याप्त मात्रा बन जाती है और यह डेक्सट्रिन बहुत अच्छा नही रहता। ग्लूकोस की अधिक मात्रा होने पर डेक्सट्रिन के आसजक मे एक सब से बडा दोष यह होता है कि जब चिपकाने के लिए किसी चीज पर यह आसजक लगाया जाता है तो सूखने पर इसकी पर्त चटक जाती है और चिपका पदार्थ उखड कर छूटने लगता है। इस

प्रकार इस विधि मे सबमे महत्त्व की बात जल-विश्लेषण पर नियन्त्रण रखना है। यह नियन्त्रण श्यानता (viscosity) के परिमापन तथा आयोडीन के परीक्षण द्वारा रखा जाता है। स्टार्च-निलम्बन को अम्ल की उपस्थिति मे धीमी गति से उबाला जाता है। बीच-बीच मे थोडा नमूना निकाल कर उसकी श्यानता का परिमापन किया जाता है और आयोडीन के तनु विलयन की एक बूंद द्वारा जो रग उत्पन्न होता है उसे देखा जाता है। जब समस्त स्टार्च का जल-विश्लेषण हो जाता है तो आयोडीन का स्टार्च के साथ उत्पन्न होने वाला नीला रग नही उत्पन्न होता। श्यानता के परिवर्तन से भी ज्ञात हो जाता है कि सब स्टार्च विच्छेदित हो गया है या अभी कुछ शेष रह गया है। जब इन परीक्षणो से यह ज्ञात हो जाता है कि जल-विश्लेषण उपयुक्त सीमा तक हो गया है तो उबालने की क्रिया रोक दी जाती है। अब द्रव को ठढा कर क्षार द्वारा उसमे उपस्थित अम्ल को उदासीन (neutralize) किया जाता है। फिर छान कर विलयन को वाष्पित कर डेक्सट्रिन प्राप्त कर लिया जाता है।

कुछ कारखाने हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के स्थान मे सल्फ्यूरिक या फास्फोरिक अम्ल का उपयोग जल-विश्लेपण के लिए करना अधिक सुविधाजनक समझते है, क्योकि जल-विश्लेषण की क्रिया के अन्त मे द्रव मे बचे अम्ल को चूने के पानी अथवा बेराइटा से उदासीन करने पर अम्ल का कैलसियम या बेरियम लवण बनता है जो निलम्बित अवस्था मे रहता है। इन लवणो की उपस्थिति के कारण डेक्सट्रिन एक सफेद लेई या गाढे अवलेह के रूप मे प्राप्त होता है जो देखने मे आकर्षक लगता है और बाजार मे शीघ्र बिक जाता है।

गीली विधि से डेक्सट्रिन बनाने की क्रिया विभिन्न सान्द्रता पर करायी जा सकती है। यदि स्टार्च-निलम्बन की सान्द्रता अधिक रखी जाती है तो जो डेक्सट्रिन बनता है वह लेई के रूप मे रहता है। इस लेई को उदासीनीकरण करने तथा छानने के बाद तुरन्त शीशियो या डब्बो मे बन्द कर तथा लेबल लगाकर बिकने के लिए भेज दिया जाता है। यदि स्टार्च का बहुत तनु निलम्बन आरम्भ मे रखा जाता है तो डेक्सट्रिन तनु विलयन के रूप मे प्राप्त होता है। इस विलयन को उदासीन करने के बाद वाष्पित कर उपयुक्त सीमा तक गाढा किया जाता है और फिर डब्बो या शीशियो मे भरा जाता है। डेक्सट्रिन के तनु विलयन का उदासीनीकरण गाढी लेई की अपेक्षा अधिक ठीक से और पूर्ण रूप से होता है। रगीन कागजो के उपयोग के लिए इस विधि से बनी डेक्सट्रिन की लेई ही अधिक उपयुक्त होती है, क्योकि यह पूर्ण उदासीन होती है। अम्ल या क्षार का सूक्ष्म अश भी यदि आसजक मे मुक्त अवस्था मे रहता है तो रगीन कागजो पर प्रयोग करने के लिए यह उपयुक्त नही होता। मुक्त अम्ल या क्षार से रग पर प्रभाव पडता

है और उसमे अन्तर आ जाता है। पूर्ण रूप से उदासीन डेक्सट्रिन बनाने के लिए इस कारण स्टार्च का तनु निलम्बन ही आरम्भ मे लिया जाता है जिससे डेक्सट्रिन का एक तनु विलयन प्राप्त होता है। इसे पूर्ण उदासीन कर फिर आवश्यक अश तक गाढा कर लिया जाता है।

गीली विधि के अन्तर्गत भी विभिन्न क्रियाएँ विभिन्न प्रकार से करायी जाती है। शूमैन (A Schumann) की विधि मे स्टार्च-चूर्ण मे पहले अम्ल का एक प्रतिशत विलयन मिला कर एक दिन तक अलग रख दिया जाता है। फिर स्टार्च को पानी से धो कर इसका समस्त अम्ल निकाल दिया जाता है। अब इस घुले स्टार्च को ऐसे पानी मे, जिसमे थोडा सल्फर डाइ-आक्साइड घोला गया है, निलम्बित कर दिया जाता है। फिर इस निलम्बन को लगभग ५० पौण्ड दाब पर तब तक उबाला जाता है जब तक शर्करा नही उत्पन्न होती। जैसे ही परीक्षण द्वारा यह मालूम हो जाता है कि शर्कराओ का उत्पन्न होना आरम्भ हो गया है, दाब तुरन्त हटा दिया जाता है और द्रव को ठण्डा किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त डेक्सट्रिन के विलयन को जन्तु-कोयले के भीतर से छान कर रगहीन और गन्धहीन किया जाता है और फिर वाष्पित कर ठोस रूप मे प्राप्त किया जाता है। अन्त मे चक्की मे पीस कर चूर्ण रूप मे कर लिया जाता है।

ऊपर की विधि से प्राप्त डेक्सट्रिन का कागज़ तथा दफ्ती के सन्दूक बनाने मे तथा कागज के खिलौने तथा अन्य सामान बनाने मे आसजक के रूप मे बहुत उपयोग होता है। यह सन्दूको तथा थैलो के अन्दर कागज़ की पर्त चिपकाने के लिए भी उपयुक्त होता है।

एंज़ाइम द्वारा स्टार्च से डेक्सट्रिन बनाना—जैसा हम पहले कह चुके है, डायस्टेस एंज़ाइम द्वारा स्टार्च पूर्ण रूप से जल-विश्लेषित होने पर माल्टोस शर्करा मे परिणत हो जाता है। किन्तु डायस्टेस की क्रिया धीमी गति से होती है और स्टार्च-अणु इसी के अनुसार धीमी गति से क्रमानुसार सरल अणु मे परिवर्तित होता जाता है। अत यदि एजाइम की क्रिया नियन्त्रित ढग से करायी जाय तो स्टार्च का जल-विश्लेषण डेक्सट्रिन की सीमा पर रोका जा सकता है। आजकल डायस्टेस के नियन्त्रित जल-विश्लेषण द्वारा बडी मात्रा मे स्टार्च से डेक्सट्रिन बनाया जाता है। अधिकतर मकई के स्टार्च का इस विधि द्वारा डेक्सट्रिन बनाने मे उपयोग किया जाता है।

इस विधि मे स्टार्च को पानी की उपयुक्त मात्रा के साथ गरम कर लेई के रूप मे कर लिया जाता है और फिर इसमे माल्ट-निष्कर्ष मिलाया जाता है। माल्ट-निष्कर्ष मे डायस्टेस एंज़ाइम रहता है। जिस बर्तन मे डायस्टेस की क्रिया स्टार्च पर करायी जाती है उसमे ताँबे या पीतल का बना कोई भाग नहीं होना चाहिए, क्योकि ताँबे की

सूक्ष्म मात्रा की उपस्थिति भी डायस्टेस को निष्क्रिय कर देती है और फलस्वरूप किण्वन की क्रिया रुक जाती है। लोहे की टकियो मे किण्वन कराया जा सकता है। स्टार्च को टकियो मे डालने के पहले टकियो को भली भाँति साफ कर लिया जाता है जिससे ताँबा या इसी प्रकार का कोई अन्य अपद्रव्य न रहने पाये। पूरी क्रिया की विधि निम्न है —

टकी को साफ करने के बाद उसमे पानी की आवश्यक मात्रा भर दी जाती है। पानी मे थोडा सल्फ्यूरिक या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर *p*H ४ ६ किया जाता है और फिर पानी की तोल के बराबर मकई का स्टार्च डाल कर खूब चलाया जाता है और साथ ही इसे गरम कर ताप ५५°-६०° से० ग्रे० के आस-पास किया जाता है। यदि इस बीच *p*H कुछ घट जाता है तो ऐसीटिक अम्ल डाल कर इसे पुन ४ ६ कर दिया जाता है। डायस्टेस की क्रिया *p*H ४ ६ पर सबसे तीव्र गति से होती है। ताप का भी ६०° से० ग्रे० के लगभग होना इसकी क्रिया की गति के लिए आवश्यक है।

इस बीच स्टार्च की कुल मात्रा के हिसाब से २ प्रतिशत माल्ट-निष्कर्ष लेकर ढाई गुने पानी मे मिला कर रख लिया जाता है। इस विलयन का लगभग एक तिहाई भाग अब टकी मे डाला जाता है और टकी के पदार्थ का ताप लगभग ६०° से० ग्रे० रखा जाता है। १५ मिनट बाद शेष माल्ट-निष्कर्ष का एक चौथाई भाग टकी मे डाल कर ताप को बढा कर ६८°-६९° से० ग्रे० किया जाता है। फिर १५ मिनट बाद माल्ट-निष्कर्ष का एक चौथाई भाग डाल कर ताप को बढा कर ७२° से० ग्रे० कर दिया जाता है। इस ताप पर स्टार्च-निलम्बन को दो घण्टे तक किण्वित होने दिया जाता है। इस बीच स्टार्च-निलम्बन को बराबर विलोडक द्वारा चलाते रहते है। दो घण्टे बाद ताप को थोडी देर के लिए बढा कर ९५° से० ग्रे० कर दिया जाता है जिससे डायस्टेस की क्रिया रुक जाय। इसे फिर ठण्डा कर ताप ७२° से० ग्रे० कर दिया जाता है। अब टकी के विलयन की श्यानता का परिमापन किया जाता है और यदि यह ज्ञात होता है कि श्यानता अभी निर्धारित सीमा तक नही हुई है तो बचे माल्ट-निष्कर्ष में से थोडा-सा भाग पुन. डालकर थोडी देर तक डायस्टेस की क्रिया और होने दी जाती है। जब किण्वित द्रव निर्धारित श्यानता का हो जाता है तो इसमे कास्टिक सोडे का तनु विलयन डालकर इसमे उपस्थित अम्ल को उदासीन कर दिया जाता है। इस विलयन को छान कर और वाष्पित कर सुखा लिया जाता है। इस प्रकार बने डेक्सट्रिन मे शर्करा की मात्रा लगभग ७-८ प्रतिशत तक रहती है। यह डेक्सट्रिन फोटो तथा चित्रो को चिपकाने के लिए तथा अन्य साधारण कार्यों के लिए आसंजक के रूप मे उपयोग होने के उपयुक्त है। ऐसे कामो के लिए जहाँ अधिक मजबूत आसजक की आवश्यकता पडती है इसमे थोडा आलू का डेक्सट्रिन मिला लिया जाता है।

मणिभीय गोद—यह एक विशेष प्रकार से बनाया गया मणिभीय रूप का डेक्सट्रिन है जो प्राकृतिक गोद (gum arabic) से देखने मे बहुत मिलता-जुलता है। इसको बनाने के लिए साधारण डेक्सट्रिन-चूर्ण को पानी मे घुला कर विलयन को सक्रिय कोयले से उपचारित किया जाता है और फिर छान कर विलयन को वाष्पित कर डेक्सट्रिन मणिभ रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है।

गुण—शुद्ध डेक्सट्रिन एक सफेद आर्द्रताग्राही तथा गन्धरहित ठोस है जो पानी मे विलेय तथा ऐल्कोहल मे अविलेय है। आयोडीन के साथ यह या तो कोई रग नही देता या लाल अथवा बैंगनी रग देता है। इसके जलीय विलयन मे गोद की तरह चिपकने का गुण होता है, इस कारण इसका बडा उपयोग गोद के स्थान मे आसजक (adhesive) के रूप मे होता है। बाजारो मे बिकने वाले डेक्सट्रिन साधारणत हलके पीले तथा गहरे भूरे आदि विभिन्न रगो के चूर्ण के रूप में रहते है और इनमे विभिन्न प्रकार को हलकी गन्ध होती है। यह गोद की भॉति के छोटे-छोटे पारदर्शक ढोको के रूप मे भी बनाया जाता है और इस रूप को मणिभीकृत गोद (crystallised gum) कहते हैं। प्राय डेक्सट्रिन गाढी लेई के रूप मे भी बाजारो मे बिकने के लिए भेजा जाता है।

डेक्सट्रिन विभिन्न प्रकार का होता है और प्रत्येक मे विभिन्न गुण होते है। कुछ पानी मे घुलने पर गाढी लेई बनाते है तथा कुछ पतला विलयन बनाते है। कुछ हवा मे शीघ्र सूख जाते है, किन्तु कुछ बहुत धीरे-धीरे सूखने है। इन विभिन्न प्रकार के गुणो के कारण किसी एक प्रकार के डेक्सट्रिन को प्रामाणिक मान कर अन्य का वर्गीकरण करना सम्भव नही है।

जो डेक्सट्रिन मकई के स्टार्च से बनाया जाता है उसमे एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। मकई का डेक्सट्रिन सस्ता होता है और इस कारण साधारण कामो के लिए इसका बहुत उपयोग होता है। आलू और टैपियोका के स्टार्चो से बने डेक्सट्रिन अधिक अच्छे होते है और इस कारण अच्छे तथा महीन कामो मे इन्ही डेक्सट्रिनो का उपयोग होता है। किन्तु आलू के डेक्सट्रिन मे एक दोष यह है कि इसका स्वाद कडुआ होता है और इस कारण यह टिकटो तथा लिफाफो के उपयोग के लिए अनुपयुक्त है। टैपियोका स्टार्च से बने डेक्सट्रिन मे इस प्रकार का कोई दोष नही होता। इसमे न तो कोई विशेष आपत्तिजनक स्वाद होता है और न कोई गन्ध। इसके विलयन की आसजक शक्ति भी बहुत अच्छी होती है। अत इसका बडा उपयोग टिकटो, लिफाफो तथा लेबलो पर लगाने के लिए आसजक के रूप मे होता है।

मकई के डेक्सट्रिन के दोषो को दूर करने के लिए तथा इसे विभिन्न कामो के उपयुक्त बनाने के लिए इसमे विभिन्न पदार्थ मिलाये जाते हैं। सूखी विधि से बनाये गये मकई के

डेक्सट्रिन मे कुछ खनिज लवण मिलाने से यह आसजक के रूप मे उपयोग किये जाने के उपयुक्त हो जाता है। गीली विधि से मकई से जो डेक्सट्रिन प्राप्त होता है उसमे थोडा-सा आलू का तथा टैपियोका का डेक्सट्रिन मिला देने से यह विभिन्न कामो मे आसजक के रूप मे प्रयक्त किये जाने के योग्य हो जाता है। इस मिश्रण की लेई फोटो चिपकाने के लिए विशेष रूप से अच्छी होती है।

साधारण रीति से छोटे कणो के स्टार्च से बनाये गये डेक्सट्रिन मे एक दोष यह होता है कि जब यह पानी मे घोला जाता है तो आरम्भ मे तो यह एक पारदर्शक विलयन देता है, किन्तु रखे रहने पर इस विलयन की श्यानता (viscosity) धीरे-धीरे बढती जाती है और फलस्वरूप यह अपारदर्शक हो जाता है। बडे कणो के स्टार्च से बनाये गये डेक्सट्रिन मे यह दोप नही रहता। रखने पर जिन डेक्सट्रिनो के विलयनो मे धुँधलापन आता है, वह सम्भवत. इनमे कुछ अपरिवर्तित स्टार्च के रहने के कारण होता है। डेक्सट्रिन बनाते समय कुछ स्टार्च का सम्भवत पूर्ण रूप से डेक्सट्रिन मे विच्छेदन नही हो पाता और यह केवल विलेय स्टार्च के रूप मे परिवर्तित होकर डेक्सट्रिन मे उपस्थित रहता है। जब डेक्सट्रिन पानी मे घोला जाता है तो आरम्भ मे यह विलेय स्टार्च भी डेक्सट्रिन के साथ पानी मे घुल जाता है, किन्तु इस विलयन के कुछ समय तक रखा रहने पर इसमे उपस्थित विलेय स्टार्च अविलेय रूप मे परिवर्तित होकर विलयन से पृथक् होने लगता है। इसी पृथक् हुए अविलेय स्टार्च के कारण विलयन मे धुँधलापन आता है।

निर्देश

1 G S C. Kirchhoff, *Memoires Acad Imp Sci. Petersburg*, 1811, **4**, 27

अध्याय ८

ग्लूकोस

सन् १८०३ मे प्राउस्ट (Proust) ने अगूर के रस से एक शर्करा प्राप्त की, जिसे द्राक्ष-शर्करा (या अगूर की शर्करा, grape sugar) नाम दिया गया। इसी को बाद मे "ग्लूकोस" भी कहने लगे। अगूर के रस से प्राप्त करने मे ग्लूकोस बहुत महँगा पडता था, अत आरम्भ मे इसका अधिक उत्पादन और प्रचार नही हो सका।

सन् १८११ मे फ्रान्स के रसायनज्ञ करचौफ (Kırchhoff) को अपने कार्य के लिए गोद की आवश्यकता थी। प्राकृतिक गोद (gum arabıc) न मिल सकने के कारण उसने इसके स्थान मे अन्य आसजक पदार्थों के इस्तेमाल करने की ओर ध्यान दिया। इसके कुछ समय पूर्व यह ज्ञात हो चुका था कि स्टार्च को शुष्क अवस्था मे भूनने पर एक गोद की तरह का पदार्थ बनता है। करचौफ ने स्टार्च से गोद प्राप्त करने का विचार किया। इस उद्देश्य से कि एक स्वच्छ गोद का विलयन प्राप्त हो उसने स्टार्च-निलम्बन को तनु सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ उबाला। कुछ समय उबालने के बाद उसने देखा कि जो विलयन बचा उसमे गोद का गुण तो न था, किन्तु वह शर्करा के विलयन की तरह मीठा था। परीक्षण से ज्ञात हुआ कि सब स्टार्च शर्करा मे परिणत हो गया था। करचौफ ने इस शर्करा को इक्षु-शर्करा (cane sugar) समझा। कुछ वर्ष बाद यह सिद्ध हुआ कि इस प्रकार स्टार्च से प्राप्त शर्करा ग्लूकोस होती है, इक्षु-शर्करा नही। करचौफ की यह खोज उस समय फ्रान्स के लिए बड़े महत्त्व की सिद्ध हुई। उन दिनो फ्रान्स समुद्र की ओर अग्रजी नाविक सेना से घिरा हुआ था और वहाँ बाहर के देशो से ईख की शक्कर नही पहुँच पाती थी। करचौफ की खोज ने स्टार्च से शर्करा प्राप्त करने की एक नयी विधि बतलायी और तुरन्त शर्करा के अभाव की पूर्ति के लिए फ्रान्स मे करचौफ की विधि द्वारा स्टार्च से ग्लूकोस का बनाना आरम्भ हो गया। ग्लूकोस बनाने की करचौफ की विधि निम्न प्रकार है—

वस्तुएँ निम्न अनुपात मे ली जाती है—१०० भाग स्टार्च, १०० भाग पानी तथा १ भाग सल्फ्यूरिक अम्ल। अम्ल को आधे पानी मे मिला कर इसका तनु विलयन बना लिया जाता है। शेप आधे पानी मे समस्त स्टार्च को डाल कर खूब विलोडित किया

जाता है जिससे एक समाग जलीय निलम्बन बन जाय। अब अम्ल के विलयन को एक अलग बर्तन मे गरम करते है और जब विलयन उबलने लगता है तो उसमे धीरे-धीरे स्टार्च-निलम्बन डालना आरम्भ करते है। इस प्रकार थोडे समय मे सब स्टार्च अम्ल मे डाल दिया जाता है। अब इसे लगभग ३६ घण्टे तक उबलने दिया जाता है। बीच-बीच मे पानी डालते रहते है जिससे वाष्पित होकर उड गये पानी की कमी पूरी होती रहे। परीक्षण द्वारा जब यह ज्ञात हो जाता है कि समस्त स्टार्च ग्लूकोस मे परिवर्तित हो गया है तो उबालना बन्द कर विलयन को ठडा करते है और इसमे उपस्थित अम्ल का उदासीनीकरण करने के लिए कैल्सियम कार्बोनेट डालते है। सल्फ्यूरिक अम्ल कैल्सियम कार्बोनेट द्वारा कैल्सियम सल्फेट मे परिवर्तित हो जाता है। इसे फिर जन्तु-कोयले की पर्तो के ऊपर प्रवाहित करते है। ग्लूकोस का विलयन छन कर नीचे एकत्रित हो जाता है और कैल्सियम सल्फेट तथा शेष रह गया कैल्सियम कार्बोनेट कोयले के ऊपर पृथक् होकर बच रहता है। जन्तु-कोयले की पर्तो द्वारा छनने से ग्लूकोस का रग भी निकल जाता है और एक स्वच्छ विलयन प्राप्त होता है। इस विलयन को निर्वात मे वाष्पित कर एक गाढे रस के रूप मे परिवर्तित किया जाता है और फिर शान्त रख दिया जाता है। दो-तीन दिनो मे धीरे-धीरे ग्लूकोस के मणिभ पृथक् होने लगते है। जब पूर्ण रूप से मणिभ पृथक् हो जाते है तो इन्हे फिल्टर-प्रेस मे छान कर मातृ-द्राव से अलग कर लिया जाता है। करचॉफ की इस विधि से प्रत्येक १०० भाग स्टार्च से ९० भाग ग्लूकोस प्राप्त होता है।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, करचौफ ने आरम्भ मे यह समझा था कि स्टार्च से प्राप्त होने वाली शर्करा इक्षु-शर्करा थी। किन्तु बाद मे यह देखा गया कि यह इक्षु-शर्करा की अपेक्षा कम विलेय तथा कम मीठी थी और उससे भिन्न शर्करा थी। सन् १८१४ मे डी-सासरे[1] (de saussure) ने यह सिद्ध किया कि स्टार्च से प्राप्त होने वाली शर्करा ग्लूकोस है और इक्षु-शर्करा से भिन्न है। उसने स्टार्च के जल-विश्लेषण की क्रिया पर भी प्रकाश डाला और उसकी व्याख्या की।

फ्रान्स का घेरा हटने के बाद जब बाहर के देशो से इक्षु-शर्करा का फ्रान्स मे आना फिर होने लगा तब स्टार्च से ग्लूकोस का बनाना बन्द हो गया, क्योकि इक्षु-शर्करा की तुलना में ग्लूकोस महँगा पडता था तथा साथ ही कम मीठा था। किन्तु कुछ ही वर्षो बाद जब रसायनज्ञो ने यह ज्ञात किया कि ग्लूकोस का किण्वन सीधे ऐलकोहल मे हो जाता है और इक्षु-शर्करा की तरह विभिन्न पदो मे नही होता तब ग्लूकोस का महत्त्व पुन. किण्वन-उद्योग मे उपयोगी होने की दृष्टि से समझा जाने लगा। इसी मध्य यह भी ज्ञात हुआ कि हमारे शरीर मे भोजन के रूप मे ग्लकोस का स्वीकरण इक्षु-शर्करा की

अपेक्षा अधिक शीघ्र होता है। ग्लूकोस के इन गुणो के कारण इसकी माँग फिर बढने लगी और इसका व्यापारिक मात्रा मे बनाया जाना पुन आरम्भ हुआ। आजकल स्टार्च ही ग्लूकोस का मुख्य स्रोत है।

ग्लूकोस निम्न तीन रूपो मे बना कर बाजारो मे बिकने के लिए रखा जाता है —

(१) **गाढ़ी चाशनी के रूप में**—यह हलके पीले रग की शहद की तरह चाशनी होती है। इसमे १२ से २० प्रतिशत तक पानी, कुछ डेक्सट्रिन तथा कुछ अन्य कलिल अपद्रव्य रहते है, जिनकी उपस्थिति के कारण इस चाशनी मे से ग्लूकोस मणिभीकृत नही होता।

(२) **ठोस ग्लूकोस चूर्ण**—यह अमणिभीय हलके पीले रग का चूर्ण होता है। इसमे ७० से ८० प्रतिशत तक ग्लूकोस रहता है।

(३) **व्यापारिक ग्लूकोस**—यह सफेद मणिभीय चूर्ण होता है और इसमे ९० मे ९९ प्रतिशत तक ग्लूकोस रहता है।

ग्लूकोस बनाने के लिए सभी प्रकार के स्टार्चों का उपयोग किया जाता है, किन्तु अधिकतर इस काम के लिए मकई का स्टार्च सस्ता होने के कारण उपयोग मे आता है। प्राय स्टार्चयुक्त अनाज के दाने ही सीधे ग्लूकोस बनाने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं, किन्तु इनसे ग्लूकोस बहुत शुद्ध नही प्राप्त होता। साधारणत स्टार्च के कारखानो मे जैसे ही स्टार्च बन कर तैयार होता है इसे बिना सुखाये गीली अवस्था मे ही ग्लूकोस बनाने के कारखानो मे भेज दिया जाता है। प्राय ग्लूकोस के कारखानो से सम्बन्धित स्टार्च के कारखाने रहते है जिससे तैयार स्टार्च का तुरन्त ही ग्लूकोस बनाने के लिए उपयोग किया जा सके।

स्टार्च को जल-विश्लेपित करने के लिए सल्फ्यूरिक और हाइड्रोक्लोरिक अम्लो का ही प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है। अन्य अम्ल इस कार्य के लिए विशेष उपयुक्त नही है।

स्टार्च से ग्लूकोस बनाने की विधियाँ

स्टार्च से ग्लूकोस बनाने की इस समय दो मुख्य विधियाँ है—एक पुरानी विधि तथा दूसरी नवीन विधि। पुरानी विधि से भी अभी कुछ कारखानो मे ग्लूकोस बनाया जाता है।

पुरानी विधि—इस विधि मे स्टार्च को ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित करने के लिए सल्फ्यूरिक अम्ल का प्रयोग किया जाता है। समस्त क्रियाएँ निम्न पदो द्वारा पूरी करायी जाती है —

(१) **शर्करीकरण**—स्टार्च को तनु सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ दाब पर उबाल कर ग्लूकोस मे परिणत करना।

(२) **अम्ल का उदासीनीकरण**—शर्करीकरण के बाद विलयन मे उपस्थित सल्फ्यूरिक अम्ल को चूने के दूध या कैल्सियम कार्बोनेट द्वारा उदासीन किया जाता है। उदासीनीकरण मे सल्फ्यूरिक अम्ल कैल्सियम सल्फेट मे परिवर्तित हो जाता है और छान कर निकाला जा सकता है।

(३) **ग्लूकोस का मणिभीकरण**—कैल्सियम सल्फेट को छान कर पृथक् करने के बाद छने विलयन को जन्तु-कोयले द्वारा साफ और निर्वात मे वाष्पित कर सान्द्र किया जाता है और फिर ग्लूकोस का मणिभीकरण किया जाता है।

(४) **मणिभो को पृथक् करना**—मातृ-द्राव मे से मणिभो को अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा पृथक् किया जाता है।

अब हम प्रत्येक पद का ब्योरे से वर्णन करेगे।

(१) **शर्करीकरण**—इस विधि मे शर्करीकरण की क्रिया लकडी की बनी बडी नाँदो मे की जाती है। इन नाँदो मे ताँबे के सर्पाकार नल लगे रहते है जिनमे भाप प्रवाहित करने का प्रबन्ध रहता है। स्टार्च की तौल के अनुपात से ० ५ से १ २५ प्रतिशत तक सल्फ्यूरिक अम्ल लिया जाता है। यदि ग्लूकोस को चाशनी के रूप मे प्राप्त करना ध्येय होता है तो अम्ल की मात्रा अपेक्षाकृत कम ली जाती है, किन्तु यदि चूर्ण रूप मे ग्लूकोस प्राप्त करना होता है तो अम्ल की मात्रा अधिक ली जाती है। जितना अम्ल लेना होता है उसके अनुपात से तीन गुना पानी नाँद मे भर कर उसमे सब अम्ल मिला दिया जाता हे। स्टार्च को पानी की उपयुक्त मात्रा के साथ एक दूसरे बर्तन मे मिलाकर स्टार्च-दुग्ध बना लिया जाता है। इस बर्तन मे विलोडक द्वारा स्टार्च-दुग्ध को बराबर चलाते रहने का प्रबन्ध रहता है, क्योकि यदि स्टार्च-दुग्ध को बराबर चलाते न रखा जाय तो स्टार्च पृथक् होकर पेंदी मे बैठ जाता है। अब नाँद के अम्ल के विलयन को उबाला जाता है। जब यह उबलने लगता है तो इसमे स्टार्च-दुग्ध को धीरे-धीरे इस गति से डाला जाता है कि विलयन का उबलना न रुके। सब स्टार्च-दुग्ध डाल चुकने के बाद भी उबालने की क्रिया उस समय तक जारी रखी जाती है जब तक समस्त स्टार्च का ग्लूकोस मे जल-विश्लेषण सम्पूर्ण नही हो जाता। स्टार्च के पूर्ण जल-विश्लेषित होने की अवस्था आयोडीन के परीक्षण द्वारा ज्ञात हो जाती है। उबलते विलयन की थोडी-थोडी मात्रा बीच-बीच मे निकाल कर और ठण्डा कर आयोडीन के विलयन की एक बूँद द्वारा परीक्षित की जाती है। स्टार्च की जब तक सूक्ष्म मात्रा भी शेष रहती है आयोडीन के साथ विलयन नीला रग उत्पन्न करता है। जब आयोडीन के साथ कोई

नीला रग नही उत्पन्न होता तो यह ज्ञात हो जाता है कि अब समस्त स्टार्च जल-विश्लेषित हो चुका है। स्टार्च के जल विश्लेषण के फलस्वरूप पहले डेक्सट्रिन बनता है और डेक्सट्रिन फिर ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित हो जाता है। अत यह भी जानना आवश्यक होता है कि बीच मे बना डेक्सट्रिन भी पूर्ण रूप से जल-विश्लेषित होकर ग्लूकोस मे परिवर्तित हो गया है या डेक्सट्रिन की कुछ मात्रा अभी शेष रह गयी है। इसका परीक्षण करने के लिए स्टार्च के पूर्ण जल-विश्लेषण के बाद विलयन की थोडी मात्रा एक परखनली मे निकाल कर और ठण्डा कर उसमे ऐलकोहल की दुगुनी मात्रा मिलायी जाती है। यदि विलयन मे डेक्सट्रिन बचा रहता है तो यह एक अवक्षेप के रूप मे पृथक् हो जाता है। जब इस परीक्षण मे कोई अवक्षेप नही प्राप्त होता तो ज्ञात हो जाता है कि अब विलयन मे कुछ भी डेक्सट्रिन नही बचा है और सब ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित हो चुका है। इस समय शर्करीकरण पूर्ण हो चुका होता है।

शर्करीकरण की क्रिया मे विलयन के उबलते समय कुछ तीव्र गन्धयुक्त वाष्पशील पदार्थ भी उत्पन्न होते है। प्राय शर्करीकरण की समाप्ति के बाद भी कुछ समय तक विलयन को उबलने दिया जाता है जिससे ये वाष्पशील अपद्रव्य पूर्ण रूप से वाष्पित होकर निकल जायँ। इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि स्टार्च-दुग्ध को अम्ल के विलयन मे डालते समय कोई लेई न बनने पाये। यदि ऐसा होता है तो पानी की मात्रा बढा दी जाती है।

(२) **उदासीनीकरण** (Neutralization)—शर्करीकरण के बाद ग्लूकोस का जो विलयन प्राप्त होता है उसमे उपस्थित अम्ल को खडिया (chalk, कैल्सियम कार्बोनेट) द्वारा उदासीन किया जाता है। इस कार्य के लिए चूने के दूध का उपयोग नही किया जाता, क्योकि ग्लूकोस कैल्सियम हाइड्राक्साइड से अभिक्रिया कर कैल्सियम ग्लूकोसेट यौगिक बनाता है। उदासीनीकरण एक बार मे पूर्ण नही किया जाता। आरम्भ मे विलयन की लगभग तीन-चौथाई अम्लीयता का उदासीनीकरण खडिया द्वारा किया जाता है और विलयन मे थोडी अम्लीयता रहने दी जाती है। अब विलयन को पुन एक बार उबाला जाता है और फिर शेष अम्लीयता का उदासीनीकरण कर शान्त रख दिया जाता है। इस रीति से उदासीनीकरण करने से अपद्रव्यो का तलछटीकरण अधिक अच्छा होता है। कुछ समय तक यो ही शान्त रखा रहने पर कैल्सियम सल्फेट अवक्षेप के रूप मे नीचे बैठ जाता है। अब निथार कर ऊपर से स्वच्छ विलयन को दूसरे बर्तन मे निकाल लिया जाता है। प्राय फिल्टर प्रेस द्वारा दाब पर विलयन को छान कर कैल्सियम सल्फेट को पृथक् किया जाता है। ग्लूकोस का अब एक स्वच्छ विलयन प्राप्त होता है।

(३) **मणिभीकरण**—विलयन को निर्वात मे वाष्पित कर सान्द्र किया जाता है। गाढा होने पर कुछ कैल्सियम सल्फेट जो आरम्भ मे अवक्षेपित नही हुआ था अवक्षेप के रूप मे पृथक् हो जाता है। इस गाढे रस को फिल्टर प्रेस द्वारा छान कर इसमे उपस्थित अवक्षेप को निकालने के बाद छने रस को जन्तु-कोयले के भीतर से प्रवाहित किया जाता है जिससे इसका रग तथा गन्ध कोयले द्वारा शोषित होकर निकल जायें। अब इस स्वच्छ रस को पुन निर्वात कडाह (vacuum pans) मे वाष्पित कर इतना सान्द्र किया जाता है कि ग्लूकोस मणिभीकृत होकर पृथक् होने लगे। इसे अब कुछ समय तक रखा रहने दिया जाता है। इस बीच धीमी गति से विलोडक द्वारा इसे बराबर चलाते रहते है। कुछ समय बाद ग्लूकोस का पूर्ण मणिभीकरण हो जाता है और राब प्राप्त होती है। ग्लूकोस के मणिभो को अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा या फिल्टर प्रेस द्वारा दाब मे छान कर मातृ-द्राव मे से पृथक् किया जाता है।

ऊपर की विधि मे यदि सब क्रियाएँ उचित ढग से की जाती है तो लगभग ९२ से ९८ प्रतिशत शुद्धता का ग्लूकोस प्राप्त होता है। प्राय शर्करीकरण की क्रिया मे स्टार्च-विलयन का जल-विश्लेषण ऊँचे दाब पर भी किया जाता है, किन्तु इसमे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि ताप १३०° से अधिक न होने पाये और विलयन बहुत अधिक समय तक भी न उबलने दिया जाय, अन्यथा ग्लूकोस का विच्छेदन हो जाता है और इसकी मात्रा कम प्राप्त होती है। ऊँचे दाब पर अम्ल की उपस्थिति मे उबालने से स्टार्च का ग्लूकोस मे जल-विश्लेषण अधिक शीघ्र पूर्ण होता है और इस प्रकार समय की बचत होती है।

यदि ग्लूकोस को चाशनी के रूप मे बाजार मे बिकने के लिए भेजना होता है तो विलयन को लगभग ४५°-५०° बोमे (Baume) विशिष्ट गुरुत्व तक ही गाढा कर रख दिया जाता है। इससे अधिक गाढा करने पर मणिभीकरण होना आरम्भ हो जाता है।

वर्तमान विधि—आजकल ग्लूकोस की माँग बहुत बढ गयी है और इसके बनाने की विधि मे नवीन खोजो के आधार पर विभिन्न सुधार किये गये है। इस समय सबसे अधिक ग्लूकोस अमेरिका मे मकई के स्टार्च से बनाया जाता है। यहाँ प्रत्येक ग्लूकोस के कारखाने से सम्बद्ध अन्वेषणशालाएँ है जहाँ ग्लूकोस बनाने से सम्बन्धित समस्याओ पर निरन्तर खोजे होती रहती है। आजकल जो विधि अमेरिका मे व्यापारिक मात्रा में ग्लूकोस बनाने के लिए प्रचलित है उसमे सल्फ्यूरिक अम्ल के स्थान मे जल-विश्लेषण के लिए हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उपयोग किया जाता है। पूरी विधि निम्न भाँति है :—

स्टार्च की तोल के हिसाब से ० १२ प्रतिशत मात्रा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की ली

जाती है। इसे पानी की उपयुक्त मात्रा मे एक बडे ताँबे के बेलनाकार बर्तन मे मिलाया जाता है। बर्तन लगभग १६ से २० फुट तक ऊँचा तथा ५-६ फुट व्यास का होता है। इस बर्तन मे कुण्डलाकार भाप के नल लगे रहते है जिनमे ऊँचे दाब की भाप प्रवाहित की जाती है। बर्तन मे भरे अम्ल के विलयन को १३२° से० ग्रे० तक गरम किया जाता है। एक अन्य बर्तन मे स्टार्च को ठढे पानी की उपयुक्त मात्रा के साथ मिला कर इसका एक पतला जलीय निलम्बन बना लिया जाता है। इस निलम्बन को पम्प द्वारा धीरे-धीरे १३२° से० ग्रे० तक गरम किये गये अम्ल के विलयन मे डाला जाता है। स्टार्च-निलम्बन के अम्ल मे डालने की गति इतनी रखी जाती है कि पूरा स्टार्च डालने मे लगभग २०-२५ मिनट लगे। जैसे ही स्टार्च अम्ल के विलयन मे इस ऊँचे ताप पर मिलता है, इसका जल-विश्लेपण हो जाता है और इस कारण न तो स्टार्च की कोई लेई बनने पाती है और न कोई थक्का ही। सब स्टार्च डाल चुकने के बाद उबलते विलयन की थोडी मात्रा एक परखनली मे निकाल कर इसका परीक्षण आयोडीन तथा ऐलकोहल परीक्षणो द्वारा कर यह ज्ञात किया जाता है कि जल-विश्लेषण किस अवस्था मे है। उसी के अनुसार थोडे समय तक विलयन को और उबालते है और बीच-बीच मे आयोडीन तथा ऐलकोहल परीक्षणो द्वारा परीक्षा करते जाते है। ग्लूकोस को जिस अवस्था मे (ठोस या चाशनी) प्राप्त करना होता है उसी के अनुसार स्टार्च के जल-विश्लेषण की क्रिया पर नियन्त्रण रखा जाता है। यदि ग्लूकोस को चाशनी के रूप मे रखना है तो उस समय जब सब स्टार्च तो जल-विश्लेपित हो चुका है किन्तु थोडा डेक्सट्रिन शेप है, ऊँचे दाब को हटा लिया जाता है जिससे ताप एकदम बहुत नीचे गिर जाता है और फलस्वरूप जल-विश्लेपण की क्रिया रुक जाती है। यह अवस्था समस्त स्टार्च को अम्ल मे डाल चुकने के लगभग ५-६ मिनट के बाद ही आ जाती है। अत इस अवस्था पर ठीक नियन्त्रण रखने के लिए बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता पडती है। ग्लूकोस को चाशनी के रूप मे स्थायी रखने के लिए इसमे थोडा डेक्सट्रिन का रहना आवश्यक है। डेक्सट्रिन की उपस्थिति से ग्लूकोस का मणिभीकरण नही होने पाता।

यदि ग्लूकोस को ठोस रूप मे प्राप्त करना होता है तो स्टार्च का जल-विश्लेपण कराने के लिए अम्ल की मात्रा ०.१२ प्रतिशत से बढा कर २ ० प्रतिशत कर दी जाती है और उबालने की क्रिया उस समय रोकी जाती है जब स्टार्च का पूर्ण रूप से जल-विश्लेषण ग्लूकोस मे हो चुकता है, अर्थात् उस समय जब विलयन मे न तो स्टार्च शेष रहता है और न कोई डेक्सट्रिन। बीच-बीच मे आयोडीन और ऐलकोहल परीक्षण करते रहते है। जब वह अवस्था आती है जिसमे विलयन ऐलकोहल परीक्षण मे कोई अवक्षेप नही देता तो इसके बाद १० मिनट तक विलयन को और उबलने दिया जाता है जिससे शर्करा

के अतिरिक्त ऐसे सब अपद्रव्य जा ऐलकोहल से अवक्षेपित नही होते जल-विश्लेषित हो जायँ। इसके बाद दाब हटा कर ताप नीचे गिरा दिया जाता है जिससे जल-विश्लेषण की क्रिया रुक जाती है।

जल-विश्लेषण की क्रिया जब पूर्ण हो जाती है तो जो विलयन प्राप्त होता है उसे एक बडी नाँद मे पहुँचाया जाता है और उसमे उपस्थित अम्ल को सोडा भस्म (soda ash) द्वारा उदासीन किया जाता है। इसके बाद विलयन को दाब पर फिल्टर प्रेस द्वारा छाना जाता है जिससे उसमे निलम्बित अविलेय पदार्थ निकल जायँ। फिर उसे वाष्पको (evaporatores) मे वाष्पित कर ३०° बोमे घनत्व तक सान्द्र किया जाता है। इस सान्द्र रस को अब क्रम से प्रबन्धित तीन छन्ने तालाबो मे भेजा जाता है जिनमे जन्तु-कोयला भरा रहता है। जन्तु-कोयला रस के रग को पर्याप्त अश तक अधिशोषित कर लेता है और कोयले के इन छन्नो से छनने के बाद रस बहुत स्वच्छ और हलके रग का होता है। इसे निर्वात कडाहो (vacuum pans) मे ४२°-४५° बोमे घनत्व तक सान्द्र किया जाता है। यदि स्टार्च का जल-विश्लेषण ऐसी अवस्था तक किया गया है कि उसमे थोडा डेक्सट्रिन मौजूद है तो इतना गाढा करने के बाद जो रस प्राप्त होता है वह ठढा किये जाने पर चाशनी (syrup) के रूप मे ही रहता है और इसमे से ग्लूकोस मणिभी-कृत नही होता। इसी रूप मे इसे बाजारो मे ग्लूकोस चाशनी (glucose syrup) के नाम से बिकने के लिए भेज दिया जाता है। किन्तु यदि स्टार्च का पूर्ण जल-विश्लेषण ग्लूकोस अवस्था तक किया गया है और इसमे डेक्सट्रिन की मात्रा बिल्कुल नही रहने दी गयी है तो ४२°-४५° बोमे घनत्व तक गाढा करने के बाद जब रस को ठढा किया जाता है तो ग्लूकोस सफेद या हलके भूरे रग के मणिभो के रूप मे पृथक् हो जाता है। इस प्रकार प्राप्त ग्लूकोस जलयोजित (hydrated) रहता है। यदि अजल (anhydrous) ग्लूकोस बनाना होता है तो गरम चाशनी मे ही थोडे-से अजल ग्लूकोस के मणिभ डाल दिये जाते है और इसे शान्त रख दिया जाता है। चाशनी मे से धीरे-धीरे ग्लूकोस अजल रूप मे मणिभीकृत होकर पृथक् होने लगता है और थोडे समय बाद सब ग्लूकोस मणिभो के रूप मे पृथक् हो जाता है। मणिभो को मातृ-द्राव मे से अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा पृथक् किया जाता है और फिर शोषको मे सुखा कर डब्बो या शीशियो मे भर कर रख लिया जाता है।

छन्ना-तालाबो मे भरे जन्तु-कोयले की सक्रियता (activity) कुछ समय के उपयोग के बाद नष्ट हो जाती है। पुन सक्रिय करने के लिए इसे भट्टी मे गरम किया जाता है।

विभिन्न कारखानो मे ऊपर की विधि मे थोडा परिवर्तन अपनी आवश्यकतानुसार

प्राय कर लिया जाता है। जल-विश्लेषण के बाद प्राप्त ग्लूकोस विलयन मे उपस्थित अम्ल को उदासीन करने के लिए भी विभिन्न कारखानो मे विभिन्न अभिकर्मको का उपयोग किया जाता है। सोडियम कार्बोनेट द्वारा उदासीन करने पर यद्यपि अधिकाश कलिल पदार्थ भी पृथक् हो जाते है, फिर भी कुछ कलिल पदार्थ आकीर्ण अवस्था (dispersed condition) मे बिना अवक्षेपित हुए बच रहते है। सोडियम कार्बोनेट के स्थान मे यदि बेटोनाइट (Bentonite), ऐल्यूमिनियम सिलीकेट अथवा किसी अन्य कलिलीय मृत्तिका पदार्थ (colloidal clay) का उपयोग किया जाता है तो जल-विश्लेषित विलयन मे मौजूद समस्त कलिल अपद्रव्य पूर्ण रूप से अवक्षेपित हो जाते है। इस प्रकार अभिकृत विलयन अधिक शीघ्रता से जन्तु-कोयले के भीतर से छनता भी है और साथ ही जन्तु-कोयले की सक्रियता भी अधिक दिनो तक बनी रहती है।

अनाज से सीधे ग्लूकोस बनाना—स्टार्च के स्थान मे यदि अनाज से सीधे ग्लूकोस बनाना होता है तो ऊपर की विधि मे अन्तर करना पडता है। अनाज से ग्लूकोस बनाने की सबसे अच्छी विधि एस० एच० जानसन (S. H Johnson) की है। इस विधि मे अनाज के दानो को पहले दो प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन मे भिगो दिया जाता है। अम्ल दानो के प्रोटीन तथा तैल पदार्थो को अपने मे घुला लेता है। निर्धारित काल तक भिगोने के बाद अम्ल को निथार कर अलग निकाल दिया जाता है और अनाज को तब तक धोया जाता है जब तक वह लिटमस के प्रति पूर्ण उदासीन नही हो जाता। अब इस अनाज को पुन एक प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन मे कुछ समय तक भिगोया जाता है। जब अनाज के दाने जितना अम्ल अपने भीतर शोषित कर सकते है शोषित कर लेते है तब इन्हे अम्ल मे से निकाल कर एक दूसरे बर्तन मे पहुँचाया जाता है जहाँ इनके स्टार्च को ग्लूकोस मे परिणत करना होता है। यह बर्तन पिटवाँ लोहे का बना होता है और इसके अन्दर की दीवार सीसा (lead) धातु की चद्दर से मढी रहती है। सीसे पर अम्ल का विशेष प्रभाव नही पडता, इसी कारण बर्तन के अन्दर की दीवार सीसे की चद्दर से मढी जाती है। इस बर्तन मे इस प्रकार का प्रबन्ध रहता है कि इसमे नीचे से भाप पहुँचायी जा सकती है। अनाज भर चुकने के बाद बर्तन मे नीचे से ऊँचे दाब की गरम भाप पहुँचायी जाती है और ताप लगभग १३२° रखा जाता है। इस ताप पर अनाज मे उपस्थित अम्ल द्वारा अनाज के स्टार्च का जल-विश्लेपण होता है और थोडे समय मे बर्तन मे ग्लूकोस का विलयन बन जाता है। आयोडीन और ऐलकोहल परीक्षणो द्वारा जब यह ज्ञात हो जाता है कि अनाज के स्टार्च का जल-विश्लेषण ग्लूकोस मे निर्धारित सीमा तक हो गया है तो भाप प्रवाहित करना बद कर इसे और गरम करना रोक दिया

जाता है। विभिन्न अनाजो के साथ जल-विश्लेपण की क्रिया के पूर्ण होने मे विभिन्न समय लगता है। चावल के साथ जल-विश्लेषण १०-१५ मिनट के भीतर हो जाता है, गेहूँ के साथ जल-विश्लेषण के पूरा होने मे २५-३० मिनट लगते है।

जल-विश्लेषण की समाप्ति के बाद प्राप्त द्रव को छान कर एक अन्य बर्तन मे भरा जाता है और इसके अम्ल को सोडियम कार्बोनेट (या बेंटोनाइट) द्वारा उदासीन किया जाता है। यदि आरम्भ मे भाप के रूप मे बहुत अधिक पानी नही मिलाया गया है तो ठडा होने पर पूरा विलयन ठोस रूप मे जम जाता है। इस प्रकार बना ग्लूकोस लगभग ९०-९५ प्रतिशत शुद्ध होता है और इसमे कोई दुर्गन्ध या खराब स्वाद नही होता। इसे सीधे शराब बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है और इसी उद्यम मे इस विधि से बनाये गये ग्लूकोस की लगभग सम्पूर्ण मात्रा उपयोग मे आ जाती है।

स्टार्च से ग्लूकोस बनने मे रासायनिक अभिक्रियाएँ

जैसा हम पीछे पढ चुके है, स्टार्च मे दो रासायनिक यौगिक रहते हैं—ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन। इन दोनो का जल-विश्लेषण किन बीच की अवस्थाओ से होता हुआ अन्त मे ग्लूकोस तक होता है इस सम्बन्ध मे रसायनज्ञो ने अनेको प्रयोग किये है किन्तु अभी तक इसका पूरा ज्ञान नही हो सका है। जल-विश्लेषण मे
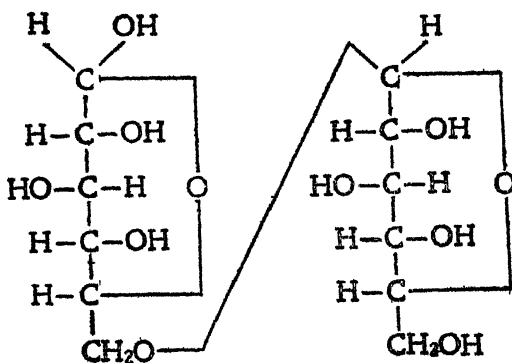
जेंटियोबायोस

ग्लूकोस के अतिरिक्त सूक्ष्म मात्राओं मे जेंटियोबायोस शर्करा (gentiobiose), लेव्यूलिनिक अम्ल (levulinic acid) तथा फर्फ्यूराल यौगिक (furfural derivatives) भी बनते है। जेंटियोबायोस का अणुसूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है और यह

इक्षु-शर्करा का एक समावयवी है। इसमे दो ग्लूकोस इकाइयाँ C_1-C_6 β-ग्लूकोसाइड-बन्ध द्वारा सयोजित रहती हैं।

कुछ रसायनज्ञो का यह मत है कि स्टार्च पहले पूर्ण जल-विश्लेषित होकर ग्लूकोस उत्पन्न करता है और फिर ग्लूकोस अणुओ से ही अन्य उपजात अप्रधान अभिक्रियाओ (side reactions) के फलस्वरूप बनते हैं। जेंटियोबायोस के बनने मे दो ग्लूकोस अणुओ का परस्पर सघनन C_1-C_6 β-ग्लूकोसाइड-बन्ध द्वारा होता है।

ग्लूकोस के गुणधर्म : भौतिक—ग्लूकोस जलीय विलयन से पानी के एक अणु के साथ सफेद ठोस के रूप मे मणिभीकृत होता है। इस जलयोजित ग्लूकोस का गलनाक ८६° सें० ग्रे० है। ऐलकोहली विलयन से यह अजल अवस्था मे मणिभीकृत होता है और इस अजल ग्लूकोस का गलनाक १४६° है। ग्लूकोस पानी मे शीघ्र विलेय है, किन्तु ऐलकोहल मे बहुत थोडा विलेय है। यह स्वाद मे मीठा होता है, किन्तु इक्षु-शर्करा से कम मीठा होता है।

ग्लूकोस दक्षिणावर्ती (dextro-rotatory) है और प्रकाश के ध्रुवन-तल को दाहिनी ओर घुमाता है। इसी कारण इसे डेक्सट्रोस भी कहते है।

ग्लूकोस के तुरन्त के बने जलीय विलयन का विशिष्ट घूर्णन (specific rotation) +११३° है, किन्तु घूर्णन की मात्रा विलयन को रखने पर धीरे-धीरे घटने लगती है और फिर +५२ ५° पर आकर स्थिर होती है। विलयन को रखने पर इस प्रकार घूर्णन मे परिवर्तन होने की क्रिया को **परवर्ती घूर्णन या म्यूटारोटेशन** (mutarotation) कहते है। इस क्रिया का कारण यह है कि ग्लूकोस दो विन्यास-समावयवी रूपो मे ज्ञात है और विलयन मे ये दोनो समावयवी सतुलित मिश्रण (equilibrium mixture) के रूप मे रहते हैं। सर्वप्रथम टैनरेट (Tanret) ने सन् १८८५ मे ग्लूकोस के दोनों समावयवियो को पृथक् रूप मे प्राप्त किया था। ग्लूकोस का सामान्य समावयवी जो पानी से मणिभीकरण द्वारा प्राप्त होता है α-D-ग्लूकोस कहलाता है और दूसरा समावयवी जो ग्लूकोस के गरम विलयन मे से ऐसीटिक अम्ल द्वारा अवक्षेपित होता है β-D-ग्लूकोस कहलाता है। α-D-ग्लूकोस के जलीय विलयन का विशिष्ट घूर्णन आरम्भ मे +११३° होता है और यह धीरे-धीरे घटकर +५२.५° पर आकर स्थिर हो जाता है। β-D-ग्लूकोस के विलयन का आरम्भिक विशिष्ट घूर्णन +१९° होता है और रखने पर यह धीरे-धीरे वृद्धि करता है और ५२.५° पर पहुँचकर स्थिर हो जाता है। अतः दोनो समावयवी एक दूसरे मे परिवर्तनशील (interconvertible) है और घूर्णन का स्थिराक तब पहुँचता है जब दोनो साम्यावस्था मे मिश्रण के रूप मे रहते है। इस साम्यावस्था को समीकरण द्वारा निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है —

$$\underset{+११३^\circ}{\alpha\text{-D-ग्लूकोस}} \quad \underset{+५२\ ५^\circ}{\rightleftharpoons} \quad \underset{+१९^\circ}{\beta\ \text{D-ग्लूकोस}}$$
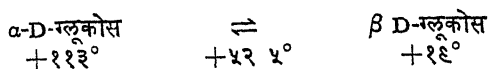
रासायनिक—(१) गरम किये जाने पर यह पहले पिघलता है और फिर विच्छेदित होने के कारण काला पड जाता है, साथ ही जली शक्कर की सी गध निकलती है।

(२) सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल इसे ठडी अवस्था मे नही झुलसाता परन्तु गरम किये जाने पर झुलसा कर काला कर देता है और कार्बन डाइ-आक्साइड, सल्फर डाइ-आक्साइड आदि गैसे निलकती है —

$$C_6H_{12}O_6 + H_2SO_4 \xrightarrow{O} 6CO_2 + SO_2 + 7H_2O$$
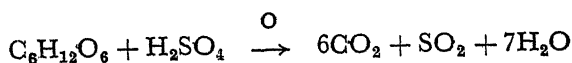
(३) जब ग्लूकोस का विलयन सान्द्र कास्टिक सोडा के साथ गरम किया जाता है तो यह रेजिन बनने के कारण पीला हो जाता है। जो क्रिया होती है वह बहुत ही जटिल है।

(४) **ऐल्डीहाइड गुण**—ग्लूकोस कई गुणो मे ऐल्डीहाइड के समान है। ये गुण निम्न है —

(क) **अवकरण** (Reduction)—ग्लूकोस को क्षारीय अवकारक से अभिकृत करने पर एक बहुहाइड्राक्सी ऐलकोहल, सारबिटाल (sorbitol) बनता है —

$$\underset{\text{ग्लूकोस}}{\begin{matrix} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{matrix}} + 2H \xrightarrow[+ \text{ पानी}]{\text{सोडियम एमलगम}} \underset{\text{सारबिटाल}}{\begin{matrix} CH_2OH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{matrix}}$$
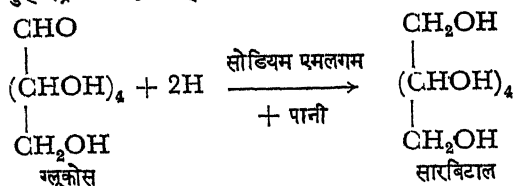
(ख) **आक्सीकरण** (Oxidation)—ग्लूकोस जब मृदु आक्सीकारको (mild oxidising agents) द्वारा अभिकृत किया जाता है तो यह ग्लूकॉनिक अम्ल बनाता है। यह एक भास्मिक अम्ल है और इसमे कार्बन की सख्या वही रहती है जो ग्लूकोस मे है। मदु आक्सीकारको मे हाइपोब्रोमाइट विलयन, सिल्वर आक्साइड, क्षारीय कापर सल्फेट तथा तनु नाइट्रिक अम्ल आदि है।

$$\begin{matrix} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{matrix} \xrightarrow[{[O]}]{NaOBr} \underset{\text{ग्लूकॉनिक अम्ल}}{\begin{matrix} COOH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{matrix}}$$
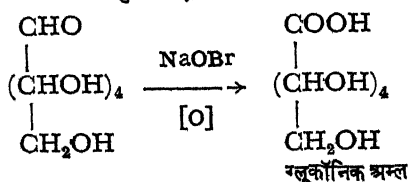
तीक्ष्ण आक्सीकारकों द्वारा (जैसे सान्द्र नाइट्रिक अम्ल) ग्लूकोस सैकरिक अम्ल मे आक्सीकृत हो जाता है जो एक द्वि-भास्मिक अम्ल है। सैकरिक अम्ल मे भी कार्बन की सख्या वही रहती है जो ग्लूकोस मे है —

$$\begin{array}{c} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} \xrightarrow[\text{[O]}]{\text{सान्द्र } HNO_3} \begin{array}{c} COOH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ COOH \\ \text{सैकरिक अम्ल} \end{array}$$
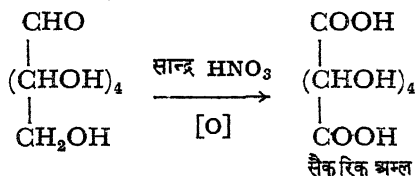
ऊपर के आक्सीकृत यौगिक ग्लूकोस के ऐल्डीहाइड गुण के द्योतक है। सरलता से आक्सीकृत हो जाने के अपने गुण के कारण ग्लूकोस ऐल्डीहाइड की भाँति एक तीव्र अवकारक है और ऐमोनीय सिल्वर नाइट्रेट विलयन तथा फेह्लिग के विलयन को शीघ्र अवकृत कर देता है। फलस्वरूप यह ऐमोनीय सिल्वर नाइट्रेट विलयन मे से चाँदी को तथा फेह्लिग के विलयन मे से लाल क्यूप्रस आक्साइड को अवक्षेपित करता है। अभिक्रियाएँ निम्न समीकरणो के अनुसार होती है —

$$\begin{array}{c} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} + 2AgOH \longrightarrow \begin{array}{c} COOH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \\ \text{ग्लूकॉनिक अम्ल} \end{array} + 2Ag + H_2O$$

$$\begin{array}{c} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} + 2Cu(OH)_2 \longrightarrow \begin{array}{c} COOH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \\ \text{ग्लूकॉनिक अम्ल} \end{array} + Cu_2O + H_2O$$
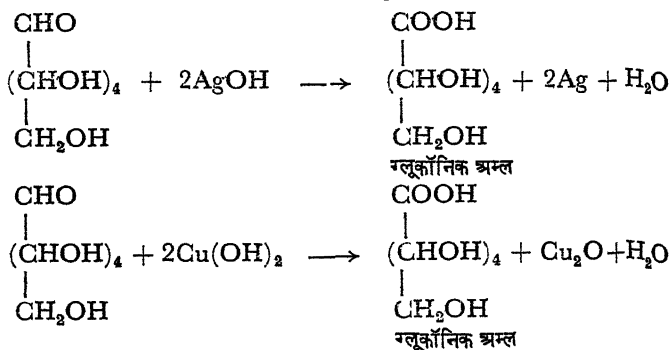
(ग) हाइड्रोजन सायनाइड की क्रिया—हाइड्रोजन सायनाइड के साथ ग्लूकोस एक योग-यौगिक, ग्लूकोस सायनहाइड्रिन, बनाता है —

$$\begin{array}{c} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ (CH_2OH \end{array} + HCN \longrightarrow \begin{array}{c} CN \\ | \\ CHOH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \\ \text{ग्लूकोस सायनहाइड्रिन} \end{array}$$
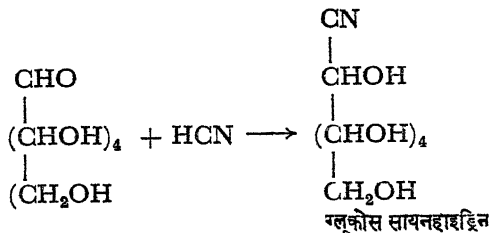
(घ) **हाइड्राक्सिलेमिन की क्रिया**—ग्लूकोस एक ऐल्डीहाइड की भाँति हाइड्राक्सिलेमिन के साथ अभिक्रिया करता है और ग्लूकोस आक्सीम बनाता है :—

$$\begin{array}{l} CHO + H_2NOH \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} \longrightarrow \begin{array}{l} CH{=}NOH \\ | \\ (CHOH)_4 + H_2O \\ | \\ CH_2OH \end{array}$$

ग्लूकोस आक्सीम
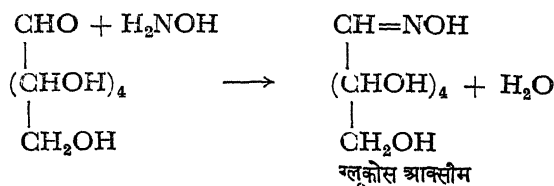
(ङ) **फेनिल हाइड्राजिन की क्रिया**—फेनिल हाइड्राजिन के साथ ग्लूकोस पहले अन्य ऐल्डीहाइडो की तरह फेनिल हाइड्राजोन बनाता है —

$$\begin{array}{l} CHO + H_2N\ NHC_6H_5 \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} \longrightarrow \begin{array}{l} CH{=}N\ NHC_6H_5 \\ | \\ (CHOH)_4 \qquad + H_2O \\ | \\ CH_2OH \end{array}$$
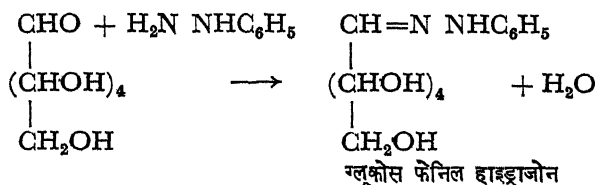
ग्लूकोस फेनिल हाइड्राजोन

किन्तु फेनिल हाइड्राजिन की अधिक मात्रा के साथ गरम किये जाने पर ग्लूकोस एक डाइफेनिल हाइड्राजोन यौगिक बनाता है जिसे ग्लूकोसाजोन (glucosazone) कहते है। यह अविलेय पीले रग का मणिभीय यौगिक है और इसका एक निश्चित गलनाक होता है। इसके द्वारा ग्लूकोस की पहचान की जा सकती है। ग्लूकोसाजोन बनने की अभिक्रियाएँ जटिल है। इसका सूत्र निम्न है :—

$$\begin{array}{l} CH{=}N\ NHC_6H_5 \\ | \\ C{=}N\ NHC_6H_5 \\ | \\ (CHOH)_3 \\ | \\ CH_2OH \end{array}$$

ग्लूकोसाजोन
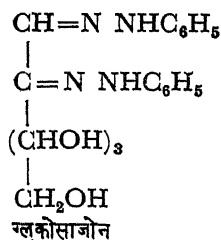
अन्य कई शर्कराएँ भी ओसाजोन बनाती है किन्तु प्रत्येक का गलनाक भिन्न होता है। अत. शर्कराओ का ओसाजोन बनाकर और उनका गलनाक ज्ञात कर विभिन्न शर्कराओ को सरलता से पहचाना जा सकता है। वास्तव मे शर्कराओ को एक दूसरी से पहचानने का यही सब से अच्छा परीक्षण है।

ओसाजोन बनाने के लिए शर्करा को फेनिल हाइड्राजिन के साथ ऐसीटिक अम्ल की उपस्थिति मे उबलते पानी के ऊष्मक मे रख कर लगभग एक घंटे तक गरम किया जाता है।

जब ओसाजोन को जलीय कापर सल्फेट विलयन के साथ गरम किया जाता है तो एक दूसरा अविलेय यौगिक बनता है जिसे ओसोट्रायाजोल (osotriazole) कहते है। इसका भी एक निश्चित गलनाक होता है और यह भी शर्कराओ के परीक्षण मे सहायक है —

$$\begin{array}{l} CH{=}N\ NHC_6H_5 \\ | \\ C{=}\ N\ NHC_6H_5 \\ | \\ (CHOH)_3 \\ | \\ CH_2OH \end{array} \xrightarrow{CuSO_4} \begin{array}{l} CH{=}N \diagdown \\ |\qquad\quad >N\ C_6H_5 \\ C{=}\ N \diagup \\ | \\ (CHOH)_3 \\ | \\ CH_2OH \end{array} + C_6H_5NH_2$$

ग्लूकोसाजोन — फेनिल ग्लूकोसोट्रायाजोल
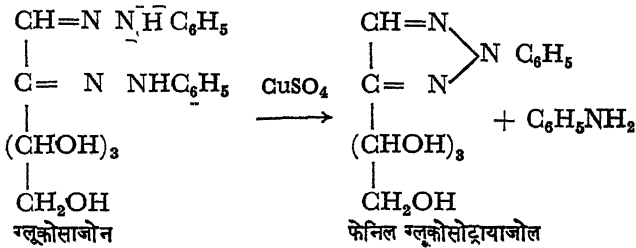
(५) **ऐलकोहली गुण—(क) फास्फोरस पेंटाक्लोराइड की क्रिया**—फास्फोरस पेंटाक्लोराइड के साथ पेंटाक्लोरो यौगिक बनता है —

$$\begin{array}{l} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} + PCl_5 \longrightarrow \begin{array}{l} CHO \\ | \\ (CHCl)_4 \\ | \\ CH_2Cl \end{array} + 5POCl_3 + 5HCl$$

पेंटाक्लोरोग्लूकोस
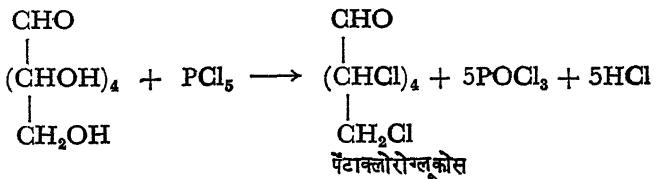
(ख) ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड (या ऐसीटिल क्लोराइड) जब अजल सोडियम ऐसीटेट की उपस्थिति मे ग्लूकोस पर क्रिया करता है तो पेंटाऐसीटिल यौगिक बनता है —

$$\begin{array}{l} CHO \\ | \\ (CHOH)_4 \\ | \\ CH_2OH \end{array} \xrightarrow[CH_3COONa]{(CH_3CO)_2O\ +} \begin{array}{l} CHO \\ | \\ (CHOCOCH_3)_4 \\ | \\ CH_2OCOCH_3 \end{array}$$

पेंटाऐसीटिल ग्लूकोस
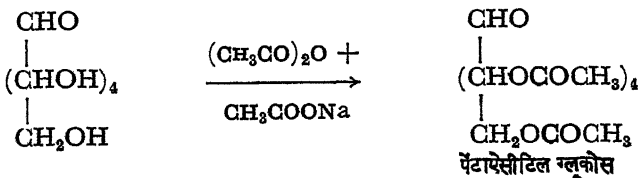
ऊपर की दोनो अभिक्रियाओ से यह सिद्ध होता है कि ग्लूकोस के अणु मे पाँच हाइ-ड्राक्सी मूलक है।

(ग) अन्य ऐलकोहलो की भाँति ग्लूकोस के हाइड्राक्सिल मूलक के हाइड्रोजन परमाणु का धातु-परमाणुओ द्वारा विस्थापन हो जाता है और ऐलकोहालेट बनते है। ये यौगिक सामान्य ऐलकोहलो के ऐलकोहालेटो की अपेक्षा अधिक सरलता से बनते है। ये विभिन्न धातु-हाइड्राक्साइडो की अभिक्रिया से ही बन जाते है। उदाहरणार्थ, कैल्सियम हाइड्राक्साइड के साथ ग्लूकोस कैल्सियम ग्लूकोसेट, $C_6H_{11}O_6\,CaOH$, और बेरियम हाइड्राक्साइड के साथ बेरियम ग्लूकोसेट, $C_6H_{11}O_6\,BaOH$, बनाता है। ग्लूकोसेट के जलीय विलयन मे कार्बन डाइ-आक्साइड प्रवाहित करने पर ग्लूकोसेट शीघ्र विच्छेदित हो जाते है और धातु-कार्बोनेट तथा ग्लूकोस उत्पन्न होते है।

(घ) अन्य ऐलकोहलो के साथ ऐलकोहल की भाँति क्रिया कर ग्लूकोस ईथर की तरह के यौगिक बनाता है। उदाहरणार्थ, शुष्क हाइड्रोजन क्लोराइड गैस की उप-स्थिति मे मेथिल ऐलकोहल के साथ प्रतिक्रिया करने पर ग्लूकोस एक मॉनो-मेथिल ईथर बनाता है। इन यौगिको को ग्लूकोसाइड कहते हैं। मेथिल ग्लूकोसाइड दो विन्यास समावयवी रूपो मे प्राप्त होता है जिन्हें α- और β-मेथिल ग्लूकोसाइड नाम दिया गया है। इनका आकार निम्न है —
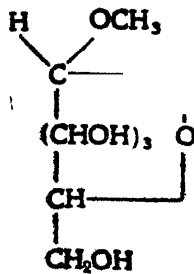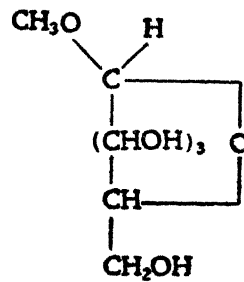
α-मेथिल ग्लूकोसाइड β-मेथिल ग्लूकोसाइड

(६) अन्य अभिक्रियाएँ—(क) ऐसीटोन के साथ ग्लूकोस दो सघनन यौगिक बनाता है—मॉनो-ऐसीटोन ग्लूकोस (monoacetone glucose) और डाइ-ऐसीटोन ग्लूकोस (diacetone glucose) —
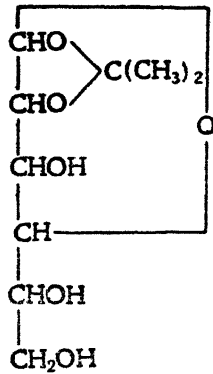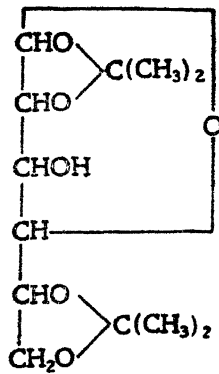
मॉनो ऐसीटोन ग्लूकोस डाइ ऐसीटोन ग्लूकोस

(ख) **किण्वन** (Fermentation)—यीस्ट द्वारा ग्लूकोस के जलीय विलयन को किण्वित करने पर ऐलकोहल बनता है और कार्बन डाइ-आक्साइड गैस मुक्त होकर निकलती है —

$$C_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{यीस्ट}} 2C_2H_5OH + 2CO_2$$
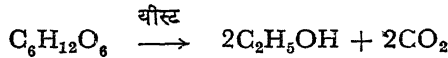
(ग) **अम्लों की क्रिया**—तनु अम्ल की ग्लूकोस पर कोई क्रिया नही होती किन्तु सान्द्र और गरम खनिज अम्ल ग्लूकोस का विच्छेदन कर देते है और कोयला तथा अन्य पदार्थ उत्पन्न होते है। मध्यम सान्द्रता के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (१२%) का गरम विलयन ग्लूकोस को पहले फर्फुरैल्डीहाइड यौगिक मे परिवर्तित कर देता है और फिर यह यौगिक अम्ल द्वारा विच्छेदित होकर लिव्यूलिनिक अम्ल (laevulinic acid) देता है —

C, O H HO, CHO, C, C, H, HO, H, OH, C, C, H, H

ग्लूकोस

$\xrightarrow[-3H_2O]{12\%\ HCl}$

HOH_2C-C, O, $C-CHO$, CH, CH

५-हाइड्राक्सी मेथिल फर्फुरल

$\xrightarrow{\text{गर्म अम्ल}}$ $CH_3COCH_2{\cdot}CH_2COOH$
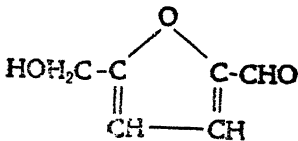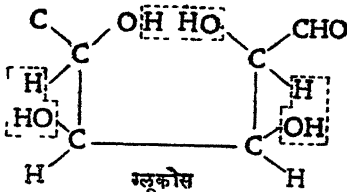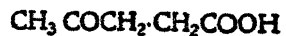
लिव्यूलिनिक अम्ल

यदि ग्लूकोस को तनु दाहक क्षारो के विलयनो या क्षारीय मिट्टी धातुओ के हाइड्राक्साइडो या कार्बनिक भस्मो, जैसे पिरीडीन, के साथ गरम किया जाता है तो एक आणविक परिवर्तन होता है जिसके फलस्वरूप ग्लूकोस, फ्रुक्टोस और मैनोस का एक मिश्रण बन जाता है —

$$\begin{array}{c} CHO \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ HO-C-H \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ CH_2OH \end{array} \qquad \begin{array}{c} CHO \\ | \\ HO-C-H \\ | \\ HO-C-H \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ CH_2OH \end{array} \qquad \begin{array}{c} CH_2OH \\ | \\ CO \\ | \\ HO-C-H \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ H-C-OH \\ | \\ CH_2OH \end{array}$$

ग्लूकोस   मैनोस   फ्रुक्टोस
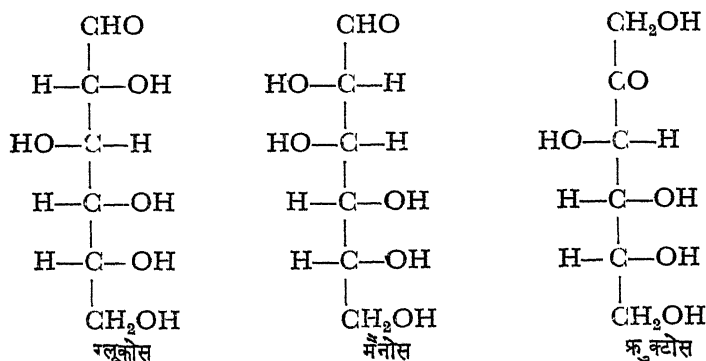
ग्लूकोस के उपयोग—ससार के कुल उत्पादन का लगभग ८० प्रतिशत ग्लूकोस आजकल भोजन सम्बन्धी सामग्री बनाने मे उपयोग होता है।

बहुत से फलो को डब्बो या बोतलो मे परिरक्षित रखने के लिए इक्षु-शर्करा के स्थान में ग्लूकोस का उपयोग किया जाता है। फलो के परिरक्षण के लिए साधारणत २० से ४० प्रतिशत तक ग्लूकोस के विलयन का उपयोग होता है। ५० प्रतिशत सान्द्रता से अधिक सान्द्रता के ग्लूकोस के विलयन का उपयोग नही किया जा सकता क्योकि इस सान्द्रता के ऊपर ग्लूकोस मणिभीकृत होने लगता है। टमाटर के रस तथा सेब, ऐप्रीकाट, प्लम, चेरी आदि फलो का परिरक्षण करते समय यदि इनमे २०-३० प्रतिशत ग्लूकोस मिला दिया जाता है तो इनका स्वाद अधिक अच्छा हो जाता है और ये अधिक दिनों तक परिरक्षित अवस्था मे रहते है। इसी प्रकार अन्य बहुत सी भोजन की वस्तुओ मे, जैसे नीबू का अचार, अनन्नास, अमरूद की जेली आदि मे यदि इक्षु-शर्करा के साथ कुछ ग्लूकोस भी डाल दिया जाता है तो स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

ग्लूकोस का उपयोग बिस्कुट, पनीर (cheese), टाफी तथा लेमनचूस आदि मे भी आजकल बहुत व्यापक रूप से होता है। ग्लूकोस और इक्षु-शर्करा के मिश्रण का ही साधारणत इन सब कामो मे उपयोग किया जाता है। इन दोनो शर्कराओ को विभिन्न अनुपातों मे मिलाने तथा उचित सीमा तक उबालने से स्वाद मे विभिन्न अन्तर तथा विभिन्न अन्य गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। लेमनचूस बनाने मे ग्लूकोस और इक्षु-

शर्करा के इच्छित अनुपात मे बने मिश्रण को आवश्यक अवस्था तक उबालने के बाद इसमे उपयुक्त रग मिलाया जाता है, और फिर साँचो मे डाल कर इच्छित आकार के लेमनचूस बना लिये जाते है।

गोद तथा सज्जको के गुणो मे आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए उनमे थोडी मात्रा मे ग्लूकोस डाला जाता है।

ग्लूकोस से कई अन्य रासायनिक यौगिक भी बनाये जाते हैं। इनमे ग्लूकॉनिक अम्ल, लैक्टिक अम्ल, सार्बिटॉल तथा मैनीटॉल मुख्य हैं। ग्लूकॉनिक तथा लैक्टिक अम्ल ग्लूकोस से किण्वन की विधि द्वारा प्राप्त किये जाते है। सार्बिटॉल और मैनीटॉल ग्लूकोस से विद्युत्-विश्लेषी अवकरण (electrolytic reduction) करने पर प्राप्त होते हैं।

ग्लूकोस की संरचना—(१) भौतिक विधियो द्वारा ज्ञात अणुभार के आधार पर ग्लूकोस का अणुसूत्र $C_6H_{12}O_6$ है।

(२) ग्लूकोस को ऐसीटिल क्लोराइड या ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड से अभिकृत करने पर एक पेटा-ऐसीटिल यौगिक बनता है। इससे सिद्ध होता है कि ग्लूकोस के अणु मे पाँच हाइड्राक्सिल मूलक हैं। इसके साथ ही ग्लूकोस का एक स्थायी (stable) यौगिक होना यह सिद्ध करता है कि ग्लूकोस अणु मे कोई भी कार्बन दो या अधिक हाइड्राक्सिक मूलक से सयुक्त नही है, अर्थात् प्रत्येक हाइड्राक्सिल मूलक एक पृथक् कार्बन परमाणु से सयुक्त है। इस प्रकार पाँच हाइड्राक्सिल मूलक पाँच कार्बन परमाणुओ से सयुक्त होगे।

[किसी भी यौगिक मे जब दो या इससे अधिक हाइड्राक्सिल मूलक एक ही कार्बन से सयुक्त रहते है तो यौगिक बहुत अस्थायी होता है और तुरन्त विच्छेदित हो जाता है। अत ऐसा यौगिक साधारण अवस्था मे ज्ञात नही होता।]

(३) ग्लूकोस कुछ अभिक्रियाओ मे ऐल्डीहाइड के गुण प्रदर्शित करता है। उदाहरणार्थ, यह ऐल्डीहाइड की भाँति फेहलिंग के विलयन को अवकृत कर देता है, HCN के साथ एक योगशील यौगिक बनाता है और हाइड्राक्सिलेमिन तथा फेनिल हाइड्राजिन के साथ क्रमश आक्सीम और फेनिल हाइड्राजोन बनाता है। इससे अनुमान होता है कि ग्लूकोस मे एक ऐल्डीहाइड मूलक उपस्थित है। आक्सीकृत किये जाने पर ग्लूकोस पहले एक एक-भास्मिक अम्ल (ग्लूकॉनिक अम्ल) और फिर एक द्वि-भास्मिक अम्ल (सैकरिक अम्ल) देता है जिनमे कार्बन परमाणुओ की सख्या वही रहती है जो ग्लूकोस मे है।

अत आक्सीकृत यौगिको से भी ग्लूकोस मे ऐल्डीहाइड मूलक का होना ही सिद्ध होता है।

(४) ग्लूकोस का हाइड्रोजन सायनाइड के साथ बना सायनहाइड्रिन यौगिक जब जल-विश्लेषित किया जाता है तो एक हेक्सा-हाइड्राक्सी कार्बाक्सिलिक अम्ल बनता है। इस अम्ल को हाइड्रियाडिक अम्ल और लाल फास्फोरस द्वारा अवकृत करने पर नार्मल-हेप्टोइक अम्ल (*n*-heptoic acid) प्राप्त होता है। नार्मल-हेप्टोइक अम्ल का आकार ज्ञात है। इसमे सब कार्बन एक सीधी शृखला के रूप मे परस्पर बन्धित रहते है। ऊपर की क्रियाओ के आधार पर ग्लूकोस का निम्न आकार सिद्ध होता है —
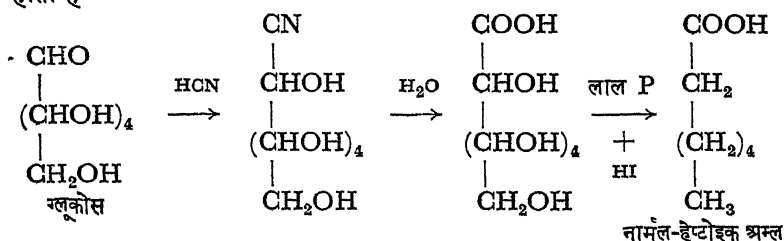
ऊपर के आकार मे चार कार्बन परमाणु (दूसरे से पाँचवे तक) असममित (asymmetric) हैं। अत यह १६ प्रकाश-सक्रिय समावयवी (optically active isomers) रूपो मे ज्ञात होना चाहिए। ये १६ समावयवी ज्ञात है जिनमे से ८ दक्षिणावर्ती और ८ वामावर्ती है। रासायनिक विधियो से ग्लूकोस मे मूलको का विन्यास ज्ञात किया गया है और यह निम्न भाँति है —
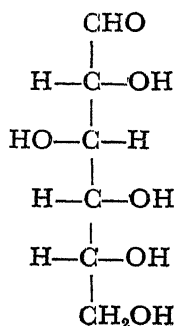
यद्यपि ऊपर का आकार ग्लूकोस के अधिकांश रासायनिक गुणो की पुष्टि करता है फिर भी कुछ ऐसे तथ्य है जो इस आकार-सूत्र के विपरीत है। ऐसे कुछ तथ्य निम्न है :—

(क) ग्लूकोस का विलयन शिफ-अभिक्रिया (Schiff's reaction) नही

देता। प्रत्येक ऐल्डीहाइड यह अभिक्रिया देता है और यह ऐल्डीहाइड का एक सूक्ष्म परीक्षण है। इससे स्पष्ट है कि ग्लूकोस मे कोई मुक्त ऐल्डीहाइड मूलक नही होना चाहिए।

(ख) अन्य ऐल्डीहाइडो की भाँति सोडियम बाइसल्फाइट के साथ ग्लूकोस कोई योगशील यौगिक नही बनाता।

(ग) ग्लूकोस दो विन्यास-समावयवी रूपो मे ज्ञात है जिनके विशिष्ट घूर्णन (specific rotation) भिन्न है। एक समावयवी α- ग्लूकोस और दूसरा β- ग्लूकोस कहलाता है। इन दो विन्यास-समावयवियो का ज्ञात होना ग्लूकोस के ऊपर प्रदर्शित विवृत श्रृखला के सूत्र द्वारा असम्भव है।

(घ) ग्लूकोस पेटा-ऐसीटेट हाइड्राक्सिलेमिन तथा फेनिल हाइड्राजिन के साथ ग्लूकोस की भाँति क्रिया नही करता और आक्सीम तथा फेनिल हाइड्राजोन नहीं बनाता। इससे स्पष्ट है कि पेटा-ऐसीटेट मे कोई मुक्त ऐल्डीहाइड मूलक नही है।

(ड) प्रत्येक सामान्य ऐल्डीहाइड निर्जलीकारक (dehydrating agent), जैसे H_2SO_4, HCl gas आदि, की उपस्थिति मे ऐलकोहल से अभिक्रिया कर एक ऐसीटल बनाता है। यह अभिक्रिया निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है —

$$-CHO + \begin{matrix} HO\ R \\ HO\ R \end{matrix} \longrightarrow -CH\begin{matrix} OR \\ OR \end{matrix} + H_2O$$

ऐलकोहल (दो अणु) ऐसीटल
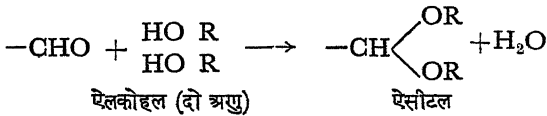
किन्तु ग्लूकोस को जब शुष्क हाइड्रोजन क्लोराइड गैस की उपस्थिति मे मेथिल ऐलकोहल के साथ अभिकृत किया जाता है तो यह दो मणिभीय यौगिको का एक मिश्रण देता है। ये दोनो यौगिक परस्पर विन्यास-समावयवी है और इन्हे क्रम से α- और β- मेथिल ग्लूकोसाइड कहते है। ये ऐसीटल से भिन्न प्रकार के यौगिक हैं और इनके बनने मे ग्लूकोस का एक अणु मेथिल ऐलकोहल के केवल एक अणु से अभिक्रिया करता है। ये मेथिल ग्लूकोसाइड अवकारक नही होते और फेहलिंग के विलयन को अवकृत नही करते।

ऊपर के (क) से (ड) तक के समस्त तथ्यो के आधार पर यह निश्चित जान पडता है कि ग्लूकोस मे न तो मुक्त ऐल्डीहाइड मूलक है और न यह विवृत श्रृखला का यौगिक है। इन तथ्यो का स्पष्टीकरण केवल ग्लूकोस को एक सवृत श्रृखला का यौगिक मानने से ही हो सकता है। अत ग्लूकोस का आकार निश्चित रूप से सवृत श्रृखलायुक्त है।

(५) ग्लूकोस के सवृत श्रृखला के रूप का निर्धारण मेथिलीकरण द्वारा निम्न रीति से किया गया है —

ग्लूकोस को शुष्क हाइड्रोजन क्लोराइड गैस की उपस्थिति मे मेथिल ऐलकोहल से अभिकृत करने पर मेथिल ग्लूकोसाइड बनता है। इसे फिर मेथिल आयोडाइड और सिल्वर आक्साइड के मिश्रण द्वारा अभिकृत करने पर पेटामेथिल ग्लूकोस प्राप्त होता है। इस यौगिक को तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा जल-विश्लेषित करने पर इसका ग्लूकोसाइड वाला मेथिल मूलक निकल जाता है और टेट्रामेथिल ग्लूकोस प्राप्त होता है जो एक मणिभीय यौगिक है। इस यौगिक मे ग्लूकोस के हाइड्राक्सिल मूलक ईथर मूलक के रूप मे बन्धित रहते है और चूँकि ईथर बन्ध स्थायी होता है, टेट्रामेथिल ग्लूकोस मे ग्लूकोस के प्रथम कार्बन के हाइड्राक्सिल मूलक के अतिरिक्त अन्य सब हाइड्राक्सिल मूलक स्थायी रूप मे परिवर्तित हो जाते है और अब यह सभावना नही रहती कि सामान्य आक्सीकारको की क्रिया कराने पर हाइड्राक्सिल मूलक के मूल स्थानो पर अणु सरलता से विच्छेदित हो सके।

α-D-ग्लूकोस

α-D-मेथिल ग्लूकोसाइड

टेट्रामेथिल-α-मेथिल-D-ग्लूकोसाइड

$\xrightarrow[\text{(तनु HCl)}]{H_2O}$

```
   H   OH
    \ /
     C ──────┐
     |       |
  H-C-OCH3   |
     |       |
CH3O-C-H     |
     |       |
  H-C-OCH3   O
     |       |
   H-C ──────┘
     |
     CH2OCH3
```

टेट्रामेथिल α-D-ग्लूकोस
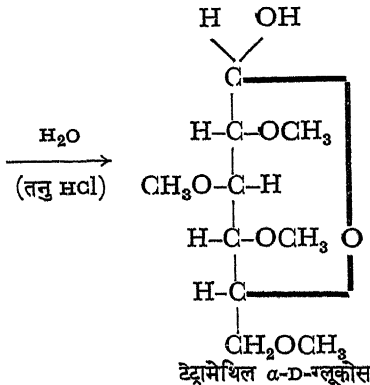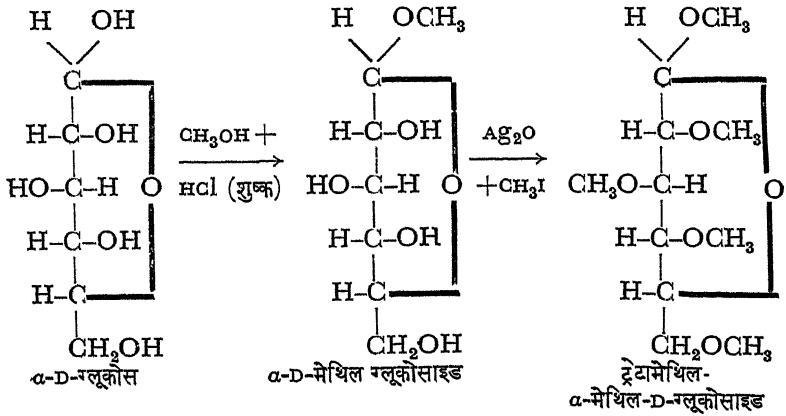
टेट्रामेथिल ग्लूकोस को सान्द्र नाइट्रिक अम्ल द्वारा आक्सीकृत करने पर मुख्य दो अम्ल प्राप्त होते है.—(अक्रिय)-ट्राइमेथाक्सी ज़ाइलोग्लूटारिक अम्ल और (दक्षिणावर्ती)-डाइमेथाक्सी सकसिनिक अम्ल।[२] टेट्रामेथिल ग्लूकोस से इन दोनो अम्लो का आक्सीकरण द्वारा बनना तभी सभव हो सकता है जब टेट्रामेथिल ग्लूकोस का आकार 'क' हो। निम्न पदो द्वारा प्रदर्शित आक्सीकरण की अभिक्रिया से यह स्पष्ट हो जायगा —

(क)
टेट्रामेथिल ग्लूकोस

$$
\longrightarrow
\begin{array}{c}
COOH \\
| \\
H-C-OCH_3 \\
| \\
CH_3O-C-H \\
| \\
H-C-OCH_3 \\
| \\
COOH
\end{array}
$$

(अक्रिय)–ट्राइमेथाक्सी जाइलोग्लूटारिक अम्ल

$$
\longrightarrow
\begin{array}{c}
COOH \\
| \\
H-C-OCH_3 \\
| \\
CH_3O-C-H \\
| \\
COOH
\end{array}
$$

(दक्षिणावर्ती)–डाइमेथाक्सी सक्सिनिक अम्ल
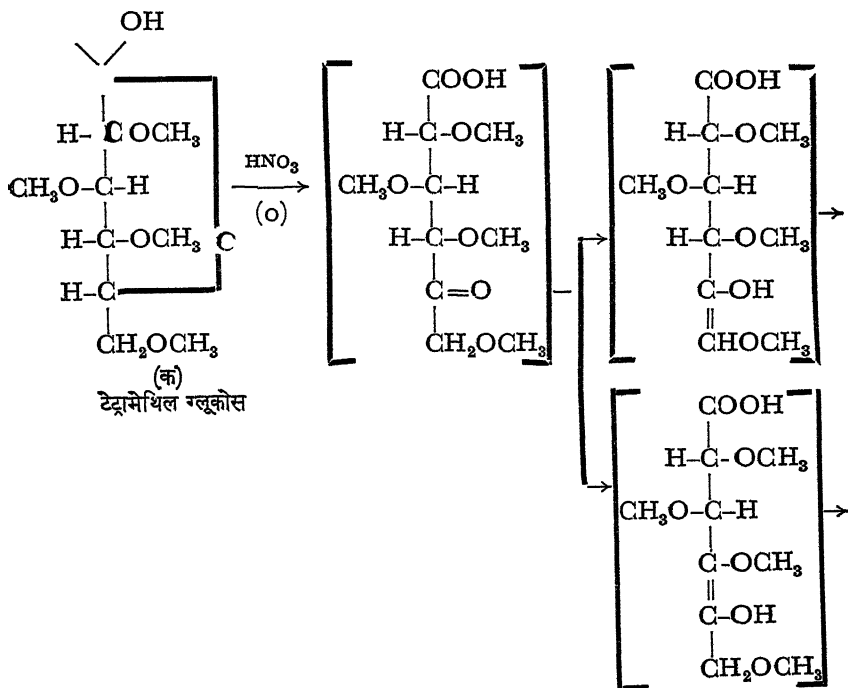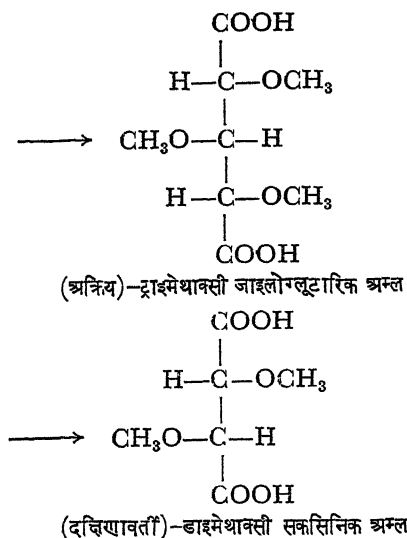
अत. ऊपर बतलाये तथ्यो के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि ग्लूकोस का आकार निम्न है और इस आकार के आधार पर यह दो समावयवी रूपो मे ज्ञात होगा .—

$$
\begin{array}{c}
H \quad OH \\
\diagdown \; \diagup \\
C \\
| \\
H-C-OH \\
| \\
HO-C-H \quad O \\
| \\
H-C-OH \\
| \\
H-C \\
| \\
CH_2OH
\end{array}
\qquad\qquad
\begin{array}{c}
HO \quad H \\
\diagdown \; \diagup \\
C \\
| \\
H-C-OH \\
| \\
HO-C-H \quad O \\
| \\
H-C-OH \\
| \\
H-C \\
| \\
CH_2OH
\end{array}
$$

α-D-ग्लूकोस $\qquad$ β-D ग्लूकोस
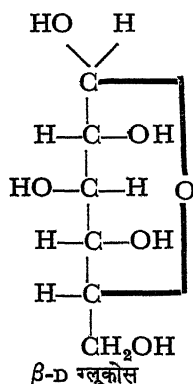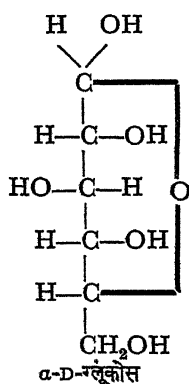
इन दोनो मे से कौन आकार α- का है और कौन β- का यह जानना सम्भव नही है, किन्तु इतना निश्चित है कि यदि इनमे से किसी एक को α- मान लिया जाय तो

दूसरा β- होगा। हावर्थ (Haworth) ने यह परिपाटी स्थापित की है कि α- उसे माना जाय जिसमे प्रथम कार्बन से सयुक्त हाइड्राक्सिल मूलक दाहिनी ओर हो। इसी परिपाटी के अनुसार α- और β- समावयवियो का नामकरण किया जाता है।

इन दोनो रूपो से क्रमश α- और β-मेथिल ग्लूकोसाइड का बनना सिद्ध हो जाता है।

ऊपर के सूत्र मे प्रथम कार्बन परमाणु और पाँचवाँ कार्बन परमाणु एक आक्सिजन परमाणु द्वारा परस्पर सम्बन्धित होकर एक सवृत श्रृखला बनाते है। अत इस वृत्त को १ ५-आक्साइड, या ऐमिलीन आक्साइड वलय (1 5-oxide or amylene oxide ring, कहते हैं। इसे पाइरानोस वलय (pyranose ring) भी कहते है। हावर्थ (Haworth) के सुझाव के अनुसार यह सरचना सूत्र निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जाता है —

α-D-ग्लूकोस β-D-ग्लूकोस
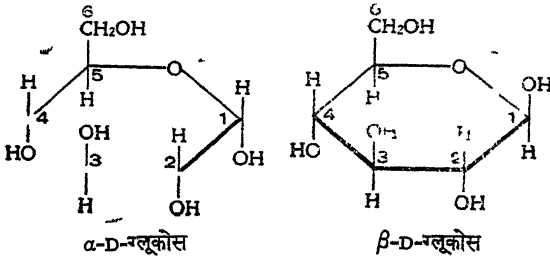
[वलय के प्रत्येक कोने में एक कार्बन परमाणु है जो सूत्र में साधारणतः नहीं दिखलाया जाता।]

एक प्रकार का ग्लूकोस और भी ज्ञात हुआ है जिसमे पहला और चौथा कार्बन परमाणु एक आक्सिजन परमाणु द्वारा सम्बन्धित होकर एक वृत्त बनाता है। इस वृत्त-आकार को १.४-आक्साइड, या ब्यूटिलीन आक्साइड या γ-वलय (1.4 oxide or butylene oxide ring or γ-ring) कहते है।[3] इस आकार को फ्यूरानोस वलय भी कहते हैं (furanose ring) और यह भी दो विन्यास-समावयवी रूपो मे ज्ञात है :—

```
   H   OH                          HO   H
    \ /                              \ /
     C------                          C------
     |      |                         |      |
 H---C---OH |                     H---C---OH |
     |      O                         |      O
HO---C---H  |                    HO---C---H  |
     |      |                         |      |
 H---C------                      H---C------
     |                                |
 H---C---OH                       H---C---OH
     |                                |
    CH2OH                            CH2OH
```

α-ग्लूकोफ्यूरानोस β-ग्लूकोफ्यूरानोस
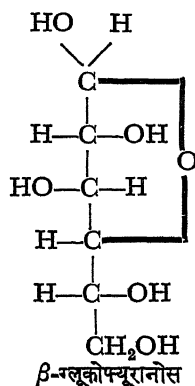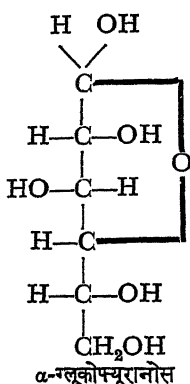
ग्लूकोफ्यूरानोस वत्त को हावर्थ के अनुसार निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जाता है :—

6 CH_2OH, 5, HO—C—H, O, H, 4, OH, H, 1, H, 3, 2, OH, H, OH

α-ग्लूकोफ्यूरानोस

6 CH_2OH, 5, HO—C—H, O, OH, 4, OH, H, 1, H, 3, 2, H, H, OH
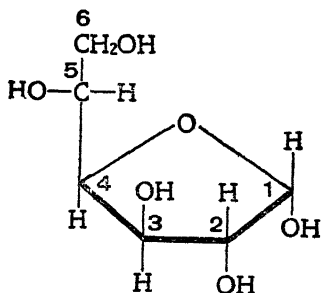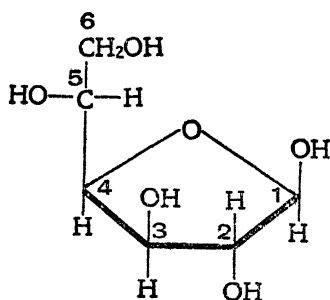
β-ग्लूकोफ्यूरानोस

पाइरानोस तथा फ्यूरानोस दोनो ही आकारो मे पहला कार्बन परमाणु असममित है; अत प्रत्येक इस कार्बन के कारण दो विन्यास-समावयवी रूपो मे रह सकता है। उस समावयवी रूप को जिसमे पहले कार्बन से सम्बन्धित हाइड्राक्सिल मूलक दाहिनी ओर स्थित रहता है α- और जिसमे बायी ओर रहता है उसे β- कहते है।

ऊपर प्रदर्शित वलय आकार द्वारा ग्लूकोस के समस्त गुण तथा अभिक्रियाएँ ठीक से स्पष्ट हो जाती है। इस वलय आकार के अनुसार ग्लूकोस मे कोई मुक्त ऐल्डीहाइड मूलक नही है; अत ग्लूकोस शिफ अभिक्रिया नही देता और न सोडियम बाइ-सल्फाइट के साथ योगशील यौगिक बनाता है। किन्तु ग्लूकोस के सरचना-सूत्र मे आक्सिजन द्वारा बना वलय बहुत स्थायी नही है। साधारण अभिकर्मको, जैसे HCN, हाइड्राक्सिलेमिन, फेनिल हाइड्राजिन, विभिन्न आक्सीकारक तथा अवकारक पदार्थों, की उपस्थिति

मे यह आक्साइड वलय विच्छिन्न हो जाता है और तब एक मुक्त ऐल्डीहाइड मूलक उत्पन्न हो जाता है। इस ऐल्डीहाइड मूलक के उत्पन्न होने पर ग्लूकोस इन अभिकर्मको के प्रति ऐल्डीहाइड के रूप मे अभिक्रिया करता है। यही कारण है कि ग्लूकोस इन कुछ अभिकर्मको के साथ ऐल्डीहाइड के गुण प्रदर्शित करता है। उदाहरणार्थ, HCN की उपस्थिति मे अभिक्रिया निम्न प्रकार से होती है —

```
  H   OH                      H   O                           ,CN
   \ /                         \ //                       HC<
    C-------|                   C                          |  \OH
    |       |                   |                          |
 H--C--OH   |                H--C--OH                   H--C--OH
    |       |     HCN           |           HCN            |
HO--C--H    O    ---->     HO--C--H        ---->      HO--C--H
    |       |                   |                          |
 H--C--OH   |                H--C--OH                   H--C--OH
    |       |                   |                          |
 H--C-------|                H--C--OH                   H--C--OH
    |                           |                          |
   CH2OH                       CH2OH                      CH2OH
```

α-ग्लूकोपाइरानोस — ग्लूकोस का विवृत शृंखला रूप — ग्लूकोस सायनाहाइड्रिन
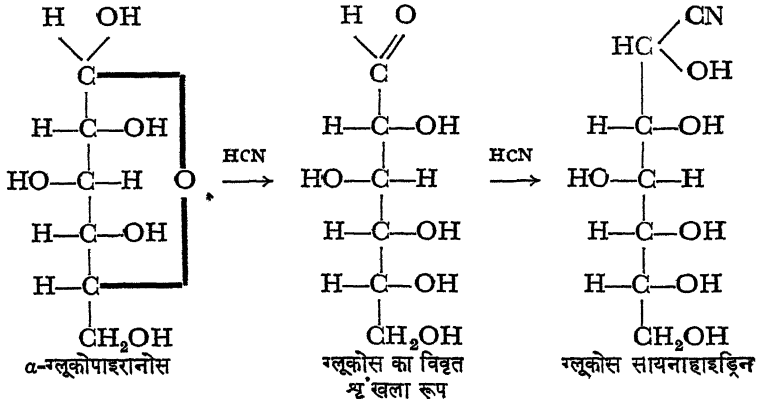
ग्लूकोस पेटा-ऐसीटेट मे अवकारक गुण का न होना तथा इसका हाइड्राक्सिलेमिन और फेनिल हाइड्राजिन से ग्लूकोस की भाँति अभिक्रिया न करना भी ग्लूकोस के सवृत श्रृखला आकार द्वारा स्पष्ट हो जाता है। ग्लूकोस पेटा-ऐसीटेट का आकार निम्न होगा —

```
            H   OCOCH3
             \ /
              C-----------|
              |           |
           H--C--OCOCH3   |
              |           |
  CH3OCO--C--H            O
              |           |
           H--C--OCOCH3   |
              |           |
           H--C-----------|
              |
             CH2OCOCH3
```
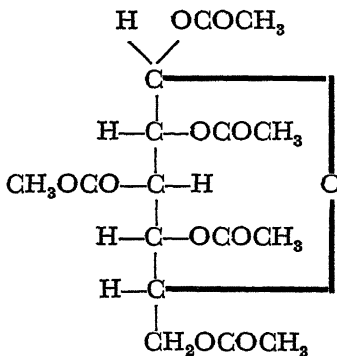
इस आकार मे आक्साइड वलय के विश्रृखलित होने पर भी कोई ऐल्डीहाइड मूलक उत्पन्न नही होगा, अत यह यौगिक ग्लूकोस के समान ऐल्डीहाइड के गुण प्रदर्शित नही कर सकता।

पाइरानोस आकार अधिक स्थायी होता है और साधारण अवस्था मे ग्लूकोस का यही आकार रहता है। फ्यूरानोस आकार अस्थायी होता है और केवल विशेष अवस्था मे ही ग्लूकोस इस आकार मे पाया जाता है। साधारण अवस्था आने पर फ्यूरानोस आकार तुरन्त पाइरानोस आकार मे परिणत हो जाता है। सामान्य ग्लूकोस α- और β-ग्लूकोपाइरानोस का साम्यावस्था मे स्थित मिश्रण होता है।

जब ग्लूकोस किसी ऐलकोहल से निर्जलीकारक की उपस्थिति मे अभिक्रिया करता है तो पहले कार्बन का OH ऐलकोहल के OH से अभिक्रिया कर पानी निकालता है और आक्सिजन द्वारा ऐलकोहल मे विद्यमान शेष मूलक ग्लूकोस के प्रथम कार्बन से बन्धित हो जाता है —
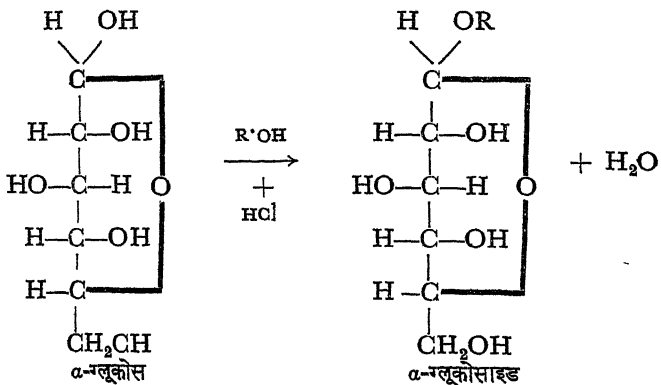
इन यौगिको को ग्लूकोसाइड (अथवा ग्लाइकोसाइड) कहते हैं। यदि α-ग्लूकोस से ग्लूकोसाइड बना है तो इसे α-ग्लूकोसाइड और यदि β-ग्लूकोस से बना है तो इसे β-ग्लूकोसाइड कहते है।

निर्देश

1 T de Saussure, Bull Pharm , 1814, 6, 499

2 Hırst, J , 1926, 129, 350

3 Haworth, Hırst, and Mıller, J , 1927, 2436
Hawoıth, 'Constıtutıon of Sugars' (1929)

अध्याय ९[1]

माल्टोस

सन् १८१९ मे डी० सासरे[2] (de Saussure) ने यह देखा कि डायस्टेस एञ्जाइम द्वारा (जो अकुरित जौ के दानो मे रहता है) स्टार्च का किण्वन कराने पर एक नयी शर्करा बनी जो इक्षु-शर्करा और ग्लूकोस दोनो से भिन्न थी। उसने इसे स्टार्च से बना कर पृथक् रूप मे प्राप्त किया। फिर सन् १८४९ मे डूब्रनफाउट[2] (Dubrunfaut) ने इस शर्करा का अधिक ब्योरे से अध्ययन किया और इसे माल्टोस नाम दिया। उसने यह भी ज्ञात किया कि जब अम्ल द्वारा स्टार्च का जल-विश्लेषण किया जाता है तो भी यह शर्करा बनती है, किन्तु बाद मे फिर इसका भी जल-विश्लेपण हो जाता है और ग्लूकोस बनता है। इसके बाद बहुत वर्षों तक इस शर्करा की ओर किसी ने ध्यान नही दिया और इसका अधिक अध्ययन नही हो सका। डूब्रनफाउट के प्रयोगो के लगभग २३ वर्षो बाद सन् १८७२ मे सी० ओ० सलीवान[3] (C O Sullivan) ने पुन इस शर्करा को स्टार्च से बनाया और इसके अध्ययन की ओर रसायनज्ञो का ध्यान आर्कषित किया। मन् १८८३ मे डूब्रनफाउट और क्यूजीनियर (Dubrunfaut ana Cuisinier) ने मिल कर एक-दूसरे के महयोग से माल्टोस को ठोस रूप मे तथा चाशनी के रूप मे बनाने की एक विधि ज्ञात की और इस विधि का पेटेट कराया। आरम्भ मे माल्टोस व्यापारिक मात्रा मे इसी विधि से बनाया गया।

माल्टोस बनाने की विधियाँ

(१) **डूब्रनफाउट ओर क्यूजीनियर की विधि**—आटे मे पानी मिलाकर और गरम कर एक लेई बनायी जाती है। इस लेई को ७०°–८०° से० ग्रे० ताप पर रख कर इसमे ५ से १० प्रतिशत तक ताजा माल्ट-निष्कर्ष मिलाया जाता है। माल्ट-निष्कर्ष मे मौजूद डायस्टेस द्वारा स्टार्च किण्वित होकर थोडे समय मे ही विलयन के रूप मे बदल जाता है। इसके बाद इस विलयन का ताप घटा कर ५०° सें० ग्रे० पर लाया जाता है और इसमे थोडा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर थोडा अम्लीय किया जाता है। पुन. इसमे ५ से १० प्रतिशत तक माल्ट-निष्कर्ष मिला कर ५०° सें० ग्रे०

पर किण्वित किया जाता है। थोडे समय मे ही पर्याप्त मात्रा मे माल्टोस बन जाता है। किण्वन की समाप्ति के बाद विलयन को छान कर २८° बोमे (Baumé) घनत्व तक सान्द्र किया जाता है। फिर सक्रिय जन्तु-कोयले के भीतर से इसे छाना जाता है जिससे इसका रग तथा गध निकल जाय। अन्त मे इसे सान्द्र कर चाशनी (३८°–४०° Be) के रूप मे या मणिभो के रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। इस विधि से प्राप्त माल्टोस काफी शुद्ध होता है। इसमे दो प्रतिशत से अधिक अपद्रव्य नही रहते। डेक्सट्रिन भी इसमे बिल्कुल नही रहता।

ऊपर की विधि व्यापारिक दृष्टि से कभी सफल नही हो सकी। इस विधि मे अनाज का आटा सीधे इस्तेमाल किया जाता है और इस कारण कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। आटे से जो लेई बनती है वह गाढी होती है और इस कारण उसमे माल्ट-निष्कर्ष सब जगह ठीक से क्रिया नही कर पाता, फलस्वरूप क्रिया पूरी होने मे बहुत समय लगता है। साथ ही इसमे माल्ट-निष्कर्ष की काफी अधिक मात्रा का उपयोग करना पडता है जिसके कारण व्यय बहुत होता है और माल्टोस महँगा पडता है। एक अन्य कठिनाई यह भी होती हे कि आटे मे स्टार्च के अतिरिक्त प्रोटीन, खनिज लवण तथा कुछ अन्य पदार्थो के रहने के कारण किण्वन के बाद माल्टोस को पृथक् करने और शुद्ध करने मे बहुत कठिनाई होती है। एक तीसरा दोष इस विधि मे यह है कि आरम्भ मे आटे मे पर्याप्त पानी इसलिए मिलाना पडता है कि पतली लेई प्राप्त हो जिससे किण्वन क्रिया ठीक से हो सके। इसका परिणाम यह होता है कि अन्त मे जो माल्टोस का विलयन प्राप्त होता है वह बहुत तनु होता है और इसके पानी को वाष्पित करने मे काफी खर्च होता है। इन सब दोषो के कारण इस विधि से बनाया गया माल्टोस बहुत महँगा पडता है और इसी लिए उन दिनो जब अन्य कोई सस्ती विधि ज्ञात नही थी माल्टोस की माँग व्यापार मे विशेष न हो सकी।

(२) डुरिया की विधि—डुरिया[४] (Duryea) ने सन् १९१४ मे डूब्रनफाउट और क्यूजीनियर की विधि मे थोडा परिवर्तन कर सुधार किया। डुरिया की विधि से माल्टोस अधिक शुद्ध रूप मे तथा सस्ता प्राप्त होता है। इस विधि मे आटा न लेकर स्टार्च लिया जाता है। स्टार्च मे पानी और थोडा अम्ल मिला कर और फिर उबाल कर एक पतला १६° बोमे घनत्व का विलयन प्राप्त किया जाता है। इसे उदासीन करने के बाद इसमे ५ प्रतिशत माल्ट-निष्कर्ष (स्टार्च की तोल के अनुपात से) मिलाया जाता है और ५९° से० ग्रे० पर किण्वित होने के लिए रख दिया जाता है। थोडे समय मे ही स्टार्च किण्वित होकर माल्टोस मे परिणत हो जाता है। किण्वन की समाप्ति के बाद विलयन को छान कर २८° बोमे घनत्व तक गाढा किया

जाता है। फिर सक्रिय जन्तु-कोयले के भीतर से छान कर पुन निर्वात मे वाष्पित कर लगभग ४०° बोमे तक सान्द्र किया जाता है। माल्टोस मणिभीकृत होकर पृथक् हो जाता है। मणिभो को मातृ-द्राव मे से अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा पृथक् कर और सुखा कर रख लिया जाता है।

डुरिया की विधि से बनाये गये माल्टोस का स्वाद अधिक अच्छा होता है और साथ ही इसमे एक अच्छाई यह भी रहती है कि इससे जो मिठाइयाँ—लेमनचूस, टाफी आदि—बनायी जाती है वे वर्षा के दिनो मे जल्दी पसीजती भी नही हैं।

(३) **शुद्ध माल्टोस बनाने की विधि**—शुद्ध माल्टोस बनाने के लिए माल्ट-निष्कर्ष के स्थान मे डायस्टेस एजाइम चूर्ण रूप मे प्राप्त कर तब उपयोग किया जाता है। डायस्टेस चूर्ण निम्न प्रकार से बनाया जाता है —

जौ के दानो को पानी मे फुला कर नम वायुमडल मे लगभग १५°–२०° सें० ग्रे० ताप पर रख दिया जाता है। दाने अकुरित हो जाते है। इस अकुरण-क्रिया मे दानो मे डायस्टेस एञ्जाइम उत्पन्न होता है। दानो को फिर ५०°–६०° सें० ग्रे० तक गरम किया जाता है जिससे अकुरण की क्रिया रुक जाय। इन दानो को फिर हवा मे सूखने के लिए फैला दिया जाता है। जब दाने पर्याप्त अश तक सूख जाते है तो इसे चूर्ण कर लिया जाता है। इस चूर्ण मे इसकी तोल के अनुपात से २ से ४ गुना तक २० प्रतिशत ऐलकोहल डाल कर २४ घटे तक भीगने दिया जाता है। ऐलकोहल चूर्ण मे उपस्थित डायस्टेस को घुला लेता है। इसे छान कर छने विलयन मे उसके आयतन के अनुपात से दुगुना विशुद्ध ऐलकोहल मिलाया जाता है। डायस्टेस विलयन मे से अवक्षेपित हो जाता है। इस अवक्षेप को छान कर पहले ऐलकोहल से और फिर ईथर से धो कर निर्वात में सुखा लिया जाता है।

शुद्ध माल्टोस के बनाने की विधि निम्न प्रकार है —

१०० ग्राम स्टार्च को लगभग ३ लिटर पानी के साथ उबाल कर एक पतली लेई बनायी जाती है। इस लेई को ५०° सें० ग्रे० ताप के आस-पास ला कर इसमे २ ग्राम डायस्टेस चूर्ण मिला दिया जाता है और इसी ताप पर किण्वन होने के लिए रख दिया जाता है। लगभग ५–६ घटो मे किण्वन समाप्त हो जाता है। किण्वन के समाप्त होने के बाद किण्वित द्रव को कमरे के ताप पर कुछ घटो तक शान्त रखा रहने दिया जाता है। फिर इसे छान कर छने विलयन को निर्वात मे वाष्पित कर थोडा गाढा किया जाता है (लगभग २८° बोमे घनत्व तक) और इसमे इतनी रेक्टीफाइड स्पिरिट डाली जाती है कि विलयन मे स्पिरिट की प्रतिशत मात्रा ८० हो जाय। इस अवस्था मे डेक्सट्रिन तथा अन्य अपद्रव्य विलयन मे से अवक्षेपित हो जाते हैं। पुन. छान कर

अवक्षेप को निकाल दिया जाता है और छने विलयन को निर्वात मे वाष्पित कर चाशनी के रूप मे किया जाता है (लगभग ४०° बोमे घनत्व)। इस चाशनी मे शुद्ध माल्टोस के कुछ मणिभ डाल कर इसे अलग रख दिया जाता है। धीरे धीरे माल्टोस मणिभीकृत हो जाता है। मणिभो को मातृ-द्राव मे से अपकेन्द्री मशीन द्वारा पृथक् कर तथा विशुद्ध ऐलकोहल से धो कर और सुखा कर रख लिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त माल्टोस बहुत शुद्ध होता है—लगभग ९९ ७ प्रतिशत।

गुणधर्म—माल्टोस एक सफेद मणिभीय चूर्ण है। यह बहुत महीन सूच्याकार मणिभ-समूह के रूप मे एक अणु मणिभीकरण के जल के साथ मणिभीकृत होता है। यह पानी मे बहुत विलेय है, ऐलकोहल मे भी पर्याप्त मात्रा मे विलेय है। यह इक्षु-शर्करा से कम मीठा होता है। इक्षु-शर्करा के विपरीत यह एक अवकारक शर्करा है और फेहलिंग के विलयन को अवकृत कर देता है। तनु खनिज अम्ल (जैसे HCl) के साथ उबालने पर यह जल-विश्लेषित हो जाता है और ग्लूकोस उत्पन्न करता है —

$$\underset{\text{माल्टोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + H_2O \xrightarrow{HCl} \underset{\text{ग्लूकोस}}{2C_6H_{12}O_6}$$
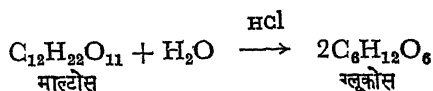
इससे सिद्ध होता है कि यह ग्लूकोस के दो अणुओ के परस्पर के सघनन से बना यौगिक है।

माल्टेस एंज़ाइम द्वारा भी यह ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित हो जाता है, किन्तु इन्वर्टेस एंज़ाइम का इस पर कोई प्रभाव नही पडता।

क्षारो की इस पर प्रक्रिया उसी प्रकार की होती है जैसी ग्लूकोस पर।

यह भी ग्लूकोस की भाँति म्यूटारोटेशन प्रदर्शित करता है।

माल्टोस का बहुत उपयोग इसे ग्लूकोस तथा सुक्रोस मे मिला कर लेमनचस तथा अन्य मिठाइयाँ बनाने मे होता है। इसके मिलाने से स्वाद अच्छा हो जाता है और मिठाइयो मे नमी शोषित करने का दोष भी कम हो जाता है। बिस्कुट बनाने मे भी माल्टोस का उपयोग किया जाता है। इसकी उपस्थिति से बिस्कुट सुपाच्य हो जाता है।

माल्टोस की संरचना— (१) इसका अणुसूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है।

(२) जैसा हम ऊपर पढ चुके हैं, माल्टोस को जब तनु खनिज अम्लो के साथ गरम किया जाता है, या माल्टेस एंज़ाइम द्वारा अभिकृत किया जाता है तो यह पूर्ण जल-विश्लेषित हो कर दो तुल्यांक ग्लूकोस उत्पन्न करता है।

(३) माल्टोस फेहलिंग के विलयन को अवकृत कर देता है और फेनिल हाइ-ड्राजिन के साथ हाइड्राजोन तथा ओसाजोन बनाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि माल्टोस मे मौजूद दो ग्लूकोस इकाइयो मे से एक ग्लूकोस का पहला कार्बन और उससे सम्बन्धित हाइड्रोजन और हाइड्राक्सिल समूह उसी प्रकार मुक्त अवस्था मे है जिस प्रकार ग्लूकोस मे है (क्योकि तभी आक्साइड वलय के टूटने पर मुक्त ऐल्डिहाइड मूलक उत्पन्न हो सकता है)। अत ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि यह ग्लूकोस इकाई एक ऐलकोहल के रूप मे दूसरी ग्लूकोस इकाई के प्रथम कार्बन से बन्धित हाइ-ड्राक्सिल मूलक से अभिक्रिया कर ग्लूकोसाइड की तरह का यौगिक बनाती है। इस प्रकार इस ग्लूकोसाइड मे दोनो ही ग्लूकोस अणु होते हैं जिनमे से एक ग्लूकोस के रूप मे क्रिया करता है और दूसरा ऐलकोहल के रूप मे।

(४) माल्टोस पर इमलसिन (emulsin) एन्जाइम की कोई क्रिया नही होती। यह माल्टेस द्वारा ही जल-विश्लेषित होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह एक α-ग्लूकोसाइड है।

[एमिल फिशर (Emil Fischer) ने अपने प्रयोगो द्वारा यह तथ्य ज्ञात किया है कि माल्टेस एन्जाइम केवल α-ग्लूकोसाइड बन्ध को खडित करता है और इमलसिन एन्जाइम केवल β-ग्लूकोसाइड बन्ध को खडित करता है। अत माल्टेस और इमलसिन की क्रिया द्वारा हम यह ज्ञात कर सकते है कि कोई ग्लूकोसाइड α है या β।]

(५) माल्टोस का मेथिलीकरण करने पर (डाइमेथिल सल्फेट और कास्टिक सोडा के मिश्रण द्वारा, या सिल्वर आक्साइड और मेथिल आयोडाइड के मिश्रण द्वारा) एक पूर्ण मेथिलीकृत यौगिक प्राप्त होता है। इस यौगिक को फिर जल-विश्लेषित करने पर दो यौगिक प्राप्त होते है—एक २ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस और दूसरा २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस[५७६]। २ ३ ४ ६-ट्रेटामेथिल ग्लूकोस के प्राप्त होने से यह स्पष्ट होता है कि माल्टोस की उस ग्लूकोस इकाई मे जो इस टेट्रामेथिल ग्लूकोस को बनाती है पाँचवाँ कार्बन अधिवासित (occupied) है, अन्यथा पाचवे कार्बन से भी मेथिल मूलक सयोजित हो जाता। स्पष्ट है कि यह पाँचवाँ कार्बन पाइरा-नोस वलय बनाने के कारण अधिवासित होगा। २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस के बनने से यह सिद्ध होता है कि दूसरी ग्लूकोस इकाई का चौथा और पाँचवाँ दोनो कार्बन अधिवासित है। इनमे से एक कार्बन पहली ग्लूकोस इकाई के साथ ग्लूकोसाइड बन्ध बनाने मे अधिवासित होगा और दूसरा कार्बन आक्साइड वलय बनाने के कारण अधिवासित होगा।

(६) पोटैसियम परमैंगनेट द्वारा आक्सीकृत किये जाने पर माल्टोस एक अम्ल

बनाता है जिसमे कार्बन परमाणुओ की सख्या वही रहती है जो माल्टोस मे है। अत इस अम्ल के बनने मे माल्टोस मे केवल इतना ही परिवर्तन होता है कि इसकी उस ग्लूकोस इकाई का पहला कार्बन, जिसमे ग्लूकोस की भाँति हाइड्रोजन और हाइड्राक्सिल समूह मुक्त अवस्था मे है (अर्थात् अवकारक कार्बन), आक्सीकृत हो कर कार्बाक्सिल समूह मे बदल जाता है। इस अम्ल को माल्टोबायोनिक अम्ल कहते है। इस अम्ल का कैल्सियम लवण बना कर मेथिलीकरण करने पर मेथिल अष्ट-मेथिल माल्टोबायोनेट (methyloctamethyl maltobionate) बनता है। मेथिलीकृत यौगिक को फिर जल-विश्लेषित करने पर २ ३ ४ ६–टेट्रामेथिल ग्लूकोस और २ ३ ५ ६–टेट्रामेथिल ग्लूकॉनिक अम्ल प्राप्त होते है। २ ३ ५ ६–टेट्रामेथिल ग्लूकॉनिक अम्ल के बनने से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि दूसरी ग्लूकोस इकाई का चौथा कार्बन पहले ग्लूकोस के प्रथम कार्बन से α-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा सम्बन्धित है।

अत. ऊपर के तथ्यो के आधार पर माल्टोस की केवल निम्न सरचना ही सम्भव हो सकती है। इस सरचना-सूत्र को मान लेने पर ही ऊपर बतलायी समस्त अभिक्रियाएँ सम्भव हो सकती है, जैसा कि नीचे दी गयी अभिक्रियाओ से स्पष्ट होगा —

```
H   OH               H
  C                    C
H-C-OH               H-C-OH
HO-C-H    O          HO-C-H    O   मेथिलीकरण →
H-C-O                H-C-OH
H-C                  H-C
CH2OH                CH2OH
```

α-माल्टोस

$\xrightarrow{H_2O}$

अष्टमेथिल माल्टोस

२ . ३ : ६–ट्राइमेथिल ग्लूकोस

२ . ३ : ४ ६–टेट्रामेथिल ग्लूकोस

माल्टो बायोनिक अम्ल

मेथिल अष्टमेथिल माल्टोबायोनेट

२ : ३ : ५ . ६–टेट्रामेथिल ग्लूकॉनिक अम्ल

२ ३ · ४ · ६–टेट्रामेथिल ग्लूकोस
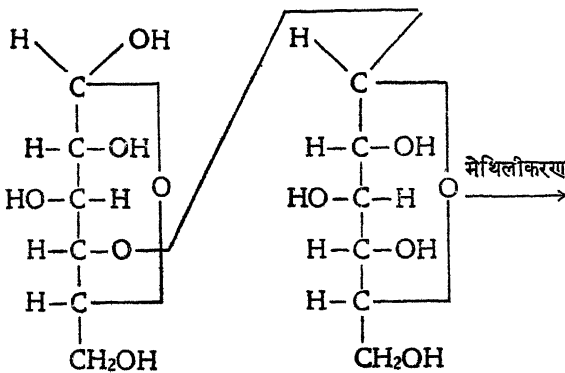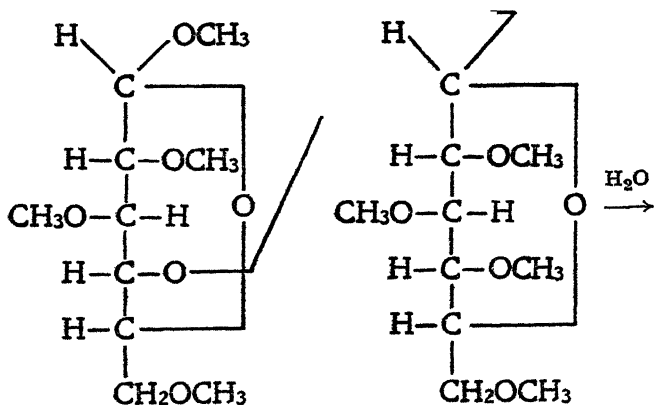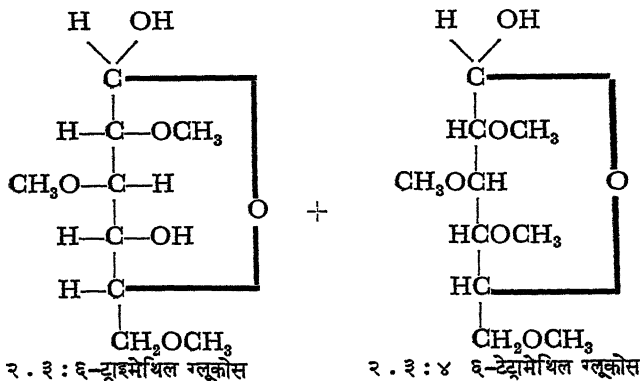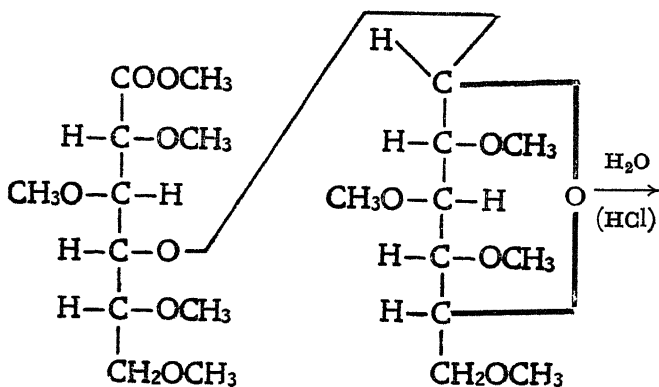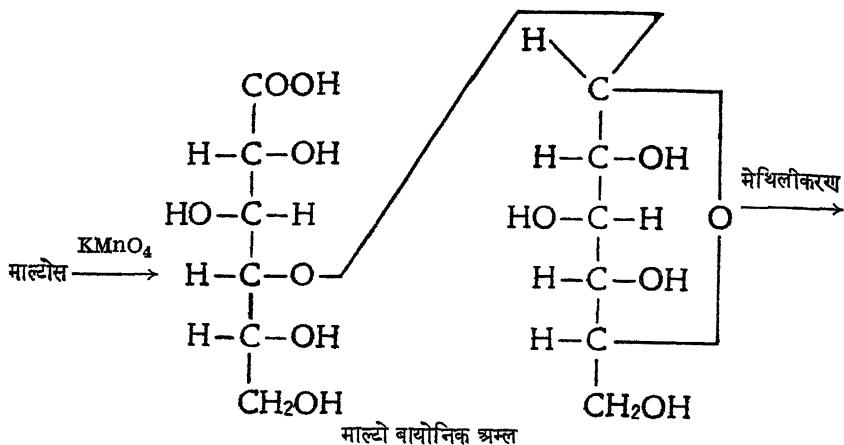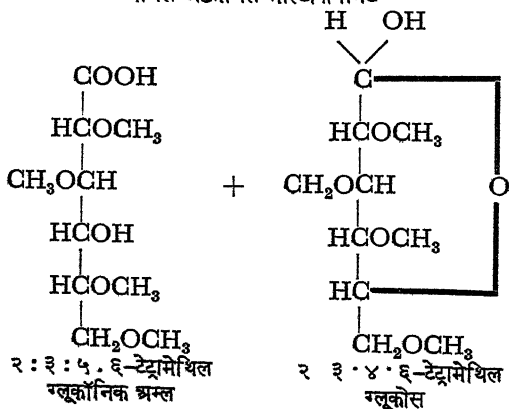
माल्टोस के ऊपर के सरचना सूत्र की पुष्टि अन्य तथ्यो द्वारा भी होती है। अत इसका यही रासायनिक आकार निश्चित है। इस आकार को निम्न प्रकार से भी लिखा जाता है —

माल्टोस (α- और β-)
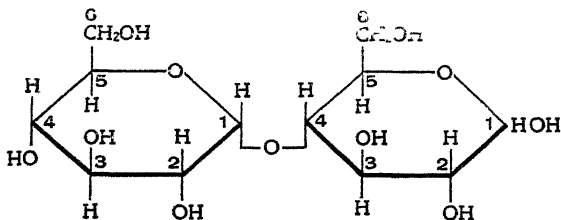
निर्देश

1 T de Saussure, *Phil Trans Roy. Soc Lond* , 1819, **169**, 29

2 A P Dubrunfaut, Ann. Chim d Phys , 1847, **21**, 178.

3. C O Sullivan, J Chem Soc., 1872, **25**, 579

4. C B Duryea J Ind. Eng Chem , 1914 419.

5 Haworth and Leitch, J , 1919, 115, 809

6. Irvine and Black, J , 1926, 129, 862

7. Haworth and Peat, J , 1926, **129**, 3094

अध्याय १०

स्टार्च की संरचना

भौतिक आकार

एक्स-रे (X-ray) द्वारा परीक्षण करने से यह ज्ञात हो जाता है कि स्टार्च का आकार मणिभीय है या अमणिभीय (amoiphous)। यदि एक्स-रे द्वारा लिये गये चित्र मे वलय दिखलाई देते है तो आकार मणिभीय होता है। वलय जितने अधिक तथा जितने स्पष्ट होते है पदार्थ उतना ही अधिक मणिभीय होता है।

एक्स-रे द्वारा लिये गये चित्रो से यह ज्ञात हुआ है कि प्राकृतिक स्टार्च-कणो का आकार मणिभीय है। यह मणिभीय आकार मुख्य दो प्रकार का पाया जाता है। कदो के स्टार्च-कणो का जो एक्स-रे चित्र प्राप्त होता है वह एक प्रकार का होता है और अन्नो के स्टार्च-कणो का एक्स-रे चित्र दूसरे प्रकार का होता है। इन दोनो प्रकारो के बीच का प्रकार भी प्राय मिलता है। यह सम्भवत दोनो प्रकारो का मिश्रण होता है।

स्टार्च को जब चक्की मे खूब पीसा जाता है तो इसका मणिभीय आकार नष्ट हो जाता है। इस पिसे स्टार्च का एक्स-रे चित्र अमणिभीय प्रकार का होता है। विभिन्न विलायको द्वारा अमणिभीय स्टार्च को घुला कर फिर अवक्षेपित करने पर इसका आकार पुन मणिभीय हो जाता है। लगभग २००° से० ग्रे० तक गरम किये गये स्टार्च का भी आकार मणिभीय न रह कर अमणिभीय हो जाता है।

रासायनिक आकार

जैसा हम पढ चुके है, स्टार्च एक अकेला रासायनिक यौगिक नही है। यह ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन नामक दो यौगिको का एक मिश्रण है। अत स्टार्च की सरचना का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे इन दोनो अवयवो की सरचना का पृथक्-पृथक् अध्ययन करना होगा।

किसी भी रासायनिक यौगिक की सरचना जानने के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि हम उसके विच्छेदन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले उत्पादो की सरचना ज्ञात

करे। ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन के विच्छेदन तथा जल-विश्लेषण के फलस्वरूप हमे क्रम से निम्न सरल उत्पाद प्राप्त होते है :—

स्टार्च → विलेय स्टार्च → डेक्सट्रिन → माल्टोस → ग्लूकोस
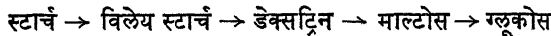
इस प्रकार ग्लूकोस इन दोनो का ही सरलतम उत्पाद है। ग्लूकोस के बाद उससे कुछ अधिक सकीर्ण उत्पाद माल्टोस है। ग्लूकोस और माल्टोस की सरचना का अध्ययन हम पीछे कर चुके हैं। इन दोनो की सरचना के आधार पर ऐमिलोस और ऐमिलो-पेक्टिन की सरचना का निर्धारण करने मे हमे सहायता मिलती है।

ऐमिलोस की संरचना (Structure of amylose)—(१) तनु खनिज अम्लो के साथ कुछ समय तक उबालने पर ऐमिलोस का पूर्ण जल-विश्लेषण हो जाता है और केवल ग्लूकोस बनता है —

$$(C_6H_{10}O_5)n + nH_2O \longrightarrow \underset{\text{ग्लूकोस}}{nC_6H_{12}O_6}$$
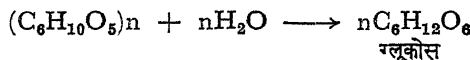
इससे स्पष्ट है कि ऐमिलोस केवल ग्लूकोस अणुओ के परस्पर के सघनन से बना है।

(२) डायस्टेस एजाइम द्वारा किण्वित किये जाने पर ऐमिलोस जल-विश्लेषित हो कर माल्टोस उत्पन्न करता है —

$$2(C_6H_{10}O_5)n + nH_2O \longrightarrow \underset{\text{माल्टोस}}{nC_{12}H_{22}O_{11}}$$
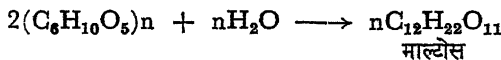
माल्टोस को पुन जल-विश्लेषित करने पर ग्लूकोस उत्पन्न होता है।

माल्टोस का आकार हमे ज्ञात है। ऊपर के तथ्यो से यह निष्कर्ष निकलता है कि ऐमिलोस मे ग्लूकोस अणु उसी प्रकार बन्धित हैं जिस प्रकार माल्टोस मे बन्धित रहते हैं।

(३) एमिलोस को डाइमेथिल सल्फेट और कास्टिक क्षार के मिश्रण द्वारा अभि-कृत करने पर ऐमिलोस के समस्त मुक्त हाइड्राक्सिल मूलको के हाइड्रोजन परमाणु मेथिल समूह द्वारा प्रतिस्थापित हो जाते है और मेथिलीकृत ऐमिलोस बनता है। इस मेथिलीकृत ऐमिलोस को जल-विश्लेषित करने पर निम्न दो यौगिक प्राप्त होते हैं — २ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस और २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस।[१] ये दोनो प्रामाणिक यौगिक है और इनका आकार ज्ञात है। दोनो मे ही आक्साइड वलय पाइरानोस (अर्थात् १ ५) रहता है।
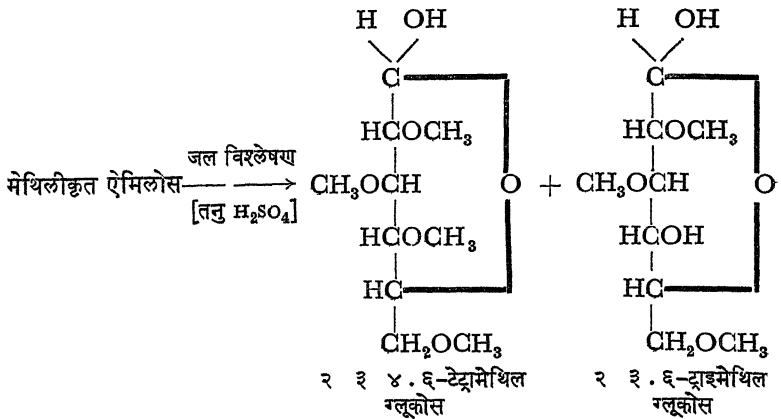
इन दोनो के अतिरिक्त अन्य कोई डाइमेथिल या मॉनोमेथिल ग्लूकोस नही प्राप्त होता। टेट्रामेथिल ग्लूकोस और ट्राइमेथिल ग्लूकोस किन मात्राओ मे प्राप्त होते है यह भी ज्ञात किया गया है। टेट्रामेथिल ग्लूकोस की ० ३ प्रतिशत मात्रा प्राप्त होती है और ट्राइमेथिल ग्लूकोस की ९९ ७ प्रतिशत।

ऐमिलोस $\xrightarrow[\text{NaOH}]{(CH_3)_2SO_4^+}$ मेथिलीकृत ऐमिलोस $\xrightarrow{\text{जल-विश्लेषण}}$

२ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लकोस + २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस
० ३% ९९ ७%
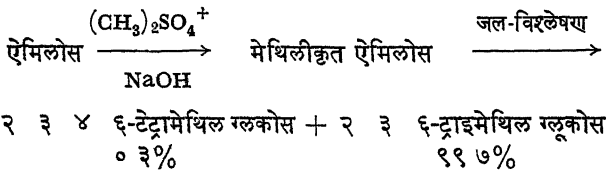
इस प्रकार हम देखते है कि २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस मुख्य रूप से प्राप्त होता है। ऐमिलोस की जिन ग्लूकोस इकाइयो से ट्राइमेथिल ग्लूकोस बनता है उनमे २ . ३ ६– स्थानो के हाइड्राक्सिल ही केवल मुक्त अवस्था मे रहते है, अन्य कार्बनो के हाइड्राक्सिल मूलक अभिकृत हो चुके हैं और फलस्वरूप ये कार्बन अधिवासित है, अर्थात् इन ग्लूकोस इकाइयो मे से प्रत्येक का पहला, चौथा और पॉचवॉ कार्बन अन्य प्रकार से बन्धित है। २ ३ . ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस के आकार से हमे यह ज्ञात है कि ५वॉ कार्बन पाइरानोस वलय द्वारा अधिवासित है। अत स्पष्ट है कि ये ग्लूकोस इकाइयॉ परस्पर पहले और चौथे कार्बन परमाणुओ द्वारा बन्धित है। हमे ज्ञात है कि माल्टोस मे एक ग्लूकोस इकाई का चौथा कार्बन दूसरी ग्लूकोस इकाई के पहले कार्बन से α-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा सयोजित रहता है। हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि ऐमिलोस का डायस्टेस एन्ज़ाइम द्वारा जल-विश्लेषण होने पर केवल माल्टोस उत्पन्न होता है। अत इससे यह

निष्कर्ष निकलता है कि ऐमिलोस मे माल्टोस के समान ही ग्लूकोस इकाइयाँ परस्पर बन्धित रहती है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि ऐमिलोस मे ग्लूकोस इकाइयाँ क्रम से C_1–C_4 बन्ध द्वारा बन्धित है, अर्थात् प्रत्येक ग्लूकोस का पहला कार्बन α-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा बगल के ग्लूकोस के चौथे कार्बन से बन्धित है, और फिर इस बगल के ग्लूकोस का पहला कार्बन पहले की ही भाँति अपने बगल के ग्लूकोस के चौथे कार्बन से बन्धित है।[२] इस रीति से क्रमानुसार समस्त ग्लूकोस इकाइयाँ बन्धित हो कर एक लम्बा बडा अणु बनाती हैं।

(४) २ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस भी, जैसा हमने ऊपर देखा, थोडी मात्रा मे प्राप्त होता है। यह ऐमिलोस मे उपस्थित केवल ऐसी ग्लूकोस इकाई से प्राप्त हो सकता है जिसमे २ ३ ४ ६-कार्बन के हाइड्राक्सिल मूलक मुक्त हैं। इस टेट्रा-मेथिल ग्लूकोस का आकार भी हमे ज्ञात है। इसमे पाँचवाँ कार्बन पाइरानोस वलय बनाने के कारण अधिवासित है। अत इसमे केवल पहला कार्बन ही बचता है जिसके द्वारा यह इकाई बगल के दूसरे ग्लूकोस से बन्धित होगी। ऊपर के तथ्यो के आधार पर स्पष्ट है कि इस ग्लूकोस का पहला कार्बन α-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा बगल के ग्लूकोस के चौथे कार्बन से बन्धित है। किन्तु इसका अपना चौथा कार्बन मुक्त अवस्था मे है। तभी यह उपर्युक्त टेट्रामेथिल ग्लूकोस बना सकेगा। अत यह ग्लूकोस इकाई ऐमिलोस शृखला के एक सिरे पर होगी। इन सब बातो के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि ऐमिलोस मे समस्त ग्लूकोस इकाइयाँ परस्पर C_1–C_4 बन्ध द्वारा सघनित हो कर एक लम्बी सीधी शृखला बनाती है जिसके एक सिरे की ग्लूकोस इकाई केवल C_1 बन्ध द्वारा शृखला से बन्धित है। स्वभावत शृखला के दूसरे सिरे की ग्लूकोस इकाई का चौथा कार्बन शृखला से बन्धित होगा और C_1 सिरा मुक्त अवस्था मे होगा। ऐसी सीधी शृखला मान लेने पर ऐमिलोस का केवल निम्न आकार ही सम्भव हो सकता है .—
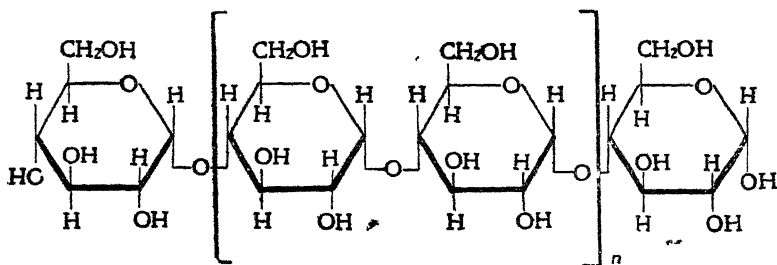
ऐमिलोस की सरचना

ऐसे अणु का मेथिलीकरण और फिर मेथिलीकृत यौगिक का जल-विश्लेषण करने पर बायी ओर के सिरे के ग्लूकोस से ही केवल २ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस प्राप्त होगा। बीच की समस्त ग्लूकोस इकाइयो से २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस प्राप्त होगा। दाहिनी ओर के सिरे की ग्लूकोस इकाई भी २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस देगी, क्योकि पहला कार्बन ग्लूकोसाइड कार्बन है और इससे सम्बन्धित मेथाक्सी समूह जल-विश्लेषित होने पर तुरन्त हाइड्राक्सिल मूलक द्वारा प्रतिस्थापित हो जायगा। अन्य कार्बन से बन्धित मेथाक्सी मूलक ईथर बन्ध बनाते है, इस कारण ये शीघ्र जल-विश्लेषित नही हो सकते। नीचे के समीकरण द्वारा इन सब का बनना स्पष्ट हो जायगा --
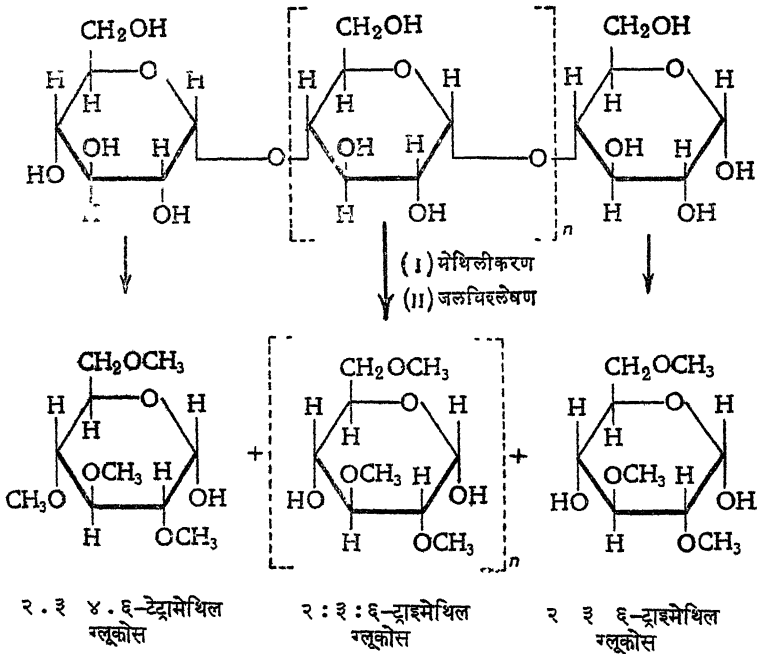
प्रयोगो द्वारा भी, जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, ऐमिलोस से केवल २ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस और २ ३ ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस दो ही यौगिक प्राप्त होते है। अत इससे भी ऊपर के सूत्र की पुष्टि होती है। प्रयोगो से हमे यह भी ज्ञात है कि २ . ३ : ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस की मात्रा २ : ३ ४ . ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस की तुलना मे

बहुत अधिक होती है (१९ ७ ० ३)। यह तथ्य ऐमिलोस की एक लम्बी श्रृखला होने की पुष्टि करता है।

यदि प्रयोग द्वारा २ ३ ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस और २ ३ ६-ट्राइ-मेथिल ग्लूकोस की प्रतिशत मात्राएँ जो ऐमिलोस से प्राप्त होती हैं हम ज्ञात कर लें तो हम ऐमिलोस का अणुभार गणना कर मालूम कर सकते हैं। ऐमिलोस का अणुभार ज्ञात करने की यह एक रासायनिक विधि है।

प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि लगभग ० ३ प्रतिशत टेट्रामेथिल ग्लूकोस ऐमिलोस के मेथिलीकरण और फिर मेथिलीकृत ऐमिलोस के जल-विश्लेषण से प्राप्त होता है। अत गणना के अनुसार ऐमिलोस की श्रृखला मे ३०० ग्लूकोस इकाइयाँ होनी चाहिए। इसके आधार पर ऐमिलोस का अणुभार कम से कम ५४००० होना चाहिए। टेट्रामेथिल ग्लूकोस की इतनी कम मात्रा को बहुत ठीक-ठीक तोल कर ज्ञात कर सकना बहुत कठिन है और इस तोल मे थोडी भी अशुद्धि होने से गणना द्वारा प्राप्त अणुभार मे काफी अन्तर हो जायगा। अत अणुभार का यह मान (अर्थात् ५४०००) निकटमान (approximate value) कहा जा सकता है। प्रयोगो से यह भी ज्ञात हुआ है कि विभिन्न स्रोतो से प्राप्त ऐमिलोस के अणुभारो मे भी परस्पर एक दूसरे से अन्तर होता है। साधारणत ऊपर की रासायनिक विधि द्वारा विभिन्न ऐमिलोसो की श्रृखला मे ४०० से १००० तक ग्लूकोस इकाइयाँ ज्ञात हुई हैं।

विभिन्न भौतिक विधियो (जैसे रसाकर्षण दाब तथा अति अपकेन्द्री विधि आदि) से भी ऐमिलोस का अणुभार ज्ञात किया गया है। भौतिक विधियो से प्राप्त अणुभार तथा ऊपर की रासायनिक विधि से प्राप्त अणुभार मे विशेष अन्तर नही है। अत इससे यह सिद्ध होता है कि जिस रासायनिक आकार को मान कर रासायनिक विधि द्वारा अणुभार निकाला गया है वह आकार ऐमिलोस का ठीक आकार है। इस प्रकार ऐमिलोस की सरचना का एक लम्बी शाखाहीन श्रृखला होना जिसमे ग्लूकोपाइरानोस इकाइयाँ परस्पर C_1–C_4 α-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा बन्धित हैं सिद्ध हो जाता है।[3] इस आकार की पुष्टि ऐमिलोस के निम्न दो गुणो द्वारा भी होती है —

ऐमिलोस ऐसीटेट से मजबूत लम्बे धागे तथा लचीली पतली फिल्म बनायी जा सकती हैं। मजबूत धागे (जो खिचने पर शीघ्र न टूट सके), और मजबूत लचीली तथा नमन-शील फिल्म उत्पन्न कर सकने का गुण केवल उन अणुओ मे होता है जिनकी लम्बी श्रृखला होती है। जब ऐमिलोस ऐसीटेट की फिल्मो को खीचा जाता है तो इनकी तनन-क्षमता (tensile strength) मे वृद्धि होती है और ये द्विवर्तनशील हो जाती हैं। यह परिवर्तन इनके अणु के अभिविन्यास के फलस्वरूप होता है और इससे भी ऐमिलोस

ऐसीटेट के अणुओ की एक लम्बी शृखला होना प्रदर्शित होता है। जिस समय यह फिल्म खिच रही होती है उस समय इसका एक्स-रे विवर्तन चित्र ((X-ray diffraction pattern) लेने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि फिल्म के अणु अमणिभीय अवस्था से मणिभीय अवस्था की ओर परिवर्तित हो रहे है। जब फिल्मो को लगभग ५०० प्रतिशत अश तक खीचा जाता है तो इनका एक्स-रे चित्र प्रामाणिक ततु के आकार का हो जाता है। विवर्तन चित्र मे पृथक्-पृथक् बिन्दु उपस्थित रहते है जो यह व्यक्त करते हैं कि फिल्म के अणुओ मे उसी प्रकार का नियमित अभिविन्यास है जैसा मणिभो मे होता है। इन सब तथ्यो से भी ऐमिलोस अणु की एक लम्बी शृखला होने की पुष्टि होती है।

ऐमिलोस का एक गुण यह भी है कि यदि इसका एक समाग जलीय विलयन बना कर रख दिया जाय तो यह विलयन धीरे-धीरे अपारदर्शक होने लगता है और कुछ समय बाद ऐमिलोस स्वय ठोस रूप मे अवक्षेपित हो कर पृथक् हो जाता है। इस गुण को, जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, पश्चगमन (retrogradation) कहते है। ऐमिलोस का यह गुण भी उसके अणु की एक लम्बी शृखला होने का परिणाम है। इस प्रकार की लम्बी शृखलाएँ समानान्तर प्रबन्धित हो कर परस्पर हाइड्रोजन बन्ध द्वारा समूह मे एकत्रित रहती है। विलयन की अवस्था मे यह समूह विच्छिन्न हो जाता है और प्रत्येक अणु पृथक् हो जाता है। रखे रहने पर अणु फिर परस्पर एक दूसरे से हाइड्रोजन बन्ध द्वारा सम्बन्धित हो कर समूह बनाने लगते है और फलस्वरूप बडे समूह के बनने से, जो अविलेय होते है, विलयन अपारदर्शक होता जाता है और अन्त मे अवक्षेपित हो जाता है। केवल लम्बी शृखलाओ मे ही यह गुण होता है कि वे हाइड्रोजन बन्ध द्वारा परस्पर सम्बन्धित हो कर बडे समूह बनाती हैं; छोटी शृखलाओ मे यह गुण नही होता।
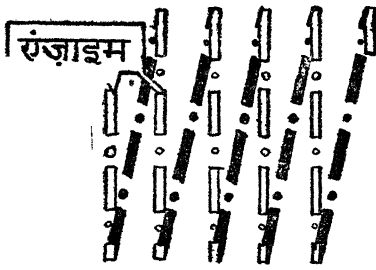
चित्र ६—ऐमिलास का सर्पिल आकार

सैद्धान्तिक आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि α-ग्लूकोस इकाइयो द्वारा सगठित शृखलाएँ निष्पीडनरहित षट्कोणीय आकार धारण कर सकती हैं और प्रत्येक इस षटकोणीय आकार मे ६ ग्लूकोस इकाइयाँ होगी। इस आधार पर यह अनु-

मान लगाया गया है कि स्टार्च मे ऐमिलोस अणु सर्पिल आकार के रूप मे प्रबन्धित है, और इस सर्पिल की प्रत्येक कुडली (coil) मे ६ ग्लूकोस इकाइयाँ रहती है और प्रत्येक कुडली की ग्लूकोस इकाइयो के आक्सिजन बन्ध एक दूसरे के निकट सर्पिल प्रबन्ध के कारण स्थित रहते हैं। एक विशेष एजाइम की क्रिया द्वारा स्टार्च विघटित हो कर एक ऐसे डेक्सट्रिन मे परिणत हो जाता है जिसका प्रत्येक अणु ६ ग्लूकोस इकाइयो का बना होता है। स्टार्च से इस डेक्सट्रिन के बनने की क्रिया पर प्रकाश डालने के हेतु ही इस सर्पिल आकार की कल्पना की गयी है। ऐसा समझा जाता है कि एज़ाइम प्रत्येक कुडली के अन्त के स्थान पर, अर्थात् छठी और सातवी ग्लूकोस इकाइयो के बीच मे, स्टार्च-अणु पर आक्रमण करता है और क्रम से स्टार्च-अणु को इन्ही स्थानो पर विच्छेदित कर देता है जिसके फलस्वरूप ६ ग्लूकोस इकाइयो का डेक्सट्रिन बनता है।

ऐमिलोपेक्टिन की संरचना (Structure of amylopectin)—(१) ऐमिलोपेक्टिन को तनु खनिज अम्लो द्वारा पूर्ण जल-विश्लेषित करने पर केवल ग्लूकोस प्राप्त होता है। अत यह भी केवल ग्लूकोस अणुओ के परस्पर के सघनन से बना यौगिक है।

(२) डायस्टेस द्वारा किण्वित किये जाने पर यह विच्छेदित हो जाता है और ५० प्रतिशत माल्टोस उत्पन्न करता है और शेष एक डेक्सट्रिन उत्पन्न करता है। इस डेक्सट्रिन को नियन्त्रित रूप से जल-विश्लेषित करने पर पुन माल्टोस प्राप्त होता है। अत इससे यह स्पष्ट है कि ऐमिलोपेक्टिन मे ग्लूकोस इकाइयाँ परस्पर उसी प्रकार सम्बन्धित है जिस प्रकार माल्टोस मे, अर्थात् ये C_1–C_4 α-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा सयोजित हैं।

(३) ऐमिलोपेक्टिन का मेथिलीकरण करने और फिर मेथिलीकृत यौगिक का जल-विश्लेषण करने पर निम्न यौगिक प्राप्त होते है —

(i) २ : ३ : ४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस—४ से ५ प्रतिशत
(ii) २ : ३ . ६-ट्राइमेथिल ग्लूकोस—८८ से ९० प्रतिशत
(iii) २ ' ३-डाइमेथिल ग्लूकोस—४ से ५ प्रतिशत

(४) यदि ऐमिलोस की भाँति ऐमिलोपेक्टिन के अणु का आकार भी एक लम्बी शाखाहीन शृखला मान लिया जाय तो टेट्रामेथिल ग्लूकोस की प्रतिशत मात्रा के आधार पर गणना करने पर इसकी शृखला की लम्बाई लगभग २०-२५ ग्लूकोस इकाइयाँ होती है। इसके अनुसार ऐमिलोपेक्टिन का अणुभार लगभग ४५०० होना चाहिए, किन्तु भौतिक विधियो (रसाकर्षण दाब, श्यानता मापन, अति अपकेन्द्री विधि आदि) द्वारा ऐमिलोपेक्टिन का अणुभार २०,००० से ६०,००,००० तक आता है।[४] इससे स्पष्ट है कि ऐमिलोपेक्टिन इतना सरल एक शृखला का अणु नही है जैसा टेट्रामेथिल ग्लकोस की प्रतिशत मात्रा के आधार पर गणना द्वारा प्राप्त होता है। यदि हम यह मान

ले कि ऐमिलोपेक्टिन मे केवल एक शृखला नही है, वरन् अनेक शृखलाएँ है जो शाखाओ के रूप मे पार्श्वों मे प्रबन्धित है, तो टेट्रामेथिल ग्लूकोस की प्रतिशत मात्रा के आधार पर गणना द्वारा प्राप्त मान तथा भौतिक विधियो द्वारा प्राप्त मान के अन्तर का कारण स्पष्ट हो जायगा। टेट्रामेथिल ग्लूकोस के परिमापन की विधि से जो मान प्राप्त होता है वह ऐमिलोपेक्टिन की केवल एक शाखा की लम्बाई व्यक्त करता है, अर्थात् प्रत्येक शाखा मे लगभग २०-२५ ग्लूकोस इकाइयाँ है। ऊपर का निष्कर्ष निम्न तर्क से भी पुष्ट होता है .—

मेथिलीकृत ऐमिलोपेक्टिन के जल-विश्लेषण से २ ३-डाइमेथिल ग्लूकोस भी प्राप्त होता है।[५] इससे स्पष्ट है कि कुछ ग्लूकोस इकाइयाँ दूसरी ग्लूकोस इकाइयो से न केवल C_1-C_4 बन्ध द्वारा सयोजित है, वरन् C_1-C_6 बन्ध द्वारा भी बन्धित है, अर्थात् कुछ ग्लूकोस इकाइयो मे पहला, चौथा तथा छठा कार्बन अन्य ग्लूकोस इकाइयो से सयोग करने मे अधिवासित रहता है। पाँचवाँ कार्बन पाइरानोस वलय द्वारा अधिवासित रहता है। इस प्रकार इन ग्लूकोस इकाइयो मे केवल दूसरे तथा तीसरे कार्बन के हाइड्राक्सिल मूलक ही मुक्त अवस्था मे बच रहते है। ये ग्लूकोस इकाइयाँ २ ३-डाइमेथिल ग्लूकोस बनाती है। यदि हम यह मान ले कि जहाँ से पार्श्व मे किसी मुख्य शृखला से दूसरी शाखा निकलती है वहाँ की ग्लूकोस इकाइयाँ परस्पर C_1-C_6-बन्ध द्वारा सम्बन्धित है तो ऊपर के समस्त तथ्यो का स्पष्टीकरण सरलता से हो जाता है।

हावर्थ और हर्स्ट[६] (Haworth and Hirst) के मत के अनुसार ऐमिलोपेक्टिन एक बहुशाखा-युक्त अणु है। इसकी प्रत्येक शाखा मे लगभग २४ ग्लूकोस इकाइयाँ है जो परस्पर C_1-C_4 बन्ध द्वारा सयोजित है। प्रत्येक शाखा के एक सिरे का पहला कार्बन बगल की दूसरी शाखा के छठे कार्बन से बन्धित है। इस प्रकार एक के बाद दूसरी शाखा पर्त रूप मे प्रबन्धित रहती है। हावर्थ और हर्स्ट की इस कल्पना के अनुसार ऐमिलोपेक्टिन का आकार चित्र ७ के अनुसार लिखा जायगा।

हावर्थ और हर्स्ट द्वारा प्रस्तावित चित्र के आकार के अनुसार २ ३-डाइमेथिल ग्लूकोस तथा २ ३.४ ६-टेट्रामेथिल ग्लूकोस की मात्राएँ लगभग समान प्राप्त होनी चाहिए। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, प्रयोग से भी दोनो की लगभग समान मात्राएँ प्राप्त होती हैं। अत इन तथ्यो से ऐमिलोपेक्टिन के आगे प्रदर्शित आकार की पुष्टि होती है।

C_1—C_6-ग्लूकोसाइड बन्ध के ऐमिलोपेक्टिन मे रहने का एक अन्य स्पष्ट प्रमाण भी कुछ समय पूर्व माटगुमरी, वीक्ले और हिल्बर्ट[७] (Montgomery, Weakley
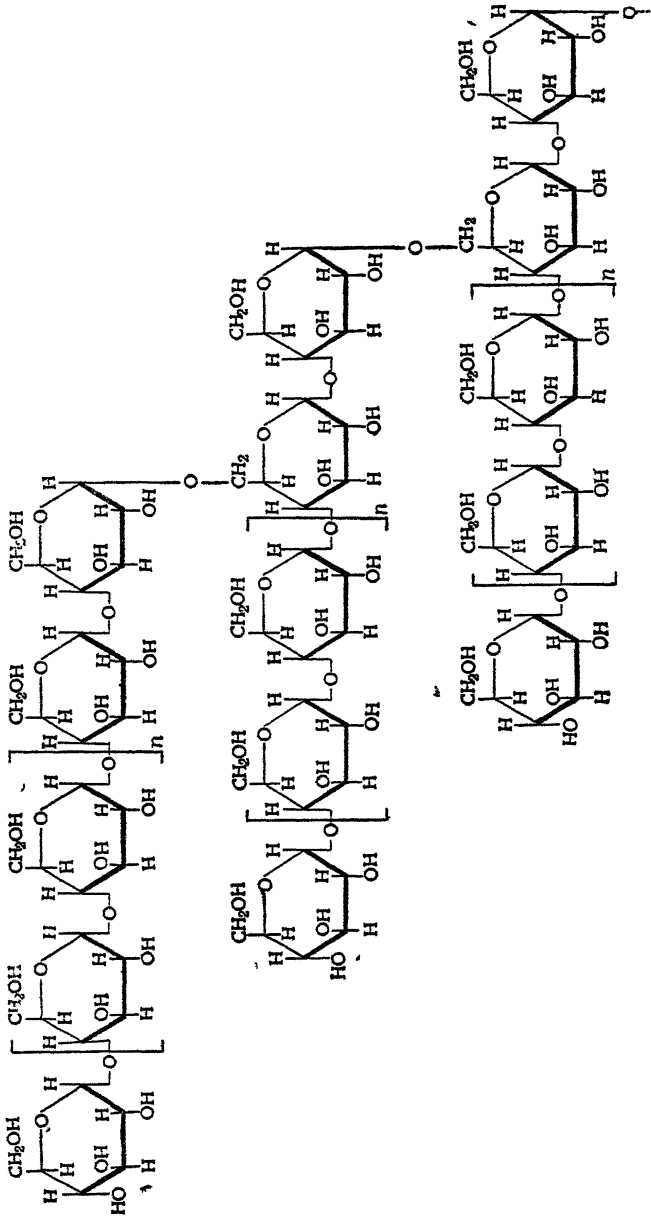
चित्र ७—ऐमिलोपेक्टिन (हावर्थ और हर्स्ट के अनुसार)

and Hilbert, 1949) ने अपने प्रयोगो द्वारा प्रस्तुत किया है। इन रसायनज्ञो ने ऐस्परजिलस ओराइजी (Aspergillus oryzae) नामक फफूँद से एक नया एजाइम प्राप्त किया। इस एजाइम द्वारा ऐमिलोपेक्टिन का इन्होने किण्वन किया और इसके फलस्वरूप जो शर्कराएँ बनी उन्हे पृथक् कर प्रत्येक का परीक्षण किया। इन शर्कराओ मे ग्लूकोस और माल्टोस के अतिरिक्त एक नयी मणिभीय शर्करा प्राप्त हुई। यह शर्करा एक डाइ-सैकराइड थी जिसमे दो ग्लूकोस अणु C_1-C_6 ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा सघनित थे।

एंजाइमो द्वारा ऐमिलोपेक्टिन का जिस रीति से विघटन होता है उसके आधार पर ऐमिलोपेक्टिन का एक दूसरा रूप प्रस्तावित किया गया है। हमे प्रयोगो से यह
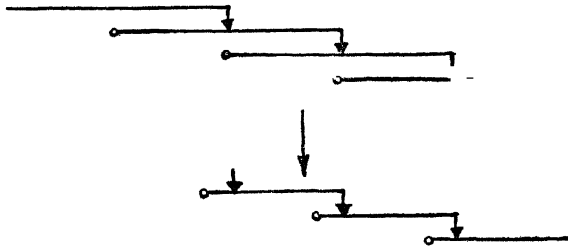
चित्र ८—ऐमिलोपेक्टिन का एंजाइमो द्वारा डेक्सट्रिन में विघटन

ज्ञात है कि β-ऐमिलेस की क्रिया द्वारा ऐमिलोपेक्टिन का पूर्ण विघटन एक साथ नही होता। इस एजाइम की प्रथम क्रिया मे लगभग ५० प्रतिशत माल्टोस बनता है और ५० प्रतिशत एक डेक्सट्रिन अवशेष के रूप मे बच रहता है। रासायनिक विधि द्वारा परिमापन करने पर यह ज्ञात हुआ है कि इस डेक्सट्रिन को मेथिलीकृत करने और फिर जल-विश्लेषित करने पर ऐमिलोपेक्टिन की अपेक्षा दुगुनी मात्रा मे टेट्रामेथिल ग्लूकोस प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि यह डेक्सट्रिन ऐमिलोपेक्टिन के लगभग अर्ध विघटन द्वारा उत्पन्न होता है। एक दूसरा एंजाइम
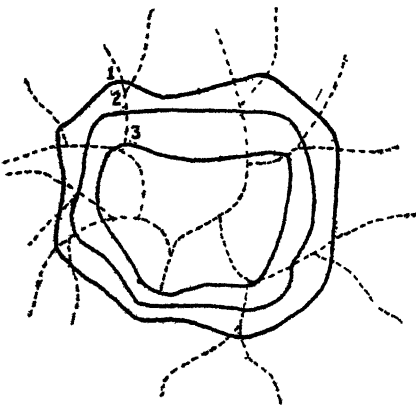
चित्र ९—ऐमिलोपेक्टिन का बहुशाखी आकार

α-ग्लूकोसाइडेस इस डेक्सट्रिन का कुछ अधिक विघटन करने मे सफल होता है और इस क्रिया के पश्चात् अब जो अपेक्षाकृत सरल डेक्सट्रिन प्राप्त होता है वह β-ऐमिलेस द्वारा जल-विश्लेषित किये जाने पर माल्टोस तथा एक अधिक सरल डेक्सट्रिन उत्पन्न करता है। इन क्रियाओ के प्रक्रम पर प्रकाश डालने की दृष्टि से ऐमिलोपेक्टिन को एक बहुशाखायुक्त आकार[६] (ramified structure) प्रदान किया गया है जो चित्र ९ मे प्रदर्शित किया गया है। इस आकार मे १ ४- तथा १ ६- दोनो ही बन्ध उपस्थित माने जाते है। चित्र मे बिन्दुओ द्वारा प्रदर्शित रेखाएँ ऐमिलोपेक्टिन अणु का एक भाग व्यक्त करती हैं। सख्या १ द्वारा इगित रेखा β-ऐमिलेस के आरम्भ के आक्रमण की सीमा को व्यक्त करती है, सख्या २ द्वारा प्रदर्शित रेखा उन स्थानो को निर्देशित करती है जहाँ α-ग्लूकोसाइडेस एजाइम अणु पर आक्रमण कर उसे विच्छेदित करता है और सख्या ३ द्वारा अकित रेखा उन स्थानो को व्यक्त करती है जहाँ β-ऐमिलेस की अन्तिम विघटन क्रिया होती है। इस प्रकार इस बहुशाखायुक्त आकार द्वारा एजाइमो की विभिन्न पदो मे होने वाली क्रिया की व्याख्या कुछ अग तक हो जाती है।

ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन की सरचना के सम्बन्ध मे प्रकाशीय गुणो का प्रमाण—रुडिल और बैल्डविन[१] (Rundle and Baldwin) ने स्टार्च विलयन के प्रकाशीय गुणो के आधार पर भी ऐमिलोस के अणु का एक सीधी लम्बी शृखला होना और ऐमिलोपेक्टिन के अणु का एक बहुशाखायुक्त शृखला होना सिद्ध किया है।

स्टार्च विलयन बहाव की द्विवर्णता (dichroism of flow) प्रदर्शित करता है। यदि कोई अणु शाखाहीन सीधी शृखलाओ के रूप का है तो ये शृखलाएँ पदार्थ के विलयन के बहने पर शाखायुक्त शृखलाओ की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से अपने को प्रबन्धित कर सकती है, और इस कारण सीधी शृखलाओ के अणु शाखायुक्त शृखलाओ की तुलना मे अधिक द्विवर्णता प्रदर्शित करेगे। रुडिल और बैल्डविन ने देखा कि तनु विलयन की अवस्था मे भी ऐमिलोस पर्याप्त द्विवर्णता प्रदर्शित करता है किन्तु इसके विपरीत शुद्ध ऐमिलोपेक्टिन कोई भी द्विवर्णता नही प्रदर्शित करता। इससे यह अनुमान होता है कि ऐमिलोस एक शाखाहीन सीधी शृखला का अणु है और ऐमि-लोपेक्टिन एक बहुशाखायुक्त शृखला का अणु है।

इस प्रकार ऊपर वर्णित तथ्यो और तर्को के आधार पर यह निश्चित रूप से सिद्ध हो गया है कि ऐमिलोपेक्टिन अनेक शाखाओ से युक्त एक बडा अणु है। ये शाखाएँ किस प्रकार प्रबन्धित है, इसके सम्बन्ध मे अभी कोई एक मत नही है। कुछ वैज्ञानिक हावर्थ और हर्स्ट द्वारा प्रस्तावित प्रबन्ध को ठीक मानते है, किन्तु कुछ अन्य वैज्ञानिक

दूसरे प्रकार के प्रबन्ध की कल्पना करते है। शाखाओ का प्रबन्ध कुछ भी हो, यह निश्चित रूप से सर्वमान्य है कि ऐमिलोपेक्टिन बहुशाखायुक्त एक बडा सकीर्ण अणु है। ऐमिलोपेक्टिन अणु का शाखायुक्त होना इससे भी सिद्ध हो जाता है कि यह ऐमिलोस की भाँति मजबूत धागे तथा लचीली फिल्म नही बनाता। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, मजबूत धागे तथा लचीली फिल्म बनाने का गुण केवल बिना शाखायुक्त लम्बी शृखला-युक्त अणुओ मे ही रहता है।

ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन का सश्लेषण भी प्रयोगशाला मे अब किया जा चुका है। इस सश्लेषण की चर्चा अगले अध्याय मे की गयी है। सश्लेषण सम्बन्धी अध्ययन से भी ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन की ऊपर प्रदर्शित रासायनिक सरचना की पुष्टि होती है।

निर्देश

1 W N Haworth, E. L Hirst and J T. Webb, J Chem. Soc, 1928, 2681

2. W N Haworth, 'The Constitution of the Sugars', p 94, Arnold, London, 1929

3,4 A L Potter and W Z Hassid, J Amer Chem Soc., 1948, **70**, 3488, 3774

5 E G E Hawkins, J K N Jones and G T Young, J. Chem Soc, 1940, 390

6 W N Haworth, E L Hirst and F. A Jsherwood, J Chem. Soc, 1937, 577

7 Edna Montgomery, F B Weaklev and G E Hilbert, J. Amer. Chem Soc, 1949, 71, 1682-1687

8 Meyer and Bernfeld, Helv Chim Acta, 1940, 23, 875.

9 R E Rundle and R R Baldwin, J. Amer Chem Soc, 1943, **65**, 554

अध्याय ११

कार्बोहाइड्रेट पदार्थो का संश्लेषण

स्टार्च वनस्पति जगत् मे व्यापक रूप से पाया जाता है और सेल्यूलोस के बाद वनस्पतियो मे यह सब से अधिक मात्रा मे पाया जाने वाला पदार्थ है। यह समस्त हरे पौधो मे पाया जाता है और विशेष सगठित आकारो के कणो (granules) के रूप मे वर्तमान रहता है। कलिकाओ के ऊपरी भाग तथा मूल और मूलिकाओ के निचले सिरो मे स्टार्च साधारणत नही रहता, किन्तु पौधो के अन्य सभी भागो मे कुछ न कुछ मात्रा मे वर्तमान रहता है। यह पौधो का सगृहीत भोजन पदार्थ है और विशेष रूप से बीजो, जैसे गेहूँ, चावल, मकई आदि के बीज, जडो तथा कदो, जैसे आलू आदि मे एकत्रित रहता है। जब पौधो मे उनकी आवश्यकता से अधिक शर्करा बनती है तब यही अतिरिक्त शर्करा स्टार्च के रूप मे परिणत हो कर सगृहीत रहती है। आवश्यकता होने पर यह सगृहीत स्टार्च पुन शर्करा मे परिणत हो कर पौधे के उपयोग मे आता है। शर्करा को स्टार्च मे बदलने तथा स्टार्च को पुन शर्करा मे परिवर्तित करने की क्रियाएँ विभिन्न एजाइमो (enzymes) द्वारा होती है जो पौधो मे मौजूद रहते हैं। एजाइम उन पदार्थो को कहते है जो पौधो तथा जन्तुओ द्वारा रसित होते है और जिनमे विभिन्न कार्बनिक पदार्थो को धीमी गति से दूसरे पदार्थो मे परिवर्तित करने का गुण होता है। ये सकीर्ण नाइट्रोजन-युक्त यौगिक होते है। प्रत्येक एंज़ाइम एक विशेष रासायनिक क्रिया करता है। ये एक प्रकार से उत्प्रेरक (catalyst) का कार्य करते हैं। साधारण रीति से स्टार्च पानी मे अविलेय कणो के रूप मे पौधो मे रहता है किन्तु कुछ पौधो की कोशिकाओ के रस (sap) मे यह प्राय विलेय रूप मे भी थोडी मात्रा मे पाया जाता है। बीजो और कदो मे स्टार्च-कणो का सगठित आकार और रूप होता है। प्रत्येक पौधे के स्टार्च-कणो की नाप और उनका रूप पृथक् होता है। इन मुख्य अगो के अतिरिक्त, जहाँ स्टार्च का सग्रह होता है, पौधो के अन्य अगो मे पाये जाने वाले स्टार्च-कण अपेक्षाकृत छोटे होते है और साथ ही उनका रूप भी निश्चित नही रहता। इससे स्पष्ट है कि ये कण अभी पूर्ण रूप से बन नही पाये हैं।

पौधे के प्रत्येक हरे भाग मे स्टार्च का सश्लेषण कार्बन डाइ-आक्साइड तथा पानी

से सूर्य के प्रकाश मे होता है। इस क्रिया मे पौधे को वायु की कार्बन डाइ-आक्साइड से कार्बन प्राप्त होता है और वह उससे स्टार्च या अन्य कार्बनिक यौगिक सश्लेषित करता है। इस कारण इस क्रिया को **कार्बन-स्वीकरण** (carbon assimilation) कहते है। सरल कार्बन डाइ-आक्साइड से सकीर्ण स्टार्च तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट के बनने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होती है। इसी कारण कार्बन-स्वीकरण की क्रिया केवल सूर्य के प्रकाश मे ही पौधो मे होती है। इसी से इस क्रिया को **प्रकाश-संश्लेषण** (photosynthesis) भी कहते है। प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मुख्य रूप से हरी पत्तियो मे होती है। इसी से पत्तियो को पौधो के लिए भोजन पदार्थ तैयार करने की प्रयोगशाला कहते है।

पौधो की कोशिकाएँ (Plant Cells)

प्रत्येक जीव छोटे-छोटे कोशो से बना है जिनमे जीवन-पदार्थ भरा रहता है। इन कोशो को कोशिकाएँ (cells) कहते है। इनका आकार बहुत छोटा होता है और इन्हे हम केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देख सकते है। पौधे की कोशिका एक दीवार से घिरी रहती है जो सेल्यूलोस की बनी होती है। कोशिका के भीतर एक गाढा रस-दार चिपचिपा स्वच्छ पदार्थ भरा रहता है। यह पदार्थ **जीवद्रव्य** या **प्रोटोप्लाज्म** (protoplasm) कहलाता है। प्रोटोप्लाज्म के बीच मे एक अधिक घनी चीज़ रहती है जिसे **नाभिक** या **न्यूक्लियस** (nucleus) कहते है। यह भी प्रोटोप्लाज्म के पदार्थ का ही बना होता है। नाभिक कोशिका का सब से महत्त्वपूर्ण अग है।
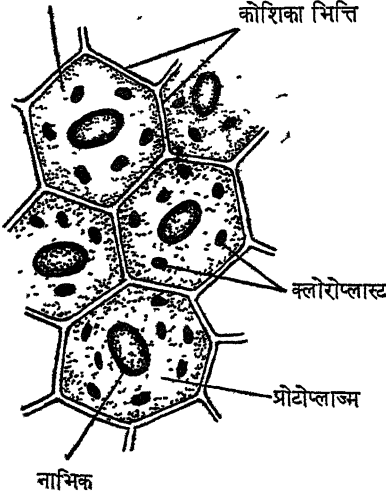
चित्र १०—पादप-कोशिकाएँ

कोशिका मे होने वाली सभी जीवन-क्रियाएँ इसी के द्वारा सचालित तथा नियन्त्रित होती है। प्रत्येक कोशिका के भीतर प्रोटोप्लाज्म मे चारो ओर बिखरे नन्हे नन्हे गोल या बिब के आकार के बहुत से कण भी रहते हैं। इन्हे **प्लैस्टिड** (plastids) कहते है।

प्लैस्टिड का विशेष कार्य होता है और ये उन सभी कोशिकाओ मे पाये जाते है जिन्हे विशेष प्रकार के कार्य करने होते है। प्लैस्टिड तीन प्रकार के होते है—**ल्यूकोप्लास्ट** (leucoplast), **क्लोरोप्लास्ट** (chloroplast) और **क्रोमोप्लास्ट** (chromoplast)। ल्यूकोप्लास्ट सफेद होते है और साधारण रीति से जमीन के भीतर रहने वाले तनो (जैसे आलू) मे तथा पौधो के उन भागो मे रहते है जहाँ प्रकाश नही पहुँच सकता। इनका मुख्य कार्य सरल शर्कराओ से स्टार्च का सश्लेषण करना तथा आवश्यकता पडने पर पुन स्टार्च को ग्लूकोस मे विच्छेदित करना है। जब विलेय कार्बोहाइड्रेट (शर्कराएँ आदि) उन कोशिकाओ मे पहुँचते है जिनमे ल्यूकोप्लास्ट रहते है तो ये ल्यूकोप्लास्ट विलेय कार्बोहाइड्रेट से अविलेय स्टार्च का सगठन करते है, और यह स्टार्च जैसे-जैसे बनता है एक के बाद दूसरी पर्तो के रूप मे जमता जाता है, और इस प्रकार स्टार्च के निश्चित रूप और आकार के कण बन जाते है। क्लोरोप्लास्ट हरे रग के होते है। इनके भीतर क्लोरोफिल (chlorophyll) नामक हरा रग होता है और इसी क्लोरोफिल के कारण पौधो का रग हरा होता है। पौधो के समस्त हरे भाग की कोशिकाओ मे ये रहते है। क्लोरोप्लास्ट ही पौधो की प्रयोगशाला है जहाँ वायु की कार्बन डाइ-आक्साइड से भोजन पदार्थ बनता है। इस प्रकार प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मे इनका महत्त्व का स्थान है। यह देखा गया है कि यदि ल्यूकोप्लास्ट को सूर्य के प्रकाश तथा अन्य उपयुक्त वातावरण मे रख दिया जाय तो वे क्लोरोफिल उत्पन्न करते हैं और क्लोरोप्लास्ट मे परिवर्तित हो जाते हैं। इसमे क्लोरोप्लास्ट और ल्यूकोप्लास्ट का परस्पर का सम्बन्ध व्यक्त होता है।

क्रोमोप्लास्ट विभिन्न रगो के होते हैं—लाल, नारगी, पीले आदि। ये साधारणत फूलो की रगीन पखुडियो मे पाये जाते है। प्राय पौधो के अन्य रगीन भागो मे भी ये मिलते है, जैसे गाजर, चुकन्दर आदि। इनका काम फूलो को तथा जिन अगो मे ये रहते है उनको आकर्षक बनाना है।

पत्ती का आकार

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मुख्य रूप से पौधो की हरी पत्तियो मे होती है और इस क्रिया के फलस्वरूप पौधो मे कार्बोहाइड्रेट पदार्थ बनते है। अत प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया को भली-भाँति समझने के लिए पत्तियो के आन्तरिक आकार को जानना आवश्यक है। आगे एक सामान्य पत्ती के पत्रदल की अनुप्रस्थ काट (transverse section) का सूक्ष्मदर्शी द्वारा दिखलाई देने वाला चित्र दिया गया है।

पत्ती के पृष्ठ (dorsal) तथा अधर (ventral) दोनो तरफ कोशिकाओ की एक पक्ति होती है जिसमे क्युटिकल (cuticle) जमा रहता है। इस पक्ति को **बाह्य त्वचा या एपिडर्मिस** (epidermis) कहते हैं। इसका मुख्य कार्य भीतर
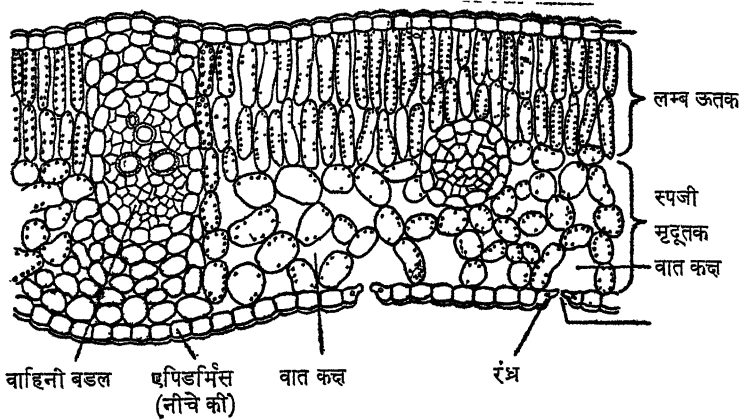
चित्र ११—आम की पत्ती के पत्रदल की अनुप्रस्थ काट

के कोमल ऊतको की रक्षा करना है। क्युटिकल के मौजूद रहने से पानी, धूप आदि से अन्दर के ऊतको की रक्षा सरलता से हो जाती है। ऊपर तथा नीचे दोनो ओर की एपिडर्मिस के बीच की समस्त कोशिकाओ को **पर्णमध्य** या **मेसोफिल** (mesophyll) कहते हैं। ऊपर की (अर्थात् पृष्ठ की ओर की) एपिडर्मिस के ठीक नीचे पर्णमध्य मे एक या दो पक्तियाँ लम्बी कोशिकाओ की होती हैं जिन्हे **लम्ब ऊतक** या **पैलिसेड ऊतक** (palisade tissue) कहते है। इसके नीचे फिर साधारण गोल कोशिकाओ की पक्तियाँ रहती है जिन्हे **स्पजी मृदूतक** या **स्पजी पेरेंकाइमा** (spongy parenchyma) कहते है। स्पजी मृदूतक मे जगह जगह कुछ रिक्त स्थान रहते हैं जिनमे वायु भरी रहती है। इन स्थानो को **वातकक्ष** (air spaces) कहते है। लम्ब ऊतक और स्पजी मृदूतक की कोशिकाओ मे क्लोरोप्लास्ट-कण रहते है और इन्ही कणो मे प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया होती है। लम्ब ऊतक और स्पजी मृदूतक के बीच मे **वाहिनी बंडल** (vascular bundles) रहते है। इनमे दो प्रकार के ऊतक रहते हैं—**फ्लोएम** (phloem) और **दारु** या **जाइलम** (xylem)। इन दोनो ऊतको मे रसो को एक स्थान से दूसरे स्थान मे प्रवाहित करने के लिए नलियाँ होती है। फ्लोएम की नलियो द्वारा पत्ती से द्रव पदार्थ नीचे की ओर पौधे के अन्य अगो मे पहुँचता

है। जाइलम की नलियो द्वारा जड तथा तने की ओर से पानी तथा अन्य द्रव पदार्थ ऊपर पत्तियो तक पहुँचते है।

पत्रदल की निचली (अर्थात् अधर) सतह पर अगणित बहुत सूक्ष्म लम्बाकार रध्र (stomata) रहते है। इन रध्रो के मार्ग से ही बाहर से वायु तथा जल-वाष्प पत्तियो के अन्दर पहुँचती है और पत्तियो के अन्दर की गैसे बाहर निकलती है। प्रत्येक रध्र के दोनो पार्श्वो पर एक-एक अर्ध-चन्द्राकार कोशिका (semi-lunar cell) होती है जिसे **द्वार-कोशिका** (guard cells) कहते है। द्वार-कोशिकाओ की बनावट ऐसी रहती है कि जब वे फूलती है तब रध्र खुल जाते है
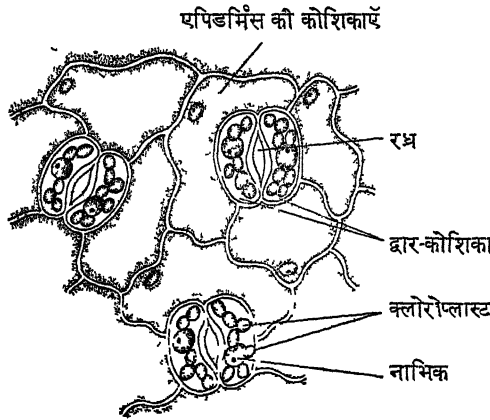
चित्र १२—पौधे के रंध्र

और जब पिचकती है तब रध्र बद हो जाते है। इस प्रकार द्वार-कोशिकाओ द्वारा ध्रो के खुलने और बन्द होने की क्रिया पर नियत्रण रहता है। द्वार-कोशिकाओ द्वारा यह नियत्रण उनमे वर्तमान स्टार्च और शर्करा के परस्पर के अनुपात के परिवर्तन से होता है। जब शर्करा की मात्रा द्वार-कोशिकाओ मे अधिक बढ जाती है तब अन्दर एक तनाव उत्पन्न होता है जिससे रध्र खुल जाते है, और जब शर्करा की मात्रा घट जाती है तब तनाव घट जाता है और रध्र बद हो जाते है। रध्रो के इस नियत्रण द्वारा प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया नियत्रित मात्रा के अनुसार होती है।

इन रध्रो के मार्ग से वायु तथा जल-वाष्प पत्तियो के भीतर लम्ब ऊतक तथा स्पजी मृदूतक मे पहुँचती है। क्लोरोप्लास्ट-कण सूर्य-प्रकाश का शोषण करते है। प्रकाश ऊर्जा (energy) का एक रूप है। अत इस प्रकार क्लोरोप्लास्ट द्वारा प्रकाश के रूप मे पौधो को ऊर्जा प्राप्त होती है। यह शोषित ऊर्जा कार्बन डाइ-आक्साइड और पानी के बीच रासायनिक क्रिया कराती है जिसके फलस्वरूप कार्बोहाइड्रेट यौगिक बनते है। पौधो मे यह शक्ति होती है कि प्रकाश की दशा के अनुसार वे अपने क्लोरोप्लास्ट-कणो को इस प्रकार प्रबन्धित करते है कि प्रकाश का शोषण आवश्यक

मात्रा मे ही हो। प्रकाश की मात्रा के परिवर्तन के साथ क्लोरोप्लास्ट गति कर अपने को उपयुक्त स्थान मे पहुँचाते है। साधारण प्रकाश मे क्लोरोप्लास्ट कोशिकाओ की सामने की दीवार पर प्रबन्धित हो जाते है जिससे उनका अधिक भाग प्रकाश
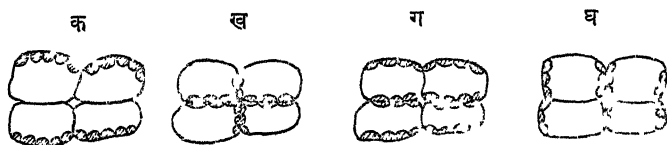
[क, ग—साधारण प्रकाश में, जब प्रकाश दोनों ओर से आ रहा है (क्लोरोप्लास्ट प्रकाश के आने की दिशा में दीवारों के किनारे प्रबन्धित है।)
ख—रात्रि में (क्लोरोप्लास्ट अन्दर की ओर दीवारों के किनारे प्रबन्धित है।)
घ—तेज प्रकाश में (क्लोरोप्लास्ट प्रकाश के सामने की दिशा से हटकर बगल की दीवारों के किनारे प्रबन्धित हैं।)]

चित्र १३—क्लोरोप्लास्ट कणो का प्रकाश की दशा के अनुसार कोशिकाओ में प्रबन्ध

के सामने रहता है और वे अधिक मात्रा मे प्रकाश का शोषण कर सकते है। तीव्र प्रकाश मे क्लोरोप्लास्ट पार्श्व की दीवारो के नीचे अपने को प्रबन्धित कर लेते है जिससे वे प्रकाश-किरणो की दिशा के समानान्तर रहते हैं। इस स्थिति मे प्रकाश का शोषण कम होता है। रात्रि के समय क्लोरोप्लास्ट या तो कोशिका के जीव-द्रव्य मे चारो ओर बिखरे रूप मे हो जाते है या कोशिका के भीतर की दीवार के किनारे अपने को प्रबन्धित कर लेते है।

प्रकाश-सश्लेषण

प्रकाश-सश्लेषण द्वारा स्टार्च का बनना सर्वप्रथम सन् १८६४ मे सैक' (Sachs) ने देखा था। उसने पत्तियो के क्लोरोप्लास्ट मे स्टार्च-कणो को प्रकाश-सश्लेपण के फलस्वरूप वृद्धि करते हुए देखा। किन्तु इस निरीक्षण से यह नही सिद्ध होता कि स्टार्च ही प्रकाश-सश्लेषण मे बनने वाला प्राथमिक यौगिक (primary product) है। पौधो मे जितने कार्बोहाइड्रेट पाये जाते है उनमे स्टार्च सब से सरलता से आयोडीन की अभिक्रिया द्वारा पहचाना जा सकता है। अत यह कह सकना कि प्रकाश-सश्लेपण की क्रिया मे प्रथम बनने वाला कार्बोहाइड्रेट स्टार्च है, ठीक नही है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि स्टार्च प्रकाश-सश्लेषण मे बनने वाले पदार्थों मे से एक पदार्थ है। कुछ ऐसे पौधे है जिनकी पत्तियो मे तीव्र गति से प्रकाश-सश्लेषण होते समय भी कभी स्टार्च नही रहता। इन सब तथ्यो और निरीक्षणो के आधार पर यह निश्चित

सा ही ज्ञात होता है कि स्टार्च प्रकाश-सश्लेषण मे बनने वाले पदार्थो में पहला पदार्थ नही है। अधिक लोगो का मत यह है कि प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मे पहले सरल शर्करा (सम्भवत ग्लूकोस) बनती है। जब यह शर्करा अधिक मात्रा मे एकत्रित हो जाती है और पौधो की कोशिकाओ के उपयोग के बाद बच रहती है तब यही सघनित हो कर फिर स्टार्च, सेल्यूलोस आदि अन्य कार्बोहाइड्रेट बनाती है। कार्बोहाइड्रेट का कुछ भाग खनिज लवणो से क्रिया कर प्रोटीन तथा वसा आदि भी बनाता है जो जन्तुओ की ही भॉति पौधो के लिए भी आवश्यक पदार्थ है।

प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया सक्षेप मे निम्न समीकरणो द्वारा दिखलायी जा सकती है —

$$6CO_2 + 6H_2O \xrightarrow[\text{तथा क्लोरोफिल}]{\text{सूर्य प्रकाश}} \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} + 6O_2$$

$$nC_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{सघनन}} \underset{\text{स्टार्च या सेल्यूलोस}}{(C_6H_{10}O_5)_n} + nH_2O$$
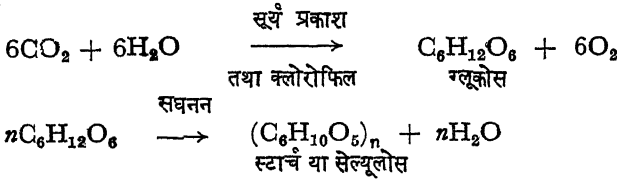
पहली क्रिया मे कार्बन डाइ-आक्साइड पानी के हाइड्रोजन से क्रिया कर ग्लूकोस मे परिणत हो जाती है और पानी का आक्सिजन मुक्त हो कर बाहर निकल जाता है। प्रयोगो से भी यह सिद्ध हुआ है कि कार्बन डाइ-आक्साइड के जितने आयतनो का प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मे उपयोग होता है आक्सिजन के उतने ही आयतन मुक्त होते है। अत. पहले समीकरण द्वारा प्रदर्शित रासायनिक क्रिया बहुत अश तक ठीक जान पडती है। यह सम्भव हो सकता है कि ग्लूकोस के अतिरिक्त अन्य सरल शर्कराएँ भी बनती हो। पहली क्रिया मे बने ग्लूकोस का पौधे मे परीक्षण करना सभव

चित्र १४—प्रकाश संश्लेषण मे पौधा आक्सिजन निकालता है

नही है, क्योकि यह बनते ही सघनित हो कर स्टार्च मे परिणत हो जाता है। स्टार्च

स्थायी पदार्थ है और शीघ्र ही दूसरे यौगिक मे परिणत नही होता। अत प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मे पौधो मे स्टार्च का बनना सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। प्रयोगो द्वारा यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया है कि प्रकाश-सश्लेषण मे स्टार्च बनता है। इसके देखने की विधि बहुत सरल है। किसी पौधे की एक हरी पत्ती को तोड कर पानी मे उबालने और फिर ऐलकोहल मे छोडने से पत्ती का हरा रग निकल जाता है और पत्ती सफेद हो जाती है। इस पत्ती पर एक बूँद पतले आयोडीन विलयन की डालने से यदि नीला रग उत्पन्न हो तो ज्ञात हो जाता है कि पत्ती मे स्टार्च है। प्रयोगो द्वारा यह भी सिद्ध हो गया है कि इस सश्लेषण के लिए क्लोरोफिल तथा सूर्य-प्रकाश का रहना आवश्यक है। अधेरे मे यह क्रिया नही होती और यदि पत्ती मे हरा रग नही रहता तो भी यह क्रिया नही होती। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, क्लोरोफिल का काम प्रकाश का शोषण कर रासायनिक क्रिया को उत्प्रेरित करना है।

प्रक्रम—प्रकाश-सश्लेषण का क्या प्रक्रम (mechanism) है और इसमे क्या रासायनिक अभिक्रियाएँ होती है, इस सम्बन्ध मे रसायनज्ञो ने समय समय पर विभिन्न मत प्रस्तुत किये। सन् १८४० मे जर्मनी के प्रसिद्ध कार्बनिक रसायनज्ञ लीबिग (Liebig) ने यह मत प्रकट किया कि कार्बन डाइ-आक्साइड से सर्वप्रथम कार्बनिक अम्ल बनते है और फिर ये अम्ल रासायनिक अभिक्रियाओ द्वारा शर्करा तथा स्टार्च आदि कार्बोहाइड्रेट मे परिणत हो जाते हे, किन्तु लीबिग के सहयोगी बायर (Baeyer) ने इस मत मे थोडा सशोधन किया। उसने सुझाव रखा कि पहले कार्बन डाइ-आक्साइड और पानी की परस्पर अभिक्रिया होती है और फार्मैल्डीहाइड बनता है। यह फार्मैल्डीहाइड फिर बहुलकीकरण (polymerisation) की क्रिया द्वारा सरल शर्करा (जैसे ग्लूकोस) मे परिणत हो जाता है। ये सरल शर्कराएँ फिर परस्पर सघनित हो कर अधिक सकीर्ण कार्बोहाइड्रेट, स्टार्च तथा सेल्यूलोस आदि उत्पन्न करती है। बायर के मत के अनुसार प्रकाश-सश्लेषण के प्रक्रम को निम्न समीकरणो द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :—

$$CO_2 + H_2O \xrightarrow[\text{तथा प्रकाश}]{\text{क्लोरोफिल}} \underset{\text{फार्मैल्डीहाइड}}{CH_2O} + O_2$$

$$6CH_2O \xrightarrow{\text{बहुलकीकरण}} \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6}$$

$$nC_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{संघनन}} \underset{\text{स्टार्च या सेल्यूलोस}}{(C_6H_{10}O_5)_n} + nH_2O$$
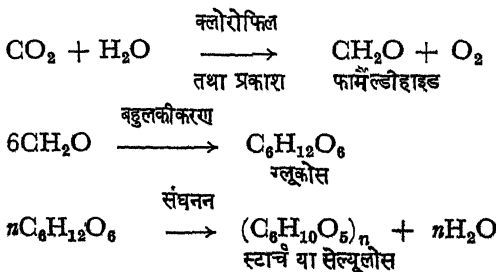
ऊपर के समीकरणो से स्पष्ट है कि प्रकाश-सश्लेषण मे कार्बन डाइ-आक्साइड की जितनी मात्रा उपयोग मे आयगी उसी के तुल्य अनुपात मे आक्सिजन निकलेगी। प्रयोगो द्वारा यद्यपि यह बात सत्य सिद्ध हुई है फिर भी वर्तमान समय मे यह विश्वास नही किया जाता कि फार्मैल्डीहाइड मुक्त अवस्था मे प्रकाश-सश्लेषण मे बनता है क्योकि यह पत्तियो के लिए एक तीव्र विष है। साथ ही यह भी असम्भव है कि स्टाच ऐसे सकीर्ण यौगिक का सश्लेषण एकदम सीधे कार्बन डाइ-आक्साइड और पानी की अभिक्रिया से हो जाय।

इधर रेडियोधर्मी तत्त्वो की खोज ने रासायनिक अभिक्रियाओ के प्रक्रमो के अध्ययन करने की एक उत्तम विधि रसायनज्ञो को प्रदान की है। रेडियोधर्मी तत्त्वो का जब इस कार्य मे उपयोग होता है तो इन्हे **अनुरेखित तत्त्व** (tracer elements) कहते है, क्योकि रेडियोधर्मी गुणो के कारण ये तत्त्व शीघ्र पहचान लिये जाते है और इस कारण यह जाना जा सकता है कि रेडियोधर्मी तत्त्व का किसी अभिक्रिया मे क्या मार्ग है। पिछले दस वर्षो मे प्रकाश-सश्लेषण का विस्तृत अध्ययन रेडियोधर्मी कार्बन[१४] (C^{14}) की सहायता से किया गया है। कैलविन और बेनसन (Calvin and Benson)[२–५] ने १९४९ और १९५१ के बीच मे प्रकाश-सश्लेषण सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये जिनमे रेडियोधर्मी कार्बन[१४] से बने कार्बन डाइ-आक्साइड ($C^{14}O_2$) का उपयोग किया। इन प्रयोगो के फलस्वरूप इन्होने यह ज्ञात किया है कि अनुरेखित कार्बन मुख्य रूप से आरम्भ मे ३-फास्फोग्लिसरिक अम्ल के रूप मे सयोजित होता है। इसके साथ ही ३-फास्फोग्लिसरिक ऐल्डीहाइड की उपस्थिति भी इन्होने सिद्ध की है। इन दोनो यौगिको के अतिरिक्त अन्य कोई यौगिक इन्हे प्रकाश-सश्लेषण की आरम्भिक क्रिया मे नही प्राप्त हुआ। कैलविन और बेनसन के इन प्रेक्षणो की पुष्टि अमेरिका के रसायनज्ञ गैफ्रान, ब्राउन, फेगर और रोजेनबर्ग (Gaffron, Brown, Fager and Rosenberg)[६, ७] ने शिकागो मे अपनी प्रयोगशाला मे किये गये अपने प्रयोगो द्वारा की है। अत अब यह निश्चित रूप से मान्य हो गया है कि ३-फास्फोग्लिसरिक अम्ल प्रथम यौगिक है जो प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मे कार्बन डाइ-आक्साइड द्वारा सश्लेषित होता है। इस यौगिक मे कार्बन डाइ-आक्साइड का कार्बन कार्बाक्सिल समूह के कार्बन के रूप मे बन्धित रहता है।

प्रकाश-सश्लेषण मे फास्फोग्लिसरिक अम्ल (PGA) के प्रथम यौगिक के रूप मे उत्पन्न होने से यह सिद्ध होता है कि कोई दो कार्बन का यौगिक अवश्य पौधे मे होगा जो कार्बन डाइ-आक्साइड-स्वीकारक (carbon dioxide acceptor) का काम करता होगा। यदि इस स्वीकरण मे कोई अवकरण क्रिया साथ नही होती तो स्वीकारक यौगिक फास्फोग्लाइकॉल (phosphoglycol) होना चाहिए—

$$H_2PO_3{\cdot}CHOH{\cdot}CH_2OH + CO_2 \rightarrow H_2PO_3\,(CHOH)_2\,COOH$$

फास्फोग्लाइकॉल ३-फास्फोग्लिसरिक अम्ल
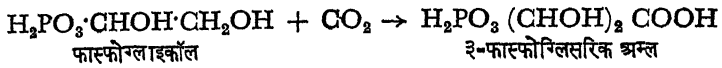
यदि कार्बाक्सिलीकरण के साथ साथ अवकरण भी होता होगा तो स्वीकारक फास्फोग्लाइकॉल ऐल्डीहाइड होगा। प्रयोगो से यह अभी निश्चित रूप से सिद्ध नही हो सका है कि कार्बन डाइ-आक्साइड-स्वीकारक कौन यौगिक है।

फास्फोग्लिसरिक अम्ल फिर ऐल्डोट्राइओस फास्फेट और कीटोट्राइओस फास्फेट मे परिवर्तित हो जाता है। ऐल्डोट्राइओस फास्फेट और कीटोट्राइओस फास्फेट के एक-एक अणु फिर परस्पर सघनित होकर हेक्सोस शर्करा उत्पन्न करते है:—
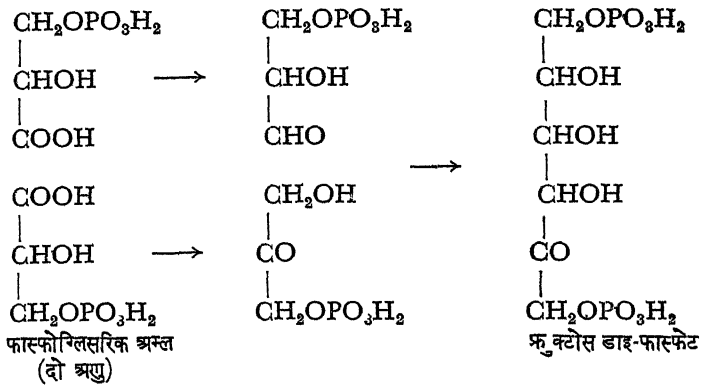
प्रयोगो मे यह देखा गया है कि जो हेक्सोस शर्करा बनती है उसमे तीसरा और चौथा कार्बन अनुरेखित कार्बन होता है। इससे ऊपर प्रदर्शित प्रक्रम की पुष्टि होती है।

हेक्सोस फास्फेट से फिर सघनन द्वारा सुक्रोस, स्टार्च आदि सकीर्ण कार्बोहाइड्रेट बनते है।

फास्फेट बन्ध का जीव-जगत् मे बडा महत्त्व है। इस बन्ध के बनने मे ऊर्जा का शोषण होता है। प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया मे सूर्य-प्रकाश से पौधो को जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह फास्फेट-बन्ध के रूप मे सगृहीत होती है। इस बन्ध के विशृखलित होने पर यही सगृहीत ऊर्जा फिर मुक्त होती है और इसी के द्वारा पौधो की विभिन्न जीवन-क्रियाएँ सम्पादित होती है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया का जीव-जगत् के लिए बहुत महत्त्व है। इस ससार मे हमे भोजन तथा ईंधन के रूप मे जो कुछ भी ऊर्जा प्राप्त होती है वह पौधो द्वारा प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया के फलस्वरूप सगृहीत

सूर्य-प्रकाश की ऊर्जा है। लकडी, कोयला, पेट्रोल आदि जितने भी पदार्थो से हमे ऊर्जा प्राप्त होती है वह सब ऊर्जा प्रकाश-सश्लेषण के फलस्वरूप परोक्ष या अपरोक्ष रीति से सगृहीत सूर्य-प्रकाश की ऊर्जा ही है। सूर्य-प्रकाश का केवल एक प्रतिशत भाग ही पौधो द्वारा शोषित किया जा कर रासायनिक ऊर्जा के रूप मे सगृहीत होता है, शेष ९९ प्रतिशत भाग विकिरित हो जाता है।

पोधों में स्टार्च तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट का सग्रह (Storage ct starch and other carbohydiates in plants)—पौधो को अपने श्वसन के लिए तथा ऊतको (tissues) को बनाने के लिए जिन आधारभूत पदार्थो की आवश्यकता होती है वे सब मुख्य रूप से पत्तियो मे बनते है और यहाँ मे विलेय रूप मे फोलेम ऊतको (pholem tissues) द्वारा पौधो के विभिन्न अगो मे पहुँचाये जाते है। इन पदार्थो का कुछ भाग तो वृद्धि कर रहे ऊतको द्वारा तुरन्त उपयोग मे आ जाता है और जो भाग उपयोग से बच जाता है वह अन्य अगो मे भेज दिया जाता है, जहाँ वह अविलेय रूप मे परिवर्तित किया जा कर सगृहीत होता है। स्टार्च ऐसे ही सगृहीत भोजन द्रव्यो मे से है और कार्बोहाइड्रेट के सगृहीत होने का मुख्य रूप है। पत्तियो मे जो स्टार्च बनता है वह केवल अस्थायी सग्रह है। स्थायी रूप से स्टार्च को सगृहीत करने का काम मुख्य रूप से ल्यूकोप्लास्ट करते हैं।

पत्तियो मे सश्लेषित हुआ कार्बोहाइड्रेट अन्य अगो मे विलेय शर्करा के रूप मे भेजा जाता है। इन विलेय शर्कराओ मे ग्लूकोस, फ्रुक्टोस और सुक्रोस हैं। श्वसन मे ग्लूकोस तथा अन्य हेक्सोस शर्कराओ का ही उपयोग होता है। यह विचित्र बात है कि ग्लूकोस पौधो मे अकेला कभी नही पाया जाता। यह जब भी पौधे के किसी अग मे मिलता है, इसके साथ वहाँ फ्रुक्टोस भी तुल्याक मात्रा मे रहता है। इससे यह प्रतीत होता है कि ग्लूकोस और फ्रुक्टोस दोनो का ही कार्बोहाइड्रेट के उपापचय (metabolism) मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ पौधो मे यह देखा गया है कि उनमे स्टार्च अस्थायी सग्रह मे नही रहता और सुक्रोस अस्थायी सग्रह के रूप मे बनता है। डेविस, डैश और सायर (Davis, Daish and Sawyer)' ने अपने प्रयोगो द्वारा यह प्रदर्शित किया है कि आलू की आरम्भिक वृद्धि की अवस्था मे जब कन्द (tubers) बनना आरम्भ करते हैं तब पत्तियो मे कोई स्टार्च नही बनता। इसके स्थान मे मुख्य कार्बोहाइड्रेट सुक्रोस रहता है। इसकी मात्रा प्रातःकाल से तीसरे पहर तक बढती है। इसके बाद स्टार्च बनता है और सन्ध्या तक इसकी अधिकतम मात्रा बन जाती है।

अन्य बहुत-से पौधो, जैसे चुकन्दर, गाजर आदि, मे स्थायी रूप से भी सगृहीत किया गया कार्बोहाइड्रेट सुक्रोस है, स्टार्च नही। कुछ वनस्पति-विज्ञानवेत्ताओ ने यह ज्ञात

किया है कि कपास के पौधे मे पत्तियो से अन्य अगो मे सुक्रोस के रूप मे कार्बोहाइड्रेट भेजा जाता है। इन तथ्यो से यह ज्ञात होता है कि पौधो के उपापचय मे ग्लूकोस, फ्रुक्टोस, सुक्रोस और स्टार्च सब का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

स्टार्च का सश्लेषण (Synthesis of starch)—स्टार्च पौधो मे किस प्रकार सश्लेषित होता है इसका कुछ वर्षों पूर्व तक कुछ भी पता नही था और यह अनुमान किया जाता था कि स्टार्च के जल-विश्लेषण मे जो अभिक्रियाएँ होती है उन्ही की ठीक उलटी अभिक्रियाओ द्वारा सश्लेषण होता होगा, किन्तु सश्लेषित करने वाले किसी एजाइम की खोज के प्रयत्न सफल नही हो सके थे। बाहर प्रयोगशाला मे स्टार्च का एजाइमो द्वारा माल्टोस मे और माल्टोस का ग्लूकोस मे जल-विश्लेषण ऐसी क्रियाएँ है जो केवल एक ही दिशा की ओर होती है और विपरीत ओर नही होती, अर्थात् ये अभिक्रियाएँ अनुत्क्रमणीय (irreversible) है। सन् १९३० मे निशीम्यूरा[९] (Nishimura) ने यीस्ट से एक एजाइम प्राप्त किया जिसका नाम **ऐमिलोसिनथियेस** (amylosynthease) रखा। उसने देखा कि यह एंज़ाइम ऐसे डेक्सट्रिन को, जो आयोडीन से कोई रग नही देता, एक ऐसे पदार्थ मे परिणत कर देता है जो आयोडीन के साथ नीला रग देता है। इससे अनुमान किया गया कि यह एजाइम डेक्सट्रिन को ऐमिलोस मे सश्लेषित करता है। सन् १९३२ मे टी० मिनागावा[१०] (T Minagawa) ने इस सम्बन्ध मे अपनी विस्तृत खोज की और यह सिद्ध किया कि ऐमिलोसिनथियेस α- और β-ऐमिलेस से भिन्न एजाइम है। उसने अपने प्रयोगो के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि ऐमि-लेस और ऐमिलोसिनथियेस दोनो पौधो मे सम्मिलित रूप से **ज़ाइमोजेन्स** (zymo-gens) के रूप मे रहते है। विभिन्न खनिज लवणो के जलीय विलयनो द्वारा जाइ-मोजेन्स को पृथक् किया जा सकता है। मिनागावा ने यह भी प्रदर्शित किया कि ऐमिलो-सिनथियेस पौधो मे व्यापक रूप से रहता है। उसने इसे आलू तथा अन्य कन्दो तथा चावल, मकई, गेहूँ आदि के बीजो से प्राप्त किया। इधर कुछ वर्षो पूर्व की गयी अपनी नवीन खोजो द्वारा कोबायाशी और मारुओ (Kobayashi and Maruo, १९५६) ने यह सिद्ध किया है कि ऐमिलोसिनथियेस सश्लेषण करनेवाला एजाइम नही है, वरन् शाखाओ के बन्धो को विच्छेदित कर इन्हे पृथक् करने वाला एजाइम है। अत इस कारण अब इसका नाम आइसोऐमिलेस (isoamylase) रखा गया है।

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, आरम्भ मे यह अनुमान किया गया था कि एंज़ाइम द्वारा स्टार्च के जल-विश्लेषण मे जो जो अभिक्रियाएँ होती है सम्भवत स्टार्च के सश्लेषण मे वे ही अभिक्रियाएँ उलटी दिशा मे होती होगी, किन्तु सश्लेषण के सम्बन्ध मे दूसरे प्रकार के तथ्यो के मालूम होने पर इस विचार को छोडना पडा। ये तथ्य

सर्वप्रथम जन्तु-शरीर मे ग्लाइकोजेन (glycogen, animal starch) के सश्लेषण सम्बन्धी सी० एफ० कोरी और उनके सहयोगियो (C F Cori & colleagues)[११] के कार्य के फलस्वरूप ज्ञात हुए। कोरी और उनके सहयोगियो ने निश्चित रूप से यह ज्ञात किया कि ग्लाइकोजेन के सश्लेषण तथा विघटन मे मुक्त ग्लूकोस या मुक्त माल्टोस शर्कराएँ भाग नही लेती, वरन् ग्लूकोस, १-फास्फोरिक एस्टर अणु भाग लेते है। इन्होने एक नया एज़ाइम जन्तुओ के पेशीय ऊतको से शुद्ध मणिभीय रूप मे प्राप्त किया। इसका नाम फास्फोरिलेस (phosphorylase) रखा। इन्होने देखा कि यह एज़ाइम ग्लूकोस १-फास्फोरिक एस्टर से ग्लाइकोजेन सश्लेषित करता है और ग्लाइकोजेन को ग्लूकोस १-फास्फोरिक एस्टर मे विच्छेदित भी करता है, अर्थात् इस एज़ाइम की अभिक्रिया उत्क्रमणीय होती है।[१२]

सन् १९४० मे हैज[१३] (Hanes) ने ऊँचे पौधो मे भी फास्फोरिलेस एजाइम का रहना प्रदर्शित किया। उसने आलू के रस से इस एजाइम को प्राप्त किया और इसे पी-एज़ाइम (P-एज़ाइम) नाम दिया। हैज ने देखा कि इस एजाइम मे ग्लूकोस १-फास्फेट को स्टार्च मे परिणत करने का गुण है और यह अभिक्रिया उत्क्रमणीय है, अर्थात् फास्फेट की उपस्थिति मे यह एजाइम स्टार्च का विघटन भी ग्लूकोस १-फास्फेट मे कर देता है :—

$$\text{ग्लूकोस १-फास्फेट} \underset{}{\overset{\text{फास्फोरिलेस}}{\rightleftarrows}} \text{स्टार्च} + \text{खनिज फास्फेट}$$
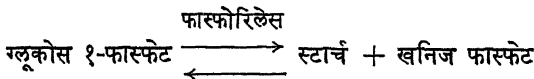
उसने यह भी देखा कि इस प्रकार इस एजाइम द्वारा सश्लेषित स्टार्च प्राकृतिक ऐमिलोस से बहुत-से गुणो मे समानता प्रदर्शित करता है। उदाहरणार्थ, यह आयोडीन के साथ गहरा नीला रग उत्पन्न करता है, इसके जलीय विलयन मे पश्चगमन का गुण होता है और डायस्टेस की क्रिया द्वारा यह पूर्ण रूप से माल्टोस मे परिणत हो जाता है। केवल इस सश्लेषित ऐमिलोस मे और प्राकृतिक स्टार्च के ऐमिलोस मे इतना ही अन्तर है कि सश्लेषित ऐमिलोस की शृखला की लम्बाई प्राकृतिक ऐमिलोस से कम होती है (लगभग ८०-९० ग्लूकोस अणु)।

प्राकृतिक स्टार्च मे ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन दोनो ही अवयव रहते है और साधारणत ऐमिलोपेक्टिन की प्रतिशत मात्रा ७० से अधिक होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पौधो की कोशिकाओ के भीतर जो सश्लेषण क्रियाएँ होती है उनमे पूर्ण स्टार्च बनता है, अर्थात् ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन दोनो ही साथ बनते है, किन्तु फास्फोरिलेस एज़ाइम जब बाहर ग्लूकोस १-फास्फेट पर क्रिया करता है तो पूर्ण स्टार्च नही बनता, केवल ऐमिलोस बनता है। इससे जीव-रसायनज्ञो (biochemists)

ने यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकाला कि जिस एजाइम समूह द्वारा ग्लूकोस १-फास्फेट से पूर्ण स्टार्च जीवित पौधो के भीतर सश्लेषित होता है उसका फास्फोरिलेस एजाइम केवल एक अवयव मात्र है। जीवित पौधो मे इस एजाइम के साथ कोई दूसरा एजाइम भी अवश्य होगा जो सीधी शृखलाओ को परस्पर पार्श्व मे सयुक्त कर बहुशाखायुक्त ऐमिलोपेक्टिन बनाता है।

जैसा हम स्टार्च के आकार मे देख चुके है, ऐमिलोपेक्टिन मे प्रत्येक शृखला मे ग्लूकोस इकाइयाँ परस्पर α-१ ४-ग्लूकोसाइड बन्धो द्वारा सम्बन्धित रहती है और प्रत्येक शृखला दूसरी शृखला से α-१ ६-ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा जुडी रहती है। इस प्रकार १ - ६ बन्धो द्वारा शृखलाओ के परस्पर जुडने के कारण ही ऐमिलोपेक्टिन अणु बहुशाखायुक्त हो जाता है। ऐमिलोस मे ग्लूकोस इकाइयाँ केवल α-१ ४ बन्धो द्वारा ही सम्बन्धित रहती है, अत यह एक सीधी शृखला का अणु होता है। फास्फोरिलेस एन्जाइम की क्रिया से यह स्पष्ट है कि इसमे केवल α-१ ४ बन्धो द्वारा ग्लूकोस इकाइयो को सयोजित करने का गुण है और α-१ ६ बन्धो द्वारा शृखलाओ को जोडने का गुण नही है। इस कारण यह केवल ऐमिलोस ही सश्लेषित करता है।

α-१ ६ बन्ध स्थापित करनेवाला एक दूसरा एजाइम सन् १९४४ मे आलू के रस से ही प्राप्त किया गया, जिसे Q-एजाइम नाम दिया गया।[१४] पीट [१५](Peat) सन् १९४५ मे Q-एन्जाइम और P-एजाइम की सम्मिलित क्रिया द्वारा ग्लूकोस १-फास्फेट से ऐमिलोपेक्टिन सश्लेषित करने मे सफल हुए। यह ऐमिलोपेक्टिन बहुत से गुणो मे प्राकृतिक ऐमिलोपेक्टिन के समान था।

अब यह निश्चित रूप से ज्ञात हो गया है कि P-एन्जाइम मे ग्लूकोस १-फास्फेट के अणुओ को परस्पर α- C_1-C_4 ग्लूकोसाइड बन्ध द्वारा सघनित करने का गुण होता है और इस कारण जब यह एन्जाइम अकेला ग्लूकोस १-फास्फेट पर क्रिया करता है तो सब ग्लूकोस इकाइयाँ C_1-C_4 बन्ध द्वारा सघनित हो जाती है और एक लम्बी ऐमिलोस शृखला उत्पन्न होती है। Q-एजाइम मे α-C_1-C_6 बन्ध द्वारा ग्लूकोस १-फास्फेट अणुओ को सघनित करने का गुण होता है। अत जब P- और Q- दोनो एजाइमो का मिश्रण ग्लूकोस १-फास्फेट पर क्रिया करता है तो पहले P-एन्जाइम के प्रभाव से C_1-C_4 बन्ध द्वारा ग्लूकोस इकाइयाँ सघनित होती है और जब २० या २४ ग्लूकोस इकाइयाँ इस प्रकार सयोजित हो चुकती है तो P-एजाइम का कार्य रुक जाता है। अब Q-एन्जाइम क्रिया करना आरम्भ करता है और २०-२४ ग्लूकोस इकाइयो की शृखलाओ को परस्पर C_1-C_6 बन्ध द्वारा सयोजित करता है जिसके फलस्वरूप ऐमिलोपेक्टिन का एक बडा शाखायुक्त अणु बन जाता है। यदि P-एन्जाइम अकेला ही रहता

है तो C_1-C_4 बन्ध द्वारा ग्लूकोस इकाइयो को एक दूसरे से सघनित करने की इसकी क्रिया २०-२४ ग्लूकोस इकाइयो के सघनित हो जाने के बाद रुकती नही, किन्तु बराबर होती रहती है और फलस्वरूप बहुत-सी ग्लूकोस इकाइयाँ एक लम्बी शृखला के रूप मे C_1-C_4 बन्ध द्वारा सघनित हो जाती है और ऐमिलोस प्राप्त होता है। किन्तु Q-एजाइम जब अकेला रहता है तो ग्लूकोस १-फास्फेट पर कोई क्रिया नही करता। यह केवल २०-२४ ग्लूकोस इकाइयो की शृखलाओ के बन जाने के बाद ही उन्हे परस्पर C_1-C_6 बन्ध द्वारा सयोजित करने की शक्ति रखता है।

प्रयोगो से यह भी ज्ञात हुआ है कि जब Q-एजाइम ऐमिलोस पर क्रिया करता है तो भी ऐमिलोपेक्टिन बनता है। ऐमिलोपेक्टिन मे प्रत्येक शृखला की लम्बाई २०-२४ ग्लूकोस इकाइयाँ होती है। अत इससे यह सिद्ध होता है कि Q-एजाइम ऐमिलोस की लम्बी शृखला को पहले विघटित कर २०-२४ ग्लूकोस इकाइयो की सरल शृखलाएँ उत्पन्न करता है और फिर इन सरल शृखलाओ को परस्पर α-१. ६ बन्ध द्वारा सयोजित करता है। २०-२४ ग्लूकोस इकाइयो के सरल शृखला पदार्थ को सूडो-

चित्र १५—स्टार्च के संश्लेषण का मानचित्र
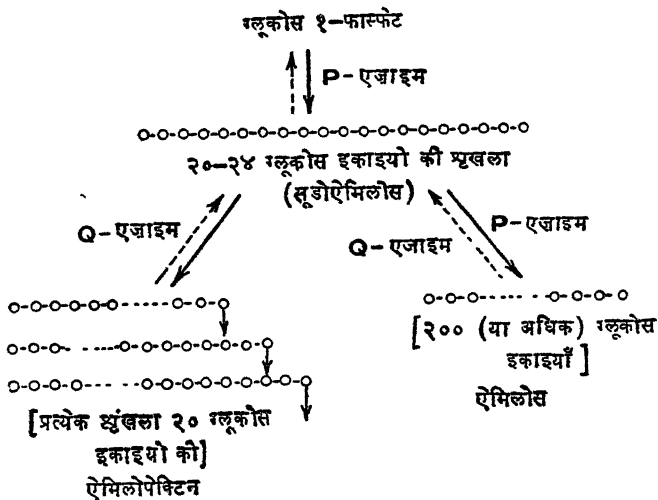
ऐमिलोस (Pseudoamylose) नाम दिया गया है। इस प्रकार Q-एजाइम सश्लेषण तथा विघटन दोनो ही कार्य करता है।

नवीन प्रयोगो द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि शुद्ध फास्फोरिलेस एजाइम Q-एंज़ाइम

की अनुपस्थिति मे ऐमिलोपेक्टिन को ग्लूकोस १-फास्फेट मे जल-विश्लेषित कर देता है, यद्यपि यह जल-विश्लेषण पूर्ण नही होता (E J. Bourne, D A Sitch and S Peat, १९४९)। इस प्रकार हम देखते है कि पौधो के भीतर स्टार्च का जल-विश्लेषण दो प्रकार की एजाइम प्रणाली द्वारा होता है और दोनो मे परस्पर भिन्नता है। एक जल-विश्लेषण मे ग्लूकोस १-फास्फेट बनता है और यह अभिक्रिया उत्क्रमणीय है, अर्थात् ग्लूकोस १-फास्फेट से पुन सश्लेषित हो कर स्टार्च बनता है। दूसरे जल-विश्लेषण मे (ऐमिलेस एज़ाइम द्वारा) मुक्त शर्करा बनती है और यह अभिक्रिया उत्क्रमणीय नही होती।

ऐमिलोस और ऐमिलोपेक्टिन का सश्लेषण पिछले पृष्ठ पर दिये गये मानचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

स्टार्च के संश्लेषण में पालीसैकराइड सक्रियकारक (Polysaccharide activators in starch synthesis)—यह देखा गया है कि यदि पूर्ण शुद्ध फास्फोरिलेस एजाइम एकदम शुद्ध ग्लूकोस १-फास्फेट मे डाला जाता है तो सश्लेषण क्रिया नही आरम्भ होती। ग्लूकोस १-फास्फेट मे थोडी मात्रा मे ऐमिलोस, ऐमिलोपेक्टिन, डेक्सट्रिन या ग्लाइकोजेन का रहना सश्लेषण क्रिया को आरम्भ करने के लिए आवश्यक है। ये पालीसैकराइड इस सश्लेषण मे सक्रियकारक का कार्य करते हैं।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस सश्लेषण मे पहले से उपस्थित किसी पाली-सैकराइड शृखला की लम्बाई ग्लूकोस १-फास्फेट द्वारा अधिक होती जाती है। ग्लूकोस १-फास्फेट उपस्थित पालीसैकराइड शृखला के उस सिरे से क्रिया करता है जो अवकारकहीन (non-reducing) है और इस प्रकार शृखला लम्बी होती जाती है —

ग्लूकोस १-फास्फेट + सक्रियकारक शृखला
⟶ पालीसैकराइड शृखला + खनिज फास्फेट

यदि ऊपर का विचार ठीक है तो यह स्पष्ट है कि सक्रियकारक का पूरा अणु सश्ले-षण-क्रिया मे भाग नही लेता, केवल इसका अवकारकहीन सिरा ही भाग लेता है। अत जिस पालीसैकराइड अणु मे जितनी अधिक सख्या मे ऐसे खुले सिरे रहेगे उतना ही अधिक वह सश्लेषण की गति को तीव्र करेगा। प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि समान भार लेने पर ऐमिलोपेक्टिन की सक्रियकारकता ऐमिलोस की अपेक्षा अधिक होती है, क्योकि ऐमिलोपेक्टिन मे अवकारकहीन सिरो की सख्या ऐमिलोस से बहुत अधिक होती है। अत यह सिद्ध हो जाता है कि पालीसैकराइड की सक्रियकारकता उसके अवकारक-हीन सिरो की सख्या पर मुख्य रूप से निर्भर करती है।

ऐमिलोस को जल-विश्लेषित करने पर इसके एक अणु से कई सरल अणु बन जाते है, और फलस्वरूप इसके खुले अवकारकहीन सिरो की सख्या बढ जाती है। अत. यदि सक्रियकारक के रूप मे उपयोग होते समय ऐमिलोस को आशिक रूप मे जल-विश्लेषित कर दिया जाय तो इसकी सक्रियकारकता मे वृद्धि हो जायगी। प्रयोगो से यह सिद्ध हुआ है कि ऐमिलोस की सक्रियकारकता इसके जल-विश्लेषित होने के अनुपात मे एक सीमा तक बढती है और फिर उसके बाद ऐमिलोस को अधिक जल-विश्लेषित करने पर सक्रियकारकता घटती जाती है और जब यह पूर्ण रूप से ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित हो जाता है तो इसकी सक्रियकारकता समाप्त हो जाती है। कोरी (Cori) ने ज्ञात किया है कि ऐमिलोस की सक्रियकारकता उस समय अधिकतम होती है जब इसका लगभग ३० प्रतिशत जल विश्लेषित हो चुकता है। इस अवस्था मे ऐमिलोस के जल-विश्लेषण से जो सरल अणु बनते है उनमे प्रत्येक मे लगभग ५-६ ग्लूकोस इकाइयाँ होती है।

नवीन खोजो से यह ज्ञात हुआ है कि कम से कम ३ ग्लूकोस इकाइयो का कार्बोहाइड्रेट फास्फोरिलेस की सश्लेषण क्रिया मे सक्रियकारक के रूप मे आवश्यक है। माल्टोट्राइओस शुद्ध रूप मे प्राप्त किया गया है और यह देखा गया है कि इसकी उपस्थिति मे फास्फोरिलेस एजाइम ग्लूकोस १-फास्फेट को ऐमिलोस मे सश्लेषित कर देता है।

पौधों मे स्टार्च और सुक्रोस का पारस्परिक सम्बन्ध (Inter-relationship of starch and sucrose in plants)—जैसा पहले बतलाया जा चुका है, सुक्रोस पौधे मे दो कार्य करता है। बहुत से पौधो मे, विशेष कर उनमे जो स्टार्च नही बनाते, यह सगृहीत कार्बोहाइड्रेट के रूप मे रहता है। इसके साथ ही पौधो के एक अग से दूसरे अग मे कार्बोहाइड्रेट पदार्थ सुक्रोस के रूप मे ही पहुँचाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि सगृहीत स्टार्च का परिवर्तन सुक्रोस मे होता है।

स्टार्च और सुक्रोस दोनो मे ही ग्लूकोस अवयव रहता है। सुक्रोस मे ग्लूकोस के साथ-साथ फ्रुक्टोस भी सयोजित अवस्था मे रहता है। अत ऐसा अनुमान होता है कि स्टार्च के सुक्रोस मे परिवर्तन होने की क्रिया का कोई सम्बन्ध स्टार्च के जल-विश्लेषण की क्रिया से अवश्य होगा। जैसा हम ऊपर पढ चुके है, स्टार्च के सश्लेषण मे ग्लूकोस १-फास्फेट का महत्त्वपूर्ण भाग है, अत ऐसा सम्भव हो सकता है कि ग्लूकोस १-फास्फेट ही स्टार्च-सुक्रोस के एक दूसरे के परिवर्तन मे भी मध्य के पदो मे भाग लेता हो। यदि ऐसा वास्तव मे है तो कोई ऐसा एजाइम भी पौधो मे अवश्य होगा जो ग्लूकोस १-फास्फेट से सुक्रोस सश्लेषित करता हो। सन् १९४४ मे एक ऐसा एजाइम प्राप्त हुआ है जो ग्लूकोस १-फास्फेट और सुक्रोस के मिश्रण पर क्रिया कर इसे सुक्रोस मे सश्लेषित कर देता है[१६,१७]। यह एजाइम एक जीवाणु से प्राप्त किया गया है और अभी तक ऊँचे

पौधो मे इसकी उपस्थिति नही देखी जा सकी है। जब तक यह एजाइम ऊँचे पौधो मे नही देखा जाता तब तक ऊपर के विचार की पुष्टि नही समझी जा सकती और यह विचार केवल एक परिकल्पना मात्र ही कहा जायगा।

दूसरा महत्त्व का प्रश्न सुक्रोस बनने के सम्बन्ध मे यह भी है कि फ्रुक्टोस की उत्पत्ति कहाँ से होती है। पौधो मे फ्रुक्टोस मुक्त अवस्था मे तथा सुक्रोस के रूप मे सयोजित अवस्था मे पाया जाता है। कुछ पौधो मे ऐसे पालीसैकराइड पाये जाते है जो केवल फ्रुक्टोस इकाइयो से मिल कर बने है। इन पालीसैकराइडो को फ्रुक्टोसान (fiucto-sans) कहते है। इसी प्रकार का एक पालीसैकराइड इनुलिन (ınulin) है जो डेहलिया के कन्दो (tubers of Danlıa) तथा कुछ अन्य कन्दो मे पाया जाता है। इनुलिन मे फ्रुक्टोफ्यूरानोस इकाइयाँ परस्पर β-१ २-ग्लूकोसाइड बन्धो द्वारा सम्बन्धित रहती है। कुछ पौधो मे, जैसे स्नोड्राप पौधे के बल्ब (Snowdrop bulbs) मे, इनुलिन और स्टार्च दोनो ही अगल-बगल पाये जाते है। यह भी एक महत्त्व की बात है कि फ्रुक्टोस यद्यपि मुक्त अवस्था मे पाइरानोस वृत्त (pyranose rıng, २ ६-आक्साइड वृत्त) के रूप मे रहता है पर सयोजित अवस्था मे सदा फ्यूरानोस वृत्त (furanose ııng, २ ५-आक्साइड वृत्त) के रूप मे पाया जाता है।

वनस्पति-विज्ञानवेत्ताओ ने अपनी खोजो से ज्ञात किया है कि पौधो मे स्टार्च, सुक्रोस और फ्रुक्टोसान का बनना एक दूसरे पर निर्भर करता है। कोलिन और बेल्वाल[१८] ने गेहूँ मे कार्बोहाइड्रेट की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विस्तृत खोज की और यह ज्ञात किया कि तने मे एक फ्रुक्टोसान उस समय उत्पन्न होता है जिस समय गेहूँ मे बाल निकलना शुरू होती है और बीजो मे स्टार्च का सगृहीत होना आरम्भ होता है। इन्होने यह भी देखा कि पत्तियो मे किसी भी समय स्टार्च या फ्रुक्टोसान नही रहता, केवल सुक्रोस अथवा इसके जल-विश्लेषीय पदार्थ, ग्लूकोस और फ्रुक्टोस, रहते है। इससे ऐसा जान पडता है कि पत्तियो से कार्बोहाइड्रेट पदार्थ सुक्रोस के रूप मे अन्य अगो की ओर तने के मार्ग से भेजे जाते है और सुक्रोस का फ्रुक्टोस भाग तने मे फ्रुक्टोसान के रूप मे परिणत हो जाता है और ग्लूकोस भाग स्टार्च मे परिणत हो कर बीजो मे एकत्रित होता है। अन्य कुछ वनस्पति-विज्ञानशास्त्रज्ञो ने भी अपनी खोजो द्वारा ऊपर के तथ्यो की पुष्टि की है।

सेब (apples) मे यह देखा गया है कि उसकी वृद्धि की अन्तिम अवस्था मे ग्लूकोस की पर्याप्त मात्रा फ्रुक्टोस मे परिणत हो जाती है और फिर दोनो परस्पर सघनित हो कर सुक्रोस बनाते हैं। स्टार्च का सुक्रोस मे परिवर्तन भी सम्भवत इसी भाँति होता होगा। इन सब तथ्यो के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि ग्लूकोस और

फ्रुक्टोस का लगभग समान प्रकार का ही कार्य पौधो मे होता है और दोनो एक-दूसरे मे आवश्यकतानुसार परिणत हो जाते है।

यीस्ट से एक एंजाइम कुछ वर्ष पूर्व लोहमैन[१९] (Lohmann) ने प्राप्त किया है जिसका नाम आइसोमेरेस (isomerase) रखा गया है। यह एंजाइम ग्लूको-पाइरानोस ६-फास्फेट को फ्रुक्टोफ्यूरानोस-६-फास्फेट मे परिवर्तित कर देता है और यह परिवर्तन एक उत्क्रमणीय अभिक्रिया है —

आइसोमेरेस
ग्लूकोपाइरानोस-६-फास्फेट ⇌ फ्रुक्टोफ्यूरानोस-६-फास्फेट
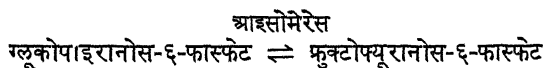
इसके अतिरिक्त एक और एंजाइम भी यीस्ट तथा पेशीय ऊतको से प्राप्त हुआ है, जिसका नाम हेक्सोकाइनेस[२०] (hexokinase) रखा गया है। यह एंजाइम ग्लूकोस तथा फ्रुक्टोस दोनो पर क्रिया करता है और किसी एक से आरम्भ कर इस एंजाइम द्वारा ग्लूकोस और फ्रुक्टोस दोनो का मिश्रण प्राप्त हो जाता है और जब साम्यावस्था पहुँच जाती है तो ग्लूकोपाइरानोस-६-फास्फेट और फ्रुक्टोफ्यूरानोस-६-फास्फेट का मिश्रण मे अनुपात २ १ रहता है।

एक अन्य एंजाइम मटर के बीजो तथा पेशीय ऊतको से प्राप्त हुआ है जो ग्लूकोस-६-फास्फेट और ग्लूकोस-१-फास्फेट के पारस्परिक परिवर्तन को उत्प्रेरित करता है। इस एंजाइम का नाम फास्फोग्लूकोम्यूटेस[२१] (phosphoglucomutase) रखा गया है। इन सब एंजाइमो की क्रिया का ज्ञान होने से अब स्टार्च के संश्लेषण की पूरी विधि स्पष्ट हो गयी है। इस संश्लेषण के विभिन्न पदो को क्रमानुसार निम्न मानचित्र मे प्रदर्शित किया गया है —

ग्लूकोस (+ऐडीनोसिन ट्राइफास्फेट)
↓ हेक्सोकाइनेस
आइसोमेरेस
ग्लूकोस-६-फास्फेट ⇌ फ्रुक्टोफ्यूरानोस-६-फास्फेट
↑↓ फास्फोग्लूकोम्यूटेस
ग्लूकोस १-फास्फेट
↑↓ फास्फोरिलेस
स्टार्च (या ग्लाइकोजेन)
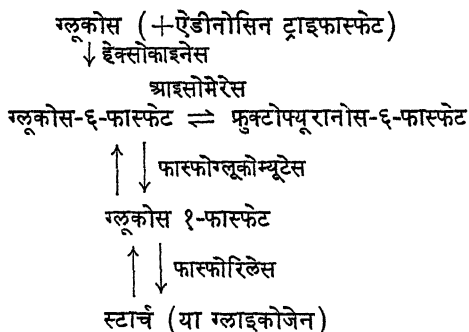
ऊपर के संश्लेषण के लिए ग्लूकोस अथवा ग्लूकोस फास्फेट कोई भी लिया जा सकता है। जन्तु-शरीर मे फास्फोपाइरुविक अम्ल (phosphopyruvic acid) से

ग्लूकोस-६-फास्फेट पेशियो मे बनता है और उसका सीधे ग्लाइकोजेन के सश्लेषण मे उपयोग हो जाता है।

यद्यपि अब भी कार्बोहाइड्रेट के सश्लेषण के सम्बन्ध की कुछ बाते स्पष्ट नही हो पायी हैं, फिर भी इस सश्लेषण की जीव-जगत् मे होने वाली विधियाँ मोटे तौर से हमे ज्ञात हो गयी हैं। ज्ञात तथ्यो के आधार पर यह स्पष्ट है कि उपापचय-क्रियाओ मे सुक्रोस केन्द्रीय पदार्थ है। जब सुक्रोस आवश्यकता से अधिक मात्रा मे बनता है तो यह पौधो के विभिन्न अगो मे या तो अपने मौलिक रूप मे (जैसे चुकन्दर तथा ईख मे), या स्टार्च मे परिवर्तित हो कर (जैसे आलू के कन्द तथा अनाज के दानो मे), या फ्रुक्टोसान के रूप मे परिवर्तित हो कर (जैसे डेहलिया के कन्द में) सगृहीत हो जाता है। स्टार्च और फ्रुक्टोसान बडे अणु हैं, अत ये कोशिकाओ मे से उनकी भित्तियो से विसरण कर बाहर नही जा सकते, किन्तु सुक्रोस विसरित हो कर कोशिकाओ से बाहर जा सकता है। अत कार्बोहाइड्रेट का पौधो मे एक स्थान से दूसरे स्थान मे पहुँचना सुक्रोस के रूप मे ही सम्भव होता है।

निर्देश

1 J Sachs, Botan Z., 1864, 22, 289

2 Calvin, M , and Benson, A A , Science, 109, 140, 1948.

3 Benson, A A , and Calvin, M , J Exptl Botany, 1, 63, 1950

4 Calvin, M , Bassham, J A , Benson, A A , and others, Symposia Soc Exptl, Biol , 5, 284, 1951

5 Calvin, M , Harvey Lectures, Ser 46, pp. 218-251, 1952

6 Gaffron, H , and Fager, E W , Ann Rev Plant Physiol , 2, 87, 1951.

7 Fager, E W , and Rosenberg, J L , Arch Biochem. and Biophys , 37, 1, 1952.

8 Davis, W. A , Daish, A J., and Sawyer, G C , J. Agric Sci , 1916, 7, 255, 352

9 S Nishimura, J Agr Chem Soc. Japan, 1930, 6, 160, 485, 987, 1931, 7, 29, 388, 1933, 9, 436

10 T Minagawa, J Agr. Chem Soc Japan, 1932, 8, 176, 508, 510, 811, 914, 1068, 1310, 1933, 9, 272, 342, 425, 428,

547, 549, 688, 740, 907, 916, 919, 1198, 1202, 1934, 10, 379, 382, 388, 550, 1935, 11, 370, 374, 480, 483

11. G. T Corı and C F Corı, Proc Soc. Exp Bıol. Med., 1937, 36, 119

12 A A Green, G T Corı and C F Cori, J Bıol Chem, 1942, 142, 447

13 C. S. Hanes, Proc Roy Soc, 1940, B, 128, 421; B, 124, 174.

14 W N Haworth, S Peat and E J Bourne, Nature, 1944, 154, 236

15 E J Bourne and S Peat, J Chem Soc, 1945, 877

16 M Doudoroff, N. Kaplan and W Z Hassıd, J Bıol. Chem, 1943, 148, 67

17 W Z Hassıd, M Doudoroff and H A Barker, J Amer. Chem Soc, 1944, 66, 1416.

18. H Colın and H Belval, Compt rend, 1922, 175, 1441, 1923, 177, 343.

19 K Lohmann, Bıochem Z, 1933, 262, 137.

20 S P Colowıck and H M Kalckar, J Bıol Chem, 1943, 148, 117

21 S P. Colowıck and E. W. Sutherland, J Bıol. Chem, 1942, 144, 423

अध्याय १२

स्टार्च से विविध रासायनिक यौगिकों का बनाना

वनस्पति-जगत् की मनुष्य को सब से बडी देन कार्बोहाइड्रेट पदार्थ है। ये हमे भोजन प्रदान करते है, पहनने के लिए वस्त्र देते है तथा हमारे विभिन्न कामो के लिए लकडी देते है। इनके अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट पदार्थो के किण्वन से हमे अनेक रासायनिक यौगिक प्राप्त होते हैं जिनका विभिन्न उद्योगो मे तथा हमारे जीवन मे बडा महत्व है। इन पदार्थो मे मुख्य निम्न है —एथिल ऐलकोहल, नार्मल ब्यूटिल ऐलकोहल, ऐसीटोन, ग्लिसरोल, २ ३-ब्यूटिल ग्लाइकॉल तथा ऐसीटिक, ब्यूट्रिक, लैक्टिक, साइट्रिक और ग्लूकॅनिक अम्ल। पेनीसिलिन तथा कुछ अन्य औषधियाँ भी आजकल किण्वन उद्योग मे प्राप्त की जाती है। किण्वन उद्योग से प्राप्त होने वाले रासायनिक यौगिको मे सबसे महत्व का पदार्थ ऐलकोहल है। ऐलकोहल पेय के रूप मे बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता रहा है, और किण्वन उद्योग एक बहुत प्राचीन उद्योग है।

एथिल ऐलकोहल (Ethyl Alcohol)

कुछ वर्षो पहले तक ऐलकोहल मुख्य रूप से शीरे से ही प्राप्त किया जाता था, क्योकि यही सबसे सस्ता स्रोत है। किन्तु पिछले महायुद्ध के बाद से ऐलकोहल की माँग विभिन्न उद्योगो के लिए इतनी अधिक बढ गयी है कि केवल शीरे से बना कर इस माँग को पूरा नही किया जा सकता। अत सन् १९४१ के बाद से स्टार्च का भी बडी मात्रा मे उपयोग ऐलकोहल प्राप्त करने के लिए होने लगा है।

एथिल ऐलकोहल का बनाना—शर्करा वाले तथा स्टार्च वाले सब पदार्थ ऐलकोहल बनाने के लिए काम मे लाये जा सकते है। इनमे जो पदार्थ सस्ते होते है उन्ही से ऐल-कोहल व्यापार में बनाया जाता है। शर्करायुक्त पदार्थो मे मुख्य रूप से शीरे का उपयोग होता है। स्टार्चयुक्त पदार्थो मे विभिन्न अनाज—जौ, राई, मकई, जई, गेहूँ, चावल—तथा आलू का उपयोग ऐलकोहल प्राप्त करने के लिए होता है। जिस स्थान मे जो वस्तु अधिक सस्ती तथा बहुतायत से मिलती है वहाँ उसी से ऐलकोहल बनाया जाता है।

स्टार्च से ऐलकोहल बनाने मे तीन पदो मे पूरी क्रिया करायी जाती है —

(१) पहले पद मे स्टार्च को शर्करा मे परिणत किया जाता है। इस क्रिया को **शर्करीकरण** (saccharification) कहते है।

(२) दूसरे पद मे शर्करा का किण्वन ऐलकोहल मे किया जाता है। इसे **ऐलकोहली किण्वन** (alcoholic fermentation) कहते है।

(३) तीसरे पद मे किण्वित द्रव मे से ऐलकोहल पृथक् किया जाता है। इस प्रकार जो ऐलकोहल प्राप्त होता है वह लगभग ९५ ५ प्रतिशत होता है और शेष प्रतिशत इसमे पानी का अश होता है। इस ऐलकोहल को **रेक्टीफाइड स्पिरिट** कहते है और इसी के अनुसार तीसरे पद की क्रिया को **रेक्टीफिकेशन** कहते है।

शर्करीकरण—स्टार्चयुक्त पदार्थ को सर्वप्रथम छोटे-छोटे टुकडो मे काट कर या पीस कर लोहे के बने शुण्डाकार बर्तनो मे भरा जाता है और फिर इसकी तोल के हिसाब से लगभग दुगुना पानी मिला कर भाप द्वारा ८०° से० ग्रे० पर गरम किया जाता है। लगभग दो घण्टे तक इस ताप पर गरम किये जाने पर स्टार्च लेई के रूप मे परिणत हो जाता है। स्टार्चयुक्त पदार्थ के इस रूप मे आ जाने पर इसे **मैश** (mash) कहते हैं। मैश को अब एक अन्य बर्तन मे पहुँचाया जाता है जिसमे विलोडक लगे रहते है। यहाँ इसका ताप ५०°-५५° से० ग्रे० रख कर इसमे ४ प्रतिशत माल्ट (या माल्ट-निष्कर्ष) मैश की तोल के अनुपात से मिलाया जाता है और किण्वन के लिए रख दिया जाता है। इस किण्वन मे माल्ट मे उपस्थित डायस्टेस एज़ाइम स्टार्च को जल-विश्लेषित कर माल्टोस शर्करा मे परिणत कर देता है —

$$\underset{\text{स्टार्च}}{2(C_6H_{10}O_5)n} + nH_2O \xrightarrow{\text{डायस्टेस}} \underset{\text{माल्टोस}}{nC_{12}H_{22}O_{11}}$$
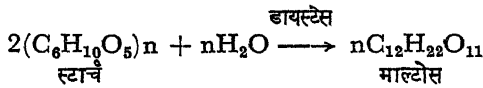
डायस्टेस की ऊपर की किण्वन-क्रिया के समाप्त होने मे एक से तीन घण्टे तक का समय लगता है। बीच-बीच मे किण्वित द्रव का आयोडीन विलयन द्वारा परीक्षण किया जाता है। जब आयोडीन के साथ किण्वित द्रव कोई नीला रग नही उत्पन्न करता तब ज्ञात हो जाता है कि किण्वन समाप्त हो गया है। किण्वन आरम्भ करने के पूर्व मैश मे थोडा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल या ऐमोनियम क्लोराइड डाल दिया जाता है जिससे कोई जीवाणु वहाँ नही रहने पाते और कोई अन्य उपअभिक्रिया (side reaction) नही होने पाती। डायस्टेस किण्वन के फलस्वरूप अब जो द्रव प्राप्त होता है उसे **वोर्ट** (wort) कहते हैं।

[**माल्ट तैयार करना** (Preparation of the malt)—अकुरित जौ को माल्ट कहते हैं। जौ के दानो को पानी मे दो दिनो तक भिगो दिया जाता है। दाने

पानी सोख कर फूल जाते है और मुलायम हो जाते है। प्राय पानी मे थोडा कैल्सियम बाइ-सल्फेट भी मिला दिया जाता है। इसका उद्देश्य जौ मे उपस्थित हानिकारक जीवाणुओ तथा अन्य अणुजीवो (micro-organisms) को नष्ट करना है। फूल जाने के बाद जौ के दानो को पानी मे से निकाल कर एक कमरे के फर्श पर एक ढेर के रूप मे रख दिया जाता है। इस कमरे का ताप लगभग १५° से० ग्रे० रखा जाता है। दाने अकुरित होना आरम्भ करते है और प्रत्येक से अकुरित होने पर एक छोटी सी सफेद जड निकलती है। जब अकुरण निर्धारित अवस्था तक हो चुकता है तब जौ को एक पतली पर्त के रूप मे फर्श पर फैला कर सूखने के लिए छोड दिया जाता है। वायु मे इस प्रकार खुला रहने पर कुछ दिनो मे यह सूख जाता है। इसे अब **ताजा माल्ट** (green malt) कहते है। ताज़े माल्ट को एक ऊष्मक मे पहुँचाते है जहाँ यह धीमी गति से ८०°-९०° से० ग्रे० ताप पर गरम किया जाता है। कुछ समय बाद यह पूरा सूख जाता है और अब इसे माल्ट (malt) कहते है। अकुरण की क्रिया मे जौ मे डायस्टेस एज़ाइम उत्पन्न हो जाता है और यह माल्ट मे मौजूद रहता है।]

ऐलकोहली किण्वन—वोर्ट को थिरने के लिए शान्त रख दिया जाता है। जब सब ठोस पदार्थ तली मे बैठ जाता है तो ऊपर से स्वच्छ द्रव को निथार कर एक दूसरे बर्तन मे भर दिया जाता है। तली मे बैठे ठोस को एक-दो बार गरम पानी से धो कर धोवन को मैश बनाते समय नये अनाज के दानो मे डाल दिया जाता है।

बर्तन मे भरे गये स्वच्छ वोर्ट को अब ठढा कर २०° सें० ग्रे० ताप पर लाया जाता है। यदि कुछ ठोस पदार्थ इस ताप पर पृथक् होता है तो निथार कर इसे भी वोर्ट से अलग निकाल दिया जाता है। अब वोर्ट की मात्रा के अनुपात से लगभग ५ प्रतिशत यीस्ट वोर्ट मे मिला दिया जाता है। किण्वन के लिए विशेष प्रकार के यीस्ट का उपयोग किया जाता है। हानिकारक जीवाणु आदि वोर्ट मे पहुँच कर अन्य प्रकार की क्रिया न आरम्भ कर दे इसके लिए कुछ ऐसे प्रतिपूय पदार्थ जो जीवाणुओ को तो नष्ट कर देते है किन्तु यीस्ट पर कोई हानिकारक प्रभाव नही डालते, वोर्ट मे यीस्ट के साथ ही थोडी मात्रा मे मिला दिये जाते हैं। आजकल इस कार्य के लिए ऐमोनियम फ्लोराइड का उपयोग अधिक होता है। प्राय इस कार्य के लिए कैल्सियम बाइ-सल्फाइट, बिस्मथ नाइट्रेट और हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल का भी उपयोग किया जाता है।

यीस्ट मिलाने के बाद किण्वन आरम्भ हो जाता है। किण्वन की क्रिया मे ऊष्मा उत्पन्न होती है जिसके कारण ताप २०° सें० ग्रे० से धीरे धीरे बढने लगता है। अब ताप को २६°-३०°से० ग्रे० के आस-पास रखा जाता है। इस ताप पर किण्वन की क्रिया तीव्र गति से होती है। वोर्ट मे उपस्थित शर्करा किण्वित हो कर ऐलकोहल उत्पन्न करती

है। यदि डायस्टेस-किण्वन से बच कर कुछ डेक्सट्रिन भी वोर्ट मे रह गया है तो वह भी इस ताप पर वोर्ट मे मौजूद डायस्टेस द्वारा माल्टोस मे परिवर्तित हो जाता है और फिर यीस्ट द्वारा ऐलकोहल मे। किण्वन की क्रिया अधिकाश रूप मे ४८ घटो मे समाप्त हो जाती है किन्तु इसके बाद समस्त किण्वित द्रव को एक दिन तक २५°–२६° से० ग्रे० ताप पर रहने दिया जाता है जिससे किण्वन पूर्ण रूप से पूरा हो जाय। वोर्ट के किण्वन के बाद जो द्रव प्राप्त होता है उसे **वाश** (wash) कहते है।

यीस्ट मे कई एञ्जाइम रहते है जिनमे मुख्य निम्न है—इन्वर्टेस (invertase), माल्टेस (maltase) और जाइमेस (zymase)। यीस्ट-किण्वन मे इन्ही एजाइमो की क्रिया के फलस्वरूप ऐलकोहल बनता है। इस किण्वन मे निम्न रासायनिक अभिक्रियाएँ होती है —

(i) सर्वप्रथम वोर्ट मे मौजूद माल्टोस शर्करा माल्टेस (maltase) एञ्जाइम द्वारा जल-विश्लेषित हो कर ग्लूकोस उत्पन्न करती है —

$$\underset{\text{माल्टोस}}{C_{12}H_{22}O_{11}} + H_2O \xrightarrow{\text{माल्टेस}} \underset{\text{ग्लूकोस}}{2C_6H_{12}O_6}$$
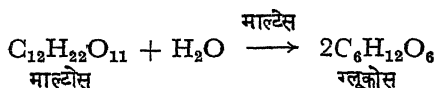
(ii) ग्लूकोस फिर यीस्ट के दूसरे एजाइम जाइमेस द्वारा विच्छेदित होता है जिसके फलस्वरूप ऐलकोहल उत्पन्न होता है और कार्बन डाइ-आक्साइड गैस निकलती है —

$$\underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} \xrightarrow{\text{जाइमेस}} \underset{\text{ऐलकोहल}}{2C_2H_5OH} + 2CO_2$$
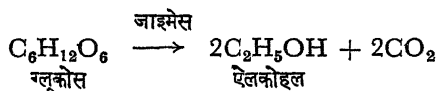
ऊपर वर्णित मुख्य अभिक्रियाओ के अतिरिक्त कुछ अन्य उपअभिक्रियाएँ (side reactions) भी होती है जिनके फलस्वरूप विभिन्न उपजात उत्पन्न होते है। इन उपजातो मे मुख्य निम्न हैं—ग्लिसरोल, फ्यूजेल तेल (fusel oil), सकसिनिक अम्ल, कुछ वसा अम्ल, ऐल्डीहाइड तथा विभिन्न एस्टर।

ऊपर प्रदर्शित अभिक्रियाओ तथा उनसे सम्बन्धित समीकरणो के अनुसार जितना ऐलकोहल प्राप्त होना चाहिए उसका लगभग ६/७ भाग वास्तव मे प्राप्त होता है; शेष अन्य पदार्थो मे परिणत हो जाता है।

आसवन या रेक्टीफिकेशन (अर्थात् वाश से रेक्टीफाइड स्पिरिट प्राप्त करना)—वाश मे लगभग ७-८ प्रतिशत ऐलकोहल रहता है। प्रभाजी आसवन (fractional distillation) की विधि से वाश मे से ऐलकोहल को पृथक् कर प्राप्त किया जाता

है। इस आसवन द्वारा जो ऐलकोहल प्राप्त होता है उसमे लगभग ९४-९५ प्रतिशत ऐलकोहल तथा शेष पानी रहता है। इस प्रतिशत के ऐलकोहल को रेक्टीफाइड स्पिरिट कहते हैं।

वाश का प्रभाजी आसवन करने के लिए कई प्रकार के भभके प्रयोग मे आते है। इनमे काफी का भभका (Coffey's still) और बार्बे का भभका (Barbet's still) अधिक प्रचलित है। इन भभको द्वारा अविरत रूप से रेक्टीफाइड स्पिरिट प्राप्त होती
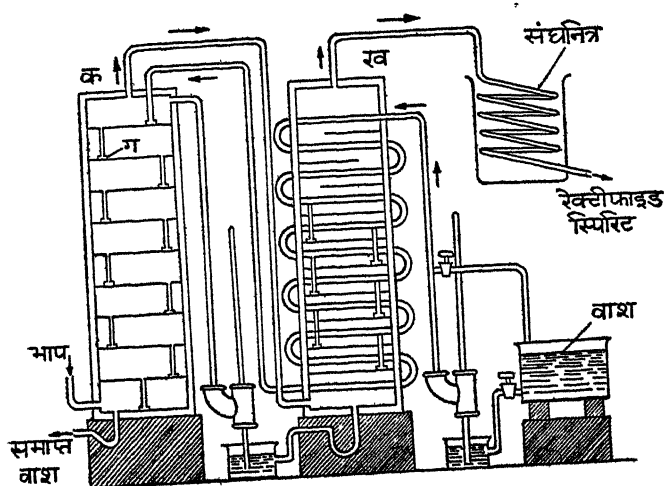
चित्र १६—काफी भभका

है और बार बार प्रभाजनो को आसवित नही करना पडता। इन सब भभको की कार्य-प्रणाली एक ही सिद्धान्त पर आधारित है। इनमे ऊपर से वाश महीन धारो के रूप मे गिराया जाता है और नीचे से भाप प्रतिधारा के रूप मे ऊपर को प्रवाहित की जाती है। काफी भभके की कार्य-प्रणाली का वर्णन नीचे दिया जाता है। इससे इन भभको के सिद्धान्त का ज्ञान हो जायगा।

काफी भभके मे दो प्रभाजक स्तम्भ (fractionating columns) होते है जो एक दूसरे से जुडे रहते हैं। एक स्तम्भ को विश्लेषक (analyser) 'क' और दूसरे को रेक्टीफायर (rectifier) 'ख' कहते है। इनके बाहर का ढाँचा लकड़ी का बना होता है और अन्दर ढांचे की पूरी सतह ताँबे की पतली चद्दर से मढी रहती है। विश्लेषक को ताँबे की आडे ढग से प्रबन्धित प्लेटो द्वारा कई खानो मे विभक्त कर दिया जाता है।

इन प्लेटो मे छेद रहते हैं और प्रत्येक छेद पर कपाट (valves) रहते है जो केवल ऊपर की ओर खुलते हैं। प्रत्येक प्लेट मे एक T के आकार की नली अपने ठीक नीचे की प्लेट मे बने एक छिछले प्याले से सम्बन्धित रहती है। रेक्टीफायर के निचले भाग की बनावट भी विश्लेषक की ही भॉति होती है।

किण्वित द्रव (अर्थात् वाश) रेक्टीफायर के अन्दर से जाने वाली एक सर्पाकार नली मे पम्प द्वारा भेजा जाता है और इस नली द्वारा विश्लेषक के ऊपरी सिरे पर पहुँच कर विश्लेषक मे नीचे गिरता है। विश्लेषक मे पेंदी की ओर से अन्दर भाप पहुँचायी जाती है। यह भाप किण्वित द्रव के ऐलकोहल तथा अन्य वाष्पशील पदार्थो को वाष्पित कर अपने साथ उडा कर ऊपर ले आती है। भाप सहित ये सब वाष्प विश्लेषक के ऊपरी सिरे पर लगे एक दूसरे नल द्वारा रेक्टीफायर मे नीचे पेंदी के पास प्रवेश करती है और फिर ऊपर की ओर उठती है। रेक्टीफायर के ऊपरी सिरे पर भी एक नल लगा रहता है। जो वाष्प रेक्टीफायर के ऊपरी सिरे तक पहुँचती है वह ऊपर के नल द्वारा बाहर निकलती है। यह नल आगे बढ कर एक सर्पाकार नली का रूप ले लेता है। नली का यह भाग पानी भरे बर्तन मे डूबा रहता है जिसमे इसके नल के भीतर की वाष्प सघनित हो जाती है। विश्लेषक तथा रेक्टीफायर मे जैसे जैसे वाष्प नीचे से ऊपर को उठती है यह प्लेटो तथा नलियो के प्रतिरोध के कारण कुछ ठढी होती जाती है। चूँकि पानी की भाप ऐलकोहल के वाष्प की अपेक्षा अधिक शीघ्र सघनित होती है, अत कुछ वाष्प मे से पानी की भाप का अश धीरे धीरे सघनित होता जाता है। जब तक भाप रेक्टी-फायर के सिरे तक पहुँचती है तब तक इसकी अधिकाश पानी की भाप सघनित हो चुकी होती है और फलस्वरूप इसमे अधिकाश भाग ऐलकोहल बच रहता है। रेक्टीफायर के ऊपर के नल से वाष्प बाहर निकल कर सघनित होती है। यह द्रव रेक्टीफाइड स्पिरिट कहलाता है और इसमे लगभग ९५ प्रतिशत ऐलकोहल होता है और केवल ५ प्रतिशत पानी।

विश्लेषक की तली मे जो द्रव एकत्रित होता है उसे समाप्त वाश (spent wash) कहते हैं, अर्थात् वह वाश जिसमे से कुल ऐलकोहल तथा अन्य वाष्पशील पदार्थ निकल चुके हैं।

वाश के प्रभाजित आसवन मे निम्न प्रभाजन एकत्रित किये जाते है —

(i) **प्रथम प्रभाजन या पहला बहाव** (First runnings)—इसमे मुख्य रूप से ऐसीटैल्डीहाइड तथा वाष्पशील एस्टर रहते हैं।

(ii) **द्वितीय प्रभाजन या दूसरा बहाव** (Second runnings)—इसमे लगभग ९५ प्रतिशत ऐलकोहल रहता है और यह रेक्टीफाइड स्पिरिट कहलाता है।

(iii) **अन्तिम प्रभाजन या अन्तिम बहाव** (Last runnings), **फ्यूजेल तेल** (fusel oil)—इस प्रभाजन को फ्यूजेल तेल कहते है और यह पीले रग का तेल की तरह का एक दुर्गन्धमय द्रव होता है। इसमे चार और पॉच कार्बन वाले ऊँचे ऐल-कोहल मुख्य रूप से रहते है जिनमे आइसो-ऐमिल ऐलकोहल तथा *d*-ऐमिल ऐलकोहल अधिक मात्रा मे रहते है। थोडी मात्राओ मे ब्यूटिल ऐलकोहल तथा अन्य ऐलकोहल भी रहते है।

जर्मन रसायनज्ञ एहरलिख (Ehrlich) ने यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि ऐलकोहली किण्वन मे ऊँचे ऐलकोहल, ऐल्डीहाइड तथा वसा अम्ल जो उप-जात (by-products) के रूप मे उत्पन्न होते है वे यीस्ट द्वारा शर्करा पर होने वाली क्रिया के फलस्वरूप नही बनते, वरन् यीस्ट की एमिनो अम्लो (amino acids) पर होने वाली क्रिया के फलस्वरूप बनते है। किण्वन के लिए आरम्भ मे जो स्टार्च-युक्त अन्न या दूसरी वस्तु ली जाती है उसमे स्टार्च के साथ-साथ प्रोटीन भी रहती है। यह प्रोटीन जल-विश्लेषित हो कर ऐमिनो अम्ल उत्पन्न करती है। यीस्ट फिर ऐमिनो अम्लो पर क्रिया कर इन्हे ऐलकोहलो मे परिवर्तित कर देता है। इसी क्रिया के फल-स्वरूप फ्यूजेल तेल मे मौजूद ऊँचे ऐलकोहल बनते है। यह क्रिया निम्न समीकरण के अनुसार होती है —

$$\underset{\text{ऐमिनो अम्ल}}{R\text{-}CH(NH_2)\text{-}COOH} + H_2O \xrightarrow{\text{यीस्ट}} \underset{\text{ऐलकोहल}}{R\text{-}CH_2OH} + CO_2 + NH_3$$
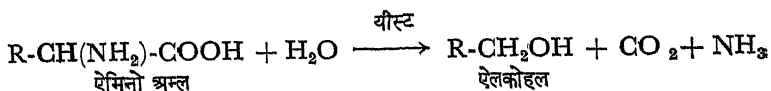
जो अमोनिया ऊपर की अभिक्रिया मे निकलती है उसे यीस्ट-कोशिकाऍ ले लेती है और उसके द्वारा अपने ऊतक (tissues) बनाती है जिसके फलस्वरूप उनकी वृद्धि होती है। अत इस क्रिया का महत्त्व यीस्ट-कोशिकाओ की नाइट्रोजन सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति करना है। एहरलिख ने अपने प्रयोगो द्वारा यह दिखलाया है कि यदि ल्यसीन (एक ऐमिनो अम्ल) पर यीस्ट की क्रिया करायी जाती है तो आइसो-ऐमिल ऐलकोहल बनता है और यदि आइसो-ल्यूसीन पर क्रिया करायी जाती है तो *d*-ऐमिल ऐलकोहल बनता है :—

$$\underset{\text{ल्यूसीन}}{(CH_3)_2CH{\cdot}CH_2{\cdot}CH(NH_2){\cdot}COOH} + H_2O$$

$$\xrightarrow{\text{यीस्ट}} \underset{\text{आइसो-ऐमिल ऐलकोहल}}{(CH_3)_2CH\ CH_2\ CH_2OH} + NH_3 + CO_2$$

$$C_2H_5CH(CH_3)\cdot CH(NH_2)\cdot COOH + H_2O$$
आइसो-ल्यूसीन
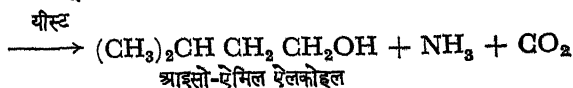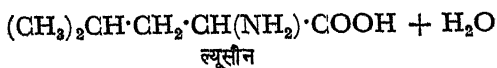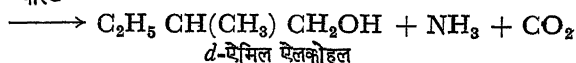
$$\xrightarrow{\text{यीस्ट}} C_2H_5\,CH(CH_3)\,CH_2OH + NH_3 + CO_2$$
d-ऐमिल ऐलकोहल

जैसा हम ऊपर बतला चुके है, आइसो-ऐमिल ऐलकोहल और *d*-ऐमिल ऐलकोहल फ्यूजेल तेल के मुख्य अवयव है। फ्यूजेल तेल एथिल ऐलकोहल की अपेक्षा अधिक महँगा बिकता है। अत इसकी अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए प्राय किण्वन के समय किण्वित होने वाले पदार्थ में ल्यूसीन और आइसो-ल्यूसीन अलग से मिला दी जाती है।

ऐलकोहली किण्वन के उपजात—ऐलकोहली किण्वन मे एथिल ऐलकोहल के अतिरिक्त कई अन्य पदार्थ उपजात के रूप मे प्राप्त होते है। इनमे से मुख्य निम्न है —

(१) **कार्बन डाइ-आक्साइड**—किण्वन मे कार्बन डाइ-आक्साइड बडी मात्रा मे निकलती है। इसे एकत्रित कर और ठढा कर ठोस रूप मे परिणत किया जाता है। यह ठोस शुष्क बर्फ (dry ice) कहलाता है और ठढक पैदा करने के लिए इसका आजकल बडा उपयोग होता है।

(२) **आरगॉल या टार्टर** (Argol or Tartar)—जिस नॉद मे वोर्ट का किण्वन किया जाता है उसमे अन्दर की दीवारो पर एक मटमैले रग की कडी पपड़ी जम जाती है। इस पपडी को ही आरगॉल या टार्टर कहते है। यह अशुद्ध पोटैसियम हाइड्रोजन टारट्रेट यौगिक होता है और व्यापार मे इसी से टार्टरिक अम्ल बनाया जाता है।

(३) **वाष्पशील एस्टर तथा ऐसीटैल्डीहाइड**—प्रथम प्रभाजन मे ये पदार्थ रहते है। इन्हे प्रभाजी आसवन द्वारा पृथक् यौगिको के रूप मे प्राप्त कर विभिन्न कार्यो मे उपयोग किया जाता है।

(४) **फ्यूजेल तेल**—जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, यह मुख्य रूप से आइसो-ऐमिल ऐलकोहल तथा *d*-ऐमिल ऐलकोहल का मिश्रण है और अन्तिम प्रभाजन मे प्राप्त होता है। इससे आइसो-ऐमिल ऐलकोहल तथा *d*-ऐमिल ऐलकोहल पृथक् कर अलग अलग प्राप्त किये जाते है। ये दोनो ऐलकोहल महत्त्व के विलायक है और इनका बडा उपयोग विभिन्न उद्योगो मे होता है।

(५) **समाप्त वाश**—वाश का प्रभाजी आसवन करने के बाद अन्त मे जो अवशिष्ट (residue) बच रहता है उसे समाप्त वाश कहते है। किण्वन के लिए आरम्भ मे लिये गये पदार्थ मे जो प्रोटीन तथा वसा रहती है उसका अधिकाश भाग अविच्छेदित रूप मे समाप्त वाश मे मौजूद रहता है। समाप्त वाश को थोडा वाष्पित

कर ठोस या गाढे द्रव के रूप मे कर लिया जाता है और यह या तो पशुओ के चारे के रूप मे इस्तेमाल होता है या खाद के रूप मे।

परिशुद्ध ऐलकोहल (Absolute alcohol)—जिस एथिल ऐलकोहल मे पानी की मात्रा बिल्कुल नही रहती और केवल शुद्ध ऐलकोहल शत-प्रतिशत रहता है उसे **परिशुद्ध ऐलकोहल** कहते है। रेक्टीफाइड स्पिरिट मे ९५ ५७ प्रतिशत ऐलकोहल और ४ ४३ प्रतिशत पानी रहता है। ऐलकोहल और पानी का यह मिश्रण **समक्वाथी मिश्रण** (constant boiling mixture) है। इसका क्वथनाक सदा ७८.१३° सें० ग्रे० स्थिर रहता है। अत रेक्टीफाइड स्पिरिट के प्रभाजित आसवन से परिशुद्ध ऐलकोहल नही प्राप्त हो सकता। प्रयोगशालाओ मे परिशुद्ध ऐलकोहल बनाने की साधारण विधि निम्न है —

प्रयोगशाला विधि—रेक्टीफाइड स्पिरिट को एक बोतल मे भर कर उसमे थोडा बरी का चूना डाल दिया जाता है और बोतल को बद कर एक दो दिनो तक रख दिया जाता है। ऐलकोहल को फिर निथार कर एक आसवन-फ्लास्क मे निकाल लिया जाता है और सोडियम धातु के तुरन्त के कटे छोटे-छोटे थोडे से टुकडे या कैल्सियम धातु के टुकडे डाल कर तुरन्त आसवित किया जाता है। सग्राही (receiver) मे एक कैल्सियम क्लोराइड नली लगा दी जाती है जिससे सग्राही मे एकत्रित होने वाले ऐलकोहल मे बाहर की हवा से जल-वाष्प न पहुँच सके।

स्थिरक्वाथी विधि (ऐजियोट्रापिक विधि, azeotropic method)—परिशुद्ध ऐलकोहल की माँग विभिन्न उद्योगो मे बहुत है और इसके बनाने की यह व्यापारिक विधि है। इस विधि मे बेजीन का उपयोग किया जाता है। विधि निम्न प्रकार है —

रेक्टीफाइड स्पिरिट मे बेंजीन अधिक मात्रा मे मिला कर मिश्रण को आसवित किया जाता है। बेंजीन, ऐलकोहल और पानी तीनो का एक समक्वाथी त्रि-अगी (ternary) मिश्रण बनता है जिसका क्वथनाक ६४ ९° सें० ग्रे० रहता है। रेक्टीफाइड स्पिरिट में जितना पानी रहता है वह सब इस त्रि-अगी मिश्रण के रूप मे ६४ ९° पर बाहर निकल जाता है। इस त्रि-अगी मिश्रण के आसवित हो कर निकल जाने के बाद रेक्टीफाइड स्पिरिट मे बचा बेंजीन ऐलकोहल के साथ द्वि-अगी (binary) समक्वाथी मिश्रण बनाता है जो ६८ ३° सें० ग्रे० पर क्वथित होता है। द्वि-अंगी मिश्रण के आसवित हो कर बाहर निकल जाने के बाद परिशुद्ध ऐलकोहल ७८.३° सें० ग्रे० पर आसवित होता है। इसे जल-वाष्प की अनुपस्थिति मे संग्राही मे एकत्रित कर लिया जाता है।

मेथिलेटेड स्पिरिट (Methylated spirit)—जो ऐलकोहल शराब के रूप मे पीने के उपयोग मे आता है उस पर साधारणत. प्रत्येक देश मे उत्पादन

शुल्क (excise duty) लगाया जाता है, जिससे जनता इसका अधिक उपयोग पेय के रूप मे न कर सके। अधिक मात्रा मे ऐलकोहल का उपयोग पेय के रूप मे करने से स्वास्थ्य को बडी हानि पहुँचती है। जनता के स्वास्थ्य की सुरक्षा की दृष्टि से ही प्रत्येक देश मे शराबो पर बडा शुल्क लगाया जाता है। किन्तु ऐलकोहल विभिन्न उद्योगो के लिए भी महत्त्व का पदार्थ है और यदि यह सस्ता न मिले तो ये उद्योग चल नही सकते। अत जो ऐलकोहल औद्योगिक कार्यो के उपयोग मे आता है उसे प्रत्येक देश मे शुल्क से मुक्त रखा जाता है जिससे वहाँ के उद्योगो की उन्नति हो सके। इसलिए औद्योगिक कार्यों मे उपयोग होने वाले ऐलकोहल मे कुछ ऐसे विषैले या स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पदार्थ मिलाना आवश्यक होता है जो उसे पीने के अनुपयुक्त कर दे किन्तु औद्योगिक कार्यों के लिए वह ऐलकोहल अनुपयुक्त न होने पाये। इस प्रकार पीने के अनुपयुक्त बना दी गयी रेक्टीफाइड स्पिरिट को मेथिलेटेड स्पिरिट कहते है। मेथिलेटेड स्पिरिट बनाने के लिए रेक्टीफाइड स्पिरिट मे विभिन्न प्रकार के विषैले पदार्थ मिलाये जाते है। अधिकाश देशो मे रेक्टीफाइड स्पिरिट मे ५ से १० प्रतिशत तक मेथिल ऐलकोहल और ० ५ प्रतिशत पिरीडीन मिला कर मेथिलेटेड स्पिरिट बनायी जाती है। मेथिल ऐलकोहल का अधिक उपयोग होने के कारण ही मेथिलेटेड स्पिरिट नाम प्रचलित हुआ, यद्यपि आजकल बहुत सी मेथिलेटेड स्पिरिट मे मेथिल ऐलकोहल बिल्कुल नही रहता। भारतवर्ष मे मेथिलेटेड स्पिरिट साधारणत ० ५ प्रतिशत पिरीडीन और ० ५ प्रतिशत पतला रबर-आसुत रेक्टीफाइड स्पिरिट मे मिलाने से बनायी जाती है। मेथिलेटेड स्पिरिट का उपयोग पेंट और वार्निश बनाने, शरीर की बाहरी त्वचा पर लगाने के लिए उपयोग मे आने वाली दवाएँ बनाने तथा अन्य अनेक कार्यों मे होता है।

प्रमाण स्पिरिट (Proof spirit)—उत्पादन शुल्क (excise duty) लगाने की सुविधा के लिए एक निश्चित प्रतिशत के ऐलकोहली द्रव को प्रामाणिक मान लिया गया है। इस प्रामाणिक स्पिरिट को **प्रमाण स्पिरिट** या **प्रूफ स्पिरिट** कहते है। प्रमाण स्पिरिट मे भार के अनुपात से ४९ ३ प्रतिशत ऐलकोहल और आयतन के अनुपात से ५७ १ प्रतिशत ऐलकोहल रहता है। अन्य ऐलकोहली द्रवो की सान्द्रता प्रमाण स्पिरिट के आधार पर व्यक्त की जाती है। जिस स्पिरिट मे प्रमाण स्पिरिट से जितने अश ऐलकोहल का प्रतिशत अधिक होता है उसे उतने अश अधि-प्रमाण (over proof) तथा जिसमे कम रहता है उसे उतने अश न्यून-प्रमाण (under proof) कहते है। निम्न उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जायगा —यदि कोई स्पिरिट १० अधि-प्रमाण है तो इसका यह अर्थ है कि इस स्पिरिट के १०० घ० से० आयतन मे पानी मिला कर जब इसे ११० घ० से० किया जाता है तब इसकी सान्द्रता प्रमाण स्पिरिट के समान होती

है। इसी प्रकार १० न्यून-प्रमाण का अर्थ यह है कि स्पिरिट के १०० घ० से० आयतन मे ऐलकोहल की जितनी मात्रा है वह ९० घ० से० प्रमाण स्पिरिट मे मौजूद ऐलकोहल की मात्रा के बराबर है।

ऐलकोहली पेय, अर्थात् शराब (Alcoholic beverages)—विभिन्न प्रकार की शराब बनाने के लिए विभिन्न पदार्थो का उपयोग होता है। इन शराबो मे परस्पर ऐलकोहल की मात्रा मे अन्तर होता है। साधारणत इनमे ऐलकोहल की मात्रा ३ से ४० प्रतिशत तक रहती है। इनमे भिन्न भिन्न रग तथा सुगन्धियाँ भी डाल कर इन्हें देखने मे आकर्षक तथा स्वाद मे रुचिकारक बनाया जाता है।

समस्त ऐलकोहली पेय को मुख्य दो विभागो मे बाँटा जा सकता है—(१) आसुत (distilled) और (२) अनासुत (undistilled)। अनासुत शराबो मे ऐलकोहल की मात्रा आसुत शराबो की अपेक्षा बहुत कम रहती है। आसुत शराबो मे ऐलकोहल साधारणत ३५ से ४० प्रतिशत तक रहता है, अनासुत मे ३ से १५ प्रतिशत तक ही रहता है। कुछ प्रचलित शराबो के नाम, उनके स्रोत तथा उनमे मौजूद ऐलकोहल की प्रतिशत मात्रा नीचे दी जाती है —

आसुत (३५ से ४० प्रतिशत ऐलकोहल)

ह्विसकी (Whisky)—जौ से बनायी जाती है।

रम (Rum)—शीरे से बनाया जाता है।

ब्राडी (Brandy)—अगूर से बनायी जाती है।

जिन (Gin)—मकई से बनाया जाता है।

अनासुत

बियर (Beer)—जौ से बनाया जाता है (३ से ६% ऐलकोहल)।

वाइन (Wine)—अगूर से बनायी जाती है (८ से १०% ऐलकोहल)।

शैम्पेन (Champaign)—अगूर से बनाया जाता है (१० से १५% ऐलकोहल)।

पोर्ट (Port) और शेरी (Sherry)—अगूर से बनायी जाती है (१५ से २०% ऐलकोहल)।

साइडर (Cider)—सेब से बनाया जाता है (१ से २% ऐलकोहल)।

शक्ति-ऐलकोहल (Power alcohol)—मोटरो तथा वायुयानो की वृद्धि के साथ-साथ पेट्रोल की माग दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। ससार के सब देशो के उत्पादन को मिला कर वर्ष भर मे जितना पेट्रोल प्राप्त होता है वह ससार की पेट्रोल सम्बन्धी वर्तमान माग को पूरी नही कर सकता। पेट्रोल की इस कमी को परिशुद्ध ऐलकोहल से पूरा किया जाता है। पेट्रोल मे परिशुद्ध ऐलकोहल मिश्रित कर इस

मिश्रण का उपयोग मोटरकार इजनो मे पर्याप्त मात्रा मे आजकल किया जाता है। मोटरकारो मे उपयोग होने के कारण ही परिशुद्ध ऐलकोहल को व्यापार मे शक्ति-ऐलकोहल नाम दिया गया है, क्योकि यह शक्ति उत्पन्न करने के कार्य मे आता है।

परिशुद्ध ऐलकोहल का दमकाक पेट्रोल की अपेक्षा बहुत ऊँचा होता है, अत इसे अकेले उपयोग करने मे मोटर के इजनो को आरम्भ मे चलाने मे थोडी कठिनाई होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए किसी दहनशील पदार्थ, जैसे पेट्रोल, बेजीन या ईथर, का परिशुद्ध ऐलकोहल मे मिलाना आवश्यक है। इसी कारण परिशुद्ध ऐल-कोहल को अकेले न इस्तेमाल कर पेट्रोल के साथ मिला कर मिश्रण के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है। यदि ऐलकोहल मे पानी का कुछ भी अश होता है तो वह पेट्रोल मे ठीक से मिश्रित नही किया जा सकता। अत इस कार्य के लिए केवल परिशुद्ध ऐल-कोहल ही उपयुक्त है। साधारणत ४५ भाग पेट्रोल मे ६५ भाग परिशुद्ध ऐलकोहल मिलाया जाता है। इससे अधिक परिशुद्ध ऐलकोहल मिलाना कठिन है।

ऐमिलो विधि (Amylo process) **से ऐलकोहल बनाना**—माल्ट द्वारा स्टार्च का शर्करीकरण कर फिर यीस्ट द्वारा विलयन को किण्वित कर ऐलकोहल बनाने की ऊपर बतलायी विधि मे दो दोष है—पहला यह कि यह विधि महँगी है, क्योकि इसमे माल्ट की पर्याप्त मात्रा का उपयोग करना पडता है, और दूसरा यह कि सैद्धान्तिक दृष्टि से जितना ऐलकोहल प्राप्त होना चाहिए उससे केवल ८०-८५ प्रतिशत तक ही प्राप्त होता है। इन दोषो के कारण ऐलकोहल बनाने की विधि मे परिवर्तन तथा सुधार करने की चेष्टा समय-समय पर होती रही है।

ऐमिलो विधि मे स्टार्च का शर्करीकरण माल्ट के स्थान मे म्यूकर (Mucor) तथा राइज़ोपस (Rhizopus) फफूंदो की कुछ जातियो द्वारा कराया जाता है। ये फफूंद ३५° से० ग्रे० ताप पर वृद्धि करते हैं और इस ताप पर स्टार्च को माल्टोस शर्करा मे जल-विश्लेषित कर देते हैं। इन फफूंदो मे कुछ एज़ाइम ऐसे भी रहते है जो शर्करा को ऐलकोहल मे विच्छेदित कर देते हैं, किन्तु ऐलकोहली किण्वन की यह क्रिया बहुत धीमी गति से होती है। अत शर्करीकरण के बाद कुछ यीस्ट भी मिलाया जाता है जिससे ऐलकोहली किण्वन की गति तीव्र हो जाय।

ऐमिलो विधि मे म्यूकर अथवा राइज़ोपस की केवल थोडी सी मात्रा ही स्टार्च की पर्याप्त मात्रा को शर्करा मे परिणत कर देती है। एक ग्राम म्यूकर लगभग २५ टन स्टार्च का शर्करीकरण करने के लिए पर्याप्त होता है। माल्ट की विधि मे १०-१२ प्रतिशत माल्ट का उपयोग शर्करीकरण के लिए करना पडता है और माल्ट काफी महँगा होता है जिससे यह विधि महँगी पडती है। ऐमिलो विधि मे एक लाभ

यह भी है कि ऐलकोहल की प्रतिशत मात्रा भी माल्ट विधि की अपेक्षा अधिक प्राप्त होती है। ऐमिलो विधि मे स्टार्च के अनुपात से ३३-३६ प्रतिशत ऐलकोहल प्राप्त होता है, किन्तु माल्ट विधि मे केवल ३१ ५ प्रतिशत तक ही प्राप्त होता है। अत स्पष्ट है कि ऐमिलो विधि माल्ट विधि से सस्ती है और इसमे ऐलकोहल की मात्रा भी अधिक प्राप्त होती है। किन्तु इस विधि मे भी कई दोष है —एक दोष यह है कि फफूंद द्रव के भीतर वद्धि करता है जिसके कारण द्रव मे हवा पहुँचाते रहने की आवश्यकता होती है। इस कठिनाई के कारण मैश मे सब जगह म्यूकर की वृद्धि एक सी नही हो पाती। दूसरा दोष यह है कि फफूंद द्वारा शर्करीकरण की पूरी क्रिया के समाप्त होने मे अधिक दिन लगते है। तीसरा दोष यह है कि चूंकि फफूंद ३५° से० ग्रे० पर क्रिया करता है इस कारण मैश को इस ताप पर रखना पडता है और इस ताप पर मैश बहुत गाढा रहता है। अत मैश मे पर्याप्त पानी मिला कर इसे पतला करना पड़ता है, जिसके कारण किण्वन के अन्त मे जो किण्वित द्रव प्राप्त होता है उसमे ऐलकोहल की प्रतिशत मात्रा बहुत कम रहती है। अत इससे रेक्टीफाइड स्पिरिट बनाने मे अधिक समय लगता है। ऊपर बतलायी कठिनाइयो के कारण ऐमिलो विधि विशेष प्रचलित अभी नही हो सकी है।

दो नये ऐमिलेस एजाइम कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त किये गये है जो अधिक उपयोगी सिद्ध हुए है। एक एजाइम 'ऐसपरजिलस ओराइजी'[१-४] (Aspergillus oryzae) फफूँद को गेहूँ के चोकर पर वृद्धि करा कर प्राप्त किया गया है और दूसरा 'सबटिलिस मेसेटेरिकस'[५] (Subtilis mesentericus) जीवाणुओ की कुछ जातियो को गेहूँ के चोकर पर वृद्धि करा कर प्राप्त किया गया है। ऐलकोहल बनाने की वर्तमान सशोधित विधि मे एक भाग स्टार्च वाला पिसा अन्न, २ भाग पानी और ० १२ भाग ऐमिलेसयुक्त चोकर मिला कर ५५° से० ग्रे० ताप पर मैश बनाया जाता है। इसे १० मिनट तक ५५° से० ग्रे० पर रखने के बाद धीरे-धीरे ८५° सें० ग्रे० ताप तक गरम किया जाता है और फिर कुछ देर बाद १२५°-१५०° सें० ग्रे० ताप पर कुकर मे १० मिनट तक पकाया जाता है। अब इसे ७८°-८०° से० ग्रे० तक ठढा कर इसमे ० ०२५ भाग ऐमिलेसयुक्त चोकर को २ भाग ठढे पानी मे फेट कर मिला दिया जाता है और ताप को घटा कर ६०° से० ग्रे० पर रखा जाता है। इस ताप पर १० मिनट तक रखने के बाद मैश को अब २७° से० ग्रे० तक ठढा कर उसमे यीस्ट मिलाया जाता है। किण्वित पदार्थ का pH बराबर ५ ० से ५ २ के बीच मे रखा जाता है।

ऊपर वर्णित सशोधित विधि द्वारा पुरानी विधि की तुलना मे १५ प्रतिशत अधिक ऐलकोहल प्राप्त होता है। यह विधि बहुत सस्ती भी है। यद्यपि इस विधि का प्रचार

अभी अधिक नही हो पाया है तो भी यह विश्वास किया जाता है कि थोडे ही समय मे इसका प्रचार बहुत हो जायगा और पुरानी विधि का स्थान यही विधि ले लेगी।

एथिल ऐलकोहल के गुणधर्म (Properties) —एथिल ऐलकोहल रगरहित पतला द्रव है। इसमे एक विशेष मीठी गन्ध होती है। इसका स्वाद दाहक (burning) है और क्वथनाक ७८ ३° सें० ग्रे० तथा आपेक्षिक घनत्व ० ७८९ है। पानी मे यह पूर्ण रूप से मिश्र्य है। पानी मिलाने पर ऊष्मा उत्पन्न होती है और मिश्रण गरम हो जाता है, तथा साथ ही कुल मिश्रण के आयतन में सकुचन होता है। उदाहरणार्थ, यदि ५२ घ० सें० ऐलकोहल मे ४८ घ० सें० पानी मिलाया जाय तो मिश्रित द्रव का आयतन १०० घ० सें० न होकर ९६ ३ घ० सें० रहता है।

एथिल ऐलकोहल विषैला पदार्थ नही है। थोडी मात्रा मे पीने से यह शरीर के अगो मे उत्तेजना उत्पन्न कर लाभकारी प्रभाव डालता है। किन्तु यदि बडी मात्रा मे एथिल ऐलकोहल पिया जाता है तो स्वास्थ्य पर बहुत हानिकारक प्रभाव पडता है।

एथिल ऐलकोहल अनेक कार्बनिक यौगिको के लिए एक अच्छा विलायक है और इस कारण टिकचर और दवाओ के विलयन बनाने मे तथा पेंट, वार्निश आदि बनाने मे इसका बहुत उपयोग होता है।

अभिक्रियाएँ (Reactions)—(१) यह एक ज्वलनशील (inflammable) पदार्थ है और वायु मे प्रकाशरहित, हलकी-नीली ज्वाला के साथ जलता है तथा कार्बन डाइ-आक्साइड और पानी बनाता है —

$$C_2H_5OH + 3O_2 \longrightarrow 2CO_2 + 3H_2O$$
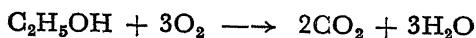
(२) एथिल ऐलकोहल को आक्सीकृत करने पर पहले ऐसीटैल्डीहाइड बनता है और फिर ऐसीटैल्डीहाइड आक्सीकृत हो कर ऐसीटिक अम्ल मे परिवर्तित हो जाता है —

$$CH_3CH_2OH \xrightarrow{O} \underset{\text{ऐसीटैल्डीहाइड}}{CH_3CHO} \xrightarrow{O} \underset{\text{ऐसीटिक अम्ल}}{CH_3COOH}$$

(३) एथिल ऐलकोहल को विरजक चूर्ण (bleaching powder) और पानी के साथ मिश्रित कर आसवित करने पर क्लोरोफार्म बनता है। अभिक्रियाएँ निम्न प्रकार से होती है —

विरजक चूर्ण पहले पानी द्वारा विच्छेदित हो कर क्लोरीन और चूना देता है .—

$$CaOCl_2 + H_2O \longrightarrow Ca(OH)_2 + Cl_2$$
विरंजक चूर्ण
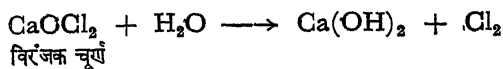
क्लोरीन द्वारा ऐलकोहल फिर आक्सीकृत हो कर ऐसीटैल्डीहाइड बनाता है और यह ऐसीटैल्डीहाइड क्लोरीन से अभिक्रिया कर क्लोरल मे परिवर्तित हो जाता है। अन्त मे क्लोरल पर चूने की अभिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप क्लोरोफार्म और कैल्सियम ऐसीटेट बनते है —

(क) $Cl_2 + H_2O \longrightarrow 2HCl + O$

(ख) $CH_3CH_2OH + O \longrightarrow CH_3CHO + H_2O$

(ग) $CH_3CHO + 3Cl_2 \longrightarrow CCl_3CHO + 3HCl$
क्लोरल

(घ) $2CCl_3CHO + Ca(OH)_2 \longrightarrow 2CHCl_3 + (HCOO)_2Ca$
क्लोरोफार्म कैल० फार्मेट
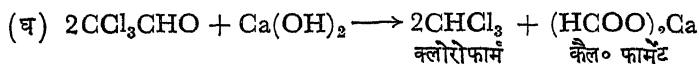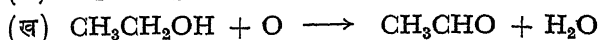
(४) जब एथिल ऐलकोहल के वाष्प ऊँचे ताप पर तप्त ऐल्यूमिना या सिलिका पर प्रवाहित किये जाते है तो ब्यूटाडाईन बनता है —

$$2CH_3CH_2OH \xrightarrow[३००^\circ]{Al_2O_3} CH_2{=}CH{-}CH{=}CH_2 + H_2 + 2H_2O$$
ब्यूटाडाईन
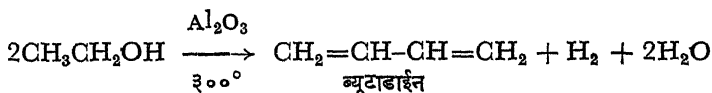
उपयोग—एथिल ऐलकोहल का विभिन्न उद्योगो तथा दवाखानो मे बडा उपयोग है। इसकी इतनी उपयोगिता इसकी अच्छी विलायक शक्ति के कारण है। एथिल ऐलकोहल के कुछ मुख्य उपयोग नीचे दिये जाते हैं —

(१) पीने के लिए विभिन्न शराबो के रूप मे ऐलकोहल एक अच्छा उत्तेजक (stimulant) है। जिस समय मनुष्य बहुत शिथिलता अनुभव कर रहा हो उस समय ऐलकोहल की थोडी मात्रा पीने से शिथिलता दूर हो जाती है। चिकित्सा मे इस कार्य के लिए इसका बडा उपयोग होता है।

(२) पेंट, वार्निश और पालिश आदि बनाने मे। चपडा, रोजिन तथा विभिन्न रग पदार्थो के मेल से वार्निश और पालिश बनायी जाती हैं। ऐलकोहल इन सब पदार्थो के लिए अच्छा विलायक है और इस कारण विलायक के रूप मे पेट, वार्निश तथा पालिश बनाने मे इसका बडा उपयोग होता है।

(३) दवाओ के विलयन तथा निष्कर्ष बनाने मे विलायक के रूप मे।

(४) ईथर, क्लोरोफार्म, आयडोफार्म, क्लोरल, ब्यूटाडाईन आदि अनेक महत्त्व के रासायनिक यौगिको को बनाने मे।

ऐलकोहल का बहुत उपयोग आजकल कृत्रिम रबर उद्योग मे है और इस उपयोग के कारण ऐलकोहल की मॉग पिछले कुछ वर्षो मे लगभग ८ गुना बढ गयी है।

आज की सभ्यता मे रबर का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसकी इतनी अधिक मॉग है कि प्राकृतिक रबर से यह मॉग पूरी नही की जा सकती। वर्तमान समय मे ससार मे जितना रबर बनाया जाता है उसका आधे से अधिक भाग कृत्रिम रबर है। कृत्रिम रबर प्राकृतिक रबर से कई बातो मे अधिक अच्छा सिद्ध हुआ है, इस कारण भी इसका महत्त्व बढता जा रहा है और फलस्वरूप दिन-प्रति-दिन इसका उत्पादन भी बढता जा रहा है।

कृत्रिम रबर बनाने के लिए आधारभूत पदार्थ ब्यूटाडाईन (butadıene, $CH_2=CH-CH=CH_2$) है। यह पहले ब्यूटिल ऐलकोहल से मुख्य रूप से बनाया जाता था किन्तु आजकल यह एथिल ऐलकोहल से अधिक बनाया जाता है। ऐलको-हल से बडी मात्रा मे ब्यूटाडाईन का बनाना सबसे पहले रूस मे सन् १९३१ मे आरम्भ किया गया था।[६] वहॉ इस विधि से ब्यूटाडाईन बनाने मे इतनी अधिक सफलता मिली कि सन् १९३८ तक रूस अपनी आवश्यकता का लगभग तीन-चौथाई रबर स ब्यू-टाडाईन से बना सकने मे समर्थ हो सका। ऐलकोहल से ब्यूटाडाईन बनाने मे रूस मे जो सफलता मिली उससे प्रेरित हो कर अमेरिका तथा अन्य देशो मे भी इसी से ब्यू-टाडाईन बनाना आरम्भ हो गया है।

(५) एथिल ऐलकोहल का एक दूसरा महत्त्व का उपयोग वायुयानो मे सहायक ईधन के रूप मे है। ऐलकोहल का यह उपयोग सन् १९४४ से आरम्भ हुआ है। इसके लिए वायुयानो के इजनो मे एक विशेष यत्र लगाया जाता है जिसका काम ऐलकोहल को बहुत महीन कणो के रूप मे परिवर्तित कर उस समय इजन मे भेजना है जिस समय वहॉ दहन के लिए उपयुक्त दशा पहले से उत्पन्न कर दी गयी है। जर्मनी, ब्राजिल तथा कुछ अन्य देशो मे पेट्रोल के साथ मिश्रित कर मोटरकार के इजनो मे भी इसका उपयोग ईंधन के रूप मे होता है। साधारणत ६५ प्रतिशत तक ऐलकोहल पेट्रोल के साथ इस काम के लिए मिलाया जा सकता है।

(६) रग-उद्योग मे विलायक के रूप मे।

(७) घावो को धोने मे। यह एक अच्छा प्रतिपूय और नि सक्रामक (antiseptıc and dısınfectant) है और इस कारण चिकित्सा के क्षेत्र मे घावो को धोने के लिए इसका उपयोग होता है।

(८) पीने की दवाओ मे डालने मे उत्तेजक के रूप मे।

(९) फूलो तथा अन्य वस्तुओ से सुगन्धियो (इत्र आदि) का निष्कर्षण करने मे। यह उपयोग भी इसकी विलायक शक्ति पर आधारित है।

(१०) स्पिरिट लैंप तथा स्टोव मे जलाने के लिए ईधन के रूप मे। यह उपयोग इसके ज्वलनशील गुण पर आधारित है।

(११) मरे हुए जीवो को परिरक्षित (preserve) करने मे। अच्छा नि स-क्रामक होने के कारण इसमे वस्तुएँ सडने नही पाती।

(१२) पारदर्शक साबुन बनाने मे।

(१३) प्रयोगशालाओ मे विलायक के रूप मे।

ऐसीटोन और ब्यूटिल ऐलकोहल

(Acetone and Butyl Alcohol)

सन् १९१० मे फर्नबैक (Fernback) ने पास्तूर इन्स्टीट्यूट मे (फ्रान्स मे) एक नया जीवाणु ज्ञात किया, जिसमे आलू के स्टार्च को किण्वित कर नार्मल-ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन मे परिणत करने का गुण था। उन दिनो ब्यूटिल ऐलकोहल की माँग कृत्रिम रबर उद्योग मे ब्यूटाडाईन बनाने के लिए बहुत थी। ऐसीटोन तो एक बहुत उपयोगी तथा मूल्यवान् पदार्थ है ही, अत फर्नबैक की यह खोज बहुत महत्त्व की ज्ञात हुई और इसके आधार पर ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन बनाने के लिए एक कारखाना इग्लैड मे उन्ही दिनो खोला गया। इस कारखाने के खुलने के थोडे ही दिनो बाद प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध के फलस्वरूप विस्फोटक बनाने के लिए ऐसीटोन की माँग बढी। उन दिनो इग्लैड मे ऐसीटोन मुख्य रूप से अमेरिका तथा आस्ट्रिया से आता था और वहाॅ यह लकडी के भजक-आसवन उद्योग मे उपजात के रूप मे प्राप्त होता था। इस उद्योग से प्राप्त होने वाले ऐसीटोन से युद्ध की सम्पूर्ण माॅग को पूरा कर सकना सम्भव नही था। अत इग्लैड मे ऐसीटोन को अन्य विधियो से प्राप्त करने की ओर ध्यान दिया गया। स्वभावत फर्नबैक की खोज पर आधारित विधि से ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन बनाने के लिए जो कारखाना इग्लैड मे खुला था उस ओर लोगो का ध्यान गया। इस विधि को व्यापक रूप से अपनाने का प्रयत्न इग्लैड मे किया गया, किन्तु एक दूसरी कठिनाई जो सामने उपस्थित हुई वह यह थी कि इग्लैड मे आलू की भी कमी थी और फर्नबैक का जीवाणु अन्य स्टार्च वाले पदार्थो के लिए उपयुक्त नही था। इस कठिनाई के कारण फर्नबैक की विधि से ऐसीटोन बना कर युद्ध सम्बन्धी ऐसीटोन की पूरी आवश्यकता पूरी नही की जा सकती थी। इसी बीच सन् १९१५ मे वीज़मैन (Weizmann) ने एक दूसरा जीवाणु खोज निकाला जो

मकई के स्टार्च तथा अन्य अन्न के स्टार्च पर क्रिया करने मे समर्थ था और इन पदार्थों के स्टार्च को फर्नबैक के जीवाणु की भाँति ही ब्यूटिल ऐलकोहल तथा ऐसीटोन मे परिणत करने का गुण रखता था। वीजमैन की इस खोज का लाभ उठाने के लिए इग्लैड और कनाडा मे तुरन्त कई कारखाने मकई के स्टार्च तथा चावल की सस्ती किनकियो के स्टार्च से ऐसीटोन बनाने के लिए खोले गये। वीजमैन ने स्वय ही इन कारखानो में अपनी विधि से ऐसीटोन बनाने की कार्यविधि की देख-रेख की जिम्मेदारी ली। कनाडा के टोरटो (Toronto) नामक स्थान पर खोले गये ब्रिटिश ऐसीटोन कम्पनी के कारखाने को वीज़मैन की विधि से ऐसीटोन बनाने मे सबसे अधिक सफलता मिली और युद्धकाल मे यह कारखाना २०० टन ऐसीटोन प्रति मास बनाता रहा। इसके अतिरिक्त इग्लैड तथा अमेरिका मे अन्य कई कारखानो को भी वीज़मैन की विधि से ऐसीटोन बनाने मे इस काल मे सफलता मिली।

वीज़मैन की विधि मे जो जीवाणु स्टार्च को ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन मे परिवर्तित करता है वह क्लास्ट्रीडियम ऐसीटोब्यूटाइलिकम (Clostridium acetobutylicum) है। यह दड के आकार का एक जीवाणु है और तनु स्टार्च-निलम्बन मे वृद्धि करता है। यह जीवाणु एक ऐमिलेस एज़ाइम उत्पन्न करता है जो स्टार्च को बिना शर्करा मे जल-विश्लेषित किये सीधे ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन मे परिणत कर देता है।

वीज़मैन की विधि द्वारा स्टार्च से ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन निम्न प्रकार से बनाया जाता है —

महीन पिसे मकई (या अन्य स्टार्च वाले अन्न) के आटे मे भार के अनुपात से लगभग ९२–९४ प्रतिशत पानी मिला कर आटे का एक पतला मिश्रण तैयार किया जाता है जिसे पकक या स्लरी (slurry) कहते हैं। स्लरी को ऊँचे दाब की भाप द्वारा पका कर लेई के रूप मे कर लिया जाता है। पकाने से आटे मे मौजूद सब जीवाणु भी नष्ट हो जाते है। इस प्रकार बनाया गया पदार्थ अब मैश कहलाता है। इसे शीतको (coolers) के भीतर से प्रवाहित कर कुछ ठढा किया जाता है और फिर किण्वन कुडो मे पहुँचा दिया जाता है जो बद बर्तन होते हैं। यहाँ ताप ३७° सें० ग्रे० के आस-पास रखा जाता है। अब क्लास्ट्रीडियम ऐसीटोब्यूटाइलिकम का शुद्ध कल्चर (culture) मैश मे मिला कर इसे ७२ घटे तक किण्वन होने के लिए रख दिया जाता है। किण्वन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सब उपकरण आरम्भ मे पूर्ण रूप से जीवाणुरहित हो। किण्वन की समाप्ति के बाद किण्वित द्रव मे से प्रभाजी आसवन द्वारा ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन पृथक्-पृथक् प्राप्त

कर लिये जाते हैं। प्रभाजी आसवन के लिए भिन्न प्रकार के भभके उपयोग मे आते है।

वीज़मैन की विधि मे प्रत्येक १०० भाग मकई से २६–२८ भाग रासायनिक द्रव प्राप्त होता है। इस रासायनिक द्रव मे ब्यूटिल ऐलकोहल लगभग ६० प्रतिशत, ऐसीटोन ३० प्रतिशत और एथिल ऐलकोहल ८–१० प्रतिशत रहता है। इन यौगिको के अतिरिक्त कार्बन डाइ-आक्साइड और हाइड्रोजन गैसे भी किण्वन मे निकलती है जिनकी मात्रा द्रव रासायनिक यौगिको की तुलना मे डेढ गुनी होती है। इस प्रकार वीजमैन की विधि मे प्रत्येक एक भाग ऐसीटोन के साथ दो भाग ब्यूटिल ऐलकोहल प्राप्त होता है। ब्यूटिल ऐलकोहल की माँग ऐसीटोन की तुलना मे उन दिनो भी विशेष नही थी, अत यह एकत्रित होता गया। जब प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया और ऐसी-टोन की माँग अधिक न रही तब इसका मूल्य बहुत गिर गया और फलस्वरूप इस विधि से ऐसीटोन का बनाना लाभप्रद न रह गया, क्योकि इसके साथ बडी मात्रा मे प्राप्त होने वाले ब्यूटिल ऐलकोहल का बाजारो मे कोई विशेष मूल्य नही था। अत प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद वीजमैन की विधि से ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन का बनाया जाना बद हो गया।

सन् १९४२ से ब्यूटिल ऐलकोहल की माँग कृत्रिम रबर उद्योग मे ब्यूटाडाईन बनाने के लिए बढने लगी और तब से पुन वीज़मैन की विधि द्वारा स्टार्च से ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन का बनाया जाना आरम्भ हुआ है। अमेरिका मे आजकल बडी मात्रा मे मकई के स्टार्च से वीजमैन की विधि द्वारा ब्यूटिल ऐलकोहल और ऐसीटोन प्राप्त किया जाता है।

ब्यूटिल ऐलकोहल के गुणधर्म और उपयोग—नार्मल-ब्यूटिल ऐलकोहल एक द्रव है जिसका क्वथनांक ११६.८° से० ग्रे० है। इसकी गंध अरुचिकारक होती है और पानी मे यह केवल थोडा ही विलेय है।

नार्मल-ब्यूटिल ऐलकोहल तथा इसका ऐसीटेट यौगिक दोनो ही बहुत अच्छे विलायक है और इनका बडा उपयोग नाइट्रोसेल्यूलोस को घुलाने मे तथा प्रलाक्षा-रस (lacquer) और पेंट बनाने मे विलायक के रूप मे होता है। ब्यूटिल ऐसीटेट मे फलो की सी अच्छी सुगन्ध होती है और इसका उपयोग मिठाइयो, शर्बतो आदि मे सुगन्ध के रूप मे भी होता है। कृत्रिम रबर उद्योग मे ब्यूटाडाईन बनाने के लिए भी इसका बड़ा उपयोग होता है। ब्यूटिल ऐलकोहल के वाष्प को उपयुक्त उत्प्रेरक (Al_2O_3, V_2O_5 आदि) पर ऊँचे ताप पर (३००° से० ग्रे० से ऊपर) प्रवाहित करने से ब्यूटाडाईन प्राप्त होता है। अभिक्रिया निम्न दो पदो मे होती है :—

$$CH_3\,CH_2{\cdot}CH_2\,CH_2OH \xrightarrow[300^\circ-350^\circ]{Al_2O_3} CH_3\,CH_2\,CH{=}CH_2 \xrightarrow[400^\circ-450^\circ]{Al_2O_3} CH_2{=}CH{\cdot}CH{=}CH_2$$

नार्मल ब्यूटिल ऐलकोहल — ब्यूटीन-१ — ब्यूटाडाईन
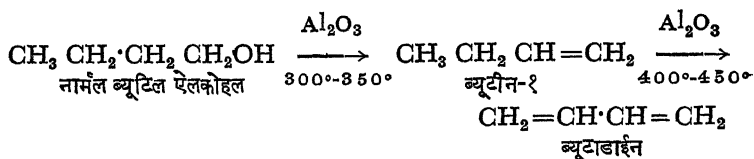
ऐसीटोन के गुणधर्म और उपयोग—यह रगरहित एक द्रव है। इसमे एक विशेष प्रकार की मीठी रुचिपूर्ण गध होती है। यह बडा ज्वलनशील है और इसका क्वथनाक ५६ ५° है। पानी, ऐलकोहल और ईथर मे यह पूर्ण रूप से मिश्र्य है। यह एक अच्छा विलायक है और बहुत से कार्बनिक यौगिको को सरलता से घुला लेता है।

एक अच्छा विलायक होने के कारण ऐसीटोन का उपयोग प्रयोगशालाओ और उद्योग-धधो मे बहुत होता है। कॉर्डाइट (cordite), कोलोडियन (collodion), कृत्रिम रेशम और वार्निश बनाने मे यह विलायक के रूप मे प्रयुक्त होता है।

ऐसीटोन का बडा उपयोग ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड बनाने मे होता है जो स्वय सेल्यूलोस ऐसीटेट के काम मे बहुत आता है। सेल्यूलोस ऐसीटेट से कृत्रिम रेशम, फोटो खीचने की फिल्म तथा विभिन्न प्लास्टिक बनाये जाते है।

ऐसीटोन से क्लोरोफार्म, आयडोफार्म, सल्फोनल, क्लोरीटोन आदि यौगिक बनाये जाते है जिनका चिकित्सा विज्ञान मे दवाओ के रूप मे बडा उपयोग है।

ऐसीटोन से क्लोरोफार्म—ऐसीटोन को विरजक चूर्ण (bleaching powder) और पानी के साथ आसवित करने पर क्लोरोफार्म प्राप्त होता है। अभिक्रियाएँ निम्न अनुसार होती है। विरजक चूर्ण जल-विश्लेषित हो कर क्लोरीन और चूना उत्पन्न करता है —

$$\underset{\text{विरंजक चूर्ण}}{CaOCl_2} + H_2O \longrightarrow \underset{\text{चूना}}{Ca(OH)_2} + Cl_2$$
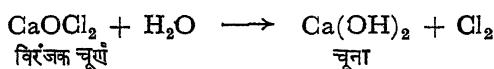
क्लोरीन फिर ऐसीटोन पर प्रक्रिया कर इसे ट्राइक्लोरोऐसीटोन मे परिणत करती है, और ट्राइक्लोरोऐसीटोन फिर चूने द्वारा जल-विश्लेषित हो कर क्लोरोफार्म उत्पन्न करता है —

$$\text{(i)}\quad \underset{\text{ऐसीटोन}}{CH_3COCH_3} + 3Cl_2 \longrightarrow \underset{\text{ट्राइक्लोरोऐसीटोन}}{CCl_3{\cdot}CO\,CH_3} + 3HCl$$

$$\text{(ii)}\quad CCl_3\,CO{\cdot}CH_3 + Ca(OH)_2 \longrightarrow \underset{\text{क्लोरोफार्म}}{2CHCl_3} + \underset{\text{कैल्सियम ऐसीटेट}}{(CH_3COO)_2Ca}$$
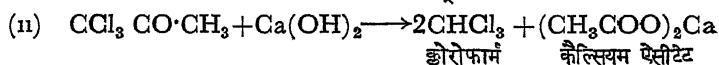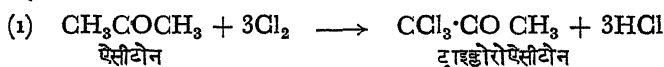
ऐसीटोन से सल्फोनल—ऐसीटोन को एथिल मरकैप्टन के साथ अभिकृत कर पहले ऐसीटोन मरकैप्टोल प्राप्त किया जाता है और फिर ऐसीटोन मरकैप्टोल को

पोटैसियम परमैंगनेट द्वारा आक्सीकृत करने पर सल्फोनल बनता है। अभिक्रियाएँ निम्न समीकरण के अनुसार होती है —

$$\begin{matrix} CH_3 \\ CH_3 \end{matrix} \rangle CO + \begin{matrix} HSC_2H_5 \\ HSC_2H_5 \end{matrix} \xrightarrow{-H_2O} \begin{matrix} CH_3 \\ CH_3 \end{matrix} \rangle C \langle \begin{matrix} SC_2H_5 \\ SC_2H_5 \end{matrix} \xrightarrow[{[O]}]{KMnO_4}$$

ऐसीटोन एथिल मरकैप्टन (दो अणु) ऐसीटोन मरकैप्टोल

$$\begin{matrix} CH_3 \\ CH_3 \end{matrix} \rangle C \langle \begin{matrix} SO_2C_2H_5 \\ SO_2C_2H_5 \end{matrix}$$
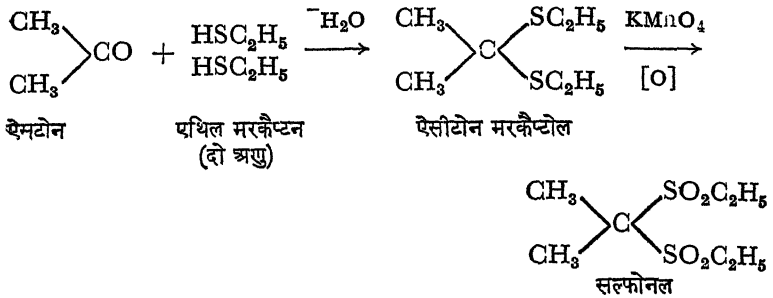
सल्फोनल

ऐसीटोन से क्लोरीटोन—ऐसीटोन को जब कास्टिक क्षार की उपस्थिति मे क्लोरोफार्म के साथ अभिकृत किया जाता है तो क्लोरीटोन प्राप्त होता है :—

$$(CH_3)_2CO + CHCl_3 \xrightarrow{\text{क्षार}} (CH_3)_2C \langle \begin{matrix} OH \\ CCl_3 \end{matrix}$$
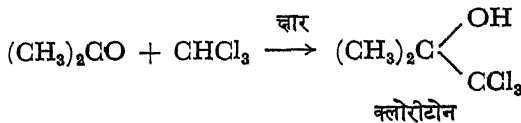
क्लोरीटोन

सल्फोनल नीद लाने के लिए अच्छी दवा है। सिर मे चक्कर आने तथा ज्वर के समय दवा के रूप मे क्लोरीटोन का उपयोग होता है

ऐसीटोन से आइसोप्रीन (isoprene) बडी मात्रा मे बनायी जाती है।

ऐसीटोन से आइसोप्रीन—ऐसीटोन पोटैसियम हाइड्राक्साइड के चूर्ण की उपस्थिति मे ऐसीटिलीन से संघनित कर ३-मेथिल ब्यूटाइनॉल (3-methyl butynol) बनाता है जो अवकृत किये जाने पर ३-मेथिल ब्यूटीनॉल (3-methyl butenol) देता है। ३-मेथिल ब्यूटीनॉल का उपयुक्त उत्प्रेरक की उपस्थिति मे निर्जलीकरण (dehydrate) करने पर आइसोप्रीन बनता है—

$$\begin{matrix} CH_3 \\ CH_3 \end{matrix} \rangle CO \xrightarrow[KOH]{CH \equiv CH} \begin{matrix} CH_3 \\ CH_3 \end{matrix} \rangle C \langle \begin{matrix} OH \\ C \equiv CH \end{matrix} \xrightarrow[{[H]}]{\text{अवकरण}}$$

३-मेथिल ब्यूटाइनॉल

$$\begin{matrix} CH_3 \\ CH_3 \end{matrix} \rangle C \langle \begin{matrix} OH \\ CH = CH_2 \end{matrix} \xrightarrow{-H_2O} \begin{matrix} CH_2 = C - CH = CH_2 \\ | \\ CH_3 \end{matrix}$$

३-मेथिल ब्यूटीनॉल आइसोप्रीन
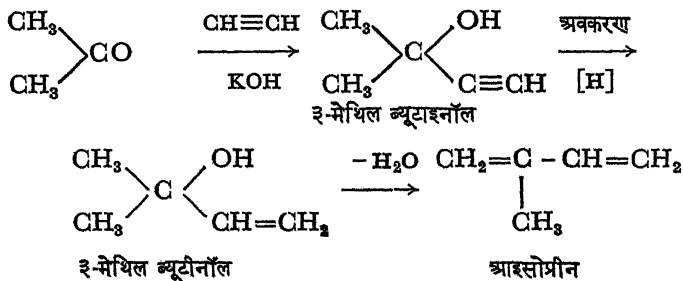
एसीटिलीन को घुला कर सगृहीत रखने मे भी इसका उपयोग होता है।

ऐसीटोन के कुछ हैलोजन व्युत्पन्न, जैसे मॉनोक्लोरोऐसीटोन, डाइक्लोरोऐसीटोन और ब्रोमोऐसीटोन, आँखो की अश्रु ग्रन्थियो पर प्रभाव डाल कर अश्रु बहाते हैं। अत. ये आँखो को अस्थायी रूप से क्रियाहीन करने वाले पदार्थो के रूप मे युद्ध.या दगे के समय मे उपयोगी होते हैं।

ग्लिसरोल (Glycerol)

जैसा हम पीछे पढ चुके है, ऐलकोहली किण्वन मे ग्लिसरोल भी थोडी मात्रा में उपजात के रूप मे बनता है। किण्वन होने वाले द्रव मे जितनी शक्कर रहती है उसके अनुपात से लगभग तीन प्रतिशत ग्लिसरोल साधारण अवस्था मे बनता है। सन् १९११-१२ मे जर्मन रसायनज्ञ न्यूबर्ग (Neuberg) और उसके सहयोगियो[९, १०] ने यह ज्ञात किया कि यीस्ट द्वारा शक्कर का किण्वन यदि सोडियम सल्फाइट की उपस्थिति मे कराया जाता है तो ग्लिसरोल बनने की क्रिया, जो निम्न समीकरण के अनुसार होती है, बहुत बढ जाती है —

$$\underset{\text{शक्कर}}{C_6H_{12}O_6} \xrightarrow{Na_2SO_3} \underset{\text{ऐसीटैल्डीहाइड}}{CH_3CHO} + CO_2 + \underset{\text{ग्लिसरोल}}{C_3H_8O_3}$$

किन्तु ऊपर की अभिक्रिया के साथ-साथ साधारण एथिल ऐलकोहल बनने की अभिक्रिया भी होती रहती है और इस कारण ग्लिसरोल बनने की ऊपर की अभिक्रिया पूर्ण नही होती। प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि सल्फाइट की पर्याप्त मात्रा की उपस्थिति मे अधिक से अधिक ३५ प्रतिशत तक ग्लिसरोल बनता है।

ऊपर बतलायी खोज न्यूबर्ग ने प्रथम महायुद्ध से कुछ पहले की थी। जर्मनी मे जब प्रथम महायुद्ध के समय विस्फोटक पदार्थ बनाने के लिए ग्लिसरोल की कमी होने लगी तब वहाँ न्यूबर्ग की खोज के आधार पर शक्कर के किण्वन द्वारा ग्लिसरोल का बनाना आरम्भ किया गया था। इस विधि मे सल्फाइट की बडी मात्रा का उपयोग करना पडता है। साधारणत किण्वन-द्रव मे जितनी शक्कर होती हे उसके भार के लगभग बराबर सोडियम सल्फाइट डालना पडता है। सोडियम सल्फाइट की इतनी मात्रा का इस्तेमाल करने से खर्च बहुत पडता है। इसके साथ ही एक कठिनाई यह होती है कि किण्वित द्रव मे विलेय लवणो की बहुत अधिक मात्रा एकत्रित हो जाती है जो ग्लिसरोल को उसमे से निकालने मे प्रतिरोध उत्पन्न करती है और फलस्वरूप किण्वित द्रव मे से पूरा ग्लिसरोल निकाला नही जा सकता। इसके अतिरिक्त जो

ग्लिसरोल प्राप्त होता है वह भी अच्छे प्रकार का नही रहता। इन सब दोषो के कारण प्रथम महायुद्ध के बाद इस विधि द्वारा ग्लिसरोल का बनाया जाना बद हो गया।

नवीन खोजो द्वारा ग्लिसरोल-किण्वन मे सुधार हुए है। यह ज्ञात हुआ है कि अधिक विलेय सोडियम सल्फाइट के स्थान मे यदि कम विलेय कैल्सियम या मैग्नीशियम बाइ-सल्फाइट का उपयोग किया जाय और किण्वन-द्रव थोडा अम्लीय रखा जाय तो किण्वित द्रव से ग्लिसरोल पृथक् करने मे विशेष कठिनाई नही पडती। किण्वन की समाप्ति के बाद किण्वित द्रव को छानने पर यीस्ट तथा सल्फाइट की अधिक मात्रा निकल जाती है और छने द्रव मे विलेय लवण की अधिक मात्रा नही रहती। इस छने द्रव का आसवन करने पर वाष्पशील ऐसीटैल्डीहाइड तथा एथिल ऐलकोहल निकल जाते है और रिटार्ट मे ग्लिसरोल बच रहता है। रिटार्ट के अवशिष्ट द्रव मे से फिर ग्लिसरोल शुद्ध रूप मे प्राप्त किया जा सकता है।[११] अभी भी बराबर अमेरिका तथा अन्य देशो मे ग्लिसरोल-किण्वन मे खोज हो रही है। यह आशा की जाती है कि इन खोजो के फलस्वरूप ग्लिसरोल-किण्वन मे इतना सुधा॰ हो जायगा कि इस विधि द्वारा ग्लिसरोल का बनाना काफी सस्ता होगा।

गुणधर्म—ग्लिसरोल एक रगरहित गाढा द्रव है। इसका स्वाद मीठा होता है किन्तु इसमे गध कुछ नही होती। ठढा किये जाने पर यह मणिभीय सफेद ठोस के रूप मे जम जाता है। इस ठोस का गलनाक १८° से० ग्रे० है। ग्लिसरोल का क्वथनाक २९०° से० ग्रे० है, किन्तु यदि इसमे कुछ अपद्रव्य रहते है तो यह अपने क्वथनाक पर विच्छेदित हो जाता है। अत ग्लिसरोल का आसवन क्षीण दाब पर किया जाता है। यह आर्द्रताग्राही (hygroscopic) है और पानी तथा ऐलकोहल मे शीघ्र घुल जाता है किन्तु ईथर मे नही घुलता। यह पानी से भारी है और इसका विशिष्ट गुरुत्व १ २६ है।

ग्लिसरोल मे हाइड्राक्सिल मूलक रहते है। अत इसके गुण ऐलकोहल के समान है। इसमे तीन हाइड्राक्सिल मूलक है और इसका सूत्र निम्न प्रकार है —

$$\begin{array}{l} CH_2OH \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH \end{array}$$
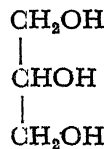
अत अन्य ऐलकोहलो की भाँति ग्लिसरोल भी कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनो प्रकार के अम्लो के साथ एस्टर बनाता है। त्रि-हाइड्रिक ऐलकोहल होने के कारण यह किसी

भी एक-भास्मिक अम्ल के एक, दो या तीन अणुओ के साथ सयोग कर क्रमश एक-, द्वि- या त्रि- अम्ल एस्टर बनाता है। उदाहरणार्थ, ऐसीटिक अम्ल के साथ यह क्रमश. एक-, द्वि- या त्रि-ऐसीटिल यौगिक बनाता है जो क्रमश मॉनो-, डाइ- या ट्राइ-ऐसीटिन कहलाते है —

(i)
$$\begin{matrix} CH_2OH + \underset{\text{ऐसीटिक अम्ल}}{HOOC\,CH_3} \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH \end{matrix} \longrightarrow \begin{matrix} CH_2OCO\,CH_3 \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH \end{matrix} + H_2O$$

मॉनो-ऐसीटिन

(ii)
$$\begin{matrix} CH_2OH + HOOC\,CH_3 \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH + HOOC\,CH_3 \end{matrix} \longrightarrow \begin{matrix} CH_2OCO\,CH_3 \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OCO\,CH_3 \end{matrix} + 2H_2O$$

डाइ-ऐसीटिन

(iii)
$$\begin{matrix} CH_2OH + HOOC\,CH_3 \\ | \\ CHOH + HOOC\,CH_3 \\ | \\ CH_2OH + HOOC\,CH_3 \end{matrix} \longrightarrow \begin{matrix} CH_2OCO\,CH_3 \\ | \\ CHOCO\,CH_3 \\ | \\ CH_2OCO\,CH_3 \end{matrix} + 3H_2O$$

ट्राइ-ऐसीटिन
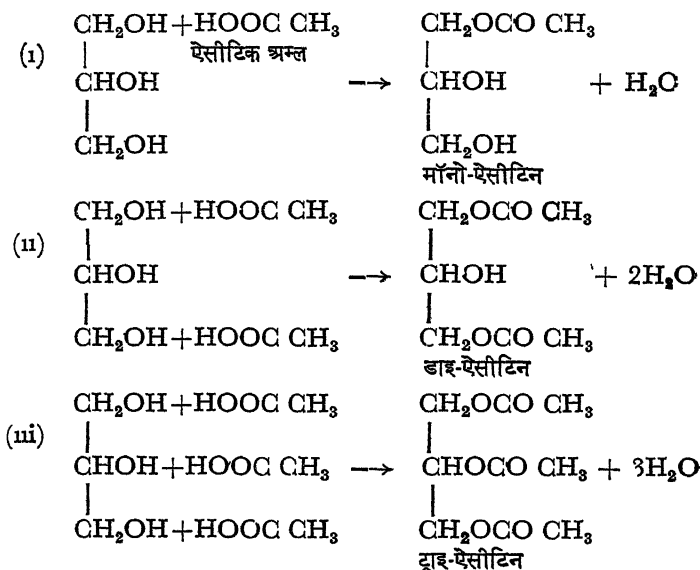
कार्बनिक अम्लो के साथ बने ग्लिसरोल के एस्टरो को ग्लिसराइड कहते है। इनका नाम अम्लो के नामो पर ही रखा जाता है, अम्ल के नाम के अन्तिम अक्षर 'क' के स्थान मे 'न' करने से इनका नाम बन जाता है। उदाहरणार्थ, ऐसीटिक अम्ल का ग्लिसराइड ऐसीटिन, स्टियरिक अम्ल का स्टियरिन, पामीटिक अम्ल का पामीटिन कहलायेगा। ग्लिसराइड बडे महत्त्व के यौगिक है और वनस्पतियो तथा जन्तुओ मे बहुत पाये जाते है। वनस्पति तेल, जन्तु तेल तथा चर्बी सब ग्लिसराइड है। ये ऊँचे वसा अम्लो, जैसे स्टियरिक अम्ल, पामीटिक अम्ल आदि तथा ऊँचे असतृप्त अम्लो, जैसे ओलीक अम्ल, लिनोलीक अम्ल आदि के ग्लिसराइडो के मिश्रण होते है। तेलो और चर्बियो मे स्टियरिक अम्ल, पामीटिक अम्ल और ओलीक अम्ल के ग्लिसराइड साधारणत अधिक व्यापक रूप से पाये जाते है। इन तीनो ग्लिसराइडो के सूत्र नीचे दिये जाते है —
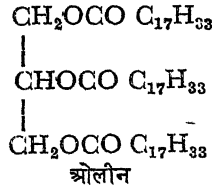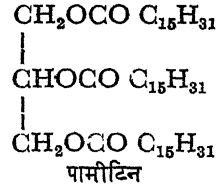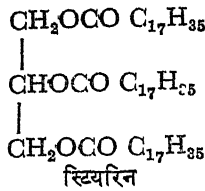
ये ग्लिसराइड जल-विश्लेषित होने पर अम्ल और ग्लिसरोल मे पृथक् हो जाते हैं। अत तेलो और चर्बियो को जब कास्टिक सोडा (या कास्टिक पोटाश) विलयन के साथ मिश्रित किया जाता है तो उनमे वर्तमान ग्लिसराइडो का जल-विश्लेषण हो जाता है और अम्ल तथा ग्लिसरोल मुक्त हो जाते है। अम्ल मुक्त होने पर कास्टिक सोडा (या पोटाश) के साथ अभिक्रिया कर सोडियम (या पोटैसियम) लवण बनाते है। ये लवण ही साबुन कहलाते है। इस प्रकार साबुन ऊँचे कार्बनिक वसा अम्लो तथा असतृप्त अम्लो के सोडियम (या पोटैसियम) लवण है—
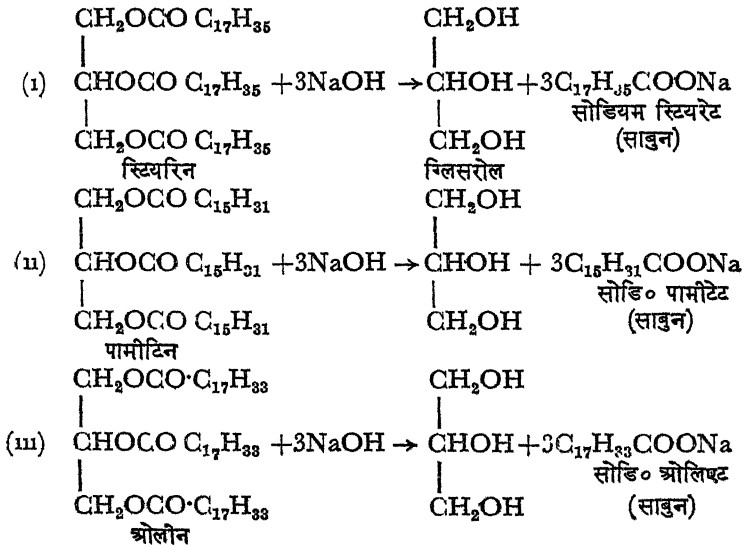
नाइट्रिक अम्ल के साथ ग्लिसरोल कई एस्टर बनाता है जिनमे ट्राइ-नाइट्रेट एस्टर बहुत महत्त्व का यौगिक है। इसे व्यापार मे नाइट्रोग्लिसरीन कहते हैं। नाइट्रोग्लिसरीन बनाने के लिए ग्लिसरोल को बूँद-बूँद कर सधूम नाइट्रिक अम्ल (२ भाग) और सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल (३ भाग) के मिश्रण मे, जो लगभग १०° सें० ग्रे० ताप पर रखा रहता है, डाला जाता है। अभिक्रिया निम्न समीकरण के अनुसार होती है :—

$$\begin{array}{l} CH_2OH \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2OH \end{array} + 3HNO_3 \xrightarrow{H_2SO_4} \begin{array}{l} CH_2ONO_2 \\ | \\ CHONO_2 \\ | \\ CH_2ONO_2 \end{array} + 3H_2O$$
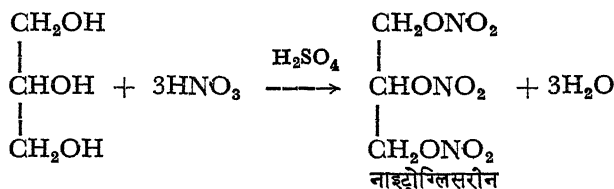
नाइट्रोग्लिसरीन

ऊपर की अभिक्रिया मे सल्फ्यूरिक अम्ल का कार्य उत्पन्न पानी को शोषित करना है जिससे नाइट्रोग्लिसरीन पुन जल-विश्लेषित न हो सके। नाइट्रोग्लिसरीन एक तेल की तरह का द्रव है और बनने पर पृथक् स्तर के रूप मे ऊपर उतरा आता है। इसे सँभाल कर अलग निकाला और शुद्ध किया जाता है। नाइट्रोग्लिसरीन एक बहुत शक्तिशाली विस्फोटक है, अत इसको बनाते समय बहुत ध्यान रखा जाता है कि विस्फोट न होने पाये।

नाइट्रोग्लिसरीन का बडा उपयोग डाइनमाइट (dynamite), कार्डाइट (cordite) तथा अन्य अनेक विस्फोटक बनाने मे होता है।

ग्लिसरोल के उपयोग—ग्लिसरोल एक महत्त्व का पदार्थ है। इसके कुछ मुख्य उपयोग निम्न है —

(१) पानी और ग्लिसरोल का मिश्रण कठिनता से जमता है और इस कारण शीत ऋतु मे ग्लिसरोल प्राय मोटरकारो के रेडियेटर मे भरे जाने वाले पानी मे मिश्रित किया जाता है जिससे पानी जमने नही पाता।

(२) चिकित्सा-क्षेत्र मे इसे सूजन आदि पर ठढक पहुँचाने के लिए लगाया जाता है और ग्लिसरोफास्फेट यौगिक के रूप मे यह पौष्टिक दवा (tonic) के रूप मे खाया जाता है।

(३) जल-विलेय रग (water colours), रबर की मोहरो की स्याही, जूते की पालिश तथा विभिन्न शृगार प्रसाधनो मे ग्लिसरोल का उपयोग इन्हे बराबर नम बनाये रखने के लिए होता है।

(४) ग्लिसरोल का सब से महत्त्वपूर्ण उपयोग इससे नाइट्रोग्लिसरीन का बनाना

है। जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, नाइट्रोग्लिसरीन एक शक्तिशाली विस्फोटक है और डाइनमाइट, कार्डाइट, ब्लास्टिग जेली आदि विस्फोटक तैयार करने मे इसका उपयोग होता है।

[**डाइनमाइट**—तीन भाग नाइट्रोग्लिसरीन को एक भाग किसुलगुर (kiesel-guhi) मे शोषित कराने से डाइनमाइट बनता है।

किसुलगुर एक महीन रध्रमय तथा सिलिकामय मिट्टी है। यह अक्रिय (inert) होने के कारण नाइट्रोग्लिसरीन की विस्फोटन शक्ति को घटा देता है जिसके फलस्वरूप नाइट्रोग्लिसरीन का उपयोग सुरक्षित रूप से किया जाना सम्भव होता है। नाइट्रोग्लिसरीन स्वय एक भयकर विस्फोटक है और जरा सा भी धक्का लगने या दाब पडने पर धडाके से विस्फोटित हो जाता है। इतना शीघ्र विस्फोटित होने के गुण के कारण नाइट्रोग्लिसरीन को अकेले उपयोग करना बडा भयप्रद होता है।

किसुलगुर के स्थान मे अन्य अक्रिय पदार्थ, जैसे लकडी की लुगदी (wood pulp), आटा आदि का भी डाइनमाइट बनाने मे नाइट्रोग्लिसरीन के शोषण के लिए उपयोग होता है। डाइनमाइट खदानो की खुदाई मे तथा पहाडो के बीच से सुरग आदि बनाने मे चट्टानो को तोडने के लिए बहुत इस्तेमाल किया जाता है।

कार्डाइट—कार्डाइट बनाने के लिए १८ भाग नाइट्रोग्लिसरीन को ७२ भाग गन-काटन (gun cotton) मे मिलाया जाता है और फिर इस मिश्रण मे पॉच प्रतिशत वैसलीन तथा कुछ ऐसीटोन मिला कर लेई के रूप मे कर लिया जाता है। इस लेई को महीन छेद (die) के भीतर से बडे दाब मे निकाला जाता है जिससे महीन धागे के रूप मे यह निकलता है। ऐसीटोन वाष्पशील होने से उड जाता है और धागे कडे पड जाते है। इन धागो को काट कर टुकडो मे कर लिया जाता है। यही कार्डाइट कहलाता है। यह बन्दूको मे गोलियाँ छुडाने के लिए इस्तेमाल होता है।

ब्लास्टिग जेली (Blasting jelly)—यह एक जेली की भाँति का पदार्थ है जो ९३ भाग नाइट्रोग्लिसरीन मे ७ भाग गन काटन मिश्रित करने से बनता है।]

लैक्टिक अम्ल (Lactic Acid)

लैक्टिक अम्ल विभिन्न उद्योगो के लिए एक महत्त्व का रासायनिक यौगिक है। आजकल यह अमेरिका तथा जर्मनी मे व्यापारिक मात्रा मे स्टार्च से प्राप्त किया जाता है। अमेरिका मे इस काम के लिए अधिकतर मकई के स्टार्च तथा जर्मनी मे आलू के स्टार्च का उपयोग होता है। बनाने की विधि निम्न प्रकार है —

स्टार्च को पहले तनु खनिज अम्ल (साधारणत H_2SO_4) के साथ उबाल कर

ग्लूकोस मे परिणत किया जाता है। प्राय अम्ल के साथ उबालने के पहले ऐमिलेस एन्ज़ाइम डाल कर कुछ समय तक स्टार्च-निलम्बन को रख दिया जाता है। ऐमिलेस स्टार्च का थोडा किण्वन कर इसे कुछ जल-विश्लेषित कर देता है। इसके बाद अम्ल के साथ उबालने पर अभिक्रिया शीघ्र होती है और स्टार्च पूर्ण रूप से ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित हो जाता है। जल-विश्लेषण के पूर्ण हो जाने के बाद जो विलयन प्राप्त होता है उसमे लगभग १० से २० प्रतिशत तक ग्लूकोस रहता है। इस विलयन के अम्ल को कैल्सियम कार्बोनेट या जिंक कार्बोनेट से उदासीन किया जाता है और फिर इसमे थोडा सा अकुरित माल्ट या अन्य पदार्थ, जो लैक्टिक अम्ल जीवाणुओ के लिए भोजन का कार्य करता है, डाल दिया जाता है। इसके बाद इसमे उपयुक्त लैक्टिक अम्ल जीवाणु (Lactobacillus delbruckii or Lactobacillus bulgaricus) के कल्चर की उचित मात्रा मिला कर ५०° से० ग्रे० ताप पर रख दिया जाता है। इस ताप पर लैक्टिक अम्ल जीवाणु विलयन मे मौजूद ग्लूकोस का किण्वन कर उसे लैक्टिक अम्ल मे विच्छेदित कर देता है। बीच-बीच मे कैल्सियम कार्बोनेट (या जिंक कार्बोनेट) डाल कर उत्पन्न हुए लैक्टिक अम्ल को उदासीन करते जाते है। यदि अम्ल को उदासीन नही किया जाता तो एक सीमा से अधिक अम्ल की मात्रा के विलयन मे एकत्रित होने पर किण्वन रुक जाता है और फिर और अधिक लैक्टिक अम्ल नही उत्पन्न होता। अभिक्रियाएँ निम्न समीकरणो के अनुसार होती हैं —

$$(i) \quad \underset{\text{स्टार्च}}{(C_6H_{10}O_5)_n} + nH_2O \xrightarrow{H_2SO_4} \underset{\text{ग्लूकोस}}{nC_6H_{12}O_6}$$

$$(ii) \quad \underset{\text{ग्लूकोस}}{C_6H_{12}O_6} \xrightarrow{\text{लैक्टिक जीवाणु}} \underset{\text{लैक्टिक अम्ल}}{2CH_3 \cdot CH(OH) \cdot COOH}$$
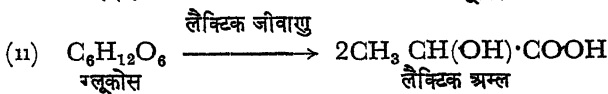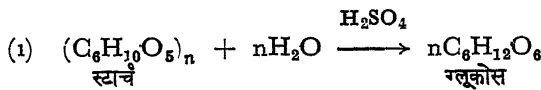
किण्वन की समाप्ति के बाद किण्वित द्रव मे लैक्टिक अम्ल कैल्सियम लैक्टेट (या जिंक लैक्टेट) के रूप मे रहता है। इसमे जितना कैल्सियम लैक्टेट रहता है उसी के तुल्याक अनुपात मे तनु सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाया जाता है। सल्फ्यूरिक अम्ल कैल्सियम लैक्टेट को विच्छेदित कर कैल्सियम सल्फेट और लैक्टिक अम्ल उत्पन्न करता है। छानने पर अविलेय कैल्सियम सल्फेट अलग निकल जाता है और विलयन मे केवल लैक्टिक अम्ल बच रहता है।

यदि किण्वन-क्रिया मे लैक्टिक अम्ल को उदासीन करने के लिए जिंक कार्बोनेट का उपयोग किया गया है तो किण्वित द्रव मे जिंक लैक्टेट रहता है। इसमे हाइड्रोजन

सल्फाइड गैस (H_2S) प्रवाहित की जाती है। जिक सल्फाइड अवक्षेपित हो कर पृथक् हो जाता है और लैक्टिक अम्ल मुक्त रूप मे विलयन मे रहता है। छान कर जिक सल्फाइड को निकालने के बाद लैक्टिक अम्ल का विलयन प्राप्त होता है।

ऊपर जो लैक्टिक अम्ल का विलयन प्राप्त होता है उसे निर्वात वाष्पको मे वाष्पित कर सान्द्र किया जाता है। एक गाढी चाशनी के रूप मे अशुद्ध लैक्टिक अम्ल प्राप्त होता है। इससे शुद्ध लैक्टिक अम्ल प्राप्त करने के लिए इसे शुद्ध मेथिल ऐलकोहल से शुष्क हाइड्रोजन क्लोराइड गैस की उपस्थिति मे अभिकृत किया जाता है। लैक्टिक अम्ल मेथिल लैक्टेट मे परिणत हो जाता है। प्रभाजी आसवन द्वारा मेथिल लैक्टेट को पृथक् कर शुद्ध रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। इसे फिर पानी के साथ उबाला जाता है जिसके फलस्वरूप यह मेथिल ऐलकोहल और लैक्टिक अम्ल मे जल-विश्लेषित हो जाता है। आसवन करने पर वाष्पशील मेथिल ऐलकोहल निकल जाता है और लैक्टिक अम्ल विलयन के रूप मे बच रहता है। इस विलयन को निर्वात मे वाष्पित कर सान्द्र किया जाता है। शुद्ध लैक्टिक अम्ल एक श्यान द्रव (viscous liquid) के रूप मे प्राप्त होता है।

गुणधर्म—लैक्टिक अम्ल एक रगरहित श्यान द्रव है जिसका क्वथनांक १२२° से० ग्रे० है। जब इसे शोषित्र (desiccator) मे काफी समय तक रखा रहने दिया जाता है तो यह धीरे-धीरे मणिभीकृत होता है। ऐसीटोन मे इसका विलयन बना कर भी इसे मणिभीकृत किया जा सकता है। मणिभ १८° से० ग्रे० पर पिघलते है। यह पानी, ऐलकोहल और ईथर मे शीघ्र विलेय है।

लैक्टिक अम्ल मे एक असममित कार्बन (asymmetric carbon) रहता है और इस कारण यह प्रकाश-सक्रिय (optically active) दो समावयवी रूपो मे पाया जाता है—एक समावयवी दक्षिणावर्ती (dextrorotatory) है और *d*-लैक्टिक अम्ल कहलाता है, दूसरा वामावर्ती (laevorotatory) है और *l*-लैक्टिक अम्ल कहलाता है। इन दोनो समावयवियो का समान मात्रा का मिश्रण प्रकाश-निष्क्रिय होता है और रैसीमिक लैक्टिक अम्ल (racemic lactic acid) कहलाता है।

जब इसे अकेला गरम किया जाता है तो यह थोडी मात्रा मे लैक्टाइड बनाता है। अभिक्रिया निम्न प्रकार से होती है —

$$\begin{array}{c} CH_3\,CH(OH) \\ | \\ COOH \end{array} + \begin{array}{c} HOOC \\ | \\ (HO)HC\,CH_3 \end{array} \longrightarrow \begin{array}{c} CH_3\,CH-O-CO \\ |\qquad\qquad | \\ CO-O-CH\,CH_3 \end{array} + H_2O$$

लैक्टिक अम्ल (दो अणु) — लैक्टाइड
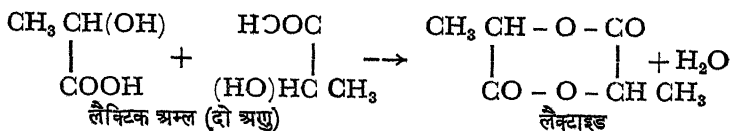
लैक्टाइड एक मणिभीय ठोस है (गलनाक १२५° सें० ग्रे०)।

लैक्टिक अम्ल को जब तनु सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम किया जाता है तो यह विच्छेदित हो कर फार्मिक अम्ल और ऐसीटैल्डीहाइड देता है —

$$CH_3\,CH(OH)\,COOH \longrightarrow \underset{\text{ऐसीटैल्डीहाइड}}{CH_3\,CHO} + \underset{\text{फार्मिक अम्ल}}{H\,COOH}$$
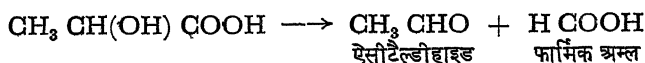
आक्सीकृत किये जाने पर लैक्टिक अम्ल पहले पाइरुविक अम्ल (pyruvic acid) देता है और फिर पाइरुविक अम्ल को आक्सीकृत करने पर ऐसीटिक अम्ल और कार्बन डाइ-आक्साइड बनते है —

$$CH_3CH(OH)COOH \longrightarrow \underset{\text{पाइरुविक अम्ल}}{CH_3\overset{O}{C}O\,COOH} \longrightarrow \underset{\text{ऐसीटिक अम्ल}}{CH_3COOH} + CO_2$$
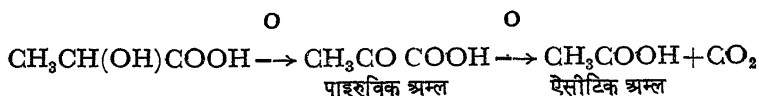
उपयोग—लैक्टिक अम्ल का विभिन्न उद्योगो मे बडा उपयोग है। अशुद्ध लैक्टिक अम्ल का उपयोग चमडे के कमाने की क्रिया मे खाल को चूनारहित (deliming) करने के लिए बहुत होता है।

वर्तमान समय मे लैक्टिक अम्ल की बडी माँग ऐक्रिलेट प्लास्टिक उद्योग मे है। यह ऐक्रिलिक अम्ल (acrylic acid) प्राप्त करने का मुख्य स्रोत है। ऐक्रिलिक अम्ल के लवणो से अनेक प्लास्टिक बनाये जाते है।

लैक्टिक अम्ल के कई लवणो का चिकित्सा मे तथा उद्योगो मे बहुत उपयोग होता है। उदाहरणार्थ,

(i) रगाई और छपाई के उद्योग मे ऐटीमनी लैक्टेट का रगस्थापक (mordant) के रूप मे उपयोग होता है।

(ii) कैल्सियम लैक्टेट शरीर मे कैल्सियम की कमी को पूरा करने के लिए खाने की दवा के रूप मे काम मे आता है।

(iii) टाइटेनियम लैक्टेट का उपयोग चमडा कमाने (tanning) मे होता है।

(iv) सोडियम और पोटैसियम लैक्टेट, जो चाशनी की तरह के द्रव है, ग्लिसरोल के स्थान मे बहुत से कामो मे प्रयुक्त किये जाते है।

२ ३-ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल (2 3-Butylene Glycol)

किण्वन उद्योग के आरम्भ मे ही यह ज्ञात हो चुका था कि स्टार्च और शर्कराओ का विभिन्न जीवाणुओ द्वारा किण्वन कराने पर थोडी मात्रा मे २ ३-ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल बनता है। किन्तु उस समय ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल का विशेष महत्त्व न होने के कारण इस ओर लोगो ने कोई ध्यान नही दिया। सन् १९३१ के बाद जब लोगो को

यह ज्ञात हुआ कि कृत्रिम रबर बनाने के लिए ब्यूटाडाईन बडी सरलता से ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल से बनाया जा सकता है तब से इस ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा ।

ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल किण्वन मे दो जीवाणु महत्त्व के है—ऐरोबैक्टर ऐरोजेन्स (Aerobacter aerogenes) और ऐरोबैसिलस पालीमिक्सा (Aerobacıllus polymyxa)। एरोबैक्टर ऐरोजेन्स केवल शर्करा को किण्वित करता है, स्टार्च को नही। ऐरोबैसिलस पालीमिक्सा स्टार्च को सीधे ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल मे परिवर्तित करता है।

क्लाइवर और शेफर[१२] (Kluyver and Scheffeı) ने सन् १९३३ मे ऐरोबैक्टर ऐरोजेन्स के किण्वन द्वारा शर्करा से ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल बनाने की विधि ज्ञात की। इस विधि मे स्टार्चयुक्त अन्न या अन्य वस्तु को मैश मे परिवर्तित करने के बाद इसे डायस्टेस-किण्वन द्वारा शर्करा मे पहले परिणत किया जाता है, और फिर इस शर्करा का किण्वन ऐरोबैक्टर ऐरोजेन्स द्वारा ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल मे किया जाता है। किन्तु इसमे सबसे बडा दोष यह है कि किण्वित द्रव मे से ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल निकालने मे कठिनाई पडती है, क्योकि अन्न के दानो के छिलके आदि अवशिष्ट पदार्थ ग्लाइकॉल को पूर्ण रूप से निकलने देने मे रुकावट डालते है।

सन् १९४४ में ऐरोबैसिलस पालीमिक्सा द्वारा स्टार्च को सीधे ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल मे किण्वित करने की विधि ज्ञात हुई[१३, १४]। यदि मैश मे शर्करा मौजूद रहती है तो किण्वन ठीक से नही हो पाता। इस विधि मे स्टार्च-युक्त अनाज को 'मैश' के रूप मे करने के बाद उसका किण्वन ऐरोबैसिलस पालीमिक्सा द्वारा ३५° –३७° सें० ग्रे० ताप पर कराया जाता है। स्टार्च का किण्वन हो जाता है और दो पदार्थ मुख्य रूप से बनते हैं—ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल और एथिल ऐलकोहल। इन दोनो का अनुपात लगभग दो भाग ग्लाइकॉल और एक भाग एथिल ऐलकोहल रहता है। इस विधि मे ऐरोबैक्टर ऐरोजेन्स के किण्वन की तरह किण्वित द्रव मे से ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल को निकालने मे कोई विशेष कठिनाई नही पडती। किन्तु इस विधि मे केवल एक ही दोष है और वह यह कि मैश बहुत पतला लेना पडता है जिसके कारण किण्वित द्रव मे ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल की प्रतिशत मात्रा बहुत कम रहती है ।

किण्वन की समाप्ति के बाद किण्वित द्रव मे से ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल को या तो वाष्प-आसवन (steam dıstıllatıon) द्वारा या ईथर अथवा किसी अन्य विलायक के निष्कर्षण द्वारा प्राप्त किया जाता है। विलायक द्वारा निष्कर्षण की रीति अधिक अच्छी है। इसमे किण्वित द्रव को पहले वाष्पित कर कुछ सान्द्र कर लिया जाता है और फिर विलायक द्वारा इसका निष्कर्षण किया जाता है। ग्लाइकॉल का

विलयन लिये गये विलायक मे प्राप्त होता है। इस विलयन का वाष्पन करने पर विलायक वाष्पित हो कर निकल जाता है और ग्लाइकॉल बच रहता है। यह शुद्ध नही होता। इस अशुद्ध ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल का प्रभाजी आसवन करने पर यह शुद्ध रूप मे प्राप्त हो जाता है।

ऊपर की विधि से कई देशो मे और विशेष कर अमेरिका तथा कनाडा मे ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल व्यापारिक मात्रा मे बनाया जाता है।

गुणधर्म—ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल एक श्यान द्रव है। इसका स्वाद कुछ मीठा होता है। यह पानी और ऐलकोहल मे शीघ्र विलेय है।

इसका बडा उपयोग कृत्रिम रबर उद्योग मे ब्यूटाडाईन बनाने के लिए होता है। इसे पहले डाइ-ऐसीटिल यौगिक मे परिवर्तित कर फिर उसे ऊँचे ताप पर गरम करने से ब्यूटाडाईन बनती है —

$$\underset{\text{२ ३-ब्यूटिलीन ग्लाइकॉल}}{CH_3\,\underset{|}{\underset{OH}{CH}} - \underset{|}{\underset{OH}{CH}}\,CH_3} \xrightarrow{CH_3COCl} CH_3\,\underset{OAc}{CH} - \underset{OAc}{CH}\,CH_3$$

$$\xrightarrow{580^\circ} \underset{\text{ब्यूटाडाईन}}{CH_2{=}CH{-}CH{=}CH_2}$$
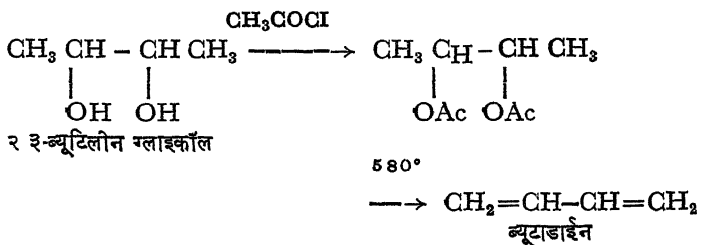
इस अध्याय मे केवल कुछ थोडे से रासायनिक यौगिको की चर्चा की गयी है जो स्टार्च अथवा स्टार्च से बनायी गयी शर्करा के किण्वन से प्राप्त होते है। इनके अतिरिक्त कई अन्य रासायनिक यौगिक और प्राप्त होते है जो विभिन्न जीवाणुओ या फफूंदो के शर्करा या अन्य पदार्थों पर क्रिया करने से बनते है। ये सब पदार्थ भी जिनका किण्वन जीवाणु या फफूंद करते है, स्टार्च से ही किसी विधि द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। अधिकाश किण्वनो मे शर्करा आरम्भिक पदार्थ होती है और यह शर्करा स्टार्च से प्राप्त की जाती है। किण्वन-क्रिया द्वारा प्राप्त होने वाले कुछ अन्य रासायनिक पदार्थ निम्न है —सिरका (vinegar), जो एथिल ऐलकोहल का ऐसीटोबैक्टर (Acetobacter) जीवाणुओ या माइकोडरमा ऐसीटी (Mycoderma aceti) फफूंद द्वारा किण्वन कराने से बनता है। इस किण्वन मे एथिल ऐलकोहल का ऐसीटिक अम्ल में आक्सीकरण हो जाता है —

$$\underset{\text{एथिल ऐलकोहल}}{CH_3CH_2OH} \xrightarrow{O} \underset{\text{ऐसीटिक अम्ल}}{CH_3COOH}$$
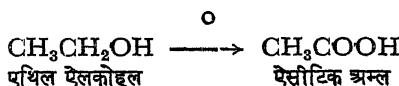
साइट्रिक अम्ल इक्षु-शर्करा को ऐस्परजिलस नाइजर (Aspergillus niger) फफूँद द्वारा किण्वित कराने से बनता है। इसी फफूँद द्वारा ग्लूकोस का किण्वन करने पर ग्लूकॉनिक अम्ल प्राप्त होता है।

निर्देश

1 L A Underkofler, E I Fulmer and L Schoene *Ind. Eng Chem*, 1939, 31, 734

2 L C Hao, E I Fulmer and L A Underkofler, *Ind Eng. Chem*, 1943, 35, 814

3 L A Underkofler, *Brewers Digest*, 1942, 17, No 12, 29

4 L A Underkofler and E I Fulmer, *Chronica Botanica*, 1943, 7, 420

5 L D Beckord, Eric Kneen and K H Lewis, *Ind Eng. Chem*, 1945, 37, 692

6 E I Fulmer *Iowa Corn Res Inst*, 1943, 3, No 1

7 W H Perkin, J Soc Chem Ind, 1912, 31, 616

8 A Gill, J *Soc Chem Ind*, 1919, 38, 273 T

9. C. Neuberg and A Hildescheimer, *Biochem Zeit*, 1911, 31, 170

10 C Neuberg and E Reinfurth *Biochem Zeit*, 1920, 106, 281

11 R J Hickey, E I Fulmer and L A Underkofler, U S. Patent Application

12 A J Kluyver and C Scheffer, U S P 1899, 156, 28/2/1933

13. H Katznelson, *Can J Research*, 1944, 22 C, 235

14 G A Ledingham and G A Adams, *Can Chem Process Inds*, 1944, 28, 742, 801

अध्याय १३

स्टार्च से बने आसंजक

ऐसे पदार्थ जो दूसरी वस्तुओ को चिपकाने के काम मे आते है **आसजक** (adhesives) कहलाते है। ये बहुत प्रकार के होते है और वनस्पति तथा जन्तु दोनो स्रोतो से प्राप्त होते है। आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व जन्तु-जगत् से प्राप्त पदार्थो का ही उपयोग मुख्य रूप से चिपकाने के कार्य के लिए होता था और इन सब पदार्थो मे सरेस प्रधान था। किन्तु अब वनस्पति पदार्थो का उपयोग आसजक के रूप मे अधिक होने लगा है। वनस्पति पदार्थो से बनाये गये आसजक तेज गति से चलने वाली मशीनो द्वारा लेबल चिपकाने के उपयुक्त विशेष रूप से होते है। ये दफ्ती के बक्स और प्लाईवुड (plywood) बनाने मे तथा लिफाफो और टिकटो पर गोद के रूप मे लगाने के लिए भी उपयुक्त सिद्ध हुए हैं।

स्टार्च का उपयोग आसजक के रूप मे बहुत प्राचीन काल मे मिस्र मे होता था। प्लाइनी (Pliny, १३० ईसवी पूर्व) ने भी चर्चा की है कि स्टार्च की लेई का उपयोग पपीरस (papyrus) को चिकना करने के लिए होता था। प्राचीन काल के चीन के कागज के जो नमूने मिले हैं उनके परीक्षण से जान पडता है कि प्राचीन चीन मे भी कागज की सतह को चिकना और रध्रहीन बनाने के लिए स्टार्च की लेई का उपयोग किया जाता था। फ्रान्स मे सत्रहवी शताब्दी के समय के जो चित्र और कागज दीवारो पर चिपके मिले हैं उनसे भी यह स्पष्ट है कि उस काल मे सजावट के अर्थ दीवारो पर कागजो के चिपकाने के लिए आटे की लेई का उपयोग होता था। इन सब तथ्यो से यह स्पष्ट है कि स्टार्च का उपयोग आसजक के रूप मे बहुत प्राचीन काल से होता रहा है।[1] जब से डाक के टिकटो और गोद लगे लिफाफो का चलन आरम्भ हुआ है तब से आसजक पदार्थो का उपयोग बहुत बढ गया है। आजकल व्यापार मे वस्तुओ को रखने के लिए कागज के थैलो तथा दफ्ती के बक्सो का बहुत प्रचलन है और इन थैलो तथा बक्सो को बनाने के लिए उपयुक्त आसजक की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार फोटो को दफ्ती पर चिपकाने के लिए भी उपयुक्त आसजक चाहिए। विभिन्न प्रकार के कार्य के लिए विभिन्न गुण वाले आसजको की आवश्यकता होती

है और आज विभिन्न उद्योगो के उपयुक्त आसजको को बनाना स्वय एक बडा उद्योग है।

वनस्पति-आसजको मे सबसे बडी अच्छाई यह है कि ये कमरे के ताप की अवस्था मे या कुनकुने ताप की अवस्था मे उपयोग किये जा सकते है। जन्तु-आसजको का उपयोग केवल गरम अवस्था मे ही हो सकता है। इसके साथ ही एक दूसरा गुण वनस्पति-आसजको मे यह है कि इनमे न तो कोई विशेष गध होती है और न कोई स्वाद। अत इनका उपयोग भोजन की वस्तुओ की पैकिंग के लिए तथा उन सब वस्तुओ पर लगाने के लिए जिनका सम्पर्क जीभ से होने की सम्भावना रहती है (जैसे टिकट और लिफाफे) किया जा सकता है। इसके विपरीत जन्तु-आसजको मे साधारणत तीव्र दुर्गन्ध होती है जिसके कारण भोजन वस्तुओ की पैकिंग आदि के लिए ये अनुपयुक्त है।

विभिन्न आसजक विभिन्न गुण के होते हैं। एक आसजक जो किसी विशेष कार्य के लिए उपयुक्त है, सम्भव है वह किसी दूसरे कार्य के लिए एकदम अनुपयुक्त हो। अत इनके सम्बन्ध मे यह बात बडे महत्त्व की है कि जिस कार्य के लिए आसजक का चुनाव करना है ऐसा आसजक चुना जाय जो उस कार्य के लिए उपयुक्त हो। जो आसजक बोतल पर लेबल चिपकाने के लिए उपयुक्त है वे लकडी पर लेबलो को चिपकाने के लिए भी उपयुक्त हो यह आवश्यक नही है। आसजक की किसी काम के लिए उपयुक्तता इस बात पर भी कुछ अश तक निर्भर करती है कि उसे हाथ से लगाना है या यत्र द्वारा। हाथ से लगाने मे काफी गाढा आसजक प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु मशीन द्वारा इस्तेमाल करने मे आसजक का काफी पतला होना आवश्यक है। पतली अवस्था मे होने पर बहुत से आसजक लेबलो को इतना गीला कर देते हैं कि सूखने पर लेबलो पर झुर्रियाँ सी दिखलाई देती हैं जिनके कारण लेबलो की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। मशीन द्वारा इस्तेमाल होने वाले आसजको मे यह भी गुण होना चाहिए कि पतली अवस्था मे उनमे चिपकाने का अच्छा गुण हो और वे उस वस्तु को, जिसके लिए उनका उपयोग हुआ है, मजबूती से चिपका सकें। इसके साथ ही इनमे धागे के रूप मे हो जाने का दोष भी नही होना चाहिए। प्राय. कुछ आसंजक ऐसे होते हैं कि जब उनके द्वारा किन्ही दो वस्तुओ को परस्पर चिपका कर फिर उन दोनो वस्तुओ को एक दूसरी से पृथक् किया जाता है तो इन दोनो के बीच मे लगा आसजक धागे के रूप मे हो कर निकलने लगता है। इस प्रकार का आसजक मशीन द्वारा उपयोग किये जाने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त होता है। मशीन जब तेज गति से घूमती है तो ऐसे आसजक धागे के रूप मे हो कर इधर-उधर छिटक जाते है और ठीक से लगाये नही जा सकते। उदाहरणार्थ, टैपियोका स्टार्च की लेई यद्यपि हाथ

से लगाने के लिए उपयुक्त है पर मशीन से लगाने के लिए उपयुक्त नही है। मशीन द्वारा प्रयोग किये जाने के लिए इसे पतला बनाना पडता है और उस दशा मे यह लेबलो को इतना भिगो देती है कि सूखने पर लेबलो पर सिकुडने दिखलाई देती है। इसके साथ ही पतली अवस्था मे इसमे चिपकाने की शक्ति भी कम रहती है। इसी प्रकार अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि टैपियोका डेक्सट्रिन और आलू का डेक्सट्रिन दोनो का पृथक् विलयन मशीन द्वारा इस्तेमाल किये जाने पर धागे बनाता है, किन्तु यदि टैपियोका स्टार्च और आलू के स्टार्च को उपयुक्त अनुपात मे मिला कर इस मिश्रण से डेक्सट्रिन बनाया जाय तो इसका विलयन मशीन द्वारा लेबलो पर लगाये जाने पर धागे के रूप मे नही परिवर्तित होता।

कुछ वस्तुओ पर चिपके लेबलो को पानी के सम्पर्क मे प्राय आना पडता है। अत ऐसे लेबलो मे जो आसजक लगाया जाय उसे ऐसा होना चाहिए कि उस पर पानी का शीघ्र प्रभाव न पडे। आसजको को जल-प्रतिरोधक बनाने के लिए उनमे प्राय बेरियम या कैल्सियम हाइड्राक्साइड अथवा कोई अन्य रासायनिक पदार्थ डाला जाता है।

पुरानी खाली शीशियो और बोतलो को पुन बिक्री के लिए नया सामान भरने के काम मे लाया जाता है। एसी अवस्था मे इन पर चिपके पुराने लेबलो को निकाल कर उनकी जगह नया लेबल लगाना पडता है। अत इन शीशियो और बोतलो पर लेबल चिपकाने के लिए जिस आसजक का उपयोग हो उसे ऐसा होना चाहिए कि बोतलो को पानी मे थोडी देर तक डुबा रखने पर लेबलो पर लगे आसजक घुल कर निकल जायँ और लेबल सरलता से छूट जायँ।

कॉच की सतह पर लेबल चिपकाने के अतिरिक्त हमे लकडी के दो टुकड़ो को परस्पर जोडने के लिए भी आसजको की आवश्यकता होती है। इसके लिए आसजको मे दो गुणो का होना बहुत आवश्यक है। पहला यह कि आसजक लकडी की सतह के प्रत्येक रध्र मे घुस सके और दूसरा यह कि पतली पर्त के रूप मे लगे रहने पर यह लकडी के टुकडो को परस्पर मजबूती से जोड सके।

प्रत्येक आसजक मे एक यह गुण होना भी बहुत आवश्यक है कि सूखने पर यह पपडी के रूप मे उचलने न लगे, या इतना भगुर न हो कि जरा सा दबाव पडने पर चूर हो कर निकल जाय। पेडो के गोदो मे यह दोष रहता है। ये भगुर होते है और जब इनका विलयन सूख जाता है तो ये पपडी के रूप मे प्राय उचल कर निकलने लगते है और दबाव पडने पर चूर हो कर गिर जाते है। आसजको के इस दोष को दूर करने के लिए उनमे ग्लिसरीन, ग्लूकोस या कुछ अन्य पदार्थ प्राय मिलाये जाते है।

स्टार्च तथा उसके व्युत्पन्न से विभिन्न प्रकार के आसजक बनाने की विधि तथा उनकी उपयोगिता यहाँ दी जाती है।

आटे की लेई (Flour paste)—सीधे आटे की लेई का उपयोग आसजक के अर्थ कई प्रकार के कामो मे किया जाता है। दफ्ती के बक्सो मे कागज चिपकाने, दीवारो पर कागज चिपकाने, पुस्तको की जिल्द बँधाई, कागजो के खिलौने तथा विभिन्न प्रकार के अन्य सामान बनाने मे आटे की लेई का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। यह लेई बहुत धीरे-धीरे सूखती है और इस कारण प्राय कागज उचलने लगता है। ऐसी दशा मे स्टार्च या डेक्सट्रिन का आसजक व्यवहार मे लाया जाता है।

आटे की लेई ऐसी बनानी चाहिए कि वह समाग और चिकनी हो। उसमे कोई गुठलापन न हो। दफ्ती के बक्सो और अटैची आदि पर कागज चिपकाने के लिए इस प्रकार की चिकनी लेई ही ठीक होती है। हाथ से बोतलो के लेबलो पर लगाने के लिए भी यह उपयुक्त होती है किन्तु मशीन द्वारा लगाये जाने के लिए यह उपयुक्त नही होती। यदि लेई को दीवारो पर इश्तिहार चिपकाने के लिए व्यवहार मे लाना है तो इसमे यह गुण होना आवश्यक है कि मौसमो की गर्मी और ठढक तथा वर्षा का प्रभाव इस पर विशेष न पडे। एक दूसरा गुण इसमे यह भी होना चाहिए कि सूखने पर लेई लगभग पारदर्शक हो। यदि सूखने पर लेई की पर्त पारदर्शक नही होती तो रगीन इश्तिहारो के लिए व्यवहार किये जाने के यह उपयुक्त नही होती, क्योकि ऐसी दशा मे रगीन इश्तिहारो के नीचे सफेद धब्बे से दिखलाई देते हैं।

गेहूँ और राई (rye) के आटे की लेई अधिक अच्छी होती है, किन्तु मकई, जौ और चावल के आटे की लेई भी प्राय बनायी जाती है और आसजक के रूप मे विभिन्न कामो के लिए उपयोग की जाती है। एक बार लेई बना कर साधारणत. इसे कई दिनो तक उपयोग मे लाया जाता है, अत रखने पर यह खराब न होने पाये यह आवश्यक है। लेई को स्थायी रखने के लिए इसमे थोडा सा ऐसीटिक अम्ल डाला जाता है। लेई में जल-धारण शक्ति (water holdıng capacıty) जितनी अधिक होती है उतनी ही अधिक वह स्थायी होती है। विभिन्न लेई तथा आसजको की जल-धारण शक्ति का आपेक्षिक अनुमान निम्न परीक्षण द्वारा किया जा सकता है —

विभिन्न आटे या स्टार्च जिनकी लेइयो की तुलना करनी होती है उनमे समान मात्रा मे पानी मिला कर उनकी अलग अलग पतली लेई बना ली जाती है। फिर ठढा होने के लिए रख दिया जाता हे। जब ठीक श्यानता की लेई बन जाती है तो प्रत्येक मे से समान माप का बेलनाकार टुकडा काट कर कॉच के ऊपर रखे एक छन्ने कागज (filteı) पर खडा रख दिया जाता है। प्रत्येक को बेल-जार से ढक दिया जाता है। कुछ समय

बाद प्रत्येक छन्ने कागज पर बने नमी के वृत्त का निरीक्षण किया जाता है। जिस लेई मे वृत्त का घेरा सबसे बडा होता है उसमे जल-धारण शक्ति सब से कम रहती है। जिस आटे की लेई से सब से छोटा वृत्त बनता है वह लेई सबसे अधिक जल-धारण शक्ति की होती है। इस प्रकार इस परीक्षण द्वारा मोटे तौर से लेई की जल-धारण शक्ति का तुलनात्मक अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर बतलाये अन्नो के अतिरिक्त कुछ कदो, जैसे टैपियोका और आलू, के महीन पिसे आटे की लेई भी साधारण कामो के लिए इस्तेमाल की जाती है, किन्तु ये लेइयाँ अधिक टिकाऊ नही होती और इस कारण केवल बहुत मामूली और सस्ते कामो मे ही इनका उपयोग किया जाता है।

यदि लेई अच्छी बनानी है तो इसका ध्यान रखना चाहिए कि जो आटा लिया जाय वह अच्छी जाति का हो और साथ ही लेई बनाते समय सफाई रखी जाय। यदि सफाई का उचित ध्यान नही रखा जाता तो रखने पर लेई पर फफूँद पैदा हो जाती है। ये फफूँद लेई के स्टार्च का किण्वन कर देती है और फलस्वरूप लेई का आसजक गुण नष्ट हो जाता है। फफूँदो से लेई की रक्षा करने के लिए आरम्भ मे आटे मे ० १ से ० २ प्रतिशत तक क्लोरीन आक्साइड मिश्रित हवा कुछ समय तक प्रवाहित की जाती है।

लेई की आसजकता तथा स्थायित्व (stability) की वृद्धि के लिए इसमे प्राय ऐल्यूमिनियम सल्फेट और ग्लिसरीन मिलायी जाती है। ऐल्यूमिनियम सल्फेट लेई की आसजकता मे वृद्धि करने के अतिरिक्त उसको परिरक्षित भी रखता है, लेई के सूखने के बाद उसे पानी के प्रभाव से बचाने मे भी ऐल्यूमिनियम सल्फेट सहायता करता है। ग्लिसरीन लेई को अधिक चिकना बनाती है और लेई के सूखने पर इसकी पर्त को मुलायम रखती है जिससे पपडी के रूप मे लेई उचलने नही पाती।

लेई को ठीक स्थान मे सुरक्षित रखने का भी ध्यान रखना आवश्यक है। इसे साधारण ठढे स्थान मे रखना चाहिए। इतने ठढे स्थान मे भी नही रखना चाहिए कि लेई जम जाय। ठढ से जमने पर लेई का पानी पृथक् हो जाता है और एक स्पज की तरह का भगुर ठोस बच रहता है जिसमे आसजकता का कोई गुण नही होता।

स्टार्च आसजक (Adhesives From Starch)

बनाने की विधि मे थोडा अन्तर करने से स्टार्च से विभिन्न रूप तथा गुण के आसजक बनाये जाते है। एक ही विधि से बनाते समय विभिन्न ताप रखने पर भी पतले आसजक से ले कर बहुत गाढे आसजक तक प्राप्त होते हैं। विभिन्न अन्नो तथा

अन्य पदार्थों के स्टार्चो से बनाये गये आसजक भी एक दूसरे से गुणो मे बहुत भिन्नता प्रदर्शित करते है। गुणो की इस भिन्नता के आधार पर ही विभिन्न स्टार्चो के आसजको का उपयोग विभिन्न कामो के लिए किया जाता है।

आसजक बनाने के लिए आलू और टैपियोका के स्टार्चो का उपयोग सब से अधिक होता है। इन दोनो मे भी टैपियोका स्टार्च विभिन्न प्रकार के आसजक बनाने के लिए अधिक उपयुक्त है। टैपियोका स्टार्च के आसजको की श्यानता (viscosity) अधिक होती है और ये चिकने भी होते है। इनके जोड आलू के स्टार्च से बनाये गये आसजको की अपेक्षा अधिक मजबूत होते है। इसके साथ ही टैपियोका स्टार्च के आसजको मे एक अच्छाई यह भी है कि ये बहुत सरलता से बन भी जाते है। आलू के स्टार्च से बने आसजको मे एक बडा दोष यह भी होता है कि उनमे कुछ कडवा स्वाद होता है तथा अरुचिपूर्ण गध होती है।

स्टार्च से निम्न प्रकार के आसजक बनाये जाते है —

(१) कास्टिक क्षारो के योग से,

(२) अन्य क्षारीय पदार्थो के योग से,

(३) अम्लो के योग से,

(४) लवणो, आक्सीकारको तथा फुलाने वाले पदार्थों (swelling agents) आदि के योग से।

कास्टिक क्षारो के योग से स्टार्च आसंजक बनाना—कास्टिक क्षारो की स्टार्च पर प्रक्रिया कराने से जो पदार्थ प्राप्त होते है वे बाजारो मे विभिन्न नामो से पुकारे जाते है, जैसे कोलोडाइन (collodine) तथा कोले-डु-जापोन (Colle-du-japon) आदि।

स्टार्च पर कास्टिक क्षारो की प्रक्रिया द्वारा ऐसे आसजक प्राप्त होते है जिनकी आसजक शक्ति बहुत अधिक होती है। इन आसजको के जोड इतने मजबूत होते है कि जो दो पदार्थ इनके द्वारा जुडे रहते है वे एक बार टूट सकते है, किन्तु जोड जल्दी नही टूट सकता। इनके जोडो पर पानी का भी प्रभाव शीघ्र नही पडता। ये आसजक ठढी तथा गरम दोनो विधियो से बनाये जाते है। ठढी विधि से बनाये गये आसजक गरम विधि से बनाये गये आसजको की अपेक्षा कम टिकाऊ होते है।

ठढी विधि मे आसजक बनाने की समस्त क्रियाएँ लगभग २०° से० ग्रे० ताप पर करायी जाती है। क्रियाओ के पूरा होने मे लगभग १२ घटे लगते है और इसके बाद क्षार को किसी अम्ल द्वारा या ऐसे लवण द्वारा जो क्षार से अभिक्रिया करता है उदासीन किया जाता है। प्राय उदासीन करते समय क्षार को पूर्ण उदासीन नही करते,

केवल उस सीमा तक उदासीन करते है कि आसजक हलका क्षारीय रहे। थोडा क्षारीय रहने से आसजक अधिक टिकाऊ होता है, किन्तु इसमे एक दोष यह होता है कि प्लाई-वुड की पर्तो को चिपकाने के लिए इसका उपयोग करने पर लकडी पर प्राय रग के धब्बे आ जाते है। ऐसे आसजको को ठढी अवस्था मे ही इस्तेमाल भी किया जाता है। इन आसजको मे ३३ से ४० प्रतिशत तक स्टार्च रहता है और ये विभिन्न कार्यों के लिए डेक्सट्रिन के आसजको के स्थान मे इस्तेमाल किये जा सकते है।

क्षार के योग से बना सबसे पहला स्टार्च आसजक सन् १८८८ मे मार्सडेन[2] (Marsden) ने बनाया था और बाजार मे बिकने के लिए चूर्ण रूप मे रखा था। इस चूर्ण मे स्टार्च, कास्टिक क्षार और ऐमोनियम सल्फेट था। इसे पानी मे डालने पर आसजक प्राप्त हो जाता था। पानी डालने पर क्षार पानी मे घुल कर स्टार्च पर प्रक्रिया करता था और उसे लेई के रूप मे परिणत करता था। क्रिया के अन्त मे बचा क्षार ऐमोनियम सल्फेट द्वारा उदासीन हो जाता था। उदासीनीकरण की क्रिया मे जो ऐमो-निया उत्पन्न होती थी वह हवा मे धीरे-धीरे उड जाती थी।

इसके बाद सन् १८९६ मे जे० कैनटोरोविट्ज[3] (J. Kantorowitz) ने क्षार की अभिक्रिया से स्टार्च आसजक बनाने की अपनी विधि का पेटेंट कराया। इस विधि मे स्टार्च को पहले कास्टिक सोडे से अभिकृत किया जाता है, फिर हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल द्वारा उदासीन कर या तो मैग्नीशियम सल्फेट द्वारा अवक्षेपित किया जाता है या २०° से० ग्रे० पर कुछ घटो तक रख दिया जाता है जिससे यह अवक्षेपित हो जाता है।

परकिन्स[4] (Perkins) ने सन् १९११ मे एक विधि का पेटेंट अमेरिका मे कराया जिसमे स्टार्च को पहले तनु अम्ल से अभिकृत कर फिर क्षार से अभिकृत किया जाता है। इस विधि मे अधिकतर कैसावा स्टार्च (Cassava starch) का उपयोग किया जाता है। स्टार्च मे समान मात्रा मे पानी मिला कर दो प्रतिशत सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ ५५° से० ग्रे० पर लगभग ५ घटे तक अभिकृत किया जाता है। इसके बाद स्टार्च को पृथक् कर और धो कर सुखा लिया जाता है। फिर इस सूखे स्टार्च का उपयोग आवश्यकतानुसार आसजक बनाने मे होता है। आसजक बनाने के लिए इसमे समान मात्रा मे पानी मिला कर एक पकक (स्लरी) बनाया जाता है। इस पकक मे तोल से १५ भाग ३३ प्रतिशत कास्टिक सोडा विलयन मिलाया जाता है और फिर इसे थोडे समय तक गरम किया जाता है। एक चिकनी समाग जेली बन जाती है। अन्त मे इस जेली के कास्टिक क्षार को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा उदासीन कर दिया जाता है। अब आसजक तैयार हो जाता है। यह आसजक

प्लाईवुड की पर्तो को जोडने के काम मे बहुत आता है। इसकी आसजकता बहुत अच्छी होती है और इसके जोड बहुत मजबूत होते हे।

ऊपर दी हुई विधियो के अतिरिक्त कास्टिक क्षार के योग से स्टार्च आसजक बनाने की अनेक विधियाँ है और प्रत्येक का अलग-अलग सूत्र (recipe) है। इनमे से कुछ सूत्र नीचे दिये जाते है —

(१) स्टार्च १५० भाग
३६° बोमे (Be) का कास्टिक सोडा विलयन . २५ भाग
पानी . १०० भाग
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल आवश्यकतानुसार

स्टार्च को पानी मे मिला कर एक निलम्बन के रूप मे कर लिया जाता है। ३६° बोमे शक्ति के कास्टिक सोडा के विलयन मे बराबर मात्रा मे पानी मिला कर तनु करने के बाद इसे स्टार्च-निलम्बन मे २०° से० ग्रे० ताप पर धीरे-धीरे डाला जाता है और कुल पदार्थ को बराबर विलोडक द्वारा चलाते रहा जाता है। अन्त मे इसमे तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की इतनी मात्रा डाली जाती है कि यह हलका क्षारीय रहे। आसजक अब तैयार हो जाता है।

(२) स्टार्च .. १४० भाग
३६° बोमे का कास्टिक सोडा विलयन . ३५ भाग
पानी . २१० भाग
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल ५० भाग पानी मे मिला कर ... ५ भाग
सुहागा . . ० १४ भाग ५५० भाग पानी में

स्टार्च और पानी को मिला कर पहले स्टार्च-निलम्बन बनाया जाता है। ३६° बोमे कास्टिक सोडा विलयन मे बराबर मात्रा मे पानी मिला कर तनु करने के बाद इसे धीरे-धीरे स्टार्च-निलम्बन मे डाल दिया जाता है। निलम्बन को विलोडक द्वारा बराबर चलाते रहने का प्रबन्ध रहता है। जब स्टार्च-निलम्बन समाग हो जाता है तब सुहागे का सूत्र के अनुसार बहुत तनु विलयन इसमे धीरे-धीरे डालते है और विलोडक द्वारा बराबर चलाते रहते है। अन्त मे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर खूब चलाया जाता है। आसजक तैयार हो जाता है। यह हलका क्षारीय रहता है। यदि इसे पूर्ण रूप से उदासीन कर दिया जाता है तो इसकी श्यानता घट जाती है।

(३) टैपियोका स्टार्च ... १०० भाग
यूरिया ... १२ भाग
व्हाइटिंग (whiting) ... ५५ भाग

बेरियम पर-आक्साइड . . ० ६ भाग
सोडा-भस्म (soda ash) .. ० १२ भाग
कास्टिक सोडा ... ३ भाग
पानी .. १३५ भाग

सूत्र के अनुसार स्टार्च, यूरिया, व्हाइटिंग, बेरियम पर-आक्साइड और सोडा-भस्म की ठीक मात्राएँ ले कर परस्पर अच्छी प्रकार मिला दी जाती है। इस मिश्रण में फिर पानी की ठीक मात्रा सूत्र के अनुसार डाल कर मिश्रण को खूब चलाया जाता है और ७०° से० ग्रे० ताप तक गरम किया जाता है। अन्त मे कास्टिक सोडे की निर्धारित मात्रा थोडे पानी मे घोल कर डालने के बाद थोडी देर तक गरम किया जाता है। आसजक एक चिकनी सफेद जेली के रूप मे प्राप्त होता है।

(४) स्टार्च ३२० भाग
३६° बोमे कास्टिक सोडा इतने ही भाग पानी के साथ ८० भाग
ऐसीटोन ३८ भाग
३०% फार्मैल्डीहाइड विलयन . ६ भाग
सोडियम कार्बोनेट ० ६५ भाग
लाल टर्की-तेल ० ६५
पानी ५०० भाग

सोडियम कार्बोनेट (० ६५ भाग) को पानी (५०० भाग) मे घोल कर इस विलयन मे स्टार्च मिलाया जाता है। फिर ३६° बोमे के कास्टिक सोडे (८० भाग) को पानी की समान मात्रा के साथ तनु कर इस विलयन को स्टार्च-निलम्बन मे धीरे धीरे २०° सें० ग्रे० ताप पर डाला जाता है और कुल मिश्रण को ठीक से विलोडित किया जाता है। लगभग १२ घटे तक मिश्रण को भली भाँति चलाते रहने पर सब चीजे एक सी मिल जाती है। अब इसमे क्रम से पहले ऐसीटोन और फिर ३० प्रतिशत फार्मैल्डीहाइड विलयन की निर्धारित मात्राएँ डाली जाती है और अन्त मे लाल टर्की तेल की आवश्यक मात्रा मिला कर मिश्रण को लगभग २० मिनट तक धीरे धीरे फेटा जाता है। एक जेली की भाँति का आसजक तैयार हो जाता है।

ऊपर का आसजक टैपियोका स्टार्च तथा आलू के स्टार्च से बहुत अच्छा बनता है।

क्षार के योग से सूखे रूप मे भी स्टार्च आसजक बनाये जाते है। प्रयोग करते समय इन्हे पानी मे मिला लिया जाता है। ऐसे तीन आसजको के सूत्र नीचे दिये जाते है:—

सूखा आसंजक

(५) स्टार्च . १०० भाग
३६° बोमे का कास्टिक सोडा ... १०० भाग

स्टार्च को कास्टिक सोडा विलयन के साथ लगभग ५° से० ग्रे० पर मिला कर अभिकृत किया जाता है। जब स्टार्च पूर्ण रूप से अभिकृत हो जाता है (लगभग १ घटे मे) तब इसे ऐलकोहल से धो कर इसका क्षार निकाल दिया जाता है और सुखा कर चूर्ण रूप मे रख लिया जाता है। यह चूर्ण पानी मे घोले जाने पर एक गाढा आसजक देता है।

(६) स्टार्च .. १०० भाग
शुष्क कास्टिक सोडा . ५ भाग
आक्सैलिक अम्ल चूर्ण ... ६ भाग

स्टार्च और कास्टिक सोडा को मिला कर पहले पीस लिया जाता है। फिर इसमे आक्सैलिक अम्ल चूर्ण की निर्धारित मात्रा मिला कर इसके क्षार को आशिक रूप से उदासीन कर दिया जाता है। सूखा आसजक तैयार हो जाता है। इस आसजक चूर्ण का उपयोग करते समय इसमे पानी मिलाया जाता है। पानी मिलाने पर यह चूर्ण फूलता है और लेई के रूप मे आसजक प्राप्त हो जाता है।

ऊपर के चूर्ण मे एक दोष यह रहता है कि इसे पानी मे मिलाने पर जो आसजक लेई प्राप्त होती है उसमे गुठले पड जाते है, वह एकदम चिकनी नही बनती। इस दोष को दूर करने की एक विधि यह है कि इसे बनाते समय स्टार्च को पहले सूखे कास्टिक सोडा के साथ पीस कर फिर इसमे नम स्टार्च मिलाया जाय और पुन सबको पीस कर सुखा लिया जाय। इस विधि मे जो नम स्टार्च मिलाया जाय वह यदि ऐलकोहल और पानी के मिश्रण द्वारा नम किया गया हो तो आसजक अधिक अच्छा प्राप्त होगा।

(७) ऐलकोहल और पानी के मिश्रण मे बने कास्टिक सोडा के विलयन को महीन फुहारे के रूप मे स्टार्च मे मिलाया जाता है। रगरहित करने के लिए इसमे फिर सल्फर डाइ-आक्साइड गैस प्रवाहित की जाती है। अन्त मे इसे सुखा कर इसमे आक्सैलिक अम्ल के चूर्ण की उपयुक्त मात्रा क्षार को लगभग उदासीन करने के लिए मिलायी जाती है। इस सूखे रगहीन आसजक चूर्ण का उपयोग कागज के सज्जीकरण के लिए विशेष रूप से होता है।

अन्य क्षारीय पदार्थों के योग से स्टार्च आसंजक बनाना—मृदु क्षार तथा विभिन्न अन्य क्षारीय पदार्थों के योग से भी अच्छे स्टार्च आसजक बनाये जाते है। मृदु क्षार स्टार्च को विलेय स्टार्च मे परिवर्तित कर देता है और यह विलेय स्टार्च फिर आसजक बनाता है। कुछ उपयोगी सूत्र नीचे दिये जाते है:—

(१) आलू का स्टार्च . १०० भाग
ऐमोनियम पर-सल्फेट ... १ भाग
ऐमोनियम हाइड्राक्साइड (विशिष्ट गुरुत्व ० ८८) . १ भाग

स्टार्च को पानी की उपयुक्त मात्रा मे मिला कर इसमे ऐमोनियम पर-सल्फेट और ऐमोनियम हाइड्राक्साइड की निर्धारित मात्राएँ डाली जाती है। सब को खूब अच्छी तरह फेटने के बाद चर्बी की तरह का आसजक पतली लेई के रूप मे प्राप्त होता है।

(२) स्टार्च . १०० भाग
३६° बोमे का सोडियम सिलीकेट १४ भाग
बुझा चूना ... ४ भाग
रोजिन साबुन . सूक्ष्म मात्रा

स्टार्च, सोडियम सिलीकेट और चूने की उपयुक्त मात्राएँ परस्पर मिला कर खूब फेटा जाता है। एक लेई प्राप्त होती है। अन्त मे थोडा रोजिन साबुन मिला कर फिर फेटा जाता है। अब आसजक तैयार हो जाता है।

यह आसजक पेण्ट करने वालो के उपयोग के लिए बहुत उपयुक्त होता है।

(३) स्टार्च .. १ भाग
बुझे चूने का सतृप्त विलयन . . ३ भाग
आक्सैलिक चूर्ण . . आवश्यकतानुसार

स्टार्च को चूने के सतृप्त विलयन मे मिला कर ७०°-८०° सें० ग्रे० पर गरम किया जाता है। जब सब पदार्थ सूख जाता है तब इसमे आक्सैलिक अम्ल के चूर्ण की उपयुक्त मात्रा मिला कर सबको महीन पीस लिया जाता है। यह सूखा आसजक प्राप्त होता है।

[आक्सैलिक अम्ल की इतनी मात्रा मिलायी जाती है कि क्षार लगभग उदासीन हो जाय किन्तु पूर्ण उदासीन न हो।]

ऐसे रासायनिक लवणो का भी, जो जल-विश्लेषित होने पर क्षारीय विलयन उत्पन्न करते है, आसजक बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। इन लवणो मे सोडा-लाइम, सोडियम सिलीकेट और सोडियम ऐल्यूमिनेट आदि है।

(४) स्टार्च ... १०० भाग
पानी . ९० भाग
३०° बोमे का सोडियम सिलीकेट . ३० भाग

स्टार्च को पानी मे मिलाने के बाद उसमे सोडियम सिलीकेट डाल दिया जाता है। सब को विलोडक द्वारा भली भाँति-मिश्रित कर ७०°-८०° सें० ग्रे० पर गरम कर सुखा लिया जाता है और अन्त मे महीन चूर्ण के रूप मे पीस कर रख लिया जाता है।

यदि गोद की तरह का आसजक प्राप्त करना होता है तो सोडियम सिलीकेट की मात्रा कुछ अधिक ली जाती है। सोडियम सिलीकेट के स्थान मे ऊपर के सूत्र मे प्राय बेरियम हाइड्राक्साइड का उपयोग भी किया जाता है।

बोरेट, ऐल्यूमिनेट तथा स्टैनेट लवणो के योग से भी अच्छे आसजक बनते है। ये लवण साधारण ताप पर स्टार्च पर कोई प्रभाव नही डालते, किन्तु गरम अवस्था मे स्टार्च-कणो को फुलाते है। ऐसा एक सूत्र नीचे दिया जाता है —

(५) स्टार्च १०० भाग
सुहागा . २० भाग
पानी .. १०० भाग

सुहागे को पानी मे घोल कर विलयन बना लिया जाता है। इस विलयन मे ४०° से० ग्रे० ताप पर क्लोरीन प्रवाहित कर इसकी क्षारीयता को लगभग उदासीन कर दिया जाता है। फिर इसमे स्टार्च डाल कर इसे ७०°-८०° से० ग्रे० ताप पर कुछ समय तक गरम किया जाता है। जब स्टार्च उचित सीमा तक परिवर्तित हो जाता है तब इसे ठण्ढा कर शान्त रख दिया जाता है। स्टार्च नीचे बैठ जाता है। ऊपर से निथार कर मातृ-द्राव को अलग निकाल दिया जाता है। स्टार्च को फिर एक-दो बार पानी से धो कर सुखा लिया जाता है। यह स्टार्च जब पानी मे मिला कर गरम किया जाता है तो पतला विलयन बनाता है जो आसजक के रूप मे इस्तेमाल किया जा सकता है। यह स्टार्च कागज के सज्जीकरण के लिए भी उपयुक्त है।

मृदु क्षारो या क्षारीय लवणो के योग से आसजक बनाने मे सबसे सुविधाजनक बात यह है कि अभिकर्मक स्टार्च मे बहुत सरलता से मिलाये जा सकते है, क्योकि ठण्ढी अवस्था मे इन अभिकर्मको का स्टार्च पर कोई प्रभाव नही पडता। मिश्रण के तैयार हो जाने पर इसे फिर गरम कर एक समाग आसजक प्राप्त किया जा सकता है।

कुछ विधियो मे पहले स्टार्च को क्षार से अभिकृत कर क्षार स्टार्च (alkali starch) प्राप्त किया जाता है। फिर क्षार स्टार्च के विलयन को कैल्सियम हाइड्राक्साइड (या बेरियम हाइड्राक्साइड या अन्य लवण) से अभिकृत कर कैल्सियम स्टार्च यौगिक (या बेरियम स्टार्च यौगिक) अवक्षेपित किया जाता है। इस अवक्षेप को पृथक् कर और धो कर सुखा लिया जाता है। इस चूर्ण को किसी विलेय क्षार-लवण, जैसे सोडियम सल्फेट, के साथ मिश्रित करने पर ठण्ढे पानी मे फूलने वाला मिश्रण प्राप्त होता है। इस मिश्रण को पानी मे मिलाने पर आसजक बन जाता है।

क्षार स्टार्च को कैल्सियम (या बेरियम) के लवणो से अभिकृत कराने पर जो अवक्षेप प्राप्त होता है उसे लोहा, ताँबा तथा ऐल्यूमिनियम आदि के लवणो से अभिकृत करा

कर इन धातुओ के स्टार्च यौगिक प्राप्त किये जा सकते है। इन धातुओ के स्टार्च यौगिक विभिन्न कामो मे आते है। ताँबे का यौगिक बडा अच्छा नि सक्रामक (disinfectant) होता है और इस काम के लिए इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

अम्लों के योग से स्टार्च आसजक बनाना—अम्लो की अभिक्रिया से स्टार्च का विच्छेदन होता है और अभिक्रिया की मात्रा के अनुसार स्टार्च अणु की सकीर्णता कम होती जाती है। इस विच्छेदन मे पहले विलेय स्टार्च बनता है और फिर अन्य अधिक सरल यौगिक बनते है। सर्वप्रथम लिटनर (Lintner) ने अम्लो की अभिक्रिया द्वारा विलेय स्टार्च बनाया था। विभिन्न अम्लो की नियन्त्रित क्रिया द्वारा स्टार्च को उचित सीमा तक विच्छेदित किया जा सकता है ओर उसी के अनुसार प्राप्त परिवर्तित स्टार्च का पानी मे विलयन पतले विलयन से ले कर गाढी लेई के रूप तक प्राप्त होता है। इन विलयनो मे आसजकता के गुण विभिन्न अश तक स्टार्च अणु की सकीर्णता के अनुसार होते है। अत जिस प्रकार का आसजक बनाना होता है उसी के अनुसार स्टार्च पर अम्ल की अभिक्रिया करा कर विलेय स्टार्च प्राप्त किया जाता है।

अम्लो की अभिक्रिया द्वारा स्टार्च आसजक बनाने की अधिकाश विधियो मे स्टार्च को तनु अम्ल मे निलम्बित कर छोड दिया जाता है। साधारण ताप से ले कर स्टार्च के श्लिषीकरण ताप (gelatinization temperature) तक के बीच मे विभिन्न ताप विभिन्न विधियो मे रखे जाते है। इस प्रकार अम्लो द्वारा अभिकृत किये जाने पर स्टार्च के बाहरी रूप मे तो कोई परिवर्तन नही होता किन्तु इसकी विलेयता मे बहुत अन्तर हो जाता है। अम्ल द्वारा अभिकृत किये गये ये सब स्टार्च गरम पानी मे तथा तनु क्षारीय विलयन मे शीघ्र विलेय होते है और इनके विलयन आसजक के रूप मे उपयोग होते है।

विलेय स्टार्च बनाने की कुछ विधियाँ नीचे दी जाती है —

(१) एक विधि मे चावल के स्टार्च को ० ५ प्रतिशत लैक्टिक अम्ल विलयन के सम्पर्क मे कई दिनो तक रख दिया जाता है। फिर अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा स्टार्च को विलयन मे से पृथक् कर और धो कर सुखा लिया जाता है।[५]

(२) एक दूसरी विधि मे स्टार्च को १-२ प्रतिशत सल्फ्यूरिक अम्ल के विलयन मे लगभग ४ घण्टे तक ४५° से० ग्रे० ताप पर निलम्बित रखा जाता है। फिर अम्ल को उदासीन करने के बाद स्टार्च को छान कर पृथक् कर लिया जाता है। इसे एक-दो बार पानी से धो कर सुखा लिया जाता है।[६]

(३) सल्फ्यूरिक अम्ल का एक प्रतिशत विलयन ले कर उसमे थोडा फार्मैल्डी-हाइड या हेक्सामेथिलीनटेट्रामीन मिला दिया जाता है। इस विलयन को ७२° से०

ग्रे० ताप पर रख कर इसमे स्टार्च को लगभग ४ घण्टे तक निलम्बित छोड दिया जाता है। फिर अम्ल को उदासीन कर ऊपर की ही तरह स्टार्च को छान कर और धो कर सुखा लिया जाता है। सूखने पर जो पदार्थ प्राप्त होता है वह पारदर्शक पर्तों के रूप मे होता है। यह पानी मे घुल जाता है और इसका विलयन अच्छा आसजक होता है। यह रगीन कागजो को चिपकाने के लिए अच्छा आसजक है, क्योकि सूखने पर पारदर्शक रहता है और इस कारण रगीन कागज के नीचे धब्बे के रूप मे नही दिखलाई देता।[७]

(४) एक अन्य विधि मे स्टार्च को एक प्रतिशत तनु सल्फ्यूरिक अम्ल मे निलम्बित कर इसमे अति तप्त भाप (superheated steam) तब तक प्रवाहित की जाती है जब तक स्टार्च घुल कर विलयन के रूप मे परिणत नही हो जाता। इसके बाद अम्ल को खडिया द्वारा उदासीन कर विलयन को गरम अवस्था मे ही छाना जाता है। स्टार्च अवक्षेप के रूप मे छन्ने के ऊपर पृथक् हो जाता है।[८]

(५) विलेय स्टार्च बनाने की एक अन्य विधि मे स्टार्च को पानी के साथ मिश्रित कर इस मिश्रण को फुहारे के रूप मे एक ऐसे कक्ष (chamber) मे गिराया जाता है, जिसमे हाइड्रोजन क्लोराइड गैस २००° सें० ग्रे० ताप पर भरी रहती है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया द्वारा स्टार्च विलेय स्टार्च मे परिवर्तित हो जाता है और साथ ही इसका पानी भी सूख जाता है। इस प्रकार एक ही बार मे विलेय स्टार्च चूर्ण रूप मे प्राप्त होता है।[९]

स्टार्च को अम्ल द्वारा अभिकृत करने की भी अनेको विधियाँ है। अधिकतर इन सब विधियो मे स्टार्च मे तनु अम्ल की थोडी मात्रा फुहारे के रूप मे मिला कर स्टार्च को उपयुक्त ताप तक गरम किया जाता है और फिर गरम बेलनो पर सुखा कर चूर्ण रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है।

लवणों के योग से स्टार्च आसंजक बनाना—क्षारो के योग से स्टार्च आसजक बनाने मे कुछ लवणो का उपयोग पीछे बतलाया जा चुका है। यहाँ हम लवणो के योग से आसजक बनाने की चर्चा अधिक ब्योरे से करेंगे।

विभिन्न लवणो के विलयनो का विभिन्न सान्द्रता तथा विभिन्न ताप पर स्टार्च के श्लिषीकरण तथा स्टार्च-कणो के फूलने पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन कई रसायनज्ञो ने किया है। इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान का उपयोग आसजक बनाने मे किया जाता है। कूर्टोने[१०] (H Courtonne) ने सन् १९२० मे अपने प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात किया कि क्लोराइड लवणो का सबसे अधिक प्रभाव स्टार्च के श्लिषीकरण पर पडता है और इनकी उपस्थिति मे श्लिषीकरण बहुत शीघ्र हो जाता है। इसके ठीक विपरीत सल्फेट लवण श्लिषीकरण की गति को धीमा करते है।

लगभग ७० वर्ष पूर्व यह प्रथम बार ज्ञात हुआ था कि कुछ लवणो, जैसे पोटैसियम ऐसीटेट, कैल्सियम क्लोराइड तथा विभिन्न थायोसायनेट, के विलयन स्टार्च का श्लिषीकरण साधारण ताप पर ही कर देते है।[११] यह भी ज्ञात हुआ था कि विलयनो की सान्द्रता का श्लिषीकरण की गति पर बडा प्रभाव पडता है। सन् १९२८ मे आयनोन और लाने[१२] (L Eynon and J H Lane) ने यह देखा कि थोडी मात्राओ मे भी कुछ लवणो की उपस्थिति स्टार्च लेई की श्यानता पर बडा प्रभाव डालती है और फलस्वरूप लेई की श्यानता घट जाती है।

आसजक बनाने मे लवणो का उपयोग तीन प्रयोजनो के लिए होता है —

(१) स्टार्च-कणो को फुलाने के लिए,

(२) आसजक को स्थायी तथा परिरक्षित रखने के लिए,

(३) आसजको की आसजकता तथा श्यानता मे वृद्धि करने के लिए और उन्हे पारदर्शक बनाने के लिए।

व्यापार मे लवणो के योग से स्टार्च आसजक कराने की कई विधियाँ है जिन्हे लोगो ने पेटेण्ट करा लिया है। इन सब विधियो का मुख्य ध्येय ऐसा स्टार्च बनाना है जो ठण्ढे पानी मे घुल जाय अथवा ठण्ढे पानी मे ही उसका आसजक तैयार हो सके। नीचे इस प्रकार के आसजक बनाने के कुछ सूत्र दिये जाते है —

(१) स्टार्च . . १०० भाग

पोटैसियम थायोसायनेट का ५०% ऐलकोहल मे बना विलयन . . ८० भाग

स्टार्च को थायोमायनेट के ऐलकोहली विलयन मे मिला कर गरम किया जाता है। स्टार्च श्लिषीकृत हो जाता है। श्लिषीकरण की क्रिया की समाप्ति के बाद इसे सुखा कर चूर्ण रूप मे रख लिया जाता है। आवश्यकता होने पर इस चूर्ण को ठण्ढे पानी मे घोलने पर आसजक बन जाता है।

(२) स्टार्च ... १०० भाग

कैल्सियम नाइट्रेट . ३ भाग

सोडियम क्लोराइड .. १.५ भाग

मैग्नीशियम क्लोराइड .. १.५ भाग

पानी . . आवश्यकतानुसार

स्टार्च तथा ऊपर के तीनो लवणो को ऊपर लिखे अनुपात मे मिला कर थोडे पानी के साथ खूब पीसा जाता है। जब सब वस्तुएँ मिल कर समाग मिश्रण के रूप मे हो जाती है तो आसजक बन जाता है।

(३) स्टार्च १०० भाग
जिक क्लोराइड का सान्द्र विलयन . १०० भाग
सोडियम क्लोराइड . ५ भाग

जिक क्लोराइड के सान्द्र विलयन मे सोडियम क्लोराइड पहले मिला दिया जाता है, फिर इसमे स्टार्च डाल कर खूब चलाया जाता है। जब मिश्रण समाग हो जाता है तो इसे अलग रख दिया जाता है। कुछ समय बाद गोंद की तरह का कडा पदार्थ प्राप्त होता है जो पानी मे विलेय होता है। आवश्यकता पडने पर इसे ठण्ढे पानी मे घोलने पर आसजक तैयार हो जाता है।

(४) चावल का स्टार्च .. ९० भाग
आलू का स्टार्च . ४० भाग
सफेद डेक्सट्रिन २५ भाग
जिक क्लोराइड १०० भाग
सोडियम क्लोराइड ... १२ भाग
कैल्सियम क्लोराइड ६८ भाग
ऐमोनियम क्लोराइड ६ भाग
पानी . १७० भाग

जिंक क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड, कैल्सियम क्लोराइड और ऐमोनियम क्लोराइड की ऊपर के अनुसार मात्राएँ ले कर पानी मे घोल कर एक विलयन बनाया जाता है। दोनो स्टार्च और डेक्सट्रिन को मिला कर समाग मिश्रण बना लिया जाता है। इस मिश्रण को फिर लवणो के विलयन मे डाल कर खूब फेटा जाता है और फिर अलग रख दिया जाता है। एक गाढा आसजक प्राप्त होता है।

(५) स्टार्च .. १०० भाग
कैल्सियम क्लोराइड . . ११५ भाग
सुहागा . १ भाग
पानी १८० भाग

कैल्सियम क्लोराइड को पानी मे घोल कर इस विलयन मे कमरे के ताप पर ही स्टार्च डाल दिया जाता है और मिश्रण को लगभग दो घटे तक विलोडित किया जाता है। अन्त मे सुहागा डाल कर भली-भाँति मिला दिया जाता है। एक पारदर्शक गाढा स्वच्छ सफेद आसजक प्राप्त होता है। सुहागा मिलाने से श्यानता मे वृद्धि होती है।

ऊपर के सूत्र मे पानी की मात्रा बढा कर आवश्यकतानुसार विभिन्न श्यानता के आसजक बनाये जा सकते हैं। कैल्सियम क्लोराइड के स्थान मे मैग्नीशियम क्लोराइड

का उपयोग भी ऊपर के सूत्र मे किया जा सकता है। प्राय कुछ फिटकरी भी मिलायी जाती है। जब फिटकरी मिलायी जाती है तब कैल्सियम क्लोराइड की मात्रा घटा दी जाती है।

इस आसजक का उपयोग रग कणो तथा धातु कणो को कागज पर चिपकाने के लिए बहुत होता है।

(६) स्टार्च .. १०० भाग
जिंक क्लोराइड ... ३६ भाग
कैल्सियम क्लोराइड .. ४७ भाग
पानी . . ८७० भाग

जिंक क्लोराइड (३६ भाग) और कैल्सियम क्लोराइड (४७ भाग) को थोड़े पानी (७० भाग) मे ६५° से० ग्रे० ताप पर घोल लिया जाता है। इस विलयन मे स्टार्च धीरे-धीरे डाल कर मिश्रण को बराबर फेटते जाते है। एक स्वच्छ पारदर्शक जेली प्राप्त होती है। इसमे गरम पानी (८७० भाग) की निर्धारित मात्रा डाल कर और खूब चला कर एक समाग विलयन प्राप्त किया जाता है। अब आसजक तैयार हो जाता है। यह आसजक कार्यालयो के काम के लिए बहुत उपयुक्त है।

ऊपर का आसजक आलू के स्टार्च से सबसे अच्छा बनता है। यह मकई और गेहूँ के स्टार्च से भी बनाया जा सकता है, किन्तु यह इतना अच्छा नही होता जितना आलू के स्टार्च से बना आसजक होता है।

(७) स्टार्च . . १०० भाग
ऐमोनियम पर-सल्फेट ... ४ भाग

स्टार्च और ऐमोनियम पर-सल्फेट को चूर्ण रूप मे परस्पर मिला कर लगभग ५०° से० ग्रे० ताप पर लगभग ३ घण्टे तक गरम करने पर एक सूखा आसजक प्राप्त होता है, जिसे आवश्यकतानुसार ठण्ढे पानी मे घोल कर उपयोग मे लाते है।

कुछ सूखे आसजको मे जो अन्य विधियो से बनाये जाते है, प्राय यह दोष होता है कि जब वे पानी मे मिलाये जाते हैं तो गुठले के रूप मे हो जाते है और एकदम चिकना आसजक नही देते। इनमे विभिन्न लवण मिला देने से यह दोष दूर हो जाता है। फिटकरी तथा मैग्नीशियम सल्फेट इस दोष को दूर करने के लिए बहुत उपयुक्त हैं।

गुठले बनने के दोष को दूर करने के लिए लवणो के अतिरिक्त कुछ अन्य पदार्थ भी उपयोगी होते है। ऐसे पदार्थो मे से कुछ महत्त्व के पदार्थ जिनका उपयोग अधिक होता है निम्न हैं :—

टैनिक अम्ल, वसा अम्ल तथा रेजिन अम्ल, विलेय ऐल्ब्यूमिन, गोद, डेक्सट्रिन तथा पेक्टिन।

ये पदार्थ आसजक बनाते समय या तो स्टार्च मे मिला दिये जाते है या उस पानी मे मिला दिये जाते है जिसमे स्टार्च डालना रहता है।

आसजक बनाने मे सुहागे का उपयोग बहुत व्यापक रूप से होता है। विशेष कर डेक्सट्रिन से बनाये गये आसजको मे तो सुहागा निश्चित रूप से डाला जाता है। सुहागे का लाभ उन आसजको मे है जिनका उपयोग धुलाई मे कपडो पर कलफ लाने के लिए होता है। सुहागे की उपस्थिति से कपडो पर लोहा करने मे चमक अच्छी आती है। किन्तु स्टार्च आसजको मे सुहागे के उपयोग से एक दोष भी आ जाता है। वह यह कि इसकी उपस्थिति से स्टार्च आसजक लचीला हो जाता है और जहॉ लगाना होता है वहॉ ठीक से फैलाया नही जा सकता। फलस्वरूप लगाते समय यह छोटे-छोटे दानो के रूप मे लिपट कर गिर जाता है। इस दोष को दूर करने के लिए ऐसे आसजक को किसी अम्ल से अभिकृत करा दिया जाता है। अम्ल से अभिकृत हो जाने के बाद आसजक का लचीलापन कम हो जाता है और तब यह ठीक से लगाया जा सकता है।

सुहागे मे एक दूसरा गुण यह होता है कि यह आसजक की श्यानता मे वृद्धि करता है। निम्न कोटि के स्टार्चो से अधिक श्यानता के आसजक बनाने के लिए सुहागे का उपयोग बहुत होता है। इन स्टार्चो से साधारण रूप से जो आसजक बनता है उसकी श्यानता कम होती है। सुहागे की उपस्थिति से श्यानता बढ जाती है। श्यानता की वृद्धि के लिए सुहागे की थोडी मात्रा ही पर्याप्त होती है। साधारणत स्टार्च के अनुपात से ० २५ से ० ५ प्रतिशत तक सुहागा पर्याप्त होता है। सुहागे का श्यानता मे वृद्धि करने का प्रभाव तभी पडता है जब आसजक उदासीन रहता है। यदि आसजक अम्लीय या क्षारीय होता है तो श्यानता पर सुहागे का विशेष प्रभाव नही पडता।

सुहागे के श्यानता बढाने के गुण का लाभ विलेय स्टार्च का आसजक बनाने मे बहुत उठाया जाता है। इसके लिए सुहागे के स्थान मे कैल्सियम बोरेट का उपयोग अधिक होता है। विलेय स्टार्च को ठण्ढे पानी मे घोल कर उसमे कैल्सियम बोरेट डाला जाता है। कैल्सियम स्टार्च प्राप्त होता है। इसे फिर ऐलकोहल और पानी के मिश्रण मे मिलाया जाता है। कैल्सियम निकल जाता है और आसजक बन जाता है।

सुहागे के प्रभाव के ठीक विपरीत कैल्सियम क्लोराइड और मैग्नीशियम क्लोराइड मलाने से आसजको की श्यानता घट जाती है और वे अपारदर्शक हो जाते है। सोडियम क्लोराइड आसजको की पारदर्शकता, घनत्व तथा चिपकाने के गुण मे वृद्धि करता है, किन्तु इसमे दो दोष होते है। एक तो यह कि इसके रहने पर आसजक के सूखने मे अधिक

समय लगता है और दूसरा यह कि इसके उपस्थित होने पर आसजक पानी मे शीघ्र बह जाता है। अत ऐसे आसजक द्वारा चिपकायी वस्तुओ पर पानी पडने से वस्तुएँ शीघ्र उचल जाती है। ये आसजक पानी द्वारा पर्याप्त अश तक तनु भी किये जा सकते है किन्तु इनका उपयोग उन कामो के लिए नही हो सकता जहाँ मजबूत जोड की आवश्यकता होती है।

अधिक घनत्व का एक अपारदर्शक तथा सस्ता आसजक जो आवश्यकतानुसार पानी मिला कर तनु किया जा सके, ऊपर बतलाये सूत्रो मे सोडियम सिलीकेट मिलाने से बनाया जा सकता है। ऐसा एक सूत्र नीचे दिया जाता है —

टैपियोका स्टार्च . . १०० भाग
३६° बोमे का कास्टिक सोडा . ३० भाग (समान भाग पानी से तनु कर)
३५° बोमे का सोडियम सिलीकेट ... ४० भाग
सुहागा . . ० १ भाग (१५० भाग पानी मे घोल कर)
२२° बोमे का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल ३३ भाग
१५% फार्मैल्डीहाइड ५ भाग
पानी ५०० भाग

स्टार्च को पानी मे निलम्बित किया जाता है। फिर ३६° बोमे के कास्टिक सोडा को पानी के साथ तनु कर स्टार्च-निलम्बन मे डाल दिया जाता है। भली-भाँति चलाने के बाद इसमे और पानी (१५० भाग) मिला कर फेंट दिया जाता है। अब इस मिश्रण मे ३५° बोमे के सोडियम सिलीकेट की निर्धारित मात्रा डाली जाती है और फिर सुहागे का तनु विलयन डाल कर कुल मिश्रण को भली-भाँति विलोडित कर मिला दिया जाता है। जब मिश्रण समाग हो जाता है तब इसमे २२° बोमे का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर लगभग उदासीन किया जाता है और फिर कुछ और पानी (१५० भाग) मिला कर तनु कर लिया जाता है। अन्त मे १५ प्रतिशत फार्मैल्डीहाइड की निर्धारित मात्रा मिला कर अच्छी प्रकार फेंट दिया जाता है। इस आसजक की अभिक्रिया थोडी क्षारीय रहती है। सुहागा अवक्षेपित सिलिका जेली को आकीर्ण अवस्था (dispersed) मे रहने मे सहायता देता है और आसजक को स्थायी करता है। आसजक की क्षारीयता इसे कुछ कामो के लिए अनुपयुक्त बनाती है। ऐसे कामो के उपयुक्त बनाने के लिए आसजक मे सुहागे के स्थान मे थोडी फिटकरी डाली जाती है। फिटकरी आसजक की शेष क्षारीयता को उदासीन कर देती है और इसकी श्यानता मे भी वृद्धि करती है।

अधिकाश उदासीन लवणो मे स्टार्च आसजको की श्यानता तथा घनत्व बढ़ाने

का गुण होता है। साथ ही ये आसजको को स्थायी भी बनाते है, किन्तु इनमे स्वय आसजकता का कोई गुण नही होता, इस कारण इनकी उपस्थिति से आसजकता मे कमी आती है।

आक्सीकारको के योग से स्टार्च आसजक बनाना—क्षार की उपस्थिति मे आक्सीकारको की स्टार्च पर अभिक्रिया नियन्त्रित सीमा तक कराने से अच्छे आसजक बनते है जो सस्ते होने के साथ-साथ शीघ्र सूखते भी है। ऐसे आसजको मे साधारणत ८ से ५० प्रतिशत तक स्टार्च रहता है। इनके जोड मजबत होते है और पानी का इन पर शीघ्र प्रभाव नही पडता। ये आसजक अधिकतर टैपियोका स्टार्च से बनाये जाते हैं। आलू का स्टार्च भी प्राय ऐसे आसजक बनाने के लिए काम मे लाया जाता है, किन्तु ये आसजक टैपियोका स्टार्च से बनाये गये आसजको की तुलना मे निम्न कोटि के होते है। ये सभी आसजक ऊँचे ताप पर बनाये जाते है, और इन सबमे साधारणत फार्मैल्डीहाइड मिलाया जाता है।

इन आसजको मे जितना अधिक स्टार्च रखना होता है उसी के अनुसार आक्सीकारक की अधिक मात्रा का उपयोग करना पडता है। आक्सीकारक के रूप मे अधिकतर हाइड्रोजन पर-आक्साइड का उपयोग किया जाता है। इसमे सबसे बडा लाभ यह होता है कि क्रिया की समाप्ति के बाद आसजक मे इसका कोई अवशेष नही रहता। प्राय सोडियम, पोटैसियम या कैल्सियम हाइपोक्लोराइट का उपयोग भी आक्सीकारक के रूप मे होता है।

हाइड्रोजन पर-आक्साइड की प्रक्रिया द्वारा आसजक बनाने की एक विधि नीचे दी जाती है —

आसजक मे स्टार्च का जितना अनुपात रखना होता है उसके हिसाब से स्टार्च का पानी मे एक निलम्बन तैयार किया जाता है। इस निलम्बन के १०० भाग मे ० ६ भाग चूना और ० ०४५ भाग ३६° बोमे का कास्टिक सोडा मिला दिया जाता है। इसके बाद इसमे हाइड्रोजन पर-आक्साइड की उपयुक्त मात्रा मिला कर इसे ८०° -८५° से० ग्रे० तक गरम किया जाता है। एक तीव्र अभिक्रिया होती है। अभिक्रिया की समाप्ति के बाद गरम अवस्था मे ही लेई मे थोडा फार्मैल्डीहाइड डाल कर मिला दिया जाता है। पुन. अभिक्रिया होती है। इस अभिक्रिया मे फार्मैल्डीहाइड की कुछ मात्रा आक्सीकृत हो कर फार्मिक अम्ल मे परिणत हो जाती है। यह फार्मिक अम्ल लेई की क्षारीयता को कुछ अश तक उदासीन करने का काम करता है। यदि ऐसी लेई बनायी गयी है, जिसमे स्टार्च और पानी का अनुपात १ ३ है तो फार्मैल्डीहाइड डालने के पहले इसमे लगभग ३ ५ प्रतिशत तक कैल्सियम क्लोराइड डाला जाता है। यदि अधिक गाढी

लेई बनानी होती है तो आरम्भ मे स्टार्च-निलम्बन के साथ कास्टिक सोडा के स्थान मे भी चूना ही इस्तेमाल किया जाता है। गरम करने के पहले यदि इसमे थोडा साबुन (० ००५ भाग) मिला दिया जाता है तो लेई अधिक चिकनी प्राप्त होती है। ये आसजक जब गरम अवस्था मे रहते हैं तब पानी की तरह द्रव रहते है किन्तु ठढे होने पर चर्बी की तरह चिकनी लेई के रूप मे हो जाते हैं।

हाइड्रोजन पर-आक्साइड के योग से ऊपर की विधि से बनाये गये ऐसे आसजक जिनमे स्टार्च और पानी का अनुपात १ ३ या १ : २·५ होता है, पतले कागजो तथा सिगरेट के कागजो को चिपकाने के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। सिगरेट बनाने मे कागजो को चिपकाने के लिए डेक्सट्रिन से बने आसजको का व्यवहार करने से प्राय कागज के ऊपर गहरे धब्बे आ जाते हैं। हाइड्रोजन पर-आक्साइड की अभिक्रिया द्वारा बनाये गये स्टार्च आसजको मे यह दोष नही होता। साथ ही इनमे किसी प्रकार की गन्ध या बुरा स्वाद भी नही रहता, जैसा कि डेक्सट्रिन के आसजको मे रहता है। इन कारणो से ये आसजक सिगरेटो के कागजो को चिपकाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। हाइड्रोजन पर-आक्साइड की विधि द्वारा टैपियोका स्टार्च से बनाये गये आसजक ही विशेष रूप से सिगरेटो के लिए उपयुक्त होते हैं, आलू के स्टार्च से बनाये गये ऐसे आसजक इस काम के लिए इतने उपयुक्त नही होते, क्योकि आलू के स्टार्च भी मे एक तीव्र गन्ध रहती है जो इसके आसजको मे स्पष्ट रहती है और इस कारण सिगरेटो के लिए इन आसजको का उपयोग नही किया जा सकता।

आलू के स्टार्च और मकई के स्टार्च को विरजक चूर्ण द्वारा अभिकृत करा कर दफ्तरियो के काम के उपयुक्त आसजक-लेई बनायी जाती है।

फुलाने वाले पदार्थों के योग से स्टार्च आसंजक बनाना—वे पदार्थ जिनकी उपस्थिति से स्टार्च-कण शीघ्र पानी शोषित कर फूल जाते हैं, उत्फुल्लक (swelling agents) कहलाते हैं। ऐसे पदार्थ स्टार्च-कणो को फुला कर उन्हे आसजक मे परिणत कर देते हैं। विभिन्न लवणो मे स्टार्च-कणो को फुलाने का गुण होता है। लवणो के अतिरिक्त अन्य प्रकार के रासायनिक यौगिको मे भी स्टार्च-कणो को फुलाने का गुण होता है। लवणो के योग से स्टार्च आसजक बनाने का वर्णन हम पीछे कर चुके है। यहाँ हम लवणो के अतिरिक्त उन पदार्थों के योग से स्टार्च आसजक बनाने की चर्चा करेंगे जिनमे स्टार्च-कणो को फुलाने का गुण होता है।

क्लोरल हाइड्रेट, यूरिया तथा कुछ ऐमाइनो मे उत्फुल्लक गुण होता है। इन पदार्थो के योग से आसजक बनाये जाते हैं। इस प्रकार के आसजक का एक सूत्र नीचे दिया जाता है —

स्टार्च	...	१०० ग्राम
यूरिया	...	२ ग्राम
ऐलकोहल	...	१० ग्राम

स्टार्च मे यूरिया, ऐलकोहल और थोडा पानी मिला कर १७०° से० ग्रे० पर ऊँचे दाब पर गरम किया जाता है। लेई के रूप मे आसजक प्राप्त होता है।

स्टार्च आसंजकों के गुणों में परिवर्तन करना—स्टार्च आसजको के गुणो मे इच्छित प्रकार का परिवर्तन करने के उद्देश्य से विभिन्न पदार्थ आसजको मे मिलाये जाते है। गुणो का यह परिवर्तन मुख्य रूप से आसजको के वस्तुओ पर लगाये जाने से सम्बन्ध रखता है। कोई एक आसजक ऐसा बनाना सम्भव नही है जो सब प्रकार के कार्य के लिए उपयुक्त हो। अत विभिन्न प्रकार के कार्यों के अनुरूप बनाने के लिए आसजको के गुणो मे विभिन्न प्रकार के परिवर्तन करने की आवश्यकता पडती है। जिस गुण को जिस दिशा मे परिवर्तित करना होता है उसी के अनुसार उपयुक्त पदार्थ आसजक मे मिलाया जाता है।

श्यानता या गाढेपन (consistency) के नियन्त्रण के लिए सुहागा, सोडा भस्म (soda ash) तथा मेथिल सेलोसाल्व (methyl cellosolve) का उपयोग किया जाता है। जल प्रतिरोधक (water resistant) गुणो की वृद्धि करने के लिए यूरिया-फार्मैल्डीहाइड तथा मेलामिन-फार्मैल्डीहाइड (melamine-formaldehyde) रेजिनो का या अकेले फार्मैल्डीहाइड का उपयोग किया जाता है।

साबुन, रेज़िन, जन्तु गोद (जैसे सरेस) और रबर-दुग्ध (rubber latex) आदि पदार्थ थोडी मात्रा मे मिला देने से आसजको मे यह गुण आ जाता है कि वे लगाने पर ठीक से फैलते है और साथ ही वस्तुओ के रध्रो के भीतर भी सरलता से प्रवेश कर जाते हैं। ये पदार्थ इनकी आसजकता मे भी वृद्धि करते है।

कुछ पदार्थ आसजको की सुघट्यता (plasticising) मे वृद्धि करते है। इन्हे **सुघट्यताकारक** (plasticising agents) कहते हैं। इन पदार्थों से आसजको मे इस प्रकार का गुण आ जाता है कि आसजक की जब पतली पर्त दो वस्तुओ को चिपकाने के लिए लगायी जाती है तो यह पर्त दोनो वस्तुओ की सतहो के बीच मे सूख कर स्थायी रूप से रहती है और सूखने के फलस्वरूप उत्पन्न हुए दाब के प्रति प्रतिरोधक (resistant) होती है, जिसके कारण यह उचल कर निकलने नही पाती। ऐसे सुघट्यताकारक कुछ पदार्थ जिनका उपयोग आसजको मे होता है निम्न है —

गिलसरीन, ग्लाइकॉल, यूरिया, सारबिटाल, रेंडी का तेल, सोडियम ऐसीटेट,

सोडियम लैक्टेट, लैक्टिक अम्ल के एस्टर, सोडियम नाइट्रेट तथा क्षार धातुओ के थायो-सायनेट लवण।

इन पदार्थो को मिलाते समय यह ध्यान रखा जाता है कि इनकी इतनी अधिक मात्रा न मिलायी जाय कि आसजक मणिभीकृत होने लगे या इसका पानी पृथक् हो जाय।

कुछ सूखे आसजको मे एक बडा दोष यह होता है कि जब उपयोग करने के लिए उन्हे पानी मे घोला जाता है तो वे गुठले और ढोके बनाते है और उनका समाग विलयन या लेई सरलता से नही बन पाती। समाग विलयन अथवा समाग लेई बनाने के लिए या तो इन्हे गरम करना पडता है या विलोडक द्वारा खूब मथना पडता है। सूखे आसजको का यह दोष ग्लाइकॉल या अन्य बहुहाइड्रिक ऐलकोहल की थोडी मात्रा मिलाने से दूर हो जाता है। आसजक को इन पदार्थो की थोडी मात्रा के साथ लगभग ८०° से० ग्रे० ताप पर कुछ समय तक गरम किया जाता है। इसके बाद सुखाने पर जो सूखा आसंजक प्राप्त होता है वह पानी मे शीघ्र घुल जाता है और कोई गुठले या ढोके नही बनाता। साधारणत इन बहुहाइड्रिक ऐलकोहलो की एक प्रतिशत मात्रा आसजको के इस दोष को दूर करने के लिए पर्याप्त होती है।

आसजको मे उनका वजन बढाने के लिए तथा उन्हे समाग लेई के रूप मे करने के लिए प्राय खनिज भराऊ पदार्थ (filling material) डाले जाते है। इन पदार्थों को थोडा साबुन मिला कर और फिर पानी के साथ फेट कर पहले लेई के रूप मे कर लिया जाता है और तब आसजक मे मिलाया जाता है। ऐसा करने से आसजक चिकना और समाग बनता है।

यूरिया का उपयोग आसजको की श्यानता घटाने के लिए बहुत होता है। एक निश्चित श्यानता (गाढेपन) की अवस्था मे आसजक मे यूरिया के वर्तमान रहने पर जितना ठोस पदार्थ रहता है उससे यूरिया के वर्तमान न रहने पर बहुत कम रहता है। इस प्रकार यूरिया की उपस्थिति से आसजक मे ठोस की मात्रा बढायी जा सकती है। दूसरे शब्दो मे पानी की मात्रा घटायी जा सकती है। आसजको मे जब पानी का अश अधिक रहता है और इन्हे कागज पर लगाया जाता है तो कागज अधिक गीला हो कर कुछ खिच जाता है और फिर जब जोड सूखता है तो प्राय खिंचाव के कारण कागज चटक जाता है या फट जाता है। यूरिया मिलाने से आसजक मे पानी का अश घट जाता है और फलस्वरूप ऊपर बतलाया दोष दूर हो जाता है। यूरिया की उपस्थिति से आसजको के जोडो की खिंचाव-शक्ति मे भी वृद्धि होती है। यह आसजको को अव-क्षेपित होने से भी रोकता है और फलस्वरूप उन्हे टिकाऊ बनाने के लिए भी इसका उपयोग होता है। यूरिया के एक और महत्त्व का प्रभाव आसजको पर पडता है। यह

आसजको के जमने (setting) की क्रिया पर इस प्रकार का प्रभाव डालता है कि उनका जमना विलम्ब से आरम्भ होता है, किन्तु एक बार आरम्भ हो जाने पर फिर शीघ्र समाप्त हो जाता है। इस प्रभाव का लाभ प्लाइवुड तथा अन्य लकडियो के आसजको के लिए बहुत महत्त्व का है। यूरिया का एक गुण यह भी है कि फार्मेल्डीहाइड की स्टार्च पर क्रिया होने से जो अविलेय पदार्थ बनता है यूरिया उसे पुन विलेय कर देता है। अत ऐसे स्टार्च आसजक जिनमे फार्मेल्डीहाइड रहता है और जो रखने पर अविलेय हो कर अनुपयोगी हो जाते है, यूरिया द्वारा पुन विलेय रूप मे किये जा कर उपयोग मे ले आये जाते है।

साबुन आसजको की श्यानता मे वृद्धि करता है। अत इसका उपयोग आसजकों को अधिक गाढा और चिकना करने के लिए होता है। साधारणत इस कार्य के लिए आसजको मे १.५ प्रतिशत साबुन मिलाना पर्याप्त होता है। जो आसजक गरम कर बनाये जाते है उनमे गरम करने के पूर्व साबुन की निर्धारित मात्रा मिला दी जाती है। यदि आसजक हाइड्रोजन पर-आक्साइड की क्रिया द्वारा बनाना हो तो पर-आक्साइड की क्रिया कराने के बाद आसजक में साबुन मिलाया जाता है।

मोमीय तथा काँच और धातु की चिकनी और चमकदार सतहो को भिगा न सकने के कारण बहुत से आसजक इनके लिए उपयुक्त नही होते। यदि इन आसजको मे चिकनी सतहो को गीला करने का गुण उत्पन्न किया जा सके तो ये इन सतहो के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। इधर पिछले कुछ वर्षों मे ऐसे आर्द्रताकारक पदार्थ (wetting agents) ज्ञात हुए है जो इस काम के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए है। ये पदार्थ मोमीय या अन्य चिकनी सतह से वायु की पर्त को निष्कासित कर देते है और वायु की पर्त के हट जाने के बाद आसजक द्रव सतह के सम्पर्क मे आ जाता है और उसे भिगा देता है। आर्द्रताकारक पदार्थों मे ऊँचे कार्बनिक ऐलकोहलो के सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ बने एस्टर हैं जिनका उपयोग आसजक-उद्योग मे बहुत होता है। ऐसे कुछ आर्द्रताकारक निम्न हैं—

सोडियम सेटिल सल्फोनेट (sodium cetyl sulphonate), सोडियम डोडेसिल ऐल्फा-सल्फोनेट (sodium dodecyl-α-sulphonate), डाइसोडियम ओलाइल सल्फेट (disodium oleyl sulphate), आक्टिल (octyl), डेसिल (decyl), डोडेसिल (dodecyl), टेट्राडेसिल (tetradecyl) और सेटिल (cetyl) सल्फेट।

आलू के स्टार्च से बनाये गये आसजको मे एक से तीन प्रतिशत तक इन पदार्थों को मिलाने से आसजक चिकनी सतहो के योग्य हो जाता है। प्राय. आर्द्रताकारक पदार्थों के मिश्रण का उपयोग इस कार्य के लिए किया जाता है। इन आर्द्रताकारक

पदार्थों के मिलने से यद्यपि आसजको के सतह को भिगाने के गुण मे वृद्धि हो जाती है पर उनमे एक दोष भी उत्पन्न हो जाता है। वह दोष यह है कि इनकी उपस्थिति से आसजक मे फेन (foam) बहुत उत्पन्न होता है। इस दोष को दूर करने के लिए आक्टिल या सेटिल ऐलकोहल थोडी मात्रा मे आसजक मे डाला जाता है।

कुछ प्रोटीनो (जैसे ऐल्ब्यूमिन और केसीन) के व्युत्पन्नो मे भी यह गुण होता है कि यदि उनकी थोडी मात्रा स्टार्च आसजको मे मिला दी जाय तो आसजको के चिकनी सतह पर फैलने के गुण मे तथा सुघट्यता के गुण मे वृद्धि होती है। केसीन (casein) को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा अभिकृत करने पर जो यौगिक बनता है उसका इस कार्य के लिए प्राय उपयोग किया जाता है। जिन आसजको मे सोडियम सिलीकेट रहता है उनके आर्द्रताकारक गुण मे वृद्धि करने के लिए उनमे लेसीथिन या साबुन थोडी मात्रा मे डाला जाता है।

स्टार्च आसजको का स्थायित्व और टिकाऊपन बढाने के लिए ६ प्रतिशत तक नैफ्थीन साबुन का उपयोग किया जाता है। नैफ्थीन साबुन के वर्तमान रहने पर आसजक बहुत दिनो तक बिना खराब हुए रखे जा सकते है। इस कार्य के लिए साधारण साबुन तथा रोजिन साबुन इतने अच्छे नही है।

कुछ आसजको को मोमीय कागज (waxed paper) तथा अन्य चिकनी सतहो के उपयुक्त बनाने के लिए उनमे कोई ऐसा विलायक मिलाया जाता है जिसमे मोम तथा सतहो के अन्य चिकनाई वाले पदार्थो को घुलाने का गुण होता है। इन विलायको द्वारा जब सतह पर लगा मोम या अन्य चिकनाई का पदार्थ घुला लिया जाता है तब आसजक सतह पर ठीक से लग जाता है। साधारणत विलायक के रूप मे टाल्युईन तथा ज़ाइलीन का उपयोग बहुत होता है।

मकई के स्टार्च से बनायी गयी लेई की आसजकता बढाने के लिए इसमे प्राय थोडा सोडा भस्म और फिटकरी मिलायी जाती है। इन पदार्थों के मिलाने से लेई कलफ के लिए भी उपयुक्त हो जाती है और इसके कलफ से कपडो पर चिकनाहट और चमक अच्छी आती है।

कुछ आसजको को स्टार्च से बनाते समय स्टार्च मे थोडा गेहूँ का आटा मिला दिया जाता है और फिर आटे के ग्लूटेन को थोडा नियत्रित रूप से किण्वित किया जाता है। ग्लूटेन के नियत्रित किण्वन के फलस्वरूप जो पदार्थ उत्पन्न होते है वे आसजक के गुणो मे वृद्धि करते है और साथ ही उसे अधिक टिकाऊ भी बनाते है। कास्टिक सोडा से उपचारित कर बनाये गये स्टार्च आसजको मे थोड़ी आलू की लेई मिलाने से भी आसजकता बढ जाती है।

आसजक बहुत दिनो तक रखा जा सके इसके लिए प्राय स्टार्च को अविलेय धातु यौगिक मे परिणत कर दिया जाता है। इस अविलेय स्टार्च यौगिक के साथ सुहागा या कोई अन्य विलेय सोडियम लवण मिला कर चूर्ण रूप मे रख लिया जाता है। जब इस चूर्ण को पानी मे डाला जाता है तब सुहागा स्टार्च के अविलेय धातु यौगिक से क्रिया कर उसे विलेय सोडियम यौगिक मे परिणत कर देता है और इस प्रकार आसजक विलयन बन जाता है। अविलेय धातु यौगिक मे परिणत करने के लिए स्टार्च को बेरियम, कैल्सियम, जिंक, ऐल्यूमिनियम तथा मैग्नीशियम लवणो से अभिकृत किया जाता है। इस विधि से आसजक बनाने की रूपरेखा निम्न भाँति है—

क्षारीय स्टार्च लेई मे बेरियम क्लोराइड (या अन्य भारी धातु का लवण) विलयन डाला जाता है। बेरियम यौगिक के रूप मे स्टार्च अवक्षेपित हो कर पृथक् हो जाता है। यह बेरियम-स्टार्च यौगिक अविलेय होता है। इसे चूर्ण रूप मे सुहागे (या सोडियम सल्फेट) के साथ मिश्रित कर रख लिया जाता है। यह चूर्ण बहुत दिनो तक बिना खराब हुए रखा जा सकता है। जब इसे पानी मे डाला जाता है तो सुहागा पानी मे घुल कर विलयन बनाता है और यह विलयन अविलेय बेरियम-स्टार्च यौगिक पर क्रिया कर उसे विलेय सोडियम-स्टार्च यौगिक मे परिणत कर देता है। यह विलेय सोडियम-स्टार्च यौगिक पानी की उपस्थिति मे आसजक बनाता है।

ऊपर की विधि मे विभिन्न धातुओ के लवणो से विभिन्न गुणयुक्त आसजक प्राप्त होते है और इस प्रकार इच्छित गुणो वाले आसजक इस विधि से बनाये जा

निर्देश

1 L. Eynon and J H Lane, *Starch*, W Heffer & Sons., Ltd., Cambridge, 1928

2 Marsden, U S P 376, 445, 1888.

3. J. Kantorowitz, E. P. 5844, 1896

4 Perkins, D R. P 282, 699, 1911, U S. P. 1020, 655, 1912.

5 F A V. Klopfer, G P. 528, 109, 1930.

6. C.B. Duryea, U.S P 675,822, 1901; U.S P 696, 949,1902.

7 Bergquist, U. S. P. 1287, 841, 1918.

8 P Murphy, U S P. 568, 265, 1896.

9. R W G. Stutzke, U S P. 1320, 719, 1919.

10 H. Courtonne, *Compt. rend*, 1920, 171, 1168.

11. E. Meusel, *Jahresh. Chem.*, 1886, 2099

12. L. Eynon and J H Lane, *Starch*, W Heffer & Sons. Ltd, Cambridge, 1928.

अध्याय १४

डेक्सट्रिन से बने आसंजक

(Adhesives from Dextrin)

विभिन्न प्रकार के कामो के लिए विभिन्न तरलता तथा विभिन्न गुणयुक्त आसजको की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, यदि दफ्ती के बक्सो या साधारण कागजो को चिपकाने के लिए हाथ से लगाये जाने के उपयुक्त आसजक बनाना है तो इसके अधिक गाढे होने की आवश्यकता नही होती, क्योकि आसजक लगाये जाने के बाद काफी देर तक हवा मे खुला रहता है और तब चिपकाया जाता है। किन्तु यदि किसी मशीन द्वारा आसजक को लगाना है तो चिपकाने की क्रिया बहुत शीघ्र होती है और आसजक को वायु मे सूखने का अवसर नही मिलता। अत मशीन द्वारा उपयोग किये जाने वाले आसजक को गाढा तथा अधिक चिपकनेवाला होना चाहिए जिससे वह वस्तुओ को शीघ्रता से चिपका सके। डेक्सट्रिन से विभिन्न कामो के उपयुक्त बहुत तरह के आसजक बनाये जा सकते है। इन आसजको के गुणो मे बनाने की विधि के अनुसार बहुत प्रकार के अन्तर किये जा सकते हैं। एक ओर हम डेक्सट्रिन से ऐसे आसजक बना सकते है जिनमे गोद के गाढे विलयन की तरह चीकटपन हो और दूसरी ओर ऐसे आसजक बन सकते हैं जिनमे लगाते समय तो कोई विशेष चिपचिपापन न हो किन्तु वायु मे थोडी देर तक खुला रखने पर बहुत आसंजकता आ जाय।

डेक्सट्रिन से साधारणत. स्टार्च की अपेक्षा अधिक पतले आसजक बनाये जाते हैं। यदि गाढा आसजक बनाने की आवश्यकता होती है तो सफेद डेक्सट्रिन का उपयोग आधार के रूप मे किया जाता है और उसमे अधिक जल-विश्लेषित अवस्था का डेक्सट्रिन मिला कर उसकी आसजकता मे वृद्धि की जाती है। डेक्सट्रिन के आसजको मे सबसे बड़ा लाभ यही है कि जिस प्रकार के आसजक की आवश्यकता होती है उसी प्रकार का आसजक बनाया जा सकता है। स्टार्च आसजको मे डेक्सट्रिन आसजको की तुलना मे इतना परिवर्तन उनकी तरलता तथा गुणो मे नही किया जा सकता।

डेक्सट्रिन के आसजको के कुछ सूत्र तथा उनके बनाने की विधि नीचे दी जाती है :—

(१) हाथ से लगाकर चिपकाने का काम करने के लिए डेक्सट्रिन का आसजक बनाने का एक सूत्र निम्न प्रकार है —

मकई के स्टार्च को माल्ट-निष्कर्ष द्वारा नियत्रित रूप से उस सीमा तक किण्वित किया जाता है जब तक यह आयोडीन के साथ हलका लाल-नीला रग नही देता। जब यह सीमा पहुँच जाती है तब किण्वन रोक दिया जाता है। इस समय किण्वित पदार्थ मे शर्करा की मात्रा लगभग ५ प्रतिशत रहती है। इसे गरम कर सुखा लिया जाता है और फिर रख लिया जाता है। जब आसजक बनाना होता है तब इस सूखे चूर्ण को अपनी मात्रा से दुगुने पानी मे रात भर भिगो दिया जाता है और फिर इसमे १० प्रतिशत मध्यम अवस्था का सफेद डेक्सट्रिन मिला कर ८०° से० ग्रे० ताप पर थोडी देर तक गरम किया जाता है। फिर ५ प्रतिशत सुहागे को थोडे से पानी मे अलग घोल कर इस डेक्सट्रिन मिश्रण में डाल दिया जाता है और अन्त मे २ से ५ प्रतिशत तक कास्टिक सोडा तथा सूक्ष्म मात्रा मे फीनोल मिला दी जाती है। अब आसजक तैयार हो जाता है। फीनोल का काम आसजक को परिरक्षित रखना है।

(२) मशीन द्वारा पुस्तको के मुखपृष्ठ को चिपकाने के काम के उपयुक्त एक आसजक का सूत्र निम्न प्रकार है —

आलू का पीला अच्छा डेक्सट्रिन ..	४०	भाग
कास्टिक सोडा .	२	,,
सुहागा	४	,,
कार्बोलिक अम्ल .	० १	,,
टर्की लाल तेल . .	० ०५	,,
पानी ..	५०	,,

उबलते पानी में डेक्सट्रिन डाल कर घोल लिया जाता है। फिर इसमे क्रम से सुहागा, कास्टिक सोडा, कार्बोलिक अम्ल और टर्की लाल तेल (turkey red-oil) निर्धारित मात्राओ मे मिला दिये जाते है। आसजक तैयार हो जाता है। इस आसजक मे पानी की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है और चिकटने का गुण अधिक रहता है। इस कारण यह मशीन द्वारा लगाये जाने के लिए उपयुक्त होता है।

दफ्ती के बक्स बनाने के लिए उपयोग होनेवाले आसजको मे पानी की मात्रा और कम करनी पडती है, क्योकि दफ्ती मे कागज की अपेक्षा पानी सोखने का गुण अधिक होता है और आसजक मे पानी अधिक होने पर दफ्ती के सोखने के बाद दफ्ती की सतह पर आसजक की मात्रा कम रह जाती है जिसके कारण जोड मजबूत नही हो पाता।

अत पानी की मात्रा घटा कर आसजक को अधिक गाढा बनाना होता है जिससे दफ्ती के रन्ध्रो के अन्दर यह न घुस सके।

डेक्सट्रिन के आसजको मे साधारण रूप से सुहागा और कास्टिक सोडा सदैव डाला जाता है। जब भी इनका उपयोग डेक्सट्रिन आसजको मे किया जाय सुहागा पहले डेक्सट्रिन के विलयन मे घुलाया जाय और तब कास्टिक सोडा। यदि कास्टिक सोडा पहले डाल दिया जाता है और सुहागा बाद मे तो आसजक अच्छा नही बनता। इसका रग बहुत गहरा हो जाता है और इसकी आसजकता मे भी कमी हो जाती है। इस आसजक को "बुझा आसजक" (burnt adhesive) कहते है। सुहागे का काम कास्टिक सोडे की क्रिया पर नियत्रण रखना है। साधारणत सुहागे की मात्रा कास्टिक सोडे से दुगुनी ली जाती है। प्राय आसजक के रग को दूर करने के लिए सोडियम पर-बोरेट (sodium per-borate) का उपयोग किया जाता हैं। सोडियम पर-बोरेट को जब आसजक मे मिलाया जाता है तो यह विच्छेदित हो कर आक्सिजन और सुहागा देता है। आक्सिजन आसजक के रग को आक्सीकृत कर रगहीन पदार्थ मे परिणत कर देता है और सुहागा आसजक मे मिल जाता है। अत जब भी सोडियम पर-बोरेट का उपयोग किया जाय सुहागे की अलग से मिलायी जानेवाली मात्रा उतनी घटा देनी चाहिए जितनी पर-बोरेट के विच्छेदन से उत्पन्न हो कर आसजक मे मिल गयी है। सोडियम पर-बोरेट सदा ठढे विलयन के रूप मे आसजक मे उस समय डाला जाता है जब अन्य सब पदार्थ मिला चुकने के बाद आसजक तैयार हो जाता है। आसजक को ३५° सें० ग्रे० ताप पर रख कर इसमे सोडियम पर-बोरेट का विलयन मिला दिया जाता है। थोडी देर तक विलोडित करते रहने पर जब रग नष्ट हो जाता है तब आसजक को शीशियो मे भर कर रख लिया जाता है। अन्य विरजक (bleaching agents), जैसे सोडियम पर-सल्फेट तथा हाइड्रोजन पर-आक्साइड, डेक्सट्रिन आसजको के ग को नष्ट करने के लिए उपयुक्त नही हैं, क्योकि ये डेक्सट्रिन के अणु को सरल अणुओ मे विच्छेदित कर विलयन की श्यानता को बहुत घटा देते है। सोडियम पर-बोरेट का इस प्रकार का कोई विशेष प्रभाव डेक्सट्रिन पर नही पडता और यदि सूक्ष्म मात्रा मे डेक्सट्रिन का विच्छेदन होता भी है तो भी आसजक की श्यानता मे कोई कमी नही आती, क्योकि सोडियम पर-बोरेट के विच्छेदन के फलस्वरूप जो सुहागा उत्पन्न होता है वह श्यानता मे वृद्धि कर घटी श्यानता को पुन पूर्व के अनुसार कर देता है।

सोडियम बाइ-सल्फाइट का उपयोग भी आसजक को विरजित करने (bleach) तथा परिरक्षित रखने के लिए प्राय किया जाता है, किन्तु इसके उपयोग मे एक दोष यह है कि इसकी उपस्थिति से आसजक मे तार तथा धागे के रूप मे खिचने का गुण आ

जाता है। सैलीसिलिक अम्ल यद्यपि आसजको के परिरक्षण के लिए बहुत अच्छा होता है, पर यह भी आसजक मे यही दोष उत्पन्न करता है। अत इसका सूक्ष्म तथा नियत्रित मात्रा मे ही उपयोग किया जाता है।

कैल्सियम क्लोराइड तथा ग्लिसरीन के उपयोग से डेक्सट्रिन आसजको की श्यानता तेल की तरह हो जाती है। साथ ही इनके उपस्थित रहने पर आसजक धीमी गति से सूखते है। अत इनका उपयोग धीमी गति से सूखने वाले आसजको के बनाने मे बहुत होता है। बहुत चिकने कागजो को जोडने के लिए ये आसजक अच्छे होते है।

कुछ डेक्सट्रिन आसजक चूर्ण रूप मे भी बनाये जाते है। इनमे डेक्सट्रिन तथा अन्य मिलायी जानेवाली वस्तुएँ सब ठोस रूप मे मिला कर पीस ली जाती है। इस चूर्ण को पानी मे घोलने पर आसजक विलयन बन जाता है। बाजार मे इस प्रकार का आसजक-चूर्ण 'लिफाफे के गोद' के नाम से बहुत बिकता है। यह साधारणत टैपियोका स्टार्च के उत्तम कोटि के डेक्सट्रिन से बनाया जाता है। इसमे सुहागा, सोडा भस्म तथा सोडियम बाइसल्फाइट तीनो का समान मात्रा का मिश्रण लगभग दो प्रतिशत तक डेक्सट्रिन के साथ मिश्रित रहता है। पानी मे घोलने पर यह चाशनी की तरह का पीला या गहरा लाल विलयन बनाता है जिसमे आसजकता बहुत होती है।

डेक्सट्रिन आसजको मे प्राय थोडा जिलैटिन या पेक्टिन गोद भी मिलाया जाता है। ये आसजक विशेष रूप से सिगरेट के कागजो को जोडने के लिए बहुत उपयुक्त होते है। डेक्सट्रिन आसजको का बहुत उपयोग डाक के लिफाफो तथा टिकटो पर लगाने के लिए होता है। इन पर लगे आसजक प्राय लोगो की जीभ के सम्पर्क मे आते है, क्योकि इन्हे चिपकाने के लिए लोग प्राय थूक लगाते है। अत' इन आसजको के सम्बन्ध मे इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि उनमे न तो कोई खराब स्वाद और दुर्गन्ध हो और न कोई ऐसी विषैली वस्तु हो जो जीभ मे लग जाने पर हानि पहुँचाये। इस कार्य के लिए आसजक अधिकतर टैपियोका तथा मकई के स्टार्च के डेक्सट्रिन से बनाये जाते है, क्योकि ये स्वादरहित और गन्धरहित होते है। आलू के स्टार्च के डेक्सट्रिन मे एक खराब स्वाद होता है और दुर्गन्ध होती है। इस कारण इसका व्यवहार लिफाफो और टिकटो पर लगाने के आसजक बनाने मे नही होता।

मोमीय सतह पर कागज चिपकाने के लिए जो आसजक डेक्सट्रिन से बनाये जाते है उनमे विभिन्न विलायक मिश्रित रहते है। इन विलायको मे ट्राइक्लोरोएथिलीन मुख्य है। किन्तु ये सब आसजक विशेष सन्तोषप्रद सिद्ध नही हुए है। टीन के डब्बो और कनस्टरो के ऊपर लेबल चिपकाने के लिए भी कोई सन्तोषप्रद डेक्सट्रिन का आसजक नही बनाया जा सका है। टीन के डब्बे या कनस्टर आदि जब बन कर

तैयार होते हैं तो उनकी सतह पर चर्बी या तेल की पतली पर्त रहती है क्योकि टीन के डब्बे या कनस्टर बनाते समय इनका उपयोग किया जाता है। सतह पर लगी चर्बी या तेल की पतली पर्त्त के कारण आसजक सतह पर ठीक से लग नही पाता। इस कार्य के लिए जो आसजक आजकल उपयोग मे आते है वे डेक्सट्रिन के आसजक नही है। ये अन्य पदार्थो से बनाये जाते हैं।

'मणिभ गोद' (crystal gum) के नाम से जो डेक्सट्रिन बाजारो मे बिकता है वह कोमल तथा रगीन वस्तुओ के उपयोग के लिए आसजक बनाने के लिए बहुत अच्छा होता है। रगीन कागजो के सबध मे जिस आसजक का उपयोग किया जाय उसमे यह गुण होना चाहिए कि वह रग पर कोई प्रभाव न डाले। यदि आसजक अम्लीय या क्षारीय होता है तो वह रग पर प्रभाव डालता है। मणिभ गोद उदासीन होता है और इसमे क्लोरीन, सल्फर डाइ-आक्साइड तथा मुक्त स्टार्च बिल्कुल नही रहता और शर्करा की मात्रा भी बहुत कम रहती है। अत कोमल तथा रगीन वस्तुओ के उपयोग के अर्थ आसजक बनाने के लिए यह बहुत उपयुक्त होता है। 'मणिभ गोद' साधारणत आलू के स्टार्च से बनाया जाता है। यह अन्य डेक्सट्रिनो की अपेक्षा कुछ महँगा होता है किन्तु इसका आसजक उन आसजको से सस्ता होता है जो अन्य पदार्थों से कोमल और रगीन वस्तुओ के उपयोग के लिए बनाये जाते है। साथ ही इसकी आसजकता भी इस काम के लिए बने अन्य आसजको से अधिक अच्छी होती है। 'मणिभ गोद' के आसजक का बडा उपयोग सजावट के कामो मे किया जाता है। इस आसजक का साधारणत किसी अक्रिय भराऊ पदार्थ के साथ मिश्रित करने के बाद उपयोग किया जाता है। बेरियम आक्साइड, चीनी मिट्टी, जिक आक्साइड आदि का भराऊ पदार्थ के रूप मे उपयोग होता है। इस प्रकार के आसजक बनाने का एक सूत्र नीचे दिया जाता है —

(१)	मणिभ गोद	.	२ भाग
	पानी	..	४ ,,
	बेरियम आक्साइड	..	५ ,,
	चीनी मिट्टी	.	२ ,,
	शोषक पदार्थ (dryers)	...०	५ ,,
	अलसी का तेल	.	२ ,,

मणिभ गोद को गरम पानी में घोल कर इस विलयन मे बेरियम आक्साइड और चीनी मिट्टी मिला दी जाती है और मिश्रण को फेंट कर समाग कर दिया जाता है।

अब शोषी पदार्थ को अलसी के तेल मे अलग से मिला कर इस मिश्रण मे गरम अवस्था मे डाला जाता है और फिर फेंट दिया जाता है। एक पायस (emulsion) के रूप मे आसजक प्राप्त होता है। इसमे पानी मिला कर इच्छित सीमा तक इसे तनु कर लिया जाता है।

कार्क के ऊपर लेबल चिपकाने के लिए अच्छा आसजक निम्न सूत्र द्वारा बन जाता है —

(२)	मणिभ गोद	..	३५ भाग
	जिप्सम	..	४५ ,,
	सरेस (मछली का)	...	६ ,,
	केसीन	..	१० ,,
	सोडा भस्म (या सुहागा)	...	३ ,,

मणिभ गोद और जिप्सम को मिला कर एक समाग चूर्ण बना लिया जाता है। एक दूसरा चूर्ण सरेस, केसीन और सोडा भस्म (या सुहागा) की निर्धारित मात्राओ को परस्पर मिला कर बनाया जाता है। इन दोनो चूर्णों को अलग-अलग ही रखा जाता है। जब आसजक की आवश्यकता होती है तो पहले मणिभ गोद के मिश्रण-चूर्ण को पानी मे डाला जाता है और फिर दूसरे चूर्ण को। दोनो चूर्णो के पानी मे मिलने के बाद आसजक तैयार हो जाता है।

कुछ और डेक्सट्रिन आसजको के सूत्र नीचे दिये जाते हैं —

(३)	मणिभ गोद	...	१ भाग
	कैल्सियम हाइड्राक्साइड (या सुहागा)		१ ,,
	केसीन चूर्ण	..	२ ,,

ऊपर के तीनो अवयवो को ठीक से मिला कर पीस लिया जाता है जिससे समाग मिश्रण बन जाय। इस मिश्रण का कृत्रिम दाँतो को बैठाने के लिए (fixative) उपयोग होता है। यह स्वादरहित तथा गधरहित होता है और इस पर लार तथा भोजन पदार्थो के द्रवो का कोई प्रभाव नही पडता।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, मशीन द्वारा लगाये जाने वाले आसजको मे लचीला-पन होना आवश्यक है। ग्लिसरीन या ग्लाइकॉल के मिलाने से आसजको मे लचीलेपन का गुण आ जाता है, किन्तु इनके जलग्राही होने के कारण एक कठिनाई उपस्थित होती है। मशीन से लगाये जाते समय ये वायुमडल से नमी शोषित करते हैं जिसके कारण

मशीनो मे खराबी उत्पन्न हो जाती है। इनकी अपेक्षा ऐमोनियम सल्फोरिसीनोलियेट (ammonium sulphoricinoleate) इस काम के लिए अधिक उपयुक्त है। यह जलग्राही नही होता, किन्तु आर्द्रताकारक होता है जिसके कारण इसकी उपस्थिति से आसजकता मे वृद्धि होती है। उन आसजको मे जो हाथ द्वारा कागज चिपकाने के काम मे आते है, ग्लिसरीन या ग्लूकोस का उपयोग किया जा सकता है। इनसे आसजक मे चमक तथा सुघट्यता (plasticity) आती है।

ऐसी दो सतहो को जोडने के लिए, जिनकी पारगम्यता बहुत कम होती है, आसजक मे पानी की मात्रा का न्यूनतम होना और साथ ही आसजक का उदासीन होना बहुत आवश्यक है। इस कार्य के लिए पीले डेक्सट्रिन से एक आसजक निम्न सूत्र द्वारा बनाया जा सकता है —

(४)	पीला डेक्सट्रिन	...	६० भाग
	फार्मैल्डीहाइड	..	१.६ ,,
	आर्द्रताकारक (wetting agent)	...	सूक्ष्म
	कास्टिक सोडा	..	आवश्यकतानुसार
	पानी	...	४० भाग

डेक्सट्रिन को गरम पानी मे घोलने के बाद उसमे फार्मैल्डीहाइड मिला दिया जाता है। फिर आर्द्रताकारक पदार्थ सूक्ष्म मात्रा मे डाल दिया जाता है। अन्त में कास्टिक सोडा के विलयन द्वारा पूर्ण उदासीन कर लिया जाता है।

आर्द्रताकारक पदार्थों का उपयोग डेक्सट्रिन के आसजको मे उसी प्रयोजन से किया जाता है जिस प्रयोजन से स्टार्च के आसजको मे। बहुत चिकनी मोमीय या धातु की सतहो या चिकने कागजो के लिए केवल डेक्सट्रिन का जलीय विलयन उपयुक्त आसजक नही होता, क्योकि यह इन सतहो को नही भिगा सकता। क्षार की थोडी मात्रा के वर्तमान रहने पर आसजक मे चिकनी सतहो को भिगाने का गुण आ जाता है। क्षार की उपस्थिति आसजक को टिकाऊ बनाने मे भी सहायक होती है। इसके साथ ही क्षार का एक लाभ और होता है। सक्षारक होने के कारण यह सतह को कुछ काटता भी है जिसके कारण चिपकाया गया कागज या अन्य वस्तु सतह पर मजबूती से चिपकती है और फलस्वरूप जोड अधिक मजबूत होता है। किन्तु यदि क्षार की सक्षारक क्रिया सतह पर वस्तु को चिपकाने के बाद भी बराबर होती रहती है तो धीरे-धीरे सतह ही नष्ट हो जाती है। अत जब क्षार का उपयोग डेक्सट्रिन आसजक मे किया जाय तो यह देख लेना चाहिए कि जिस सतह के लिए आसजक को काम मे लाना है उसे क्षार अधिक

काट तो नही सकता। कुछ आर्द्रताकारक पदार्थ उदासीन अभिक्रिया के भी होते है। इनका उपयोग साधारण सभी प्रकार के आसजको मे किया जा सकता है।

आसजक बनाने के लिए जिस डेक्सट्रिन का उपयोग किया जाय उसमे शर्करा की मात्रा का उचित सीमा के भीतर रहना आवश्यक है। पीले डेक्सट्रिन मे लगभग २-३ प्रतिशत तथा सफेद डेक्सट्रिन मे ४ से ७ प्रतिशत तक शर्करा रहती है। यदि डेक्सट्रिन मे शर्करा की मात्रा अधिक रहती है तो आसजक बहुत जल्दी सूखता है और इसकी पर्त्त सूखने पर चटक जाती है या उचल जाती है।

डेक्सट्रिन आसजको की श्यानता का नियत्रण भी स्टार्च आसजको की भॉति उपयोग के अनुसार किया जाता है। यदि कोई बहुत सरध्र कागज या अन्य इसी प्रकार की सतह को जोडने के लिए आसजक का उपयोग करना है तो आसजक की श्यानता ऐसी होनी चाहिए कि सतह द्वारा इसका शोषण बहुत अधिक न किया जा सके, अन्यथा आसजक सतह पर बहुत कम बच पायेगा और जोड मजबूत न हो सकेगा। ऐसे आसजको मे श्यानता बढाने के लिए थोडा अच्छा जिलैटिन मिलाया जाता है। यदि किसी उपयोग के उपयुक्त बनाने के लिए आसजक की श्यानता घटानी होती है जिससे डेक्सट्रिन की अधिक मात्रा आसजक मे घुलायी जा सके तो डेक्सट्रिन के विलयन को फार्मैल्डीहाइड द्वारा अभिकृत किया जाता है। इसके लिए लगभग २ से ५ प्रतिशत तक फार्मैल्डीहाइड को डेक्सट्रिन के विलयन मे मिला कर विलयन को ८०° से० ग्रे० ताप पर थोडे समय तक गरम किया जाता है। फार्मैल्डीहाइड की अभिक्रिया से विलयन की श्यानता घट जाती है और आसजक मे सतह को शीघ्र आर्द्र करने का गुण भी आ जाता है। इससे आसजक के रग तथा अन्य गुणो पर कोई खराब प्रभाव नही पडता। डेक्सट्रिन का रग उडाने के लिए, जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, विभिन्न आक्सीकारको का उपयोग किया जाता हैं। ये पदार्थ रग उड़ाने के साथ-साथ डेक्सट्रिन विलयन की श्यानता भी घटा देते हैं। आक्सीकारको मे हाइड्रोजन पर-आक्साइड का उपयोग विशेष रूप से बहुत होता है।

अध्याय १५

स्टार्च और भोजन व्यवसाय

स्टार्च अक्रिय, स्वादरहित और उदासीन प्रकृति का पदार्थ है तथा भोजन का एक अवयव है। अत विभिन्न प्रकार की भोजन वस्तुओ के लिए यह एक भराऊ या पूरक पदार्थ के रूप मे उपयोग होने के बहुत उपयुक्त है। इसी कारण स्टार्च का उपयोग इस काम के लिए विभिन्न भोजन व्यवसायो मे बहुत होता है। स्टार्च का बडा उपयोग विभिन्न प्रकार के भोजन-द्रवो को गाढा करने तथा जेली बनाने मे होता है। कस्टर्ड चूर्ण (custard powder) मे स्टार्च एक मुख्य अवयव है। इस चूर्ण को आइसक्रीम बनाने के लिए दूध मे मिलाया जाता है। इससे दूध गाढा हो जाता है और आइसक्रीम बनने पर चिकनी रहती है।

भोजन वस्तुओ मे मिलाने के लिए जिस स्टार्च का उपयोग हो उसका शुद्ध होना बहुत आवश्यक है। अत इस सम्बन्ध मे यह देखना चाहिए कि उसका रग स्वच्छ है और उसमे धूल तथा चोकर आदि अपद्रव्य मौजूद नही है। इसके साथ ही यह भी जानना आवश्यक होता है कि पानी के साथ मिश्रित करने पर मिश्रण की श्यानता कितनी रहती है तथा पानी की उपस्थिति मे किस ताप पर स्टार्च-कण फूल कर फटते हैं।

भोजन वस्तुओ मे मिलाने के लिए शुद्ध स्टार्च तथा गेहूँ के आटे दोनो का उपयोग होता है। स्टार्चों में अधिकतर गेहूँ, चावल, आलू और मकई के स्टार्चों का उपयोग होता है।

स्टार्च ठढे पानी मे अविलेय होता है किन्तु जब पानी के साथ उबाला जाता है तब इसके कण पानी शोषित कर फूलते है और एक सीमा तक फूलने के बाद फट जाते है। जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, यह अवस्था श्लिषीकरण (gelatinisation) की अवस्था होती है। श्लिषीकृत होने के बाद जब स्टार्च-निलम्बन को ठढा किया जाता है और निलम्बन मे स्टार्च की मात्रा पर्याप्त रहती है तो यह जेली (jelly) के रूप मे जम जाता है। यदि स्टार्च की प्रतिशत मात्रा कम रहती है तो एक कलिल विलयन (colloidal solution) प्राप्त होता है। विभिन्न पदार्थों के स्टार्च से जो श्लिषि (या जेल, gel) प्राप्त होती है उसके रूप तथा मजबूती मे परस्पर अन्तर होता है।

बिस्कुट बनाने मे श्लिषि के रूप तथा मजबूती का बडा महत्त्व है। चावल के स्टार्च की श्लिषि अर्ध-पारदर्शक और सब से मुलायम होती है, मकई के स्टार्च की सब से मजबूत और सब से सफेद होती है, गेहूँ के स्टार्च की श्लिषि मजबूती और सफेदी मे इन दोनो के बीच की रहती है। आलू की श्लिषि पारदर्शक तथा चिपकने वाली होती है; अरारोट की इससे भी अधिक पारदर्शक तथा अधिक मुलायम होती है। टैपियोका स्टार्च की श्लिषि मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा सबसे अधिक लेनी पडती है।

प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि श्लिषि को मजबूत बनाने के लिए स्टार्च-निलम्बन को उस ताप से अधिक ऊँचे ताप पर गरम करना चाहिए जिस पर अपारदर्शकता सब से कम हो जाती है। श्लिषि की मजबूती का बिस्कुट और डबल रोटी बनाने मे बडा महत्त्व है।

एक ही अन्न की विभिन्न जातियो के स्टार्च से बनी श्लिषि की मजबूती भी एक समान नही होती। उदाहरणार्थ, सफेद मकई के स्टार्च से पीली मकई के स्टार्च की अपेक्षा अधिक मजबूत श्लिषि बनती है। यह भी देखा गया है कि मकई के पकने के पहले यदि पाला (frost) पड़ा है तो इस मकई के स्टार्च की श्लिषि कम मजबूत बनेगी। अन्न से स्टार्च पृथक् करने मे की गयी क्रियाओ का प्रभाव भी श्लिषि की मजबूती पर पडता है। उदाहरणार्थ, यदि मकई से स्टार्च बनाने मे किसी अवस्था पर सल्फर डाइ-आक्साइड का प्रयोग किया गया है तो इस स्टार्च से बनायी गयी श्लिषि उस मकई के स्टार्च की अपेक्षा जिसे बनाने मे सल्फर डाइ-आक्साइड का व्यवहार नही किया गया है, कम मजबूत होती है।

भोजन वस्तुओ के सम्बन्ध मे उपयोग होनेवाले स्टार्च मे इन सब गुणो का देखना आवश्यक है। इसी के अनुसार विभिन्न कार्यो के लिए विभिन्न स्टार्चो का उपयोग किया जाता है।

विभिन्न भोजन वस्तुएं बनाने में स्टार्च का उपयोग—मकई, टैपियोका तथा चावल के स्टार्च अथवा इनके आटे का उपयोग कस्टर्ड-चूर्ण, आइसक्रीम-चूर्ण तथा केक-चूर्ण बनाने मे बहुत होता है। इन चूर्णो मे थोड़ी चीनी, कोई सुगन्ध तथा रग विभिन्न आवश्यकताओ के अनुसार मिलाये जाते हैं। इन पदार्थों के मिलाने की विधि यह है कि पहले थोडे से चूर्ण मे इन्हे भली-भाँति मिला दिया जाता है और फिर इस चूर्ण को शेष समस्त भाग मे मिला कर ठीक से मिश्रित कर दिया जाता है। यदि रग को विलयन के रूप मे मिलाना होता है तो इस विलयन को पहले ठीक से छान लिया जाता है जिससे कोई बिना घुला ठोस रग का कण न रहने पाये। इस विलयन को स्टार्च मे मिला कर

फिर स्टार्च को निम्न ताप पर सुखा लिया जाता है। ताप इतना निम्न रखना चाहिए कि स्टार्च का श्लिषीकरण न होने पाये और साथ ही ढोके भी न बनने पाये।

टैपियोका स्टार्च से बनाये पुडिग (मधुपाक, pudding) का अमेरिका तथा यूरोप मे बहुत प्रचलन है। पुडिग बनाने के लिए टैपियोका स्टार्च पपड़ी (flakes) तथा दाने दोनो रूपो मे बाजार मे बिकता है। इससे पुडिग तैयार करने मे अधिक समय नही लगता क्योकि यह लगभग पूर्ण रूप से पहले ही पका कर तब पपडी या दानो के रूप मे परिणत कर बाजार मे बिकने के लिए भेजा जाता है। पपडी साधारणत निम्न प्रकार से बनायी जाती है —

टैपियोका स्टार्च मे थोडा सा पानी डाल कर इसे कुछ गीला या नम कर लिया जाता है और फिर लोहे के तवो पर गरम किया जाता है। गरम करते समय स्टार्च को बराबर चलाते रहते है। थोडी देर मे स्टार्च श्लिषीकृत (gelatinise) हो जाता है और फिर पतली पपडी के रूप मे बन जाता है। इसे सुखा कर रख लिया जाता है।

दानो मे परिणत करने के लिए निम्न विधि अपनायी जाती है —

ऊपर की विधि से प्राप्त पपडी को मोटा पीस कर दलिया के रूप मे कर लिया जाता है। इसे फिर उपयुक्त नाप के छेदो की चलनी से छाना जाता है। इस छने दलिया मे बहुत नन्हे-नन्हे कण होते है। इसे फिर एक विशेष उपकरण मे भर कर कुछ गरम अवस्था मे इस प्रकार हिलाया जाता है कि पदार्थ उपकरण मे गोलाई से नाचता रहे। यहॉ दलिया के नन्हे-नन्हे कण परस्पर गरम अवस्था मे जुट कर मोती के आकार के बडे गोल दाने बनाते है। इन दानो को बडे छेदो की चलनी से छान कर पैकटो अथवा डब्बो मे भर कर बिकने के लिए बाजार मे भेज दिया जाता है।

टैपियोका स्टार्च के दाने बनाने की एक विधि यह भी है कि नम टैपियोका स्टार्च को एक लोहे की चद्दर मे बने गोल महीन छेदो के भीतर से दबा कर निकाला जाता है। छेदो से नम स्टार्च छोटे छोटे दानो के रूप मे निकलता है। इन नन्हे दानो को छेदो से निकलते ही एक ऐसे उपकरण मे गिराया जाता है जो गोलाई से घूमता रहता है। यह उपकरण दोहरी दीवार का बना होता है और इन दीवारो के बीच मे भाप प्रवाहित होती रहती है जिससे यह गरम बना रहता है। इस उपकरण मे जब नन्हे दाने पहुँच कर गोलाई से गरम अवस्था मे घूमते है तो गरमी से पहले इनके स्टार्च का श्लिषीकरण हो जाता है और फिर ये दाने परस्पर जुट कर मोती के आकार के बडे दाने बनाते हैं। श्लिषीकृत होने के कारण इन दानो की बाहरी गोल सतह पर एक चमक आ जाती है।

पिछले महायुद्ध के पहले टैपियोका स्टार्च के दाने मुख्य रूप से इडोनेशिया मे बनते

थे और वहाँ से इनका निर्यात अमेरिका तथा यूरोप के अन्य देशो मे होता था। किन्तु महायुद्ध के समय मे जब इडोनेशिया पर जापान का अधिकार हो गया तब टैपियोका के दानो का अमेरिका तथा यूरोप मे जाना रुक गया। उस समय मकई, चावल तथा अन्य स्टार्चो से टैपियोका के दानो की भाँति के दाने बनाने का प्रयत्न अमेरिका मे किया गया। इसमे सफलता तो मिली किन्तु ये दाने इतने सस्ते नही होते जितने इडोनेशिया से प्राप्त होने वाले टैपियोका स्टार्च के दाने होते है।

मकई के स्टार्च से पुडिग बनाने का एक सूत्र नीचे दिया जाता है —

मकई का स्टार्च	...	२५ पौंड
चीनी	...	७० ,,
नमक	..	१ ,,
वैनिला (सुगन्ध)	.	३ औस

माल्ट के योग से स्टार्च द्वारा सुपाच्य भोजन सामग्री बनाना—माल्ट के योग से स्टार्च माल्ट-शर्करा मे परिणत हो जाता है। माल्ट-शर्करा का बहुत उपयोग ऐसे भोजन पदार्थ बनाने मे होता है जो सरलता से पच सके। ऐसे सरलता से पचने योग्य भोजन पदार्थो के बनाने की आवश्यकता रोगियो के लिए होती है जिनकी पाचनशक्ति कम-जोर हो गयी है। माल्ट-शर्करा को मछली के तेल तथा लोहे के कुछ यौगिको के साथ विभिन्न भोजन पदार्थो मे उन्हे अधिक शक्ति-वर्धक बनाने के लिए मिलाया जाता है।

स्टार्च से माल्ट-शर्करा निम्न विधि से बनायी जाती है —आलू के स्टार्च को पानी के साथ गरम कर उसमे लगभग ३ प्रतिशत माल्ट-निष्कर्ष मिलाया जाता है। फिर ठढा कर इसमे लगभग ५ प्रतिशत 'हरा माल्ट' (green malt) मिला कर रख दिया जाता है। जब किण्वन-क्रिया समाप्त हो जाती है तो माल्ट-शर्करा प्राप्त होती है।

इसी प्रकार का एक अन्य पदार्थ भोजन मे मिलाने के लिए निम्न प्रकार से बनाया जाता है —

मकई के स्टार्च को तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा नियत्रित सीमा तक जल-विश्ले-षित कर पहले डेक्सट्रिन मे परिणत किया जाता है। इसमे गरम पानी मिला कर एक विलयन बना लिया जाता है। इस विलयन मे १० से ३० प्रतिशत तक ठोस घुला रहता है। इसका pH ४ ७ और ५ २ के बीच मे रखा जाता है। इस विलयन को फिर ७५° से० ग्रे० पर रख कर इसमे थोडा डायस्टेस मिला कर लगभग १५ मिनट तक किण्वन होने दिया जाता है। इसके बाद ताप को बढ़ा कर १०-१५ मिनट के लिए १००° सें० ग्रे० कर दिया जाता है। फिर ताप को ७५° से० ग्रे० तक घटा कर थोड़ा डायस्टेस और

डाल दिया जाता है और तब तक किण्वन होने दिया जाता है जब तक किण्वित द्रव आयोडीन से भूरा रग उत्पन्न करता है। किण्वन जब निश्चित सीमा तक हो चुकता है तब किण्वित द्रव को गाढा कर एक चाशनी के रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। इस चाशनी मे लगभग ७५ प्रतिशत ऐमिलोडेक्सट्रिन तथा २४-२५ प्रतिशत माल्टोस रहता है।

मिठाइयाँ बनाने में स्टार्च का उपयोग—मिठाइयाँ बनाने मे स्टार्च का मुख्य उपयोग ग्लूकोस, रग तथा सुगन्ध के वाहक (carrier) के रूप मे होता है। चूसने का गोद (gum drop) तथा इसी प्रकार की अन्य मिठाइयाँ बनाने मे विलेय स्टार्च का उपयोग किया जाता है।

चूसने का गोद बनाने मे टैपियोका, सैगो तथा मकई के स्टार्चों का उपयोग अधिक होता है क्योकि ये शीघ्र श्लिषि मे परिणत हो जाते है। टैपियोका स्टार्च से जो चूसने का गोद बनता है उसमे एक दोष यह होता है कि रखने पर यह गलने लगता है। इसके साथ ही इसके बनाने मे भी एक कठिनाई यह होती है कि जब चाशनी को साँचो मे डालते हैं तो चाशनी के तार एक साँचे मे भरने के बाद शीघ्र टूटते नही। फलस्वरूप विभिन्न साँचो की गोलियाँ परस्पर एक दूसरी से तार द्वारा जुडी रहती है। इन्हे पृथक् करने पर इनका रूप बहुत सुन्दर और साफ नही आता। सैगो स्टार्च से जो गोद बनता है वह आरम्भ मे स्वच्छ और चमकीला होता है किन्तु इसमे दोष यह होता है कि रखने पर इसकी पारदर्शकता और चमक विलीन हो जाती है और यह देखने मे धुधला हो जाता है। मकई के स्टार्च से स्वच्छ और अच्छा गोद प्राप्त होता है, किन्तु अन्य स्टार्च के योग से बनाये गोद की अपेक्षा यह कुछ अधिक मुलायम होता है। इस दोष को दूर करने के लिए कैल्सियम पर-आक्साइड द्वारा आक्सीकृत किया गया मकई का स्टार्च उपयोग किया जाता है। इस आक्सीकृत स्टार्च से चूसने का गोद स्वच्छ और कडा बनता है।

चूसने का गोद बनाने की विधि निम्न प्रकार है :—

इक्षु-शर्करा	...	५० भाग
ग्लूकोस	...	५० "
पानी	...	१०० "
स्टार्च	...	५ "
रग और सुगध	...	इच्छानुसार

इक्षु-शर्करा, ग्लूकोस और स्टार्च की निर्धारित मात्राएँ पानी में मिला कर विलयन को उबाला जाता है। थोड़ी देर तक उबालने के बाद एक पारदर्शक स्वच्छ चाशनी प्राप्त होती है। इसमे रग और सुगन्ध की आवश्यक मात्राएँ शीघ्र मिला कर साँचों

मे भर दिया जाता है और कई दिनो तक जमने के लिए छोड दिया जाता है। साँचे भी मकई के स्टार्च के ही बने होते है। जब चाशनी जम कर गोद के रूप मे हो जाती है तो साँचे सहित गोद को चलनियो मे निकाल लिया जाता है। स्टार्च छन कर निकल जाता है और गोद की गोलियाँ चलनियो पर अलग रह जाती है। इन्हे तश्तरियो मे एकत्रित कर दबाया जाता है जिससे ये चपटे रूप की हो जाती है। फिर प्रत्येक को पतले कागज़ मे लपेट कर और कागज़ मे लिपटी गोलियो को डब्बो मे भर कर बाजार मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

आलू के स्टार्च का भोजन व्यवसाय में उपयोग—हम पीछे बतला चुके हैं कि आलू के स्टार्च से ग्लूकोस बडी मात्रा मे बनाया जाता है। आलू से ऐलकोहल भी जर्मनी तथा यूरोप के कुछ अन्य देशो मे बहुत बनाया जाता है। इन सब उपयोगो के अतिरिक्त आलू के आटे का बडा उपयोग रोटियो तथा बिस्कुट बनाने मे भी होता है। आलू का आटा बनाने के लिए आलू को पहले धो कर साफ कर लिया जाता है और फिर कूच कर लुगदी के रूप मे परिणत कर दिया जाता है। इस लुगदी को अब दाब पर भाप द्वारा गरम किया जाता है और गरम अवस्था मे ही इसके ऊपर हवा की तेज़ धारा प्रवाहित की जाती है। हवा की धारा लुगदी मे मौजूद वाष्पशील अपद्रव्यो को उडा कर निकाल देती है। इन अपद्रव्यो के निकल जाने से आटे मे से आलू की खराब गध हट जाती है और इसका स्वाद भी अच्छा हो जाता है। आधा घटा इस प्रकार से गरम करने के बाद लुगदी को पानी भरे एक दूसरे बर्तन मे डाल दिया जाता है। आलू का छिलका तथा अन्य भारी अपद्रव्य नीचे तली मे पहले बैठ जाते हैं और आटा निलम्बित अवस्था मे रहता है। तली मे बैठे अपद्रव्यो को पृथक् कर निकाल दिया जाता है और आटे के निलम्बन को सुखा कर सूखा आटा प्राप्त कर लिया जाता है। निलम्बन को सुखाने के लिए विभिन्न प्रकार के शोषको का व्यवहार किया जाता है।

आलू के आटे मे ८०-८२ प्रतिशत स्टार्च तथा शर्कराएँ, ८-९ प्रतिशत प्रोटीन, ० २-० ५ प्रतिशत वसा और २-३ प्रतिशत खनिज द्रव्य रहते है। शेष लगभग ५-६ प्रतिशत जल रहता है। इस प्रकार यह आटा अच्छा भोजन पदार्थ है। आलू अधिक समय तक रखने पर खराब हो जाता है किन्तु यह आटा बहुत वर्षों तक बिना खराब हुए रखा जा सकता है। इस आटे का यह गुण विशेष लाभ का है और इस प्रकार आटे के रूप मे आलू बहुत समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

आलू के स्टार्च मे मकई, टैपियोका और गेहूँ का स्टार्च मिला कर इसका उपयोग कस्टर्ड चूर्ण बनाने तथा अन्य प्रकार के भराऊ पदार्थ के रूप मे बहुत होता है। केक बनाने के लिए भी गेहूँ के आटे मे लगभग २० से ४० प्रतिशत तक आलू का आटा प्राय:

मिलाया जाता है। इस मिश्रित आटे से केक अधिक अच्छी बनती है। सूप और ग्रेवी (gravy) को गाढा करने के अर्थ प्रयुक्त होने वाले विभिन्न चूर्णो मे भी आल का स्टार्च रहता है। डबल रोटी बनाने मे भी प्राय थोडा सा उबला आलू पीस कर गेहूँ के आटे मे मिलाया जाता है। इससे रोटी अधिक सफेद बनती है। रोटी के ऊपर की पपडी बहुत सूखी और कडी नही होती तथा रखने पर रोटी मे बासीपन जल्दी नही आता।

आलू से बनाये भोजन पदार्थो मे पौष्टिक तत्त्वो की मात्रा बहुत अश तक पकाने की विधि पर निर्भर करती है। छिलके सहित आलू को पकाने पर उसके भोजन तत्त्वो की हानि छिलका उतारे आलू को पकाने की अपेक्षा कम होती है। इसी प्रकार भाप द्वारा पकाने से पानी के साथ उबालने की अपेक्षा कम हानि होती है। पानी के साथ उबालने पर आलू का कुछ स्टार्च, प्रोटीन और खनिज द्रव्य तथा आलू मे मौजूद शर्कराएँ पानी मे घुल कर निकल जाती है। पानी मे विलेय होने के कारण आलू का विटामिन-सी भी पानी मे घुल कर पर्याप्त अश तक निकल जाता है। अत आलू के पौष्टिक तत्त्वो को अधिक से अधिक सुरक्षित रखने के लिए आलू को छिलके सहित भाप द्वारा पकाना उन्हे पानी के साथ उबाल कर पकाने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। आलू के पौष्टिक तत्त्वो को सुपाच्य रूप मे परिणत करने के लिए आलू को पकाना आवश्यक होता है। पकाने से आलू के स्टार्च का आशिक श्लिपीकरण हो जाता है और सेल्यूलोस अधिक पाच्य रूप मे परिणत हो जाता है। इसमे उपस्थित प्रोटीन भी स्कदित रूप मे हो कर अधिक पाच्य हो जाती है।

पाक-चूर्ण (बेकिंग चूर्ण, Baking powder) बनाने मे स्टार्च का उपयोग—पाक-चूर्ण बनाने मे भराऊ पदार्थ के रूप मे स्टार्च का उपयोग होता है। डबल रोटी, केक तथा बिस्कुट आदि को पकाते समय इनके आटे मे पाक-चूर्ण इस प्रयोजन से मिलाया जाता है कि पकने पर ये सरध्र और हलके रहे। गरम होने पर पाक-चूर्ण मे मौजूद रासायनिक पदार्थ परस्पर रासायनिक प्रतिक्रिया करते है जिसके फलस्वरूप कार्बन डाइ-आक्सा-इड गैस बडी मात्रा मे उत्पन्न होती है और पक रही वस्तु के भीतर से छेद करती हुई बाहर निकलती है। इस प्रकार वस्तु सरध्र और हलकी हो जाती है और उसका रूप कुछ कुछ मक्खी के छत्ते की भाँति हो जाता है।

पाक-चूर्ण बनाने मे लगभग ४० प्रतिशत स्टार्च तथा शेष ६० प्रतिशत मे अन्य सब रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते है। इस काम के लिए सभी स्टार्चों का उपयोग कया जाता है किन्तु चावल का स्टार्च अधिक अच्छा होता है, क्योकि इसकी उपस्थिति से पाक-चूर्ण अधिक दिनो तक सुरक्षित रहता है। मकई का स्टार्च यद्यपि चावल के स्टार्च की भाँति पाक-चूर्ण को अधिक टिकाऊ तो नही बनाता पर इसमे एक दूसरा

लाभ होता है। मकई के स्टार्च मे तरलता (fluidity) अन्य स्टार्चो की अपेक्षा अधिक होती है, अत इसके मिलाने से पाक-चूर्ण भी अधिक तरल हो जाता है। इस तरलता के कारण पाक-चूर्ण मे उसके विभिन्न रासायनिक अवयव अधिक ठीक से एक दूसरे से पृथक् रहते है और शीघ्र परस्पर मिल कर प्रतिक्रिया नही करते।

सलाद चूर्ण (Salad dressings)—सलाद बनाने के लिए राई आदि विभिन्न मसालो का एक चूर्ण बना कर रख लिया जाता है और सलाद बनाते समय इस चूर्ण को सलाद की वस्तुओ पर डाल कर तुरन्त सलाद बना लिया जाता है। सलाद चूर्ण मे स्टार्च भी प्राय मिश्रित किया जाता है। स्टार्च का सलाद बनाने मे मुख्य कार्य अडे तथा अन्य पदार्थ को आकीर्ण (dispersed) अवस्था मे रखना तथा उसकी श्यानता को बढाना है। इस काम के लिए मकई और टैपियोका स्टार्चो के मिश्रण का बहुत उपयोग होता है।

बिस्कुट बनाने में स्टार्च का उपयोग—विभिन्न प्रकार के विस्कुट बनाने मे स्टार्च का बडा उपयोग होता है। अरारोट स्टार्च से कडे मीठे बिस्कुट बनाये जाते है और ये बिस्कुट बच्चो तथा रोगियो के लिए अच्छे समझे जाते है क्योकि शीघ्र पच जाते है। अरारोट पर लार की क्रिया शीघ्र होती है और यह शक्कर मे जल-विश्लेषित हो जाता है। किन्तु अधिक प्रकार के बिस्कुट मुख्य रूप से गेहूँ के आटे से बनाये जाते है। इस काम के लिए मुलायम जाति के गेहूँ का आटा अधिक अच्छा समझा जाता है। अच्छा बिस्कुट बनाने के लिए गेहूँ के आटे मे स्टार्च भी मिलाया जाता है। स्टार्च की विभिन्न मात्रा का उपयोग कर विभिन्न गुण युक्त बिस्कुट बनाये जा सकते है। यदि मीठे और कुरकुरे बिस्कुट बनाना होता है तो आटे मे स्टार्च इस अनुपात मे मिलाया जाता है कि मिश्रण मे प्रोटीन की प्रतिशत मात्रा ७ से ८ ५ के बीच मे रहे। स्पज की तरह सरध्र बिस्कुट बनाने के लिए आटे और स्टार्च का ऐसा मिश्रण लिया जाता है कि उसमे प्रोटीन की मात्रा ८ से १० प्रतिशत के बीच मे रहती है। आटे की प्रोटीन के प्रतिशत को निश्चित सीमा तक घटाने के लिए शक्कर तथा मक्खन (या अन्य वसा) भी मिलाया जाता है, किन्तु यदि केवल इन्ही का उपयोग इस काम के लिए किया जाय तो इनकी इतनी अधिक मात्रा आटे मे मिलानी पडे कि बिस्कुट आवश्यकता से बहुत अधिक मीठा हो जाय। इसी कारण स्टार्च का उपयोग करना आवश्यक होता है। बहुत पहले आटे मे मकई के स्टार्च की लगभग ५० प्रतिशत तक मात्रा मिला कर बिस्कुट बनाया जाता था, किन्तु स्टार्च की इतनी अधिक मात्रा मिलाने की आवश्यकता नही है। साधारण रीति से अच्छा बिस्कुट बनाने के लिए विभिन्न गेहूँ के आटे मे उसकी प्रोटीन की मात्रा के अनुसार ५ से २० प्रतिशत तक स्टार्च मिलाने की आवश्यकता होती है। चीनी और

मक्खन मिलाने से भी प्रोटीन की प्रतिशत मात्रा कुछ घटती है। अत स्टार्च मिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बाद मे चीनी और मक्खन भी मिलाना है, और इस कारण स्टार्च केवल इतना ही मिलाया जाय कि बाद मे चीनी और मक्खन मिलाने के बाद मिश्रण मे प्रोटीन का प्रतिशत निर्धारित सीमा के अन्तर्गत रहे।

बिस्कुट बनाने के आटे मे स्टार्च मिश्रित करने के निम्न लाभ है —

यह गुधे (dough) आटे को कडा नही पडने देता और बिस्कुट को कोमल (tender) बनाता है। स्टार्च न रहने पर गुधा आटा शीघ्र कडा पड जाता है जिसके कारण साँचो मे बिस्कुट का ठीक रूप नही आता और बनने पर बिस्कुट मे कोमलता भी नही रहती। ऐसे गुधे आटे मे, जो कडा पड गया है, ५ से १० प्रतिशत तक स्टार्च मिलाने से आटे का कडापन दूर हो जाता है और फिर इस आटे का बिस्कुट बनने पर वह ठीक रूप का होता है। अधिकतर आटे मे मकई का स्टार्च मिलाया जाता है। मकई का आटा बिस्कुट मे निम्न गुण उत्पन्न करता है —(१) बिस्कुट का स्वाद अधिक अच्छा हो जाता है, (२) बिस्कुट के भीतर का रग अधिक स्वच्छ और सफेद रहता है, (३) शक्कर और मक्खन कम मिलाना पडता है, अत बिस्कुट सस्ता पडता है, (४) बिस्कुट का चिपकनापन घट जाता है और इसका रूप तथा आकार अधिक अच्छा होता है।

आइसक्रीम के साथ उपयोग होने वाले वेफर बिस्कुट (wafer) बनाने मे आटे के प्रकार का बहुत महत्त्व है। यदि आटा मुलायम होता है तो वेफर इतना कोमल बनता है कि हाथ से छूते ही चूर हो जाता है। यदि आटा बहुत कडा होता है तो वेफर भगुर बनता है। वेफर बनाने के लिए गेहूँ के आटे मे साधारण रीति से ५ से ७ प्रतिशत तक टैपियोका स्टार्च मिलाना अच्छा होता है। कभी-कभी आटे की जाति के अनुसार १५ प्रतिशत तक टैपियोका स्टार्च मिलाना पडता है। वेफर बनाने के लिए मकई का स्टार्च इतना अच्छा नही होता क्योकि इससे वेफर बहुत भगुर बनता है और पैकेट मे ही टूट जाता है। वेफर ऐसा होना चाहिए जो न तो बहुत कडा हो और न बहुत भगुर ही हो।

बिस्कुट बनाने मे जब शक्कर को महीन पीस कर आटे मे मिलाना होता है तो आटे के तैयार होते ही शीघ्र बिस्कुट बना लेना चाहिए। यदि यह कुछ समय तक रखा रहता है तो शक्कर के साथ आटा ढोके बनाता है। ढोके न बनने पाये इसके लिए प्राय एक-दो प्रतिशत मकई का स्टार्च या सफेद डेक्सट्रिन का चूर्ण शक्कर मे पहले मिला कर तब इसे आटे मे मिलाना चाहिए। बिस्कुटो पर आइसिंग करते समय आइसिग मशीन मे मकई का स्टार्च छिडका जाता है जिससे आइसिंग पदार्थ मशीन मे चिपकने न पाये।

डबल रोटी बनाने में स्टार्च का महत्त्व—डबल रोटी गेहूँ के आटे से बनायी

जाती है। आटे मे मौजूद स्टार्च की जाति के ऊपर डबल रोटी के गुण तथा रूप आदि बहुत अश तक निर्भर करते हैं। डबल रोटी बनाने मे क्रिया निम्न क्रम से होती है। आटे मे वर्तमान डायस्टेस पहले थोडे स्टार्च को शर्करा मे परिवर्तित कर देता है। यह शर्करा फिर यीस्ट द्वारा किण्वित होती है। इस किण्वन मे जो कार्बन डाइ-आक्साइड गैस निकलती है वह डबल रोटी को सरध्र और हलकी बनाती है। विभिन्न स्टार्च ऊपर की क्रिया मे विभिन्न अश तक भाग लेते है और इसी कारण विभिन्न आटे के स्टार्च से विभिन्न प्रकार की डबल रोटी बनती है।

रोटी बनने मे स्टार्च के निम्न दो गुणो का विशेष महत्त्व है —स्टार्च-कणो के पानी शोषण करने की शक्ति तथा सिकने का गुण। स्टार्च का पानी शोषित करने का गुण आटे मे वर्तमान ग्लूटेन की मात्रा तथा स्टार्च-कणो की अवस्था पर भी निर्भर करता है। यदि ग्लूटेन की मात्रा अधिक रहती है तो आटे को गूँधने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता पडती है। इसी प्रकार स्टार्च-कण जितना अधिक ग्लूटेन से पृथक् मुक्त अवस्था मे आटे मे रहते है उतना ही शीघ्र वे पानी शोषित कर सकते है। इसके साथ ही आटे के महीन और अपेक्षाकृत मोटे पिसे रहने पर भी उसके पानी सोखने का गुण निर्भर करता है। जितना अधिक महीन आटा पिसा रहता है उतना ही अधिक स्टार्च-कण टूटी अवस्था मे रहते है और जितना अधिक टूटी अवस्था मे स्टार्च-कण रहते है उतना अधिक वे पानी सोख सकते है। अत एक ही गेहूँ का वह आटा जो खूब महीन पीसा गया है, उस आटे की अपेक्षा जो कम महीन है, अधिक पानी सोखेगा।

स्टार्च के सिंकने के गुण (baking quality) का सम्बन्ध बहुत अश तक उसके कणो की माप से है। यदि आटे मे महीन कणो का अनुपात मोटे कणो की अपेक्षा अधिक होता है तो इसमे सिकने का गुण अधिक अच्छा होता है। गुधे आटे की मज़बूती पर भी कणो की माप का प्रभाव पडता है। महीन कण गुधे आटे को अधिक मज़बूत बनाते है। स्टार्च-कणो की माप के साथ-साथ उनकी जाति तथा रूप पर भी कुछ अश तक सिंकने का गुण निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, यदि थोडा सा आलू का आटा या स्टार्च गेहूँ के आटे मे मिला दिया जाता है तो जो डबल रोटी इससे बनती है उसमे नमी अधिक रहती है।

सिंकने के गुण पर आटे मे मौजूद डायस्टेस का भी बडा प्रभाव पड़ता है। डायस्टेस आटे मे मुक्त रूप मे है या बधित रूप मे है इस पर बहुत अश तक डायस्टेस की क्रिया निर्भर करती है। डायस्टेस जितना अधिक मुक्त अवस्था मे रहता है उतना ही घनिष्ठ रूप मे स्टार्च-कणो के सम्पर्क मे आता है और फलस्वरूप उतनी ही अधिक इसकी क्रिया स्टार्च पर होती है। आटे को महीन पीसने से बहुत सा डायस्टेस जो अन्न

के कुछ भाग मे यान्त्रिक रूप से बन्धित रहता है मुक्त हो जाता है और आटे मे सब जगह फैल जाता है जिससे इसकी क्रिया बढ जाती है। नमक का तनु विलयन भी डायस्टेस को बन्धित अवस्था से मुक्त होने मे सहायक होता है। इसी कारण डबल रोटी बनाने मे प्राय आटे मे थोडा सा नमक भी डाला जाता है। पपेन (papain) एजाइम मे भी डायस्टेस को बधित अवस्था से मुक्त करने का गुण होता है, किन्तु इसकी क्रिया यदि एक सीमा से अधिक होने दी जाती है तो गुँधे आटे के सिकने के गुण मे कई प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते है।

सिकने के गुण मे वृद्धि करने के लिए आटे मे प्राय कुछ पदार्थ भी मिलाये जाते है। ये पदार्थ अधिकतर आक्सीकारक होते है। ये प्रोटीन पर क्रिया करने वाले एजाइम की क्रिया को घटा देते है और इसका आटे के सिकने पर अच्छा प्रभाव पडता है। आटे को कुछ समय तक सगृहीत रखने पर भी उसके सिकने का गुण अच्छा हो जाता है और इसका कारण भी सभवत यही है कि रखने पर आटे के एजाइम की क्रियाशीलता घट जाती है।

डबल रोटी मे प्राय दो प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते है —एक तो चिपकने का और दूसरा पपडी पर धारियाँ पड जाने का। प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि डबल रोटी के इन दोषो का सम्बन्ध आटे मे मौजूद माल्टोस की मात्रा से रहता है। इन दोषो से रहित अच्छी डबल रोटी बनाने के लिए आटे मे माल्टोस की मात्रा का १ ५ से २.३ प्रतिशत के बीच मे रखना आवश्यक है। यदि माल्टोस २ ५ प्रतिशत से अधिक रहता है तो डबल रोटी की पपडी मे चिपकने का दोष उत्पन्न हो जाता है। कुछ लोगो के वचार के अनुसार पपडी के चिपकने का दोष स्टार्च के अधिक जल-विश्लेषण से सम्बन्ध रखता है। एज़ाइम की अधिक क्रिया के फलस्वरूप स्टार्च का अपेक्षाकृत अधिक जल-विश्लेषण होता है और डेक्सट्रिन उत्पन्न होता है। इस कारण स्टार्च की पर्याप्त मात्रा नही बचती जो सब पानी को अपने मे बधित रख सके। उत्पन्न हुआ डेक्सट्रिन इस पानी मे घुल कर चिपकने का दोष उत्पन्न करता है। जिस आटे मे डेक्सट्रिन की मात्रा १४ प्रतिशत से अधिक होती है उसकी डबल रोटी मे ऊपर बतलाये दोष उत्पन्न हो जाते है, चाहे जितनी अच्छी प्रकार सेकने की क्रिया की जाय। प्राय बहुत से नानबाई गुधे आटे मे माल्ट-चाशनी इसलिए मिलाते है कि आटे मे शर्करा की मात्रा बढ जाय और किण्वन शीघ्रता से हो। माल्ट-चाशनी मे डायस्टेस भी रहता है और इस प्रकार इस चाशनी के साथ डायस्टेस की भी कुछ मात्रा आटे मे पहुँच जाती है। आटे मे स्वय भी पहले से डायस्टेस रहता है। अत माल्ट-चाशनी के मिलाने से आटे मे डायस्टेस की मात्रा आवश्यकता से प्राय अधिक हो जाती है। कुछ रसायनज्ञो

का अनुमान है कि डायस्टेस की इस अधिक मात्रा के कारण भी डबल रोटी मे ऊपर बतलाये दोष उत्पन्न होते है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि डबल रोटी के दोष किसी एक कारण से ही नही उत्पन्न होते, ये दोष विभिन्न कारणो से उत्पन्न होते है।

रोटी के बासी होने की समस्या—डबल रोटियो को कई-कई दिनो तक रखने की आवश्यकता पडती है। अत रोटियाँ रखने पर सुरक्षित रह सके और उनके स्वाद मे कोई अन्तर न आये यह बात बहुत महत्त्व की है। घरो मे प्राय रोटियाँ बच जाती है और यदि रखने पर इनमे बासीपन आ जाता है तो इन्हे फेकना पडता है। युद्ध के दिनो मे सिपाहियो को प्रति दिन ताजी रोटियाँ युद्ध के मैदान मे पहुँचाना सम्भव नही होता। वहाँ तो भोजन पदार्थ पहुँचाने की व्यवस्था प्राय महीनो नही हो पाती। ऐसी अवस्था मे सिपाहियो के लिए ऐसी रोटियाँ बनानी आवश्यक है जो रखी जा सके और जिनमे रखने पर बासीपन न आये। इसी प्रकार यदि रोटी के बासीपन पर नियत्रण रखा जा सके तो एक स्थान से रोटियाँ दूर के दूसरे स्थानो मे सुविधापूर्वक भेजी जा सकती है। अत रोटी के बासीपन की समस्या आर्थिक तथा व्यावहारिक दोनो क्षेत्रो मे बहुत महत्त्व की है और इस सम्बन्ध मे वर्षो से रसायनज्ञो ने खोज कर इस समस्या का हल ज्ञात करने का प्रयत्न किया है।

रोटी का बासीपन क्या है?—बासी होने पर रोटी के रूप मे कुछ ऐसे परिवर्तन होते है जिनका ठीक से बतलाना तो कठिन है किन्तु अनुभवी व्यक्ति देख कर बासीपन पहचान लेता है। साधारण रीति से बासीपन का उन परिवर्तनो से तात्पर्य है जो रोटी के रखने पर उसमे उत्पन्न हो जाते है और जिनके कारण रोटी का स्वाद आदि खराब हो जाता है। ग्राहक प्राय शक्ल से ही रोटी के बासीपन का अनुमान लगा लेता है। बासीपन आ जाने पर निम्न परिवर्तन होते है —(१) रोटी के स्वाद और गध मे अन्तर हो जाता है, (२) पपड़ी सूख कर अधिक कडी पड जाती है और छूने से तथा जीभ पर रखने से यह कडापन तुरन्त मालूम हो जाता है, (३) बाहरी पर्त धीरे-धीरे कडी पडती जाती है और अत मे इतनी भगुर हो जाती है कि शीघ्र चूर हो जाती है, (४) रोटी की पानी सोखने की शक्ति घट जाती है, (५) रोटी मे विलेय स्टार्च की मात्रा घट जाती है, (६) रोटी मे अपारदर्शकता बढ जाती है तथा (७) एक्स-किरण (X-ray) से लिये गये वर्ण-चित्र (spectrum) मे अन्तर हो जाता है। बासीपन से सम्बन्धित ये सब परिवर्तन रोटी के भीतर होने वाली अनेक भौतिक तथा रासायनिक अभिक्रियाओ के परिणाम हैं। ये अभिक्रियाएँ बहुत जटिल हैं और इनका ज्ञान ठीक से होना सम्भव नही है।

रोटी मे बासीपन किस अश तक उत्पन्न हो गया है इसका अनुमान करने के लिए

ऊपर बतलाये परिवर्तनो को मापने का प्रयत्न किया जाता है। साधारणत निम्न विधियाँ बासीपन को मापने मे प्रयोग की जाती हैं —

(क) संपीड्यता द्वारा (By measurıng compressıbılıty)—विभिन्न उपकरणो की सहायता से इस विधि द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि एक निर्धारित भार से रोटी कितनी दबती है, अथवा यह देखा जाता है कि किसी एक निश्चित मात्रा तक रोटी को दबाने के लिए कितने भार की आवश्यकता पडती है। पहली विधि मे भार स्थिर रखा जाता है और बासीपन की मात्रा के अनुसार सपीड्यता के पाठ्याक (readıng) मे जो अन्तर आता है वह ज्ञात हो जाता है। इस पाठ्याक को "मुलायम-पन का पाठ्याक" (softness readıngs) भी कहते है क्योकि रखने पर रोटी का मुलायमपन घटता जाता है।

दूसरी विधि मे एक सपीड्यता को प्रामाणिक मान कर स्थिर कर लिया जाता है, और जैसे-जैसे बासीपन बढता जाता है यह ज्ञात करते जाते है कि कितने भार से रोटी प्रामाणिक सपीड्यता तक सपीडित होती है। बासीपन की वृद्धि के साथ-साथ जैसे-जैसे रोटी मे कडापन बढता जाता है वैसे-वैसे प्रामाणिक सपीड्यता तक रोटी को सपीडित करने के लिए क्रम से अधिक भार की आवश्यकता पडती है। भारो के ये पाठ्याक बासीपन की माप प्रदर्शित करते है। इन पाठ्याको को "दृढता का पाठ्याक" (firmness readıngs) कहते है। आजकल इस दूसरी विधि का ही प्रयोग अधिक होता है।

ऊपर की दोनो विधियो से जो निष्कर्ष प्राप्त होते है वे एक समान नही होते। यदि "मुलायमपन के पाठ्याक" को समय के पाठ्याक के साथ ले कर वक्र (curve) खीचा जाय तो एक समबाहु अतिपरवलय (equılateral hyperbola) बनता है, किन्तु "दृढता के पाठ्याक" के साथ जो वक्र प्राप्त होते है वे लगभग सीधी रेखाएँ होती है। सीधी रेखाएँ होने के कारण 'कडेपन' के वक्रो का परस्पर तुलनात्मक रूप से अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु 'मुलायमपन' के वक्रो का इस प्रकार अध्ययन नही किया जा सकता। 'मुलायमपन' के वक्र आरम्भ मे तेजी से नीचे गिरते है और फिर लगभग स्थिर हो जाते हैं। इन वक्रो मे सबसे अधिक अवपात (fall) डबल रोटी के पकने के तुरन्त बाद के कुछ घटो के भीतर ही होता है, इस कारण ये बासीपन को व्यक्त करने के लिए विशेष उपयुक्त नही सिद्ध होते। इसके साथ ही इन वक्रो मे एक कठिनाई यह भी होती है कि बाद मे इनमे इतना कम अन्तर होता है कि इस सूक्ष्म अन्तर से बासीपन का ठीक अनुमान लगाना सम्भव नही होता। इन सब कारणो से बासीपन की माप करने के लिए "दृढता के पाठ्याक" ही अब विशेष रूप से व्यवहार में आते है।

इन पाठ्याको से प्राप्त वक्र समय की वृद्धि से ऊपर बढते जाते हैं और इस वृद्धि से बासी-पन का अनुमान अधिक अच्छी प्रकार लग जाता है।

(ख) रोटी की शोषण-क्षमता द्वारा (By measuring absorption capacity)—रोटी मे बासीपन उत्पन्न होने की मात्रा के अनुपात से उसकी जल-शोषण करने की शक्ति घटती जाती है। इस शोषण-क्षमता के अन्तर को विभिन्न रीति से मापा जाता है। एक विधि मे रोटी को तोड कर पानी मे डाल दिया जाता है और फिर अपकेन्द्री यन्त्र द्वारा पानी को निकाल कर तलछट को तोल लिया जाता है। तलछट की तोल मे से आरम्भ मे ली गयी रोटी की तोल को घटाने पर शोषित हुए पानी की तोल ज्ञात हो जाती है।

(ग) रोटी में वर्तमान विलेय स्टार्च की मात्रा ज्ञात कर उसके द्वारा—रोटी को पानी से धोने पर उसमे मौजूद विलेय स्टार्च घुल कर निकल आता है। अत इस विधि द्वारा बासीपन की माप करने मे रोटी का विलेय स्टार्च पानी मे घुला कर विलयन के रूप मे अलग निकाल लिया जाता है और फिर इस विलयन मे से ऐलकोहल द्वारा अव-क्षेपित कर इसे अवक्षेप के रूप मे प्राप्त कर लिया जाता है। इस अवक्षेप को छान कर और सुखा कर तोल लिया जाता है। इस तोल से रोटी के बासीपन की माप हो जाती है। बासीपन की वृद्धि के साथ-साथ विलेय स्टार्च की मात्रा रोटी मे घटती जाती है।

(घ) अपारदर्शकता द्वारा (By measuring opacity)—बासीपन की वृद्धि के साथ-साथ ोटी की अपारदर्शकता भी बढती जाती है। रोटी की अपारदर्शकता मे अन्तर इसके पक कर तैयार होने के लगभग दो दिनो बाद से आरम्भ होता है और ८–१० दिनो तक होता रहता है। अपारदर्शकता की माप के लिए विभिन्न उपकरणो का प्रयोग किया जाता है। इन सब मे यह ज्ञात किया जाता है कि रोटी के भीतर से प्रकाश की कितनी मात्रा सचरित होती है।

(ङ) विशीर्णता द्वारा (By measuring crumbliness)—इस विधि मे रोटी के एक निश्चित माप के टुकडे को गोलाई से घुमायी जाने वाली चलनी मे रख कर एक निश्चित समय तक चलनी को मशीन द्वारा घुमाते हैं। जितना चूर रोटी की सतह से टूट कर पृथक् होता है उसे तोल लिया जाता है। जैसे-जैसे बासीपन बढता है रोटी मे शीघ्र चूर होने का गुण भी बढता जाता है।

(च) एक्स-किरण द्वारा प्राप्त चित्र द्वारा (By X-ray photograph)—एक्स-किरण द्वारा रोटी का चित्र लिया जाता है और उसके द्वारा स्टार्च के भौतिक रूप का निरीक्षण किया जाता है। ताजी रोटी मे स्टार्च अणुओ का प्रबन्ध एक निश्चित प्रकार का होता है। बासीपन पैदा होने पर इस प्रबन्ध मे अन्तर हो जाता है। अत:

एक्स-किरण द्वारा लिये गये चित्र का निरीक्षण करने से बासीपन की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है।

बासीपन का परिमापन करने की ऊपर बतलायी कोई भी विधि पूर्ण सन्तोषजनक नही है। इन विधियो से केवल मोटे रूप मे ही बासीपन का अनुमान होता है। बासीपन से सम्बन्धित रोटी के सब परिवर्तन मुख्य रूप से रोटी के स्टार्च मे होने वाले परिवर्तन हैं। अत बासीपन का ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा उसके नियत्रण की विधि ज्ञात करने के लिए शुद्ध स्टार्च के गुणो का अध्ययन किया जा रहा है।

बासीपन उत्पन्न होने के कारण—साधारणत लोग ऐसा समझते है कि रोटी का बासीपन मुख्य रूप से रोटी का सूखना है, किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। यदि रोटी को एकदम बद कॉच के ऐसे बर्तन मे रख दिया जाय जिसमे हवा का आना-जाना न हो सके तो भी यह देखा जाता है कि रोटी मे बासीपन शीघ्रता से उत्पन्न होता है। सन् १८५२ मे बोसिगाल्ट[1] (Boussingault) ने यह देखा कि यदि बासी रोटी को ७०° से० ग्रे० पर गरम कर दिया जाय तो वह फिर ताजी की तरह हो जाती है और रोटी के बासी होने तथा उसे इस भाँति गरम कर ताज़ा करने की क्रिया की तब तक बराबर पुनरावृत्ति की जा सकती है जब तक रोटी पर फफूँद का आक्रमण न हुआ हो। अत उसने यह निष्कर्ष निकाला कि बासी रोटी मे ताजी रोटी से कोई भिन्नता इस कारण नही है कि उसमे पानी की मात्रा कम हो गयी है, वरन् इस कारण है कि बासी रोटी के स्टार्च अणुओ के सगठन मे कोई ऐसा परिवर्तन हुआ है जो ठढी साधारण अवस्था मे होता है और गरम किये जाने पर यह परिवर्तन फिर विरुद्ध दिशा मे हो जाता है और रोटी का ताज़ापन फिर आ जाता है। कुछ समय बाद अन्य वैज्ञानिको ने यह देखा कि यदि रोटी मे जल की मात्रा घट कर ३० प्रतिशत या इससे नीचे आ जाती है तो फिर इस रोटी मे ताजापन केवल गरम करने से नही लाया जा सकता। इस रोटी को ताज़ी की तरह करने के लिए इसे पानी से नम कर तब गरम करना पडता है। इस निरीक्षण के आधार पर यह अनुमान किया गया कि बासी होने की क्रिया मे रोटी के अन्दर मौजद जल की मात्रा का वितरण पुन नये ढग से होता है। ताजी रोटी मे स्टार्च ग्लूटेन की पतली पर्त के सम्पर्क मे रहता है और इन दोनो मे ग्लूटेन अजल अवस्था मे रहता है किन्तु स्टार्च जलयोजित अवस्था मे रहता है। रोटी के बासी होने की क्रिया मे ग्लूटेन स्टार्च से पानी शोषित करता है जिसके फलस्वरूप स्टार्च सूखता जाता है और इसी कारण रोटी मे सूखापन तथा कड़ापन आता है। बासी रोटी को गरम करने पर ग्लूटेन का जल फिर स्टार्च शोषित कर लेता है और इस प्रकार पानी पुन जिस रूप मे ताज़ी रोटी मे आरम्भ मे था उसी रूप मे वितरित हो जाता है और इस कारण ताज़ापन

वापस आ जाता है। बासी रोटी मे पानी सोखने और फूलने की इतनी शक्ति नही रहती जैसी कि ताजी रोटी मे होती है, किन्तु यदि बासी रोटी को गर्म कर दिया जाय तो इसमे ताजी रोटी की ही भाँति पानी सोखने और फूलने की शक्ति आ जाती है।

बासीपन के कारण के सम्बन्ध मे कोई एक मत मान्य नही है। ऊपर वर्णित मत के अतिरिक्त कुछ अन्य मत भी समय-समय पर वैज्ञानिको ने प्रस्तुत किये है। इनमे से कुछ मुख्य नीचे दिये जाते है।

लिंडेट[२] (Lindet) ने यह देखा कि बासी होने पर रोटी मे विलेय स्टार्च की मात्रा घट जाती है। इसी प्रकार का परिवर्तन श्लिषीकृत स्टार्च मे भी होता है और इस परिवर्तन को, जैसा कि हम पीछे बतला चुके है, पश्चगमन (retrogradation) कहते है। अत लिंडेट के अनुसार, रखने पर रोटी मे स्टार्च के जल की हानि पश्चगमन के कारण होती है और ग्लूटेन के जल-शोषित करने के कारण नही। अत बासीपन का कारण यही पश्चगमन क्रिया है।

कैट्ज़[३] (Katz, १९१६) ने डबल रोटी के बासीपन का अध्ययन करने के लिए बहुत से प्रयोग किये। उसने देखा कि रोटी के सिंक कर तैयार होने के बाद ९–१० घटो के भीतर ही उसके नरमपन, फूलने की शक्ति तथा उसमे मौजूद विलेय स्टार्च की मात्रा मे सब से अधिक परिवर्तन होते है, किन्तु विशीर्णता (crumbliness) का दोष २४ घटे के बाद उत्पन्न होता है। उसने यह भी देखा कि पपडी का बासीपन वायुमडल से तथा रोटी के भीतर से जल-शोषित करने के कारण होता है।

कैट्ज़ ने अपने प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात किया कि यदि रोटी मे बहुत कम या बहुत अधिक पानी मौजूद रहता है तो उसमे बासीपन शीघ्र नही उत्पन्न होता। अत रोटी को या तो सुखा कर या पानी के अन्दर डुबा कर बहुत समय तक बिना उसमे बासीपन उत्पन्न किये रखा जा सकता है। पानी मे थोडा सा कोई नि सक्रामक (disinfectant) पदार्थ डाल कर, जिससे फफूँद न उत्पन्न हो सके, और फिर उसमे रोटी डुबा कर रखने से रोटी को लगभग ४–५ महीने तक ताजी अवस्था मे रखा जा सकता है। इन सब प्रयोगो से कैट्ज़ ने यह निष्कर्ष निकाला कि बासीपन उत्पन्न होने के लिए पानी की ठीक मात्रा (optimum) का रोटी मे रहना आवश्यक है। पानी की अधिक मात्रा मे बासीपन क्यो रुक जाता है इसे यद्यपि वह ठीक से नही समझा सका पर उसने यह सुझाव रखा कि बासीपन की क्रिया मे सम्भवत. दो या अधिक स्टार्च के अणु परस्पर किसी प्रकार से क्रिया कर पानी निकालते हैं और यदि पानी अधिक मौजूद रहता है तो यह क्रिया नही होने पाती।

कैट्ज़ ने यह भी देखा कि जब रोटी मे जल की मात्रा बासीपन उत्पन्न होने के लिए

बिल्कुल ठीक रहती है तब बासीपन का उत्पन्न होना ताप पर निर्भर करता है। उसने विभिन्न तापो पर रोटी को दो दिनो तक रखा और देखा कि जल की नियत्रित मात्रा रोटी मे बराबर रखने पर रोटी ६०° से० ग्रे० से ऊपर के ताप पर ताजी बनी रही, ४०° से० ग्रे० पर थोडा बासीपन उत्पन्न हुआ और २०° से० ग्रे० पर रोटी एकदम बासी हो गयी, –१०° से० ग्रे० से निम्न ताप पर बराबर ताज़ी बनी रही। इन प्रयोगो मे बासीपन की माप उसने रोटी के फूलने की क्षमता तथा उसमे वर्तमान विलेय स्टार्च की मात्रा से की।

कैट्ज ने अपने ऊपर के बासीपन के सम्बन्ध के प्रयोग डबल रोटी के अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओ के स्टार्चों के साथ भी पृथक्-पृथक् किये। प्रत्येक स्टार्च की उसने एक लेई बनायी, जिसमे ५० प्रतिशत स्टार्च था और फिर इस लेई को १००° से० ग्रे० पर गरम किया। इस विधि से पका कर उसने लेई मे उतना प्रतिशत जल रखा जितना डबल रोटी मे साधारणत तैयार होने पर रहता है। इन प्रयोगो द्वारा उसे ज्ञात हुआ कि जल का ठीक अनुपात होने पर विभिन्न तापो पर स्टार्च-लेई मे भी उसी प्रकार बासीपन उत्पन्न होता है जिस प्रकार डबल रोटी मे उत्पन्न होता है।

कैट्ज़ ने एक्स-किरण के वर्णक्रम (spectra) द्वारा भी बासीपन का अध्ययन किया। उसने देखा कि ताज़ी रोटी का वर्णक्रम V- प्रकार का होता है किन्तु बासी रोटी का B- प्रकार का होता है। इससे सिद्ध होता है कि बासीपन उत्पन्न होने मे मणिभी-करण की दिशा मे रोटी मे परिवर्तन होता है। स्टार्च-लेई में भी वर्णक्रम से इसी प्रकार का परिवर्तन होना सिद्ध होता है। अत इन प्रयोगो के आधार पर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि रोटी का बासीपन स्टार्च के पश्चगमन के कारण होता है।

कुछ यौगिको की उपस्थिति मे बासीपन उत्पन्न होने की क्रिया बहुत घट जाती है, जैसे विलेय तथा वाष्पशील ऐल्डीहाइड और कार्बनिक अम्लो की उपस्थिति मे, किन्तु इन पदार्थों का प्रयोग बासीपन रोकने के लिए व्यावहारिक रूप मे नही किया जा सकता क्योकि ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। कैट्ज़ ने एक विधि ज्ञात की जिसके द्वारा डबल रोटी को दो दिनो तक ताज़ा बनाये रखा जा सकता है। इस विधि मे रोटी को ऐसे वायुमडल मे रखा जाता है जिसमे नमी ६५–७० प्रतिशत रहती है।

कैट्ज़ के इस मत से कि रोटी का बासीपन मुख्य रूप से स्टार्च के पश्चगमन के कारण होता है, बहुत से वैज्ञानिक सहमत नही हैं। आस्टवल्ड (Ostwald) के अनुसार बासीपन की क्रिया मे स्टार्च-श्लिषि के अन्दर अणुओ का परस्पर संयोजन और निर्जलीकरण होता है, जिसके फलस्वरूप पानी पृथक् हो कर निकल जाता है।

शोश और फ्रेंश[४] (Schoch and French, १९४९) ने इधर कुछ ही वर्षों पूर्व

बासीपन का विस्तृत अध्ययन किया है। यदि कैट्ज़ के मतानुसार केवल स्टार्च के पश्चगमन के गुण के कारण रोटी मे बासीपन उत्पन्न होता है, तो ऐसी रोटी जिसमे ऐमिलोस की मात्रा अधिक होगी, शीघ्र बासी हो जायगी और जिसमे ऐमिलोपेक्टिन अधिक होगा वह शीघ्र बासी नही होगी। शोश और फ्रेश ने अपने प्रयोग मे कई ऐसी डबल रोटियाँ बनायी जिनमे ऐमिलोपेक्टिन का अनुपात भिन्न रखा। इन्होने देखा कि वह रोटी भी जिसमे ऐमिलोपेक्टिन ही मुख्य रूप से रहता है, उसी भाँति शीघ्र बासी होती है जिस भाँति वह रोटी होती है जिसमे ऐमिलोस की मात्रा अधिक रहती है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि पश्चगमन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के परिवर्तन भी बासीपन उत्पन्न होने मे अवश्य होते है। इन्होने निम्न चार प्रकार की क्रियाओ के होने की कल्पना की —(१) ऐमिलोस का पश्चगमन, (२) ऐमिलोपेक्टिन का सयोजन, (३) दोनो स्टार्च अवयवो का अविलेयकरण (insolubilisation) और (४) स्टार्च तथा प्रोटीन का सयुक्त अवक्षेपण (co-precipitation)। अपनी खोजो के आधार पर इन्होने इन चारो क्रियाओ मे से ऐमिलोपेक्टिन के सयोजन होने की क्रिया को बासीपन उत्पन्न करने मे अधिक महत्त्व का माना, अर्थात् इनके अनुसार बासीपन की क्रिया मे मुख्य रूप से ऐमिलोपेक्टिन अणु परस्पर पार्श्व-श्रृखलाओ द्वारा एक दूसरे से बन्धित हो कर समूह बनाते है। इस समूह मे अणुओ का एक दूसरे से बन्धन पश्चगमन के बन्धन से कमजोर होता है। अत गरम किये जाने पर ये समूह पुन शीघ्र विघटित हो कर पूर्व रूप मे लौट आते है। इस प्रकार इस मत के अनुसार गरम करने पर बासी रोटी का पुन ताजी हो जाना अधिक अच्छी प्रकार स्पष्ट होता है।

अन्य कई वैज्ञानिको ने भी बासीपन की क्रिया मे स्टार्च अणुओ का हाइड्रोजन बन्ध द्वारा समूहो मे सयुक्त होना माना है। इनके मत के अनुसार स्टार्च अणुओ की श्रृखलाएँ परस्पर पानी के अणुओ के द्वारा बन्धित हो कर समूह बनाती है। इस प्रकार पानी के अणु स्टार्च श्रृखलाओ को जोडने मे पुल का काम करते है। यदि यह मत सत्य है तो बासी रोटी मे सयोजित पानी की मात्रा ताजी रोटी की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे ब्रिग्स (Briggs) ने बहुत से प्रयोग किये हैं और भौतिक विधियो द्वारा विभिन्न अवस्था की रो ी मे सयोजित पानी की मात्रा का परिमापन किया है। उसके अनुसार बासी रोटी मे ताज़ी की अपेक्षा ० ०१ ग्राम पानी प्रति ग्राम रोटी के हिसाब से अधिक होता है। ब्रिग्स ने स्टार्चो के साथ भी इसी प्रकार के प्रयोग किये और देखा कि गेहूँ का श्लिषीकृत स्टार्च जब पश्चगमन करता है तो इसमे ० ०१५ ग्राम पानी प्रति ग्राम स्टार्च के हिसाब से बढ जाता है। अन्य स्टार्चों के साथ भी उसे यही

फल प्राप्त हुआ। इन सब निरीक्षणो के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला गया कि बासीपन की क्रिया मे पानी के अणुओ द्वारा स्टार्च अणुओ की शृखलाएँ तीनो दिशाओ (three dimensions) मे हाइड्रोजन-बन्ध बनाती हुई परस्पर जुड कर समूह बनाती है, और स्टार्च अणुओ के इस प्रकार समूह के रूप मे सयोजित हो जाने के कारण ही रोटी मे कडापन आता है और वह बासी हो जाती है। अत विभिन्न प्रकार के प्रयोगो के आधार पर अब यह स्पष्ट रूप से माना जाता है कि पश्चगमन हो जाने पर स्टार्च अणु की शृखलाएँ पानी द्वारा हाइड्रोजन-बन्ध बना कर परस्पर बन्धित होती है। 'हाइड्रोजन-बन्ध' की कल्पना द्वारा श्लिषीकरण, आकीर्णन (dispersion) तथा समूह सयोजन (association) की क्रियाओ मे होने वाले परिवर्तनो की व्याख्या सफलतापूर्वक हो जाती है, किन्तु इससे इस बात का स्पष्टीकरण नही होता कि पानी की अधिक मात्रा बासीपन उत्पन्न होने मे क्यो रुकावट डालती है, यद्यपि पश्चगमन की क्रिया स्टार्च के तनु विलयन मे भी होती है।

रोटी के बासीपन को रोकना—विभिन्न रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति रोटी के बासीपन को रोकने मे विभिन्न अश तक सहायक सिद्ध हुई है। रोटी को रखने की दशा, उसके पकाने की विधि तथा आटे के प्रकार का भी बासीपन पर प्रभाव पडता है। निम्न पदार्थ बासीपन रोकने मे सहायक ज्ञात हुए है —

(क) **ऐल्डीहाइड** (Aldehydes)—विलेय तथा वाष्पशील ऐल्डीहाइड के उपस्थित रहने पर रोटी मे बासीपन जल्दी नही उत्पन्न होता। जो ऐल्डीहाइड पानी मे जितना अधिक विलेय होता है तथा वाष्पशील होता है उतना ही अधिक उसका प्रभाव बासीपन रोकने मे पडता है। किन्तु इसमे एक दोष यह है कि कुछ ऐल्डीहाइड रोटी के आकार मे परिवर्तन कर देते है तथा कुछ रोटी की प्रोटीन के साथ मिल कर रग उत्पन्न करते है। ये स्टार्च और वसा पर कोई अभिक्रिया नही करते। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ऐल्डीहाइड स्टार्च अणुओ को परस्पर ऐसीटल की तरह के सयोजन द्वारा बन्धित करते हैं और इसके फलस्वरूप अमणिभीय आकार अधिक स्थायी हो जाता है तथा पुन मणिभीय रूप मे शीघ्र पश्चगमन द्वारा वापस नही आने पाता और इस कारण रोटी मे शीघ्र बासीपन भी नही आ पाता।

(ख) **कार्बोहाइड्रेट**—विभिन्न शर्कराओ तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट पदार्थों के रहने पर रोटी अधिक मुलायम रहती है और अधिक दिनों तक ताजी बनी रहती है। कार्बो-हाइड्रेटो मे माल्टोस का प्रभाव सबसे अधिक पडता है।

(ग) **सोयाबीन**—रोटी बनाते समय आटे मे थोडा सा सोयाबीन का आटा मिलाने से भी रोटी मे बासीपन शीघ्र नही उत्पन्न होता। ऐसा अनुमान किया जाता है

कि सोयाबीन रोटी मे मौजूद जल को अपने आरम्भिक रूप मे बने रहने मे सहायता देता है।

(घ) खनिज लवण—सामान्य नमक की पर्याप्त मात्रा से रोटी काफी दिनो तक अच्छी दशा मे रखी जा सकती है। मैग्नीशियम क्लोराइड, ग्लूकोस और ग्लिसरोल के मिश्रण को थोडा सा रोटी पर लगा कर रोटी को डब्बो मे बद कर बहुत समय तक परिरक्षित रखा जा सकता है।

(ङ) पिरीडीन और डाइप्रोपिल ऐमाइन—इन पदार्थो की उपस्थिति से यद्यपि रोटी मे बासीपन शीघ्र नही उत्पन्न होता पर इनके विषैले होने के कारण इनका व्यावहारिक रूप मे उपयोग नही किया जा सकता।

(च) दूध या दूध के पदार्थ—दूध, मक्खन तथा छाछ आटे मे मिला कर रोटी बनाने से रोटी मे शीघ्र बासीपन के गुण नही उत्पन्न होते और यह अधिक दिनो तक ताजी बनी रहती है।

(छ) मोम—पिछले महायुद्ध के समय २० भाग मोम को गला कर ८० भाग आटे में मिला कर एक परिरक्षक (preservative) बनाया गया था। इस परिरक्षक का ८ भाग २८० भाग आटे के साथ मिला कर तब इस आटे से रोटी बनायी जाती है। यह रोटी काफी दिनो तक रखी जा सकती है, किन्तु ऐसी रोटी बराबर खाते रहने से कोई हानि तो नही होती, यह अभी तक निश्चित रूप से नही जाना जा सका है।

बासीपन उत्पन्न होने में कुछ अन्य बातों का प्रभाव—निम्न बातो का प्रभाव भी रोटी मे बासीपन शीघ्र या विलम्ब से उत्पन्न होने पर पड़ता है —

आटे की जाति—आटे मे यदि ग्लूटेन की मात्रा कम रहती है तो रोटी शीघ्र बासी हो जाती है और यदि पर्याप्त रहती है तो रोटी अधिक दिनो तक ताजी बनी रहती है। अत यह स्पष्ट है कि जो भी पदार्थ या अवस्था आटे के ग्लूटेन की मात्रा मे अथवा उसके गुण मे कमी उत्पन्न करती है वह अपरोक्ष रूप से रोटी के ताज़ी बने रहने के गुण मे कमी लाती है। जलवायु तथा गेहूँ की जाति का ग्लूटेन के गुणो पर बहुत प्रभाव पडता है। अधिक दिनो तक आटा रखा रहने पर भी उसके ग्लूटेन के गुणो मे अन्तर आ जाता है। ऐसे आटे की रोटी बहुत अच्छी नही होती और न अधिक समय तक ताज़ी ही रहती है।

पिसाई (Milling)—बहुत महीन पिसा अथवा बहुत मोटा पिसा दोनो प्रकार का ही आटा रोटी बनाने के लिए अच्छा नही होता। साधारण महीन पिसे आटे की रोटी अधिक अच्छी होती है और उसमे बासीपन भी शीघ्र नही उत्पन्न होता।

आटे को गूंधना—वे समस्त बाते जो रोटी मे उपस्थित जल की मात्रा मे वृद्धि करती है, रोटी को अधिक दिनो तक ताजी रहने के योग्य बनाती है। गुंधे आटे को तैयार करने की विभिन्न विधियाँ है जिनके द्वारा आटे मे अधिक से अधिक पानी रखने का प्रयत्न किया जाता है। एक विधि मे आटे को गूंध कर स्पज के रूप मे तैयार किया जाता है। इस रूप मे रहने पर आटे मे पानी अधिक मात्रा मे रुका रहता है और इससे बनायी गयी रोटी मे बासीपन शीघ्र नही उत्पन्न होता।

किण्वन (Fermentation)—अधिक यीस्ट द्वारा अपेक्षाकृत ऊँचे ताप पर आटे को किण्वित कर जो रोटी बनायी जाती है वह अधिक दिनो तक नही रखी जा सकती। यीस्ट की साधारण मात्रा द्वारा निम्न ताप पर आटे का किण्वन कर रोटी बनाने से वह अधिक मुलायम होती है और अधिक दिनो तक ताजी बनी रहती है। प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि २२°–२६° से० ग्रे० ताप पर अधिक समय तक किण्वन करा कर रोटी बनाने से रोटी बहुत समय तक बिना खराब हुए रखी जा सकती है।

सेकने की दशा—यह देखा गया है कि धीमी आँच पर धीमी गति से सेक कर बनायी गयी रोटी अधिक दिनो तक ताजी अवस्था मे बनी रहती है और इसका स्वाद भी जल्दी खराब नही होता।

लपेटना तथा रखने की दशा—यदि रोटी को ६०°–७०° से० ग्रे० ताप पर रखा जाय और उसके चारो ओर के वायुमडल मे नमी नियत्रित रखी जाय तो रोटी बहुत समय तक देखने मे ताज़ी अवस्था मे बनी रहती है, किन्तु स्वाद मे २४ घटे के बाद ही अन्तर आ जाता है और एक विशेष गध भी उत्पन्न हो जाती है।

निम्न तापो पर रोटी विभिन्न अवधि तक ठीक अवस्था मे रखी जा सकती है—९° से० ग्रे० पर रोटी ३–४ दिनो तक ताजी रहती है। टिन के बक्सो मे बद कर २२° से० ग्रे० पर रोटी लगभग १० महीने तक ताज़ी अवस्था मे रखी जा सकती है, किन्तु इतने निम्न ताप पर रोटी को रखने मे व्यय बहुत होता है और इस कारण यह विधि व्यावहारिक नही है।

कागज मे लपेट कर रखने से रोटी का स्वाद अधिक समय तक सुरक्षित रहता है और उसका मुलायमपन भी अधिक कम नही होने पाता। बिना लपेटे रखने पर रोटी अधिक जल्दी सूखती है और उसके स्वाद और गध मे भी अन्तर शीघ्र आ जाता है। कागज मे लपेटी रहने से रोटी मे उपस्थित जल शीघ्र उड कर बाहर नही जा पाता और इसी से इसका मुलायमपन बना रहता है।

हचिन्सन[६] ने सन् १९३६ मे यह मत प्रकट किया कि अच्छे आटे से जिसमे ग्लूटेन की अच्छी मात्रा मौजूद हो ठीक प्रकार से किण्वन करा कर उचित विधि से रोटी बनाने

पर रोटी सभी गुणो मे अच्छी होती है और इसमे बासीपन भी शीघ्र नही उत्पन्न होता। इसके अनुसार रोटी को परिरक्षित रखने के लिए पीछे बतलाये गये पदार्थों को आटे मे मिलाने से कोई विशेष लाभ न तो रोटी को ताजा बनाये रखने के सम्बन्ध मे होता है और न उसके स्वाद मे। किन्तु इधर कुछ ऐसे पदार्थ ज्ञात किये गये हैं जो रोटी को सूखने से रोकने मे बहुत सहायक सिद्ध हुए है।

बासीपन पर नियंत्रण रखने की नयी विधियाँ—इधर प्रयोगो से यह ज्ञात हुआ है कि पालीआक्सीएथिलीन मॉनोस्टियरेट (polyoxyethylene monostearate) की ० ५ प्रतिशत मात्रा आटे मे मिला कर रोटी बनाने से रोटी अधिक मुलायम बनती है और रखने पर इसमे कडापन भी शीघ्र नही आता। ये रोटियाँ भट्टी से सिक कर निकलने के बाद एक दिन तक तो उतनी ही मुलायम रहती है जितनी साधारण आटे से बनायी गयी डबल रोटियाँ, किन्तु तीन दिनो तक रखने पर ये रोटियाँ साधारण आटे की रोटियो से अधिक मुलायम रहती है। पालीआक्सीएथिलीन मॉनो-स्टियरेट का प्रभाव किस प्रकार से पडता है, इसे ज्ञात करने के लिए विभिन्न वैज्ञानिको ने बहुत से प्रयोग किये है। बाइस (Bice) ने अभी कुछ दिन पूर्व अपनी खोजो के फलस्वरूप यह मत प्रकट किया है कि पालीआक्सीएथिलीन मॉनोस्टियरेट का मुख्य कार्य यह होता है कि यह स्टार्च-कणो की सतह पर पतली पर्त के रूप मे फैल जाता है और इस कारण स्टार्च अणुओ के बीच परस्पर का आतराकर्षण (cohesion) घट जाता है तथा वे जुट नही पाते और इसके फलस्वरूप रोटी मे कडापन जल्दी नही आता। पालीआक्सीएथिलीन मॉनोस्टियरेट का रोटी की जल-शोषण क्षमता पर कोई प्रभाव नही पडता। अत रखने पर रोटी की जल-शोषण क्षमता (water absorbing capacity) मे जो कमी होती है उसका कारण केवल यही हो सकता है कि स्टार्च अणुओ के भीतर परिवर्तन होता है। यह पदार्थ अणुओ की बाहरी सतह के परिवर्तन को ही केवल रोकता है, अणुओ के भीतर होने वाले परिवर्तन पर यह कोई प्रभाव नही डालता। अत अधिक दिनो तक रखने पर रोटी मे कडापन धीरे धीरे आ जाता है।

बासीपन को रोकने के लिए इधर कुछ दिनो से अमेरिका मे आधे सिके लपेटनो (partly baked rolls) का प्रचलन हो गया है। ये लपेटन बहुत कम ताप पर, लगभग १३५°–१४०° से० ग्रे० पर काफी देर तक सेके जाते हैं जिससे स्टार्च का पूर्ण श्लिषीकरण हो जाय और वह पूर्ण अश तक फूल जाय तथा उसमे आवश्यक कडापन आ जाय, किन्तु पपडी पर कोई रग न पैदा हो। ये लपेटन केवल इतने ही सेके जाते हैं कि ठढा होने पर उनका रूप तथा आकार बना रहे और हानिकारक जीवाणु तथा फफूँद

आदि नष्ट हो जायँ। ठढा होने पर इन लपेटनो को सेलोफेन (cellophane) के थैलो मे या ऐसी चीजो के थैलो मे जिन पर नमी का प्रभाव नही पडता, भर कर बाजारो मे बिकने के लिए भेज दिया जाता है। ये लपेटन ५–६ दिनो तक ठीक रहते हैं और इस अवधि तक इन पर फफूँद नही उत्पन्न होते। फफूँदो मे और अधिक सुरक्षित रखने के लिए इन्हे बनाते समय आरम्भ मे आटे मे कैल्सियम प्रोपियोनेट या सोडियम डाइ-ऐसीटेट की थोडी मात्रा मिला दी जाती है। इन अर्ध-सिके लपेटनो को खरीदने वाला खाने के पूर्व इन्हे लगभग २२०° सें० ग्रे० ताप पर ७–८ मिनट तक सेकता है जिससे ये पूर्ण रूप से सिक जाते है। इस प्रकार इन लपेटनो मे रखने पर जो बासीपन आता है वह इन्हे खाने के पूर्व सेकने से दूर हो जाता है और ताजा गरम पदार्थ खाने के लिए प्राप्त हो जाता है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि रोटी के बासीपन को नियत्रित करने के लिए बहुत दिनो से प्रयत्न किया जा रहा है, फिर भी अभी तक कोई ऐसी विधि नही ज्ञात हो सकी है जो पूर्ण सन्तोपप्रद कही जा सके।

निर्देश

1 Boussingault, Ann chim Phys., 1852, 36, 490

2 C L Alsberg, Wheat Studies of the Food, Res. Inst, 12, 1936, 6, 221

3 J. R. Katz "A *Comprehensive Survey of Starch Chemistry*" edited by R P Walton The Chem. Catalog Co, pp 100-117, 1928

4 T J Schoch and D French, *Cereal chem.*, 1949, 24, 231

5 R. C Wands and D R Briggs, Div. Agric. and Biochchem Uni Minnesota, St Paul, Minn, Private Comm, 1950.

6 J. P. Hutchinson, Res, Assoc. of Brit Flour Millers, Special Report No 15, pp. 1-27, 1936

अध्याय १६

स्टार्च और कागज उद्योग

कागज सेल्यूलोस से बनाया जाता है। सेल्यूलोस पौधो की कोशिकाओ की भित्ति बनाता है। यह भित्ति कोशिकाओ के भीतर के जीवन पदार्थ की रक्षा करती है और उनको आकार प्रदान करती है। इस प्रकार सेल्यूलोस का पौधो मे लगभग वही काम है जो अस्थियो का जन्तुओ मे होता है।

सेल्यूलोस वनस्पति-जगत् मे बडी मात्रा मे पाया जाता है। वास्तव मे यह ससार मे पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थो मे सब से अधिक मात्रा मे पाया जाने वाला पदार्थ है। पौधो की लकडियाँ, रुई, सन, जूट आदि सब मुख्य रूप से सेल्यूलोस के पदार्थ है। स्टार्च की भाँति यह भी एक कार्बोहाइड्रेट पदार्थ है और स्टार्च की अपेक्षा अधिक सकीर्ण तथा बहुत अक्रिय यौगिक है। जब सेल्यूलोस को तनु खनिज अम्लो के साथ कुछ समय तक उबाला जाता है तो यह जल-विश्लेषित हो कर ग्लूकोस देता है। अत इससे सिद्ध होता है कि सेल्यूलोस भी स्टार्च की ही भाँति ग्लूकोस अणुओ के परस्पर सघनन से बना यौगिक है।

सेल्यूलोस के तन्तुओ (fibers) को परस्पर जुटा कर एकसम पतली चद्दर के रूप मे जो वस्तु बनायी जाती है उसे ही कागज कहते है। सेल्यूलोस के तन्तुओ मे ही परस्पर जुट कर चद्दर के रूप मे हो जाने का गुण है और इसी कारण कागज केवल इसी से बनाया जा सकता है। रेशम और ऊन के तन्तुओ मे इस प्रकार परस्पर जुटने का गुण नही होता, अत ये कागज बनाने के काम मे नही आ सकते। कागज बनाने के लिए सेल्यूलोस पदार्थ (बाँस, सवाई घास, पुराना कागज आदि) को छोटे-छोटे टुकडो मे काट कर और फिर रासायनिक पदार्थो की उपस्थिति मे पानी के साथ ऊँचे दाब पर उबाल कर महीन कणो मे विभाजित कर लिया जाता है। इसे फिर पानी के साथ निलम्बित कर पतली चद्दरो के रूप मे बिछा कर सुखा लिया जाता है। इस प्रकार कागज की शीट प्राप्त होती है जो कमज़ोर और सरध्र होती है, अत ये पानी बहुत सोखती है। इस प्रकार के कागज का मुख्य उपयोग सोखता कागज़ (blotting paper) या छन्ने कागज़ के रूप मे होता है। छपाई तथा लिखने के काम मे यह कागज नही आ सकता। इन कामो के लिए कागज़ की शीट को मजबूत होना चाहिए और साथ ही

सतह चिकनी और शीघ्र भीग न सकने वाली होनी चाहिए, जिससे छपा या लिखा मैटर स्पष्ट रह सके और कागज़ के अन्दर तथा बाहर फैल कर अस्पष्ट न हो जाय। सतह के चिकनी होने पर कलम सरलता से कागज पर फिसलती चलती है। यदि सतह चिकनी नही होती तो कलम ठीक से कागज़ पर नही चल पाती और बीच-बीच मे खुरदरी सतह पर अटक जाती है। अत कागज को लिखने और छपाई के उपयुक्त बनाने के लिए इसकी सतह को रध्रहीन, चिकना तथा मज़बूत बनाना पड़ता है। इस कार्य के लिए विभिन्न रासायनिक पदार्थो का उपयोग किया जाता है और इस क्रिया को, जिसमे कागज़ को चिकना तथा रध्रहीन बनाया जाता है, **सज्जीकरण** (sizing) कहते है। सज्जीकरण के लिए मुख्य रूप से रेजिन और फिटकरी का उपयोग होता है। कागज़ को अधिक चिकना तथा सफेद बनाने के लिए इसकी सतह के रध्रो को सफेद चिकनी मिट्टी (white clay) और विभिन्न भराऊ पदार्थ (filling material) की सहायता से भर दिया जाता है। स्टार्च, गोद, केसीन (casein) तथा अन्य कलिल द्रव्य भी जिनमे महीन फिल्म बनाने का गुण होता है सज्जीकरण को अधिक अच्छा और पूर्ण करने के लिए उपयोग मे आते है। इन पदार्थो मे कागज के रेशो को जल-प्रतिरोधक (water resistant) बनाने का गुण होता है, अत इनका अतिरिक्त या सहायक सज्जको के रूप मे उपयोग कागज़ के चिमडेपन तथा मजबूती को बढा देता है। इनका कार्य रेशो को परस्पर जुटाना, छोटे रेशो को अन्दर कर देना तथा रेशो के लचीलेपन को बढाना है। ये कागज़ को रगड के प्रति अधिक मजबूत तथा अधिक अरध्र बनाते हैं।

सज्जक पदार्थ कागज़ बनाने मे दो प्रकार से उपयोग किये जाते है। एक तो उस समय जब कागज़ की लुगदी (paper pulp) को पीट कर महीन किया जाता है, सज्जक पदार्थ लुगदी मे मिला दिया जाता है, और दूसरे शीट बन जाने के बाद शीट की सतह पर लेप के रूप मे सज्जक पदार्थ लगाया जाता है। पहले प्रकार को **लुगदी सज्जीकरण** (pulp sizing) और दूसरे प्रकार को **टब सज्जीकरण** (tub sizing) कहते हैं।

लुगदी सज्जीकरण (Pulp sizing)—जैसा पहले बतलाया जा चुका है, कागज़ के सज्जीकरण के लिए रेज़िन बहुत अच्छा पदार्थ है और इस कारण मुख्य रूप से इसका उपयोग बहुत समय से होता आ रहा है। किन्तु रेजिन महँगा पदार्थ है और इसके उपयोग से कागज़ का मूल्य बहुत बढ जाता है। अत रेजिन के स्थान मे अन्य सस्ते पदार्थो के उपयोग की ओर लोगो का ध्यान गया। सोडियम सिलीकेट इस काम के लिए कुछ उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके उपयोग करने से रेजिन की मात्रा घटायी जा सकती है

और कागज़ कुछ सस्ता पड सकता है। इधर स्टार्च के सज्जक के रूप मे उपयोग किये जाने के सम्बन्ध मे बहुत प्रयोग किये गये है और इस बात का प्रयत्न किया गया है कि रेज़िन के स्थान मे स्टार्च का ही उपयोग मुख्य सज्जक के रूप मे हो। इसमे बहुत अश तक सफलता मिली है। रेजिन के मुख्य सज्जक के रूप मे उपयोग किये जाने पर भी स्टार्च या गोद का सहायक सज्जक के रूप मे उपयोग करना यो भी आवश्यक होता है, क्योकि रेजिन के उपयोग से जो कागज प्राप्त होता है वह सरध्र होता है। इसे रध्रहीन बनाने के लिए इसकी सतह पर स्टार्च या गोद को कुछ खनिज पदार्थो के साथ मिला कर लेप के रूप मे लगाया जाता है।

सज्जक का मुख्य काम सेल्यूलोस के रेशो को एक दूसरे से मज़बूती से बधित करना होता है, अत सज्जक पदार्थ का एक आकीर्ण कलिल (dispersed colloid) होना आवश्यक है जिससे यह कागज़ के रेशो को परस्पर बॉधने मे कडी (link) का काम कर सके। साथ ही इस कडी का मज़बूत होना भी आवश्यक है। स्टार्च एक अच्छे सज्जक के रूप मे काम करने के उपयुक्त पदार्थ है, किन्तु इसका प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इसके अणु का विघटन एक निश्चित सीमा से नीचे न होने पाये, अन्यथा इसकी आसजकता मे कमी हो जायगी और उसी के अनुसार इसकी सज्जक सम्बन्धी उपयोगिता भी नष्ट हो जायगी। इस काम मे उपयोग करने के लिए विभिन्न प्रकार से तैयार किया गया स्टार्च बाज़ार मे बिकता है। स्टार्च की सज्जक शक्ति उसके प्रयोग की विधि पर भी निर्भर करती है। सामान्य स्टार्च (raw starch) यदि कागज़ की लुगदी मे मिलाया जाता है तो इसका आकीर्णन ठीक से नही हो पाता और जब तक स्टार्च का श्लिषीकरण या आकीर्णन नही होता इसमे आसजकता नही पैदा होती और फलस्वरूप यह सज्जीकरण का काम नही कर पाता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए साधारण स्टार्च के स्थान मे आक्सीकृत स्टार्च का उपयोग किया जाता है। इसका श्लिषीकरण ताप सामान्य स्टार्च की अपेक्षा निम्न होता है। अत जब कागज़ की शीट को गरम बेलनो पर सुखाने के लिए भेजा जाता है तो उस ताप पर शीट मे मौजूद आक्सीकृत स्टार्च वहाँ उपस्थित पानी मे शीघ्र आकीर्ण हो जाता है और रेशो के बीच मे फैल कर सज्जीकरण का कार्य करने मे समर्थ होता है।

सज्जीकरण मे स्टार्च का मुख्य कार्य कागज़ के रेशो को एक दूसरे से बन्धित करना होता है। अत यह तभी अपना कार्य ठीक से कर सकता है जब दो रेशो के बीच मे रह कर उनसे एक साथ ही सम्पर्क स्थापित कर सके। इसी कारण भली-भॉति आकीर्ण स्टार्च विलयन अधिक घनत्व की शीट के लिए अधिक उपयुक्त होते है और कम घनत्व की शीट के लिए कम। इसके ठीक विपरीत कम आकीर्ण स्टार्च-निलम्बन, जिसमे

स्टार्च अणु केवल फूली अवस्था मे रहते है, कम घनत्व की शीट के लिए अधिक उपयुक्त होते है और अधिक घनत्व की शीट के लिए कम उपयुक्त होते है।

स्टार्च और सोडियम सिलीकेट का मिश्रण सज्जीकरण के लिए अच्छा सिद्ध हुआ है और इसका आजकल पर्याप्त मात्रा मे उपयोग होता है। इस मिश्रण द्वारा सज्जीकरण करने की विधि को **खनिज स्टार्च सज्जीकरण** (mineral starch sizing) नाम दिया गया है। इसमे सोडियम सिलीकेट और स्टार्च की समान मात्राएँ मिला कर मिश्रण को पानी के साथ इतना गरम किया जाता है कि स्टार्च का श्लिषीकरण हो जाय, किन्तु स्टार्च को इतना अधिक नही उबाला जाता कि विलयन की श्यानता घट जाय। इसे फिर **हनित्र चक्की** (Beater mill) मे कागज़ की लुगदी मे डाल कर मिला दिया जाता है और अन्त मे फिटकरी मिलायी जाती है जिससे अवक्षेप उत्पन्न हो जाता है।

'खनिज स्टार्च सज्जीकरण' लिखने तथा छापने दोनो ही प्रकार के कागज के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है। लिखने का कागज बनाने के लिए सोडियम सिलीकेट और स्टार्च का अनुपात १ : ४ रखा जाता है और छपाई के कागज़ के लिए १ ५ रखा जाता है। सोडियम सिलीकेट और स्टार्च के मिश्रण को सज्जक के रूप मे उपयोग करने से जो कागज बनता है वह केवल स्टार्च द्वारा सज्जीकरण किये गये कागज़ की अपेक्षा खिचाव के प्रति अधिक मजबूत होता है। यह मज़बूती लगभग २७-३० प्रतिशत अधिक होती है। यदि भराऊ पदार्थ, जैसे चीनी मिट्टी या टैल्क (talc), भी मिलाना होता है तो सज्जक मिश्रण को दो बार मे डाला जाता है—पहली बार लुगदी मे अकेले और दूसरी बार भराऊ पदार्थ के साथ मिला कर। इस विधि से सज्जक मिलाने से भराऊ पदार्थ के प्रत्येक कण के सम्पर्क मे सज्जक रहता है और इसके द्वारा वह सेल्यूलोस के रेशो के बीच मे चिपक जाता है। इस प्रकार भराऊ पदार्थ के कागज के रेशो के बीच मे भर जाने से कागज मजबूत और रध्रहीन होता है।

जैसा पीछे बतलाया जा चुका है, सामान्य स्टार्च का सीधे लुगदी मे उपयोग करने से सज्जीकरण ठीक नही होता। इस कारण आक्सीकृत स्टार्च या पहले से पका कर सुखाये गये स्टार्च का उपयोग किया जाता है। ऐमीजेल (amijel) इसी प्रकार का एक स्टार्च है जो बाजार में कागज़ बनाने वालों के उपयोग के लिए बिकता है। किन्तु अकेले स्टार्च का उपयोग करने मे एक बडी कठिनाई यह है कि स्टार्च कागज़ मे कम रुकता है और इसका बहुत सा भाग श्लिषीकृत होने पर पानी के साथ बह कर निकल जाता है। अत. इसमे स्टार्च का बहुत अपव्यय होता है। खनिज स्टार्च मिश्रण के साथ ऐसी कोई कठिनाई नही होती। सोडियम सिलीकेट की उपस्थिति मे स्टार्च-

कण बहुत अधिक फूलते है और इस कारण वे अधिक अश तक कागज़ के रेशो मे रुकते है। इसके साथ ही अधिक फूलने से इनमे आसजकता का गुण भी अधिक आ जाता है और फलस्वरूप ये रेशो को अधिक मज़बूती से बाँधे रहते है और स्वय भी इस बन्धन के कारण जकडे रहते है। अत 'खनिज स्टार्च सज्जीकरण' मे स्टार्च के पानी मे बह कर निकल जाने की सभावना कम रहती है और इस प्रकार स्टार्च का अपव्यय नही होता।

विभिन्न स्टार्चो की सज्जक शक्ति भिन्न है। गेहूँ का स्टार्च कागज़ के रेशो मे अधिक मात्रा मे शोषित होता है और इस कारण सज्जक के रूप मे अधिक अच्छा है, किन्तु सस्ता होने के कारण मकई के स्टार्च का उपयोग ही इस काम के लिए अधिक होता है। मकई के स्टार्च को क्लोरीन द्वारा अभिकृत कर और थोडा परिवर्तित कर सज्जक के काम के लिए अधिक उपयुक्त बनाया जाता है।

पहले से आकीर्ण या जेल के रूप मे परिवर्तित स्टार्च का उपयोग करते समय इसमे थोडा सुहागा प्राय मिलाया जाता है। सुहागा स्टार्च को पुन आकीर्ण करने मे सहायक होता है और स्टार्च के पश्चगमन को भी रोकता है।

यद्यपि अकेले स्टार्च के उपयोग से भी कुछ प्रकार के कागजो का सज्जीकरण किया जाता है पर 'खनिज स्टार्च सज्जीकरण' ही अब अधिक प्रचलित है। इससे यद्यपि कागज़ मुलायम बनता है, पर फिर भी छपाई के लिए अच्छा होता है। लिखने का कागज बनाने के लिए 'खनिज स्टार्च मिश्रण' के साथ थोडा रेजिन सज्जक भी मिलाना आवश्यक है। 'खनिज स्टार्च मिश्रण' का उपयोग करने से रेजिन की कम मात्रा का उपयोग करना पडता है, अत सज्जीकरण का खर्च घट जाता है। खनिज स्टार्च सज्जक का रेजिन सज्जक के साथ उपयोग एक अन्य रूप से भी अच्छा होता है। रेज़िन के लिए खनिज स्टार्च परिरक्षक कलिल (protective colloid) का काम करता है। इसकी उपस्थिति से रेजिन का आकीर्णन अधिक महीन कणो के रूप मे होता है और फलस्वरूप रेजिन अधिक समाग रूप मे सब स्थान मे फैलता है।

कलेडर सज्जीकरण (Calender sizing)—इसमे कागज़ की शीट को पूर्ण रूप से सूखने के पहले एक कलेडर बक्स (calender box) मे भरे सज्जक विलयन मे डुबा कर निकाला जाता है। सज्जक शीट की सतह पर शोषित हो कर पतली पर्त के रूप मे फैल जाता है और सतह को चिकना तथा रन्ध्रहीन बनाता है।

कलेडर सज्जीकरण मे भी विभिन्न स्टार्च तथा स्टार्च यौगिको का उपयोग बहुत होता है। कागज बोर्ड (दफ्ती) बनाने मे इस विधि का बहुत उपयोग होता है और इसके द्वारा सतह चिकनी हो जाती है। इस सज्जीकरण मे परिवर्तित स्टार्च का उपयोग

ही अधिक होता है। स्टार्च जितना अधिक परिवर्तित होता है उतना अधिक यह सतह पर शोषित होता है, किन्तु साथ ही सतह से इसकी पर्त के निकलने की मात्रा भी उतनी ही बढ जाती है। अत इस कार्य के उपयोग के लिए स्टार्च को उतने अश तक परिवर्तित किया जाता है जितने अश पर इसकी श्यानता तो इतनी रहे कि यह पर्याप्त मात्रा मे सतह पर शोषित हो जाय किन्तु रगड द्वारा शीघ्र सतह से झड कर गिर न सके।

जब छपाई के कार्य के उपयुक्त कागज बोर्ड बनाना होता है तो अधिक अश तक परिवर्तित स्टार्च का सान्द्र विलयन (१५-२० प्रतिशत) के रूप मे उपयोग किया जाता है। अधिक परिवर्तित रूप मे तथा सान्द्र विलयन के रूप मे होने के कारण स्टार्च की पर्याप्त मात्रा सतह पर शोषित हो जाती है। स्टार्च विलयन का कुछ भाग कागज बोर्ड के अन्दर भी प्रवेश कर जाता है। इसके कारण बोर्ड अधिक मजबूत हो जाता है और जल्दी फटता नही। प्राय पायसीकृत मोम (emulsified wax) भी सज्जक विलयन मे सतह को अधिक चिकना बनाने के लिए मिलाया जाता है।

टब सज्जीकरण (Tub sizing)—हिसाब रखने तथा ऐसे कामो के लिए जिनमे पाडुलिपि को बहुत समय तक स्थायी रूप से सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती है, अच्छा कागज टब सज्जीकरण की विधि से बनाया जाता है। इस विधि मे कागज की शीट को सज्जक विलयन मे डुबा कर निकालते है और फिर सुखा लेते है।

टब सज्जीकरण द्वारा लिखने के काम मे उपयोग होने वाले अच्छे कागज ही अधिकतर बनाये जाते है। छपाई का कागज़ बनाने के लिए इस सज्जीकरण का उपयोग साधारणत नही किया जाता। इस विधि मे कुछ वर्णको (pigments) का उपयोग भी सज्जक के साथ किया जाता है। वर्णक के रूप मे चीनी मिट्टी तथा खडिया का उपयोग बहुत होता है। वर्णको के दो कार्य होते है—पहला यह कि ये स्याही को सतह पर शीघ्र शोषित होने मे सहायक होते है और दूसरा यह कि ये कागज की सतह को समाग और अधिक चिकना बनाते है। टब सज्जीकरण मे भी अब स्टार्च का उपयोग होने लगा है।

सामान्य स्टार्च के निलम्बन की श्यानता बहुत अधिक होती है, इस कारण टब सज्जीकरण मे इसका उपयोग मौलिक रूप मे करना उपयुक्त नही होता। अत स्टार्च निलम्बन को अभिकृत कर इसकी श्यानता इतनी कम कर दी जाती है कि यह टब सज्जीकरण के लिए उपयुक्त हो जाय। विभिन्न प्रकार से प्राप्त किये गये परिवर्तित स्टार्च तथा आक्सीकृत स्टार्च का उपयोग इस कार्य के लिए किया जाता है।

लेप कागज (Coated paper)—लुगदी से कागज की शीट बनाने के बाद सज्जीकरण करने की एक अन्य विधि और है। इस विधि मे भराऊ पदार्थ और

सज्जक के मिश्रण को ब्रश द्वारा या फुहारे द्वारा या बहुत चिकने बेलनो द्वारा कागज़ की शीट की सतह पर लगा कर शीट को सुखाया जाता है और फिर गरम बेलनो के बीच से निकाल कर चिकना किया जाता है। इस विधि से बनाये गये कागज को लेप कागज़ कहते है।

लेप कागज बनाने के लिए पहले मुख्य रूप से केसीन (casein) और सरेस (glue) का उपयोग होता था। अब केसीन का उपयोग इस कार्य के लिए केवल थोडी ही मात्रा मे होता है और स्टार्च का उपयोग अधिक होने लगा है। इस कार्य के लिए जो स्टार्च उपयोग किया जाता है वह साधारणत 'परिवर्तित स्टार्च' होता है। विभिन्न भराऊ पदार्थ, जैसे चीनी मिट्टी, लीथोपोन (lithoPone), खडिया आदि स्टार्च के साथ 'लेप मिश्रण' बनाने मे मिश्रित किये जाते है। लेप मिश्रण मे आवश्यकतानुसार रगीन वर्णक भी मिलाये जाते है। ऐसा प्रबन्ध मशीनो द्वारा किया जाता है कि कागज़ की शीट आप से आप बराबर आगे धीमी गति से बढती जाती है और जैसे-जैसे यह आगे बढती जाती है इसकी सतह पर मशीनो मे लगे ब्रश एक समान गति से पतली पर्त के रूप मे 'लेप मिश्रण' का लेप करते जाते है। शीटो को सुखाने के बाद फिर इन्हे कलेडर मशीन मे भेजा जाता है जहाँ इनकी सतह चिकनी हो जाती है। चित्र खीचने, कार्टून बनाने तथा अन्य ड्राइग के काम के लिए लेप कागज का उपयोग किया जाता है। आर्ट कागज़ के रूप मे चित्र छापने के लिए भी इनका उपयोग प्राय किया जाता है। इनके भीतर छापने की स्याही नही घुस पाती, इस कारण इन पर चित्र बहुत स्पष्ट छपते हैं।

यद्यपि परिवर्तित स्टार्च मे केसीन की भाँति अच्छी आसजकता तो नही होती फिर भी १८ भाग स्टार्च को १०० भाग चीनी मिट्टी मे मिला कर बनाया गया 'लेप मिश्रण' कागज़ की सतह पर पर्याप्त मज़बूती से चिपकता है। स्टार्च मे चीनी मिट्टी को निलम्बित रखने का गुण केसीन तथा सरेस की अपेक्षा अधिक होता है। अत स्टार्च की कम आसजकता उसके इस गुण से पूरी हो जाती है। स्टार्च लेप द्वारा बनाये गये लेप कागज़ केसीन तथा सरेस के लेपो द्वारा बनाये गये लेप कागज़ की तुलना मे रगीन छपाई के लिए किसी बात मे घटिया नही होते। केवल एक अन्तर स्टार्च लेप के कागज़ मे यह रहता है कि यह स्याही कुछ अधिक सोखता है। स्टार्च पर पानी का प्रभाव केसीन की अपेक्षा अधिक शीघ्र पडता है। साथ ही स्टार्च की आसजकता भी केसीन से कुछ कम होती है। इन दो कारणो से केसीन ही लेप कागज़ बनाने के लिए अधिक उपयुक्त सज्जक है। किन्तु कुछ पदार्थो को स्टार्च के साथ मिश्रित कर मिश्रण को केसीन की तरह ही इस कार्य के उपयुक्त

बनाने का प्रयत्न किया गया है और इसमे पर्याप्त अश तक सफलता भी मिली है।

निम्न विधि से माल्ट द्वारा अभिकृत कर एक परिवर्तित स्टार्च बनाया जाता है जो 'लेप कागज' बनाने के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है —

मकई के स्टार्च को पानी मे निलम्बित कर उसमे एक प्रतिशत माल्ट डाला जाता है। मिश्रण का pH ५ और ताप ४९° से० ग्रे० रखा जाता है। सब मिश्रण को २४ घटे तक बराबर विलोडित किया जाता है। फिर इसे छान कर बचे स्टार्च को पुन पहले की भाँति निलम्बित कर माल्ट से अभिकृत किया जाता है और छाना जाता है। इस प्रकार लगभग ८० प्रतिशत परिवर्तित स्टार्च प्राप्त होता है।

इधर कुछ वर्षो पूर्व केसलर और जेमस्टैड[1] (C C Kesler and E. T Hjemstad) ने यूरिया फार्मैल्डीहाइड से स्टार्च को सघनित कर एक यौगिक बनाया है जो लेप कागज़ बनाने के लिए अच्छा सिद्ध हुआ है। यूरिया फार्मैल्डीहाइड को स्टार्च के साथ थोडे पानी की उपस्थिति मे और अम्लीय अवस्था मे गरम करने से यूरिया फार्मैल्डीहाइड स्टार्च यौगिक बनता है। इसमे अच्छी जल-प्रतिरोधक शक्ति (water-resistant power) होती है और इसकी उपस्थिति मे चीनी मिट्टी कागज़ से गीली अवस्था मे ही मजबूती से चिपक जाती है। स्टार्च यूरिया फार्मैल्डीहाइड यौगिक मे एक गुण यह भी है कि इसकी फिल्म सूखने पर स्टार्च फिल्म की अपेक्षा बहुत कम सिकुडती है। अत इन गुणो के कारण यह यौगिक अकेले स्टार्च की अपेक्षा लेप कागज़ बनाने के लिए अधिक अच्छा सज्जक है।

अन्य प्रकार के कागज—प्राय कई कागज़ की शीटो को जुटा कर मोटा कागज़ बनाया जाता है। पोस्टकार्ड, विज़िटिंग कार्ड तथा छपाई के कार्ड इसी भाँति बनते है। शीटो को परस्पर जोडने के लिए स्टार्च का उपयोग होता है। इस कार्य के लिए स्टार्च का उपयोग विभिन्न तरलता के आसजक के रूप मे किया जाता है। यदि आसजक मशीन द्वारा लगाया जाता है तो अपेक्षाकृत कुछ अधिक गाढा रखा जाता है और यदि ब्रश द्वारा हाथ से लगाया जाता है तो कुछ पतला रखा जाता है। पानी की मात्रा का नियत्रित रखना आवश्यक है। यदि पानी की मात्रा आवश्यकता से अधिक रहती है तो आसजक के सूखने पर सीट मे टेढापन आ जाता है। इस काम के लिए उपयोग मे आने वाले स्टार्च आसजक मे थोड़ा सुहागा भी मिला दिया जाता है।

स्टार्च का उपयोग प्राय· विशेष प्रकार का कागज़ बनाने के लिए भी किया जाता है। स्टार्च की मात्रा तथा मिलाने की विधि मे अन्तर कर कागज़ मे विभिन्न प्रकार के

गुण उत्पन्न किये जा सकते है। लुगदी मे सामान्य स्टार्च अधिक मात्रा मे मिला कर पार्चमेट की भाँति का कागज़ प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार ऊपर के वर्णन से ज्ञात हुआ होगा कि कागज उद्योग मे स्टार्च का उपयोग मुख्य दो प्रकार से होता है। एक तो सज्जक के रूप मे और दूसरे आसजक के रूप मे। दफ्ती बनाने मे इसका उपयोग चिकनाहट लाने के लिए होता है। छपाई के बोर्ड तथा कार्ड बनाने मे इसका उपयोग मज़बूती, कडापन तथा चिकनाहट लाने के उद्देश्य से होता है। छपाई के कागज़ मे इसका उपयोग कागज़ को मज़बूत बनाने के लिए तथा सतह के रेशो को परस्पर मज़बूती से जुटा देने के लिए होता है। रेशो के जुट जाने से छपाई अच्छी होती है।

निर्देश

1 C C. Kesler and E. T. Hjemstad, *Paper Trade* J (TAPPI), 1945, **120,** 160

अध्याय १७

स्टार्च और वस्त्र उद्योग

सूती, टसरी तथा कृत्रिम रेशम के धागो का ताना डालने के पूर्व उनमे **मांड़ी लगाना** आवश्यक होता है। माडी लगाने मे स्टार्च या इसी प्रकार का कोई अन्य पदार्थ धागों मे शोषित कराया जाता है। इस क्रिया को **मांड़ी लगाना** या **सज्जीकरण** कहते हैं। इससे धागो मे अधिक खिचाव शक्ति (tensile strength) आ जाती है और बुनाई के समय मशीनो के विभिन्न हिस्सो की रगड को सह सकने की उनमे क्षमता आ जाती है, अत ऐसे धागे बुनाई के समय टूटते नही हैं।

अच्छी माडी धागो पर लगाना एक कला है। पहले अच्छी माडी लगाना बहुत वर्षो के अनुभव के बाद कोई व्यक्ति सीख पाता था, किन्तु अब इस क्रिया का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किये जाने के फलस्वरूप यह ज्ञात हो गया है कि किन दशाओ मे धागो पर अच्छी माडी चढती है। अत अब वैज्ञानिक नियत्रण द्वारा धागो पर अच्छी माडी लगाने मे कोई विशेष कठिनाई नही होती। फिर भी इस काम मे कुशलता की आवश्यकता तो है ही। माडी बनाने मे विभिन्न पदार्थ किन अनुपातो मे मिलाये गये है और माडी किस अवस्था मे और किस प्रकार धागो मे लगायी गयी है, इन दो मुख्य बातो पर माडी की अच्छाई निर्भर करती है।

कपडे के उद्योग मे स्टार्च का उपयोग दो प्रयोजनो से होता है। एक तो धागो को बुनाई की रगड के प्रति मजबूत बनाने के लिए उन पर माडी देने के लिए और दूसरे बुन जाने के बाद कपडो पर अच्छी चमक लाने के लिए। कपडो पर चमक लाने का मसाला लगाने के पूर्व उन पर लगी आरम्भ की धागो की माडी निकाल कर कपडो को साफ किया जाता है। जिन कपडो को रँगना होता है उनकी माडी भी पूर्ण रूप से निकाल कर तभी उन्हे रँगा जाता है। यदि माडी निकाली नही जाती तो रग सब जगह एक समान नही चढता और कपडे पर बीच-बीच मे धब्बे दिखलाई देते है।

धागों का सज्जीकरण या उन पर मांड़ी लगाना (Sizing)—माडी के सम्बन्ध मे दो मत है। एक मत के अनुसार पूरा प्रभाव डालने के लिए माडी का केवल धागे की सतह पर अधिशोषित (adsorbed) रूप मे रहना ही पर्याप्त है, किन्तु दूसरे मत के अनुसार माडी जब धागे के भीतर प्रवेश कर उसका भाग बन जाती है तभी

धागे को पूर्ण रूप से मज़बूती प्रदान करती है। दूसरे मत के समर्थको का तर्क है कि यदि माडी केवल धागे की सतह पर अधिशोषित दशा मे रहती है तो बुनाई के समय करघे की रगड से इसके झड कर निकल जाने की सभावना रहती है और उस दशा मे माडी से इच्छित लाभ नही प्राप्त हो सकता। यदि माडी धागे के भीतर रहती है तो इसका अधिक स्थायी प्रभाव पडता है और धागे मे अधिक खिचाव शक्ति आ जाती है जिसके फलस्वरूप बुनाई के समय धागा जल्दी टूटने नही पाता। ऐसी माडी जो सूखने पर चूर्ण या पपडी के रूप मे हो जाती है बहुत उपयुक्त नही होती, क्योकि यह करघे की रगड से शीघ्र झड कर गिर जाती है। अच्छी माडी वही है जिसमे धागे के अन्दर कुछ अश तक घुसने का गुण तथा सतह पर मज़बूती से अधिशोपित हो कर टिकने का गुण दोनो ही पर्याप्त मात्रा मे हो। विभिन्न प्रकार के धागो के लिए विभिन्न प्रकार की माडी की आवश्यकता होती है और उसी के अनुसार माडी का चुनाव किया जाता है। स्टार्च के अतिरिक्त बहुत से अन्य पदार्थो का उपयोग विभिन्न प्रकार के धागो पर माडी देने के लिए होता है, किन्तु सूती तथा लिनेन के धागो के लिए स्टार्च-लेई या परिवर्तित स्टार्च के विलयन का ही मुख्य रूप से माडी के कार्य के लिए उपयोग होता है।

साधारण रीति से स्टार्च को पानी के साथ पका कर और तब उसमे धागे को नरम करने का कोई पदार्थ मिलाने से जो माडी बनती है वह पहले से परिवर्तित किये गये स्टार्च की माडी की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है और धागो को अधिक मज़बूती देती है। परिवर्तित स्टार्च के विलयन की श्यानता अपेक्षाकृत कम होती है, अत यह धागो के भीतर अधिक शीघ्र प्रवेश करता है। इस कारण माडी मे परिवर्तित स्टार्च का एक निर्दिष्ट सीमा तक रहना माडी को अधिक अच्छा और उपयोगी बनाता है, क्योकि यह माड़ी धागे के भीतर भी कुछ अश तक प्रवेश कर जाती है और सतह पर भी पर्याप्त मात्रा मे अधिशोषित रहती है। ऐसे परिवर्तित स्टार्च आक्सीकारको, अम्लो तथा एजाइमो द्वारा सामान्य स्टार्च को अभिकृत कर बनाये जाते है। स्टार्च किस अश तक परिवर्तित है यह उसके एक निर्दिष्ट सान्द्रता के विलयन की श्यानता से मालूम हो जाता है।

स्टार्च की लेई जितनी अधिक गाढी होती है उतनी ही अधिक वह धागे पर लगती है। समान मात्रा लेने पर आलू का स्टार्च मकई के स्टार्च की अपेक्षा अधिक गाढी लेई बनाता है। सैगो स्टार्च की लेई मकई के स्टार्च की अपेक्षा कम गाढी होती है। अत समान अश तक माडी लगाने के लिए सैगो और मकई के स्टार्चो को आलू के स्टार्च की अपेक्षा अधिक मात्रा मे लेना पडेगा। विभिन्न स्टार्चों से माडी बनाते समय इस बात का ध्यान रख कर स्टार्च की मात्रा ली जाती है।

माडी लगाने की क्रिया मुख्यत दो प्रकार से की जाती है। एक प्रकार मे ताने को गरम तैयार माडी के विलयन मे से डुबाते हुए ले जाते है और फिर गरम बेलनो के भीतर से निकाल कर सुखा लेते है। ताने के जो धागे ऊपर की क्रिया मे परस्पर चिपक जाते है उन्हे बाद मे पृथक् करना पडता है। दूसरी विधि मे प्रत्येक लम्बे धागे मे अलग अलग माडी लगा कर उन्हे पृथक् रखा जाता है।

माड़ी के गुणो मे परिवर्तन करने के लिए अन्य सहायक कारकों का उपयोग—माडी के गुणो मे इच्छित प्रकार का परिवर्तन करने के लिए इसमे विभिन्न रासायनिक यौगिक मिश्रित किये जाते है। अधिकाश पदार्थो के मिलाने का उद्देश्य यह होता है कि कपडा बुन जाने के बाद हाथ से छूने पर चिकना और मुलायम हो। साधारणत निम्न पदार्थ इस कार्य के लिए माडी मे मिलाये जाते है।

सुहागा, ग्लिसरीन, टैलो, रेडी का तेल, मोम, साबुन, टर्की लाल तेल आदि। सुहागे की थोडी मात्रा मिलाने से स्टार्च-फिल्म अधिक मजबूत हो जाती है, किन्तु यदि सुहागे की मात्रा आवश्यकता से अधिक होती है तो उलटा प्रभाव पडता है और फिल्म कमजोर हो जाती है। ग्लिसरीन मिलाने से भी यही प्रभाव पड़ता है। टैलो, रेडी का तेल, साबुन तथा मोम आदि पदार्थ की लगभग ४-५ प्रतिशत मात्रा मिलाने से माड़ी की फिल्म मुलायम और मजबूत होती है, किन्तु इससे अधिक मात्रा मिश्रित करने पर माडी की फिल्म कमजोर रहती है।

मांड़ी लगाने से सम्बन्धित विशेष बातें—विभिन्न प्रकार के धागो मे माडी लगाने के लिए आवश्यकतानुसार स्टार्च के पतले विलयन से ले कर गाढे विलयन तक सभी सान्द्रता का विलयन उपयोग मे आता है। साधारण रीति से स्टार्च विलयन की श्यानता से विभिन्न धागो मे माडी के रूप मे उपयोग होने की उसकी उपयुक्तता का अनुमान किया जा सकता है। धागे द्वारा माडी की कितनी मात्रा अधिशोषित होती है, यह बहुत अश तक स्टार्च-लेई या स्टार्च-निलम्बन की श्यानता पर निर्भर करता है। स्टार्च-लेई की जितनी अधिक श्यानता रहती है उतनी ही अधिक माडी धागे पर अधिशोषित होती है।

जैसा हम पहले पढ चुके है, समान ताप पर विभिन्न स्टार्च भिन्न अश तक श्लिषीकृत होते है और इस कारण इनकी श्यानता भिन्न होती है। फलस्वरूप विभिन्न स्टार्चों की लेई अपनी विभिन्न श्यानता के अनुसार ही धागो पर भिन्न मात्राओ मे माडी के रूप मे अधिशोषित होती है। उदाहरणार्थ, सैगो और टैपियोका स्टार्च को पानी के साथ उबालने पर इनका श्लिषीकरण दो घटे मे पूर्ण होता है। आलू का स्टार्च भी श्लिषीकृत होने के लिए लगभग इतना ही समय लेता है, किन्तु मकई का स्टार्च इन तीनो की अपेक्षा

अधिक धीमी गति से तथा कठिनता से श्लिषीकृत होता है। गेहूँ के स्टार्च का श्लिषीकरण भी मकई के स्टार्च की भाँति ही विलम्ब से होता है और बहुत अच्छी प्रकार उबालने पर भी पूर्ण नही होता। इस कारण गेहूँ और मकई के स्टार्चों का मुख्य रूप से मोटे धागो पर ही माडी लगाने के लिए उपयोग किया जाता है।

आलू और टैपियोका स्टार्चों की लेई सैगो स्टार्च की लेई की अपेक्षा अधिक श्यानता की होती है। अत धागे पर समान मात्रा मे माड़ी प्राप्त करने के लिए सैगो स्टार्च की लेई की सान्द्रता आलू और टैपियोका स्टार्च की अपेक्षा लगभग १० प्रतिशत अधिक रखनी पडती है। दस प्रतिशत सान्द्रता बढा देने पर सैगो स्टार्च की लेई की श्यानता लगभग आलू और टैपियोका के स्टार्चो की लेई के बराबर ही हो जाती है और अब समान मात्रा मे माडी इन लेइयो से धागे पर लगती है।

माडी लगाने की क्रिया मे धागो का ताना माडी भरी एक नाद के भीतर से भेजा जाता है और इसमे से जाते समय धागे माडी की श्यानता के अनुपात से माडी की मात्रा अपने मे अधिशोषित कर लेते है। ताना फिर निपीड़क बेलनो (squeezing rollers) के बीच से भेजा जाता है। ये बेलन धागो पर की अधिक माडी को काँछ कर निकाल देते है। माडी की जितनी अधिक श्यानता होती है काँछने मे उतनी ही कम वह निकलती है।

माडी लगाने की क्रिया मे एक दूसरी महत्त्व की बात यह देखने की होती है कि माडी सूती धागे को किस गति से भिगाती है। साधारण रीति से बनायी गयी माडी रुई को पूर्ण रूप से नही भिगाती और यदि आर्द्रताकारक (wetting agents) पदार्थ माडी मे मिलाये जायँ तो इनकी पर्याप्त मात्रा मिलानी पडती है। उबलते ताप पर माडी लगाने और फिर निपीडक बेलनो की सहायता से अधिक माडी काँछ कर निकालने की क्रिया द्वारा धागे पर्याप्त अश तक भिगोये जा सकते हैं। ऊँचा ताप तल-तनाव (surface tension) पर कोई प्रभाव नही डालता किन्तु श्यानता घटाता है, जिसके कारण माडी मे से वायु के बुल्ले (air bubbles) निकल जाते हैं और वायु के निकल जाने से ही माडी धागो को अधिक भिगो सकती है। अधिक दाब, मशीन की धीमी गति तथा ताने को दुबारा फिर मांडी के भीतर से ले जाने से धागो पर अधिक माडी लगाने मे सहायता मिलती है। माडी लगाने के बाद गरम बेलनो पर सुखाने से भी माडी धागो के अन्दर तक जाती है।

माड़ी की उपयोगिता दो बातो पर निर्भर करती है। एक तो धागो पर इसके ठीक से फैलने पर और दूसरे इसकी फिल्म की आसजकता पर। ये दोनो ही बाते आवश्यकतानुसार नियत्रित की जा सकती हैं। आशिक रूप से विघटित (partially degraded)

स्टार्चों के उपयोग द्वारा विलयन मे ठोस पदार्थ की मात्रा श्यानता मे बिना विशेष परिवर्तन किये बढायी जा सकती है और इस प्रकार धागो पर भी माडी की अधिक मात्रा पहुँचायी जा सकती है जिसके फलस्वरूप धागो के कडेपन मे भी वृद्धि होती है।

आक्सीकारको, अम्लो और एजाइमो द्वारा स्टार्च को अभिकृत कराने पर जो परिवर्तित स्टार्च प्राप्त होता है उसकी फिल्म अपेक्षाकृत कमजोर होती है, किन्तु अधिक विलेय होने के कारण समान श्यानता की माडी के समान आयतन मे इसकी मात्रा सामान्य स्टार्च से अधिक रहती है। अत. यदि परिवर्तित और सामान्य स्टार्चों से बनायी गयी माडियो की श्यानता एक हो तो परिवर्तित स्टार्च की माडी सामान्य स्टार्च की माडी की अपेक्षा धागे पर अधिक मात्रा मे लगेगी। इस प्रकार परिवर्तित स्टार्च की फिल्म की मजबूती मे कमी इसके अधिक मात्रा मे धागे पर अविशोषित होने के द्वारा पूरी हो जाती है।

विसज्जीकरण या मांड़ी निकालना (Desizing)—ताने मे माडी लगाने के लिए स्टार्च, केसीन, जिलैटिन, साबुन, चीनी मिट्टी तथा विभिन्न खनिज पदार्थों का उपयोग किया जाता है। जब बुनाई के बाद कपडा तैयार हो जाता है तब कपडे पर से माडी निकालने की आवश्यकता होती है, क्योकि बिना माडी निकाले कपडे की धुलाई, रगाई तथा छपाई अच्छी नही हो सकती। माडी निकालने की क्रिया मे माडी पूरी तरह से सरलता से निकल जानी चाहिए और साथ ही इस क्रिया से कपडे पर कोई हानि-कारक प्रभाव नही पडना चाहिए। यदि माडी स्टार्च की है तो कपडो पर ऐसे अभिकर्मको की क्रिया करायी जाती है जो स्टार्च अणुओ को सरल यौगिको मे विघटित कर देते हैं और फिर ये सरल यौगिक धोने पर सरलता से कपडे पर से निकल जाते हैं। इस कार्य के लिए किसी तनु खनिज अम्ल या अम्लीय लवण का उपयोग किया जा सकता है। पानी के साथ पर्याप्त समय तक उबालने से भी स्टार्च अणुओ का सरल यौगिको में जल-विश्लेषण हो जाता है, किन्तु पानी मे थोडा अम्ल रहने से जल-विश्लेषण की क्रिया अधिक शीघ्र होती है। स्टार्च को जल-विश्लेषित करने मे अम्ल उत्प्रेरक का काम करता है। अम्ल तथा अम्लीय लवणो का बहुत नियत्रित रूप से उपयोग करने पर यद्यपि कपडे पर कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नही पडता पर फिर भी थोडा प्रभाव तो पडता ही है। अत बहुत से लोग माड़ी निकालने के लिए अम्ल और अम्लीय लवणों के स्थान मे उन एजाइमो का उपयोग करते है जो स्टार्च अणुओं को शर्करा मे जल-विश्लेषित कर देते हैं। एजाइमों मे डायस्टेस एजाइम का उपयोग अधिक होता है। महीन और कीमती कपडो की माडी तथा उन कपड़ो की माडी निकालने के लिए, जिन्हे बाद में मरसराइज करना और रगना रहता है, डायस्टेस का उपयोग विशेष रूप से होता है।

इन कपडो पर अच्छी चमक लाने के लिए तथा इनकी अच्छी रगाई के लिए यह आवश्यक है कि इनकी माडी पूर्ण रूप से पहले निकाल दी जाय, क्योकि यदि माडी का कुछ भी अश लगा रह जाता है तो कपडे पर न तो सब जगह एक सा रग चढता है और न अच्छा कलफ होता है।

माडी निकालने की एजाइम विधि के अतिरिक्त जितनी अन्य विधियाँ है उनमे स्टार्च पूर्ण रूप से कपडे पर से नही निकलता , केवल एजाइम की क्रिया द्वारा ही कपडे पर से स्टार्च पूर्ण रूप से निकलता है।

कृत्रिम रेशम के कपड़ो पर से स्टार्च की माडी निकालने मे बहुत कठिनाई होती है और माडी निकालने की क्रिया को पर्याप्त समय तक कराने की आवश्यकता पडती है। माल्ट डायस्टेस द्वारा माडी धीमी गति से निकलती है और कृत्रिम रेशम पर जिस मात्रा मे माडी होती है उसी के अनुसार कम या अधिक समय माडी निकालने की क्रिया के लिए देना पडता है। कपडा यदि बहुत घना बुना होता है तो भी माडी धीमी गति से निकलती है और इस कारण माडी निकालने की क्रिया मे अधिक समय लगता है।

एंजाइम के उपयोग द्वारा मांड़ी निकालना—जैसा हम पढ चुके है, डायस्टेस एजाइम स्टार्च को विघटित कर सरल विलेय यौगिको मे परिणत कर देता है। इस प्रकार माडी के स्टार्च को निकालने की क्रिया मे डायस्टेस वही कार्य करता है जो अम्ल करता है, किन्तु डायस्टेस की क्रिया अधिक तीव्रता से होती है और साथ ही अधिक ठीक से नियत्रित की जा सकती है। एजाइम के उपयोग मे एक बडा लाभ यह भी है कि इसकी क्रिया केवल स्टार्च पर ही होती है और कपडे पर इसका कोई प्रभाव नही पडता, अत यदि डायस्टेस की अधिक मात्रा का भी उपयोग किया जाता है तो भी कपडा किसी प्रकार से खराब नही होने पाता।

माड़ी निकालने की सामान्य विधि निम्न भाँति है —

एक नाँद मे गरम पानी भर कर माडी लगे कपड़े को उसमे डुबोया जाता है। गरम पानी माडी मे उपस्थित विलेय खनिज लवणो को घुला कर निकाल देता है। गरम पानी की नाँद से निकाल कर कपडे को तुरन्त माडी निकालने की नाँद मे डाला जाता है जिसमे डायस्टेस एजाइम की उपयुक्त मात्रा विलयन के रूप मे मौजूद रहती है। इस नाँद का ताप अनुकूलतम (६०°—६५° स० ग्रे०) रखा जाता है। गरम पानी की नाँद से आने के कारण कपडा कुछ गरम रहता है और कपडे की यह गर्मी एजाइम विलयन के ताप को अनुकूलतम बनाये रखने मे सहायक होती है। इस नाँद मे निर्धारित समय तक कपडे को रखने के बाद फिर धोने की मशीन मे ले जाया जाता है, या अलग एक स्थान मे एकत्रित कर ढेर के रूप मे रात्रि भर रखा रहने दिया जाता है और दूसरे

दिन धोया जाता है। रात्रि भर पडा रहने पर कपडे पर जो थोडा एंज़ाइम लगा रहता है उसकी क्रिया माडी के शेष बचे स्टार्च पर धीरे-धीरे बराबर होती रहती है और यह बचा स्टार्च भी विघटित हो जाता है। साधारणत कपडे को एंज़ाइम के विलयन मे एक घटे तक रहने दिया जाता है। कभी-कभी १०-१२ घटो तक भी कपडे को एंज़ाइम विलयन मे रखने की आवश्यकता हो जाती है।

बाजारो मे एजाइमो के विभिन्न प्रकार के तैयार चूर्ण माडी निकालने के काम मे लाने के लिए बिकते है। साधारण रीति से इन चूर्णों की लगभग ५ से ८ पौड मात्रा १०० गैलन पानी मे मिलाना पर्याप्त होता है। कुछ अधिक क्रियाशील एंज़ाइम चूर्ण प्राय बाजारो में बिकते है। इनकी एक-दो पौड मात्रा ही १०० गैलन पानी मे मिलाना होता है। जो कपडे बहुत घने बुने होते है उन पर की माडी निकालने के लिए एंज़ाइम के विलयन मे थोडा आर्द्रक (wetting agent) मिला देने से माडी शीघ्र निकलती है।

कपड़ो का समापन (Finishing of textile fabrics)—बहुत से कपडे बुनाई के बाद तैयार होने तथा माडी निकालने के बाद देखने में आकर्षक नही लगते। बाज़ार मे ग्राहको को आर्कषित करने के लिए कपडो की सतह को चिकना और मुलायम बनाना आवश्यक होता है। इस क्रिया को 'समापन' या 'फिनिशिग' (finishing) कहते है। समापन निम्न तीन मुख्य उद्देश्यो से किया जाता है —सतह पर कडापन लाने, चमक लाने तथा कपडे का वज़न बढाने के लिए। समापन द्वारा कपडे की सतह चिकनी हो जाती है और उस पर एक चमक आ जाती है जिससे कपडा देखने मे सुन्दर और आकर्षक हो जाता है। सूती कपडो के समापन के लिए स्टार्च-विलयन का उपयोग मुख्य रूप से होता है। इस कार्य के लिए पतले स्टार्च-विलयन से ले कर गाढे स्टार्च-विलयन तक, जिनमे विभिन्न भराऊ पदार्थ भी मिश्रित रहते है, सभी का उपयोग होता है। भराऊ पदार्थ मिश्रित गाढा स्टार्च-विलयन जब कपडे पर दाब द्वारा लगाया जाता है तो कपडे के धागो के बीच के छेदो को भर देता है। साधारण समापन के लिए तनु स्टार्च-विलयन का उपयोग होता है।

कपड़ो के समापन का कार्य एक कला है और बहुत अनुभव के बाद कोई व्यक्ति इसमे निपुणता प्राप्त करता है। अत यह कार्य कपडे के कारखानो मे विशेषज्ञो द्वारा किया जाता है। रगीन तथा छपे कपडो के समापन मे विशेष कुशलता की आवश्यकता होती है, क्योकि इसमे इस बात का ध्यान रखना पडता है कि समापन की क्रिया मे रग तथा छपाई पर किसी प्रकार का हानिकारक प्रभाव न पडने पाये।

समापन के लिए जिन पदार्थों का उपयोग किया जाता है उन्हे प्रसाधक (dressings) कहते है। प्राय एक ही प्रसाधक का कई प्रकार के कार्यों के लिए

उपयोग किया जाता है। कपडो पर कडापन तथा चमक लाने के लिए प्रसाधक मे साधारणत स्टार्च, डेक्सट्रिन, गोद तथा जिलैटिन का उपयोग किया जाता है। प्रसाधको मे कुछ ऐसे पदार्थ भी, जो कपडे के रग को अधिक आकर्षक बनाने मे सहायक होते है तथा कुछ नि सक्रामक पदार्थ जो फफूँदो की वृद्धि को रोकते है, डाले जाते है।

जब खनिज वर्णको (pigments) का उपयोग भराऊ पदार्थ के रूप मे होता है तब आसजक प्रसाधको (adhesive dressings) का उपयोग किया जाता है। इन प्रसाधको का कार्य वर्णको को कपडे पर चिपकाये रखना होता है जिससे ये झड कर गिरने न पाये। कुछ वर्ष पूर्व तक ऐसे प्रसाधको मे मिलाने के लिए वनस्पति आसजको का उपयोग व्यापक रूप से होता था और बाजारो में इस कार्य मे उपयोग किये जाने के लिए विभिन्न वनस्पति आसजक स्वच्छ ठोस, लेई या द्रव रूप मे बिकने के लिए रखे जाते थे। ये सब आसजक अभिकृत स्टार्च या अभिकृत आटे से बनाये जाते थे। ऐसा ही एक आसजक बाजार मे 'ऐराबोल' (arabol) नाम से बिकता है। इसमे ५५ प्रतिशत डेक्सट्रिन, २५ प्रतिशत माल्टोस और ४ प्रतिशत स्टार्च तथा शेष पानी रहता है। यह आसजक स्टार्च को एजाइम द्वारा अभिकृत कर बनाया जाता है। आसजक प्रसाधको मे प्राय मैग्नीशियम क्लोराइड भी डाला जाता है। मैग्नी-शियम क्लोराइड मे नमी शोषित करने का गुण होता है। अत इसकी उपस्थिति से कपडा छूने पर मुलायम लगता है।

स्टार्च और डेक्सट्रिन के प्रसाधकों के रूप में उपयोग करने के सम्बन्ध की कुछ विशेष बातें—कुछ स्टार्चो मे सल्फ्यूरस अम्ल या तो मुक्त रूप मे या सयोजित रूप मे रहता है। यदि मुक्त अवस्था मे अम्ल मौजूद रहता है तो कपडो को गरम स्थान मे रखने पर यह कपडो को मुलायम कर देता है। अत अम्ल का निकालना आवश्यक है। सफेद डेक्सट्रिन को प्रसाधक के रूप मे उपयोग करने के पूर्व यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि उसमे अपरिवर्तित स्टार्च कितना बचा रह गया है। यदि थोडा भी अपरिवर्तित स्टार्च मौजूद रहता है तो इस डेक्सट्रिन द्वारा बनाये प्रसाधक द्वारा कपडे के समापन मे बहुत अन्तर आ जाता है। अम्ल और ग्लूकोस का भी डेक्सट्रिन मे रहना ठीक नही रहता। इनके रहने पर डेक्सट्रिन द्वारा समापन किये गये कपडे रखने पर मटमैले हो जाते हैं और उनका रग खराब हो जाता है। कुछ स्टार्च, जैसे मकई और चावल के स्टार्च, प्राय क्षारीय रहते है। अत जब पूर्ण उदासीन प्रसाधक की आवश्यकता होती है तो इन स्टार्चों को उन स्टार्चो के साथ मिश्रित कर जिनमे अम्लीयता होती है उपयोग किया जाता है। कुछ भराऊ पदार्थ भी, जैसे बेरियम सल्फेट, टैल्क और चीनी मिट्टी, प्राय अम्लीय होते है और यदि इनके साथ प्रसाधक मे साबुन उपयोग किया गया है तो

ये साबुन को जल-विश्लेषित कर वसा अम्ल उत्पन्न करते है और ये वसा अम्ल फिर वायु द्वारा आक्सीकृत हो कर कपडे मे एक दुर्गन्ध उत्पन्न करते है।

प्रसाधको के रूप में विभिन्न स्टार्चों के गुण—सफेद कपडो मे उपयोग होने वाले प्रसाधको का स्टार्च महत्त्व का अवयव है। विभिन्न स्टार्चो का उपयोग उनके गुणो के आधार पर विभिन्न प्रकार के कपडो के समापन के लिए किया जाता है। प्रसाधक आवश्यकतानुसार पतले दूधिया द्रव से ले कर गाढे लगभग गुधे आटे के रूप के बनाये जाते है।

आलू का स्टार्च—प्रसाधक के रूप मे उपयोग होने वाले सब स्टार्चों मे आलू का स्टार्च ही सब से अधिक गाढा होता है तथा इसके गुणो मे भी अवस्था के अनुसार बडा अन्तर रहता है। रखने पर इसकी लेई की श्यानता एक अवधि के बाद धीरे-धीरे घटती जाती है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, श्यानता के घटने का मुख्य कारण यह है कि लेई बनाने की क्रिया मे उबालने से स्टार्च अणु कुछ अश तक विघटित हो कर सरल हो जाते है। किन्तु आलू की लेई की श्यानता, इसे पूर्ण श्लिषीकरण ताप तक गरम करने पर अन्य स्टार्चों की अपेक्षा, जो समान सान्द्रता पर तथा समान ताप पर श्लिषीकृत किये गये है, कम घटती है। आलू की लेई का सन्तोषप्रद ढग से उपयोग करने के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि श्यानता घटना आरम्भ होने के पूर्व ही इसे उपयोग कर लिया जाय। इसके लिए एक उपाय यह है कि लेई को बनाते ही तुरन्त उसका उपयोग कर लिया जाय। सान्द्रता पर तथा उबालने पर उपयुक्त नियत्रण रखने से ऐसी लेई बनायी जा सकती है जिसकी श्यानता मे रखने पर विशेष अन्तर नही पडता।

आलू के स्टार्च का एक भराऊ पदार्थ के रूप मे भी उपयोग होता है। यह नम्य (flexible) भी होता है और कपडो मे मुलायमपन लाता है। सुहागे के साथ मिला कर प्रसाधक के रूप मे कपडे पर लगाने से यह कपडे की सतह को चमकीली करता है।

चावल का स्टार्च—यह धागे के अन्दर घुस जाता है और कपडो का वजन बढाता है। इसके द्वारा कपडे पर एक पारदर्शक और चमकीला समापन या 'फिनिश' (finish) प्राप्त होता है। धुलाई मे भी यह बहुत उपयोगी है क्योकि अन्य स्टार्चों की भाँति यह नम वायु मे मुलायम नही होता। यहाँ इसका मुख्य कार्य कपडे में कडापन (कलफ) लाना होता है।

मकई का स्टार्च—इसके उपयोग से कपड़े पर दफ्ती की तरह का बडा कडापन आता है। यह आलू के स्टार्च के साथ मिश्रण के रूप मे ही अधिकतर उपयोग किया

जाता है, किन्तु छोटे सूती कपडो (जैसे कालर आदि) के समापन के लिए अकेला भी उपयोग किया जाता है।

मकई और चावल के स्टार्च को पानी के साथ चाहे जितने समय तक उबाला जाय इनके द्वारा प्राप्त समापन मे से कुडापन नही जाता, किन्तु यदि मकई के स्टार्च को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा आशिक रूप मे विलेय स्टार्च मे परिवर्तित कर दिया जाय तो इसके द्वारा प्राप्त समापन कुछ-कुछ गेहूँ के स्टार्च के समापन की भाँति का हो जाता है।

टैपियोका स्टार्च—यह मकई के स्टार्च की अपेक्षा अधिक मुलायम होता है और इसकी जेली अधिक पारदर्शक होती है। इसके द्वारा कपडे पर समापन (फिनिश) मकई के स्टार्च की अपेक्षा अधिक लचीला तथा मजबूत रहता है। इस स्टार्च से बनाया गया डेक्सट्रिन भी अन्य स्टार्चो के डेक्सट्रिन की अपेक्षा अधिक मजबूत समापन देता है।

सैगो स्टार्च—यह बहुत समय से सूती धागो पर माडी लगाने के काम मे आता रहा है। माडी के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कामो के लिए भी यह सन्तोषप्रद है किन्तु 'समापन' मे इसका अधिक उपयोग नही किया जाता, क्योकि इसका समापन कपडे को मोडने या लपेटने से चटक जाता है जिसके कारण कपडे पर धारियाँ दिखलाई देती है।

गेहूँ का आटा—जिस प्रकार के कार्य के लिए आटे को इस्तेमाल करना होता है उसी के अनुसार इसे अभिकृत किया जाता है। यदि माडी के रूप मे उपयोग करना होता है तो आटे को पानी मे भिगो कर रख दिया जाता है और किण्वन होने दिया जाता है। किण्वन मे थोडा ऐलकोहल तथा ऐसीटिक और ब्यूट्रिक अम्ल भी बनते है। गेहूँ की प्रोटीन का भी विघटन कुछ हो जाता है। किण्वन के बाद स्टार्च-निलम्बन अम्लीय होता है और यदि इसे रगीन कपडे या धागे के लिए इस्तेमाल करना है तो अम्ल को पहले ऐमोनिया द्वारा उदासीन कर दिया जाता है। आटे मे ० २५ प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट (धोने का सोडा) मिलाने से किण्वन अधिक शीघ्र पूरा हो जाता है। किण्वन की समाप्ति के बाद इसमे कोई प्रतिपूय (antiseptic) पदार्थ मिला कर और पानी द्वारा आवश्यकतानुसार तनु कर फिर उबाल लिया जाता है। इस प्रकार बनाये गये प्रसाधक से कपडे का समापन अच्छा होता है किन्तु यह कपडे पर से अधिक शीघ्र निकल जाता है।

साधारण रीति से प्रसाधको मे दो या अधिक प्रकार के स्टार्चो का मिश्रण रहता है। स्टार्चो को पहले सूखी अवस्था मे ही मिला लिया जाता है और फिर मिश्रण को पानी

के साथ गरम कर श्लिषीकृत किया जाता है। कुछ लोग प्रत्येक स्टार्च को पृथक् रूप से श्लिषीकृत कर फिर सब को मिला कर और थोडी देर उबाल कर समाग लेई बनाना अधिक ठीक समझते है। इस विधि से सब स्टार्च-कणो का श्लिपीकरण समान अश तक हो जाता है। सूखे स्टार्चों को मिश्रित कर फिर मिश्रण को श्लिषीकृत करने मे एक कठिनाई यह उत्पन्न होती है कि मिश्रण के जिस स्टार्च का श्लिषीकरण सब से निम्न ताप पर होता है वह पहले श्लिषीकृत हो कर उस स्टार्च के कणो के चारो ओर, जिसका श्लिषीकरण ऊँचे ताप पर होता है, एक पतला श्लिषीय आवरण (gelatınous film) बना देता है जिसके कारण इस दूसरे स्टार्च का श्लिषीकरण ठीक से नही हो पाता। इसका परिणाम यह होता है कि प्रसाधक अच्छा नही होता और कपडे पर लगाने के बाद थोडे दिनो मे झड कर निकल जाता है।

जब प्रसाधक बनाने के लिए स्टार्च को विघटित करने की आवश्यकता होती है तो स्टार्च-निलम्बन मे कोई उत्फुल्लक (swelling agent) मिला कर तब उसे आवश्यक समय तक उबाला जाता है। अकेले डेक्सट्रिन से कपडे पर बहुत मुलायम समापन ('फिनिस') प्राप्त होता है किन्तु डेक्सट्रिन को स्टार्च की लेई मे मिलाने से समापन दफ्ती की तरह कडा प्राप्त होता है।

कपड़ों पर छपाई करने में स्टार्च का उपयोग—छपाई के लिए रग तैयार करने मे स्टार्च या इसी प्रकार का कोई अन्य अक्रिय पदार्थ आधार के रूप मे मिलाया जाता है। स्टार्च, गोद, ऐल्ब्यूमिन या जिन अन्य पदार्थों को आधार बनाने के लिए इस्तेमाल करना होता है उन्हे परस्पर मिला कर तथा मिश्रण को पानी की उपयुक्त मात्रा के साथ उबाल कर पहले लेई बना ली जाती है। अब जिन रगो को उपयोग मे लाना है उनको अथवा उनके विलयनो को लेई मे डाल दिया जाता है। अन्य जो रासायनिक पदार्थ मिलाने होते है उन्हे भी लेई मे डाल दिया जाता है और फिर सब को अच्छी प्रकार फेंट कर लेई को समाग कर दिया जाता है। अब यह रग मिली लेई छपाई के काम मे लाने के उपयुक्त रहती है और आवश्यकतानुसार उपयोग मे लायी जाती है। विभिन्न प्रकार की छपाई के लिए यदि इसे गाढा करने की आवश्यकता होती है तो इसमे उसी के अनुसार कोई उपयुक्त गाढक मिला दिया जाता है।

आभादायक तथा नीलरंजक (Tintıng and bluing agents`—सफेद कपडो पर प्राय हलका पीलापन रहता है। इसे दूर कर कपडो पर अधिक सफेदी लाने के लिए प्राय प्रसाधकों के साथ कोई नीला रग थोडी मात्रा मे मिलाया जाता है। नीले रगो मे अल्ट्रामेरीन (ultramarine) का उपयोग सफेद कपड़ों पर नील देने के लिए बहुत होता है। इसका उपयोग करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रसाधक

पूर्ण उदासीन हो। यदि सज्जक किंचित् भी अम्लीय होता है तो अल्ट्रामेरीन भूरे रग मे परिवर्तित हो जाता है और परिणामस्वरूप कपडे की सफेदी नष्ट हो जाती है। प्रसाधक की अम्लीयता का उदासीनीकरण करने के लिए ऐमोनिया का उपयोग करना अधिक ठीक रहता है, क्योकि यदि ऐमोनिया कुछ मुक्त अवस्था मे रह जाती है तो कोई हानि नही पहुँचाती। 'इडिगो कारमीन' (indigo carmine) और पेरिस ब्लू (Paris blue) का उपयोग भी प्राय नीलरजक के रूप मे होता है, किन्तु ये अल्ट्रा-मेरीन की तरह अच्छे सिद्ध नही होते।

गाढ़कों का कार्य (Functions of the thickeners)—जैसा हम ऊपर बतला चुके है, कपडो पर छपाई करने मे रगो के साथ विभिन्न गाढक मिलाये जाते है। स्टार्च तथा डेक्सट्रिन का उपयोग ऐसे गाढक बनाने मे भी बहुत होता है। छपाई के रग मे मिलाये जाने वाले गाढको को उनके कार्य की दृष्टि से दो मुख्य वर्गों मे रखा जा सकता है—(क) एक वे जो छपाई के बाद निकाल दिये जाते है, जैसे स्टार्च, अग्रेजी गोद, वनस्पति गोद आदि तथा (ख) दूसरे वे जो वर्णको को कपडे पर चिपकाये रखने के उद्देश्य से मिलाये जाते है और छपाई के बाद निकाले नही जाते, जैसे केसीन और ऐल्ब्यूमिन। गाढको का कार्य निम्न होता है —

(१) ये वर्णको तथा उन रासायनिक पदार्थों के लिए जिन्हे रग को स्थायी करने या विकसित करने के लिए प्रयोग किया जाता है, वाहक तथा आधार (base) का काम करते है। रग की लेई मे मिले पदार्थों को छपाई के पूर्व या बाद मे अवक्षेपित करने का गुण गाढको मे नही होना चाहिए। कलिलीय गाढको मे वर्णक जितना महीन रूप मे आकीर्ण (dispersed) रहता है उतनी ही अच्छी छपाई होती है।

(२) ये छपाई के विलयन या लेई मे इच्छित गाढापन और सुघट्यता (plasticity) लाते है। यह सुघट्यता इतनी होनी चाहिए कि छपाई की लेई छापो के प्रत्येक खुदे भाग मे ठीक से भर जाय और वहाँ से बह कर निकलने न पाये और कपड़े पर रग तभी फैले जब छापा दबाया जाय।

(३) ये छपाई के रग को छापे से कपडो पर ठीक से पहुँचाने मे सहायक होते हैं।

(४) ये रग को स्थायी बनाते हैं जिससे धोने पर रग कपडे से निकलने नही पाता।

(५) गाढक को रग की लेई मे उपस्थित समस्त पदार्थों के प्रति अक्रिय होना चाहिए। साथ ही इसे जलग्राही नही होना चाहिए और सस्ता होना चाहिए।

छपाई के रंग का निखार—रग का कपडे पर निखरना कुछ अश मे गाढक पर निर्भर करता है। ऐसे गाढक जिनमे ठोस की मात्रा कम रहती है रग मे अच्छा निखार

लाते है। कुछ पौधो के गोंद, जैसे 'लोकस्ट बीन गोद' (locust bean gum), इस कार्य के लिए बहुत अच्छे होते है। इनका दो-तीन भाग १०० भाग पानी मे मिलाने पर एक गाढा श्लेष्मीय (mucilaginous) विलयन प्राप्त होता है जो छपाई के रग मे गाढक के साथ मिलाने पर रग को निखरने मे सहायता देता है। सेनेगल गोद (gum senegal) तथा अन्य क्षारीय गोद इस काम के लिए अधिक उपयुक्त नही है क्योकि इनके श्लेष्मीय गाढे विलयन बनाने मे काफी ठोस की मात्रा लेनी पडती है।

कुछ गाढको मे यह गुण होता है कि वे धागो के बीच मे नही प्रवेश कर पाते, अत वे रग जिनमे ऐसे गाढक रहते है केवल कपडे की सतह पर ही रहते है। सतह पर रहने के कारण रग सब जगह समान रूप से फैलता हे जिसके फलस्वरूप रग का विकास अच्छा होता है और उसमे अच्छा निखार आता है। जब गाढक ऐसा होता है जो धागो के बीच मे प्रवेश कर जाता है तो रग को अधिक क्षेत्रफल मे फैलना पडता है जिसके कारण वह सतह पर पूर्ण रूप से विकसित हो कर निखर नही पाता। ऐसी अवस्था मे रग की मात्रा भी अधिक लेनी पडती है ओर रग भी पूर्ण निखार के साथ कपडे पर नही चढता। किस प्रकार की छपाई के लिए कौन सा गाढक उपयोग करना ठीक होगा यह कुशल कारीगर अपने अनुभव से मालूम करता है।

स्टार्च से बने गाढ़क (Starch thickenings)—गाढको की उपयोगिता उनकी श्यानता, सुघट्यता और विलयन मे ठोस की प्रतिशत मात्रा पर बहुत अश तक निर्भर करती है।

स्टार्च-गाढक बनाने के लिए स्टार्च को पहले पानी के साथ फेंट कर एक गाढी लेई प्राप्त की जाती है। इसमे फिर और पानी मिला कर बद कडाहो (pans) मे भाप द्वारा उबाला जाता है। उबालते समय इसे बराबर विलोडित करते रहने का प्रबन्ध रहता है। उबालते समय गाढक कडाह की दीवारो पर न चिपकने पाये इसके लिए इसमे थोडा सा कोई वनस्पति तेल या रग तेल (colour oil) मिला दिया जाता है। गाढक को कडाह मे भरने के पूर्व कडाह की दीवारो पर भी थोडा सा तेल रगड दिया जाता है। प्राय वनस्पति तेल के स्थान मे लोग खनिज तेल का उपयोग भी इस काम के लिए करते है किन्तु वनस्पति तेल ही अधिक उपयुक्त होता है।

पूर्ण उदासीन स्टार्च-लेई बहुत दिनो तक साधारण अवस्था मे नही रखी जा सकती। इसमे थोडा ऐसीटिक अम्ल मिलाने से यह बहुत दिनो तक सुरक्षित रहती है। स्टार्च-गाढक बनाने मे सफाई का ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है और साथ ही यह भी आवश्यक है कि जो स्टार्च गाढक बनाने के लिए लिया जाय वह अच्छी जाति का

हो। यदि इन सब बातो का ध्यान नही रखा जाता अथवा बनाने मे कोई त्रुटि रह जाती है तो रखने पर ऐसे गाढक मे से पानी पृथक हो जाता है और कड़ा ठोस अलग बच रहता है। इसे पुन ठीक नही किया जा सकता और फेकना ही पडता है।

गाढक बनाने के लिए गेहूँ का स्टार्च बहुत उपयुक्त है। इसकी लेई चिकनी बनती है और छपाई के मसाले मे इसके रहने पर छपाई अच्छी आती है। मकई और टैपियोका स्टार्च के मिश्रण से भी लगभग गेहूँ के स्टार्च की तरह ही गाढक प्राप्त होता है किन्तु अकेले मकई के स्टार्च से बना गाढक बहुत उपयुक्त नही होता और न अधिक दिनो तक रखा जा सकता है। अकेले टैपियोका स्टार्च से भी गाढक कडा बनता है और उपयुक्त नही होता, अत इसे भी अकेले उपयोग नही किया जाता। गेहूँ के आटे को मकई या टैपियोका स्टार्च के साथ मिला कर भी गाढक बनाया जाता है। आटे मे ग्लूटेन के रहने के कारण इस गाढक मे आसजकता अधिक होती है और इस कारण यह ऐलीजरीन (alızarın) तथा उन रगो के लिए जिनमे ऐल्यूमिना और लोहे के यौगिक रगस्थापक (mordants) के रूप मे डाले गये है बहुत उपयुक्त होता है।

स्टार्च-गाढ़कों में दोष—छपाई करने के बाद गाढक को कपडे पर से प्राय धो कर निकालने की आवश्यकता पडती है। स्टार्च-गाढको के साथ यह कठिनाई होती है कि ये धोने से शीघ्र नही निकलते। मुलायम कपडे पर इनके रहने से कडापन रहता है और यदि वे पूर्ण रूप से धो कर नही निकाले जाते तो कपडे पर कडापन बना रहता है जो अच्छा नही समझा जाता। इस दोष के कारण स्टार्च-गाढक मुलायम कपडो की छपाई के लिए उपयोग नही किये जा सकते।

स्टार्च-गाढको मे एक दूसरा दोष यह होता है कि क्षार की उपस्थिति मे ये रबर की तरह के लचीले पदार्थ मे परिणत हो जाते हैं। रगो को अच्छी प्रकार विकसित करने तथा निखारने के लिए उनमे प्राय क्षार पदार्थ मिलाना पडता है। अत. ऐसे रगो के साथ भी स्टार्च-गाढको का उपयोग नही किया जा सकता। विशेष रूप से तैयार किये गये कुछ स्टार्च-गाढको पर क्षार का अधिक प्रभाव नही पडता और इन गाढको को ऐसे रगो से छपाई करने मे प्रयुक्त किया जा सकता है।

अंग्रेजी गोंद से बने गाढ़क—अंग्रेजी गोद का उपयोग विभिन्न प्रकार के गाढक बनाने मे व्यापक रूप से होता है। क्षार के प्रति ये गाढक अधिक टिकाऊ होते हैं। छपाई के बाद कपडे पर से धो कर इन्हे सरलता से निकाला भी जा सकता है। अत ये गाढक मुलायम तथा अन्य सभी प्रकार के कपडो के लिए उपयुक्त सिद्ध होते है। अंग्रेजी गोद विभिन्न प्रकार के होते है। अत. इनसे विभिन्न कार्यों के उपयुक्त आवश्यक गुण वाले गाढक प्राप्त किये जा सकते हैं। इन गोदो मे अपरिवर्तित स्टार्च की

विभिन्न मात्राएँ रहती है और उन्ही के अनुसार इन्हे विभिन्न कार्यों के लिए उपयोग किया जाता है।

हलके भुने गोद मे ४०-५० प्रतिशत तक अपरिवर्तित स्टार्च रहता है। इस गोद की पानी मे २०-३० प्रतिशत सान्द्रता रहने पर यह लेई के रूप मे रहता है और साधारणत इसी सान्द्रता मे उपयोग किया जाता है। मध्यम अवस्था तक भुने गोद मे अपरिवर्तित स्टार्च की प्रतिशत मात्रा लगभग १०-२० प्रतिशत तक होती है। इससे बनाये गाढको का उपयोग क्षार कार्बोनेट की उपस्थिति मे किया जा सकता है क्योकि इन कार्बोनेटो का इस गोद पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता। किन्तु कास्टिक क्षारो का प्रभाव इस गोद पर पडता है, अत कास्टिक क्षारो की उपस्थिति मे इससे बनाये गाढक नही उपयोग किये जा सकते।

पूर्ण भुने गोद मे अपरिवर्तित स्टार्च या तो बिल्कुल नही रहता या बहुत सूक्ष्म मात्रा मे रहता है। अत इस गोद पर कास्टिक क्षार तथा क्षार कार्बोनेट दोनो का ही कोई प्रभाव नही पडता और इस कारण इससे बनाये गये गाढक दोनो की उपस्थिति मे उपयोग किये जा सकते हैं। इस गोद की पानी मे लगभग ५० प्रतिशत सान्द्रता होने पर उपयुक्त अवस्था की लेई प्राप्त होती है जो गाढक के रूप मे छपाई के लिए रगो के साथ उपयोग की जा सकती है। बहुत अधिक अवस्था तक भुना गोद, जिसे कृत्रिम सेनेगल गोंद कहते है, रेशमी कपडो की छपाई के लिए गाढक के रूप मे बहुत उपयोग होता है। इसमे अपरिवर्तित स्टार्च बिल्कुल नही रहता; यह केवल सरल डेक्सट्रिनो का मिश्रण होता है। इस गोद की पानी मे कम से कम ७०-७५ प्रतिशत सान्द्रता होने पर यह लेई के रूप मे प्राप्त होता है और इस लेई को ही गाढक के रूप मे रगो के साथ मिला कर छपाई के काम मे लाया जाता है।

छपाई मे उपयोग किये जाने वाले कुछ साधारण गाढको के सूत्र तथा उनके बनाने की विधि नीचे दी जाती है —

गेहूँ का स्टार्च .. ३५० भाग
८% ट्रैगाकैंथ गोद श्लेष्म ... १००० भाग
(gum-tragacanth mucilage)
पानी .. १००० भाग

स्टार्च को पानी मे निलम्बित कर फिर इसमे ट्रैगाकैंथ श्लेष्म मिलाया जाता है। इस मिश्रण को विलोडक द्वारा बराबर चलाते हुए लगभग आध घटे तक उबाला जाता है, फिर ठढा कर कपडे से छान लिया जाता है। इस प्रकार जो लेई प्राप्त होती है वह समाग होती है और छपाई के काम के लिए अच्छी होती है।

भास्मिक रगो के साथ उपयोग होने के उपयुक्त एक गाढक का सूत्र नीचे दिया जाता है —

मकई का स्टार्च . ६३० भाग
टैपियोका स्टार्च ३२० भाग
८% ट्रैगाकैंथ गोद श्लेष्म २००० भाग
पानी . ४००० भाग
ऐसीटिक अम्ल (८०%) .. ४८० भाग

एक बद कडाह की अन्दर की दीवारो पर तेल रगड कर ऊपर की सब वस्तुओ को उसमे डाल कर भली भाँति मिला दिया जाता है। दीवारो पर तेल लगा रहने से गाढक दीवारो पर चिपकने नही पाता। अब कडाह को गरम कर उसमे भरे पदार्थो के मिश्रण को उबाला जाता है। उबालते समय मिश्रण को बराबर विलोडित किया जाता है जिससे समाग लेई प्राप्त हो। लगभग पौन घटे तक उबालने पर गाढक तैयार हो जाता है।

कुछ रग ल्यूको* (leuco) अवस्था मे छपाई की क्रिया मे अवकृत किये जाते हैं, अथवा छपाई के कुछ पहले अवकृत किये जाते हैं। इनके साथ प्रयुक्त होने वाले गाढक क्षारीय होते है। अत इन रगो के लिए अग्रेज़ी गोद से गाढक बनाये जाते हैं जो क्षार के प्रति स्थायी होते है। ऐसे एक गाढक का सूत्र नीचे दिया जाता है —

मध्यम अवस्था तक भुना अग्रेज़ी गोद .. १०० भाग
पोटैसियम कार्बोनेट .. ८४ भाग
सोडियम फार्मैल्डीहाइड सल्फाक्सिलेट ४९ भाग
ग्लिसरीन २५ भाग
पानी . १७५ भाग

गोद को पानी के साथ मिला कर लगभग आध घटे तक उबाला जाता है, फिर इसमे पोटैसियम कार्बोनेट डाल कर मिश्रण को पुन १५ मिनट तक उबाला जाता है। अब इसे ठढा कर इसमे सोडियम फार्मैल्डीहाइड सल्फाक्सिलेट तथा ग्लिसरीन मिला कर अच्छी प्रकार फेंट दिया जाता है। एक समाग लेई प्राप्त हो जाती है।

* कुछ रंग अवकृत अवस्था में रंगहीन होते है और इस अवस्था में इन्हें 'ल्यूको' कहते है।

सूती कपडो की छपाई के लिए एक अच्छे गाढक का सूत्र निम्न प्रकार है :—

मकई का स्टार्च . ५२ भाग
टैपियोका स्टार्च १०४ भाग
डेक्सट्रिन १४५ भाग
स्टियरिक अम्ल . २ भाग
रिसार्सिनोल . . ७०० भाग
पानी . . . ९०० भाग

दोनो स्टार्चों, डेक्सट्रिन तथा स्टियरिक अम्ल को पानी के साथ मिला कर मिश्रण को लगभग आध घटे तक उबाला जाता है। इसमे फिर रिसार्सिनोल मिला कर और फेंट कर समाग कर दिया जाता है। गाढक तैयार हो जाता है। यह गाढक दो दिनो से अधिक रखा नही जा सकता, क्योंकि दो दिनों के बाद यह रबर की तरह लचीला हो जाता है और छपाई के लिए उपयुक्त नही रहता। अत इसे उसी समय बनाना चाहिए जब इस्तेमाल करना हो।

कुछ गाढक सेल्यूलोस यौगिको से भी बनाये जाते है। ऐसा एक गाढक जो बाजारो मे बिकता है कोलोरेज़िन (colloresins) है। इसमे सेल्यूलोस का मेथाक्सी यौगिक रहता है। ऐसीटिल सेल्यूलोस को बोरिक या ग्लाइकॉलिक अम्ल के साथ मिला कर भी गाढक बनाया जाता है जो छपाई मे उपयोग किया जाता है।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, छपाई बहुत अश तक एक कला है जो केवल अनुभव द्वारा सीखी जा सकती है। अत. इच्छित प्रकार की छपाई प्राप्त करने के लिए किसी निर्धारित वैज्ञानिक विधि का बतला सकना सम्भव नही है।

अध्याय १८

विविध उपयोग

साबुन मे भराऊ पदार्थ के रूप मे स्टार्च का उपयोग प्राय होता है। स्टार्च न तो साबुन के गुण मे कोई विशेष वृद्धि करता है और न कोई हानि ही करता है। अत यह साबुन मे केवल एक भराऊ पदार्थ है और साबुन का वज़न बढाने के लिए ही उसमे मिलाया जाता है। दक्षिणी अमेरिका मे साबुन मे स्टार्च मिलाने का बडा प्रचलन है। प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के समय जर्मनी मे भी स्टार्च का उपयोग भराऊ पदार्थ के रूप मे बहुत हुआ था। उन दिनो तेल और वसा की वहाँ कमी थी, इस कारण साबुन बनाने मे आवश्यकता से कम मात्रा तेल और वसा की रख कर उसमे स्टार्च मिश्रित कर दिया जाता था। अब भी जर्मनी मे आलू का स्टार्च थोड़ी मात्रा मे इस काम के लिए उपयोग मे लाया जाता है। अन्य देशो मे चावल का स्टार्च अधिक उपयोग होता है। साधारण रीति से अधिक से अधिक १५ प्रतिशत तक स्टार्च साबुन मे बिना कोई दोष उत्पन्न किये मिलाया जा सकता है, किन्तु स्वच्छ सफेद साबुनो मे इससे कम मात्रा मिलानी चाहिए, क्योकि अधिक स्टार्च से साबुन एकदम सफेद नही रहता, उसमे थोडा मटमैलापन आ जाता है।

कुछ लोगो का मत है कि स्टार्च के रहने से साबुन के फेन मे तथा उसके स्थायीपन मे वृद्धि होती है और इस कारण ऐसा साबुन सफाई अधिक करता है, किन्तु अन्य लोग इस मत से सहमत नही है। उनके अनुसार स्टार्च मे सफाई करने (detergent) का कोई गुण नही होता, और इस कारण साबुन मे इसे डालना केवल मिलावट करना है। कुछ लोगो के मत के अनुसार साबुन मे स्टार्च का रहना रगीन और छपे कपडो की धुलाई के लिए हानिप्रद है। इनके अनुसार क्षार और स्टार्च की सम्मिलित क्रिया से रग अवकृत हो कर निकल जाता है। अत ऐसे साबुन, जिनमे स्टार्च रहता है, रगीन कपडो की धुलाई के लिए अनुपयुक्त होते है। किन्तु रगो पर स्टार्च का इस प्रकार का कोई प्रभाव पडता है अथवा नही, यह निश्चित रूप से सिद्ध नही किया जा सका है। जब तक प्रयोगो द्वारा यह नही सिद्ध किया जाता कि स्टार्च का रगो पर क्षार की उपस्थिति मे क्या प्रभाव पडता है, तब तक इस सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत व्यक्त

नही किया जा सकता। अधिकाश लोगो के अनुभवों के आधार पर केवल मात्र इतना कहा जा सकता है कि स्टार्च का साबुन मे रहना कोई हानि नही उत्पन्न करता और सम्भवत कुछ लाभ ही करता है।

नहाने के साबुन मे स्टार्च चूर्ण रूप मे साबुन के छीलन मे मिलाया जाता है। इस प्रकार के साबुन का एक सूत्र नीचे दिया जाता है —

साबुन की छीलन	...	१०० भाग
मकई का स्टार्च	...	२५ ,,
केसिया तेल (Cassia oil)	.	० ८ ,,
कैरावे तेल (Caraway oil)		० १ ,,
जिरैनियम तेल (geranium oil)	..	० ४ ,,

साबुन और स्टार्च के चूर्ण को पहले मिला लिया जाता है और फिर इसमे तेलो को अच्छी प्रकार मिश्रित कर साँचो मे डाल कर बट्टियाँ बना ली जाती है।

जर्मनी मे 'व्यापारिक स्टार्च' (commercial starch) के नाम से एक विशेष स्टार्च केवल साबुन मे मिलाने के लिए बनाया जाता है। इस स्टार्च की लगभग २५-३० प्रतिशत मात्रा तक साबुन मे मिलायी जा सकती है। इसके मिलाने से साबुन मे से पानी उडने की मात्रा मे कमी हो जाती है और साबुन जल्दी सूखने नही पाता। साथ ही इससे फेन भी अधिक निकलता है और वह टिकता भी अधिक है।

स्टार्च से एक नया यौगिक कुछ वर्षों पूर्व अमेरिका मे बनाया गया है जिसमे कपडो की सफाई करने का अच्छा गुण होता है। इस यौगिक को मकई के स्टार्च से निम्न प्रकार से बनाया जाता है। मकई के स्टार्च को नमी की उपस्थिति मे लगभग १२०° ताप पर गरम किया जाता है जिससे इसमे मौजूद प्रोटीन विच्छेदित हो जाय और स्टार्च का आशिक जल-विश्लेषण हो जाय। इसे फिर कास्टिक सोडा के साथ दाब पर गरम किया जाता है जिससे इसमे मौजूद तेल साबुन मे परिवर्तित हो जाता है। क्रिया के अन्त मे कार्बन डाइ-आक्साइड प्रवाहित कर शेष बचे कास्टिक सोडा को उदासीन कर दिया जाता है। जो पदार्थ प्राप्त होता है उसमे साबुन की तरह मैल साफ करने का गुण होता है।

धुलाई में स्टार्च का उपयोग—धुलाई मे स्टार्च का बडा उपयोग कपडो पर कडापन और चमक लाने के लिए किया जाता है। इस क्रिया को कलफ देना कहते है। इस काम के लिए स्टार्च को अकेले या मोम के साथ मिश्रित कर उपयोग किया जाता है।

कलफ देना भी एक कला है। एक ही कलफ़ के पदार्थ से एक कुशल धुलाई करने वाला कपडों पर बढिया कलफ और चमक उत्पन्न कर देता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति जो

इस कला मे निपुण नही है उसी कलफ के पदार्थ का उपयोग करने पर अपने कार्य मे सफल नही होता।

कलफ के काम के लिए चावल के स्टार्च का उपयोग अधिक होता है। इस स्टार्च के कण महीन होते हैं और कपडो के धागो के बीच मे शीघ्र प्रवेश कर जाते है तथा कपडो पर अच्छी चमक लाते है। इसके साथ ही इस स्टार्च मे एक गुण यह भी है कि यह गर्मी तथा पसीने दोनो के प्रति अन्य स्टार्चो की अपेक्षा अधिक टिकाऊ है।

चावल के स्टार्च के अतिरिक्त अन्य स्टार्च तथा उनके मिश्रणो का उपयोग भी कलफ देने के लिए होता है। इन स्टार्चो मे अन्य विभिन्न पदार्थ मिला कर इनके गुणो मे इच्छित प्रकार का परिवर्तन किया जा सकता है। मकई के स्टार्च से बहुत कडा, दफ्ती की तरह का कलफ प्राप्त होता है। इसके विपरीत गेहूँ के स्टार्च से मुलायम कलफ प्राप्त होता है। इन दोनो को उचित अनुपात मे मिला कर इच्छित कडापन उत्पन्न करने वाला कलफ प्राप्त किया जा सकता है।

कलफ देने की क्रिया मे कपडे को पहले साबुन और पानी से धो कर साफ किया जाता है। पानी से अच्छी प्रकार धोने के बाद जब कपडे का सब साबुन निकल जाता है तब कलफ-मिश्रण को कपडे पर डाला जाता है। साधारणत. कलफ-मिश्रण को पानी मे घोल कर कपडे को इसमे डुबा कर निकाल लिया जाता है। नील या जो रजक पदार्थ डालना होता है वह भी कलफ के विलयन मे ही डाल दिया जाता है। अब कपडे को सूखने के लिए फैला दिया जाता है। सूखने के बाद कपडो पर लोहा किया जाता है। लोहा करने पर कपडे पर लगे स्टार्च-कण गर्मी द्वारा श्लिषीकृत हो जाते है और इसके फलस्वरूप कपडे पर एक चमक आ जाती है। वास्तव मे लोहा करने की क्रिया मे केवल थोड़े से स्टार्च-कणो का ही श्लिषीकरण होता है, स्टार्च का अधिकाश भाग बिना श्लिषीकृत हुए ही रह जाता है। विलेय स्टार्च तथा अन्य परिवर्तित स्टार्च का उपयोग यदि कलफ देने के लिए किया जाता है तो कलफ अधिक अच्छा प्राप्त होता है और उसमे चमक भी अधिक होती है, क्योकि लोहा करने पर इनका श्लिषीकरण बहुत शीघ्र हो जाता है। विलेय और परिवर्तित स्टार्च अपेक्षाकृत निम्न ताप पर ही श्लिषीकृत हो जाते है और इनमे धागो के बीच मे प्रवेश करने की भी अच्छी शक्ति होती है। इन गुणो के कारण ही उनसे प्राप्त कलफ अच्छा और अधिक चमक वाला होता है।

कलफ-पदार्थ मे थोडा सुहागा मिलाने से भी कपडे पर कलफ बहुत अच्छा प्राप्त होता है और इसमे अधिक चिकनाहट और चमक भी होती है। विभिन्न प्रकार के कलफ के लिए सुहागे की विभिन्न मात्रा स्टार्च मे मिलायी जाती है। साधारणत स्टार्च की तोल से सुहागे की १ से १७ प्रतिशत तक मात्रा आवश्यकतानुसार मिलायी जाती है।

स्टार्च और सुहागे का कलफ़-मिश्रण बाज़ार में 'आभादायक स्टार्च' (gloss starch) के नाम से बिकता है। सुहागे की वास्तव में कलफ़ में क्या रासायनिक क्रिया होती है, यह निश्चित रूप से अभी ज्ञात नहीं है।

सुहागे के अतिरिक्त कुछ अन्य खनिज पदार्थ भी प्राय: स्टार्च में कलफ़ देने के लिए मिश्रित किये जाते हैं। इन पदार्थों में चीनी मिट्टी, खड़िया आदि हैं। इनका मुख्य कार्य स्टार्च-कणों को कपड़ों पर अधिक स्थायी रूप से टिकाये रखना है। ये स्टार्च-कणों को कपड़ों पर मज़बूती से चिपकाये रखते हैं और रगड़ द्वारा इन्हें झड़ कर शीघ्र गिरने नहीं देते।

प्रसाधन सामग्रियों में स्टार्च का उपयोग (Use of starch in cosmetics)—गेहूँ, मकई और चावल के स्टार्चों का उपयोग आजकल व्यापक रूप से प्रसाधन पाउडर तैयार करने में होता है। बहुत-से पाउडर जो चेहरे तथा शरीर के अन्य अंगों पर लगाने के लिए तैयार किये जाते हैं, केवल सुगन्ध मिश्रित स्टार्च चूर्ण ही होते हैं। प्रसाधन पाउडर बनाने के लिए स्टार्च का एकदम सूखा होना आवश्यक है। तभी इसमें तरलता (fluidy) आती है और चेहरे पर लगाने के लिए यह उपयुक्त होता है। चावल का स्टार्च पाउडर के रूप में उपयोग होने के लिए मकई और गेहूँ के स्टार्चों से अधिक उपयुक्त है। गेहूँ के स्टार्च में हलका नीलापन होता है और यह एकदम सफेद पाउडर नहीं देता। आलू के स्टार्च में दोष यह होता है कि इसके कण अपेक्षाकृत बड़े होते हैं, अत: पाउडर बहुत महीन नहीं हो सकता। इसमें दूसरा दोष यह होता है कि यद्यपि यह चिकना और चमकीला होता है पर इसमें सफेदी अच्छी नहीं होती।

चेहरे के लिए जो पाउडर बनते हैं उनमें स्टार्च के अतिरिक्त बहुत से अन्य पदार्थ भी मिश्रित किये जाते हैं। अच्छे पाउडरों में ५० प्रतिशत या इससे अधिक चावल का स्टार्च रहता है। पाउडर को सस्ता बनाने के लिए इसमें विभिन्न अनुपात में मकई का स्टार्च मिलाया जाता है। चेहरे के लिए बनाये गये पाउडरों में स्टार्च का उपयोग करना ठीक है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में दो भिन्न मत हैं। कुछ लोगों का कहना है कि स्टार्च पसीने के सम्पर्क में आकर अम्लीय हो जाता है। पसीने की नमी और अम्लीयता से स्टार्च-कण फूलते हैं। अत: जब स्टार्च-कण त्वचा के रन्ध्रों (pores) में रहते हैं तो पसीने की नमी तथा अम्लीयता द्वारा फूल कर फैलते हैं और परिणामस्वरूप त्वचा के रन्ध्रों को भी फैलाते हैं। इस प्रकार प्रति दिन पाउडर लगाते रहने से त्वचा के रन्ध्र स्थायी रूप से अधिक बड़े हो जाते हैं। अब इनमें स्टार्च के अधिक बड़े कण भी प्रवेश कर सकते हैं। ये कण भी पसीने के प्रभाव से फूलते हैं और त्वचा के रन्ध्रों को और अधिक फैलाते हैं। इस रीति से कणों के फूलने के प्रभाव से त्वचा के रन्ध्र धीरे-धीरे स्थायी

रूप से बडे होते जाते है। रन्ध्रो के विस्फारित हो जाने के फलस्वरूप त्वचा का चिकनापन नष्ट हो जाता है और वह खुरदरी हो जाती है। स्टार्च के इस प्रभाव से त्वचा को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से कुछ पाउडर बनाने वाले स्टार्च की पहले पानी के साथ गरम-कर कणो को फुला लेते है और फिर सुखा कर बहुत महीन पीसते है। पीसते समय इसमे थोडा मोम भी मिला देते है। स्टार्च-कण पहले से फूले होने के कारण पसीने की नमी से विशेष नही फूलते। साथ ही मोम की उपस्थिति से नमी का विशेष प्रभाव भी स्टार्च-कणो पर नही पडता। ऐसे स्टार्च से तैयार किये गये पाउडर अधिक सन्तोषप्रद समझे जाते है।

पाउडर के रूप मे स्टार्च का त्वचा पर एक मत के अनुसार जो हानिकारक प्रभाव पडता है वह ऊपर बतलाया गया है। किन्तु इसके विरुद्ध दूसरा मत यह है कि इस प्रकार का कोई हानिकारक प्रभाव स्टार्च का त्वचा पर नही पडता। इस मत के अनुसार पाउडर साधारणत त्वचा पर बहुत पतली पर्त के रूप मे रहता है और थोडे समय बाद ही धो कर निकाल दिया जाता है। अत इतने थोडे समय तक त्वचा के सम्पर्क मे रहने से पाउडर के स्टार्च द्वारा त्वचा पर कोई हानिकारक प्रभाव पडने की सम्भावना नही जान पडती। फिर भी साधारण रीति से बच्चो के उपयोग के लिए तथा पसीना सुखाने के लिए बनाये गये पाउडरो मे स्टार्च का उपयोग नही किया जाता। इन पाउडरो मे स्टार्च के स्थान मे विभिन्न खनिज द्रव्य, जैसे टैल्क, जिक आक्साइड, मैग्नीशियम और कैल्सियम कार्बोनेट, केओलिन (kaolin) या किसेलगुर (kieselguhr) तथा जिक और मैग्नीशियम स्टियरेट उपयोग होते है। यद्यपि ये खनिज पदार्थ पानी के सम्पर्क मे फूलते तो नही है पर इनके कणो के भी त्वचा के रन्ध्रो के भीतर घुस कर उन्हे बन्द कर देने की सम्भावना रहती है।

कुछ क्रीम तथा इसी प्रकार की अन्य प्रसाधन वस्तुएँ बनाने मे भी स्टार्च का उपयोग किया जाता है। ये वस्तुएँ ग्लिसरीन और स्टार्च के योग से साधारणत बनायी जाती है। हाथ-पैरो की त्वचा के फटने पर लगायी जाने वाली एक क्रीम का सूत्र निम्न प्रकार है —

२० ग्राम स्टार्च को १३० घ० से० पानी तथा १३० घ० से० ग्लिसरीन के साथ मिला कर इतने समय तक गरम किया जाता है कि एक अर्ध-पारदर्शक जेली बन जाय। इस क्रीम मे प्राय जिक आक्साइड मिला कर इसे प्रसाधन के काम मे भी लाया जाता है।

दवाओं में स्टार्च पाउडर का उपयोग—स्टार्च चूर्ण मे विभिन्न दवाएँ मिश्रित कर बहुत से ऐसे पाउडर बनाये जाते है जिनका चिकित्सा के सम्बन्ध मे उपयोग होता है। स्टार्च मे जिक आक्साइड और बोरिक अम्ल मिला कर एक पाउडर बनाया जाता है जिसका उपयोग अस्पतालो मे पट्टियो पर छिडकने तथा चीर-फाड के बाद आस-पास

की त्वचा पर छिड़कने में बहुत होता है। त्वचा पर अँधौरियाँ निकलने तथा साधारण फुन्सियाँ निकलने पर भी यह पाउडर त्वचा पर छिड़का जाता है।

बाल उड़ाने वाले चूर्णों तथा क्रीमों में भी स्टार्च आधार के रूप में प्रायः उपयोग किया जाता है। कुछ धातु सल्फाइडों, जैसे बेरियम सल्फाइड, जिंक सल्फाइड आदि में त्वचा के बाल उड़ाने का गुण होता है, किन्तु यदि ये सल्फाइड अकेले शुद्ध रूप में उपयोग किये जाते हैं तो त्वचा को हानि पहुँचाते हैं। अतः स्टार्च या अन्य किसी अक्रिय पदार्थ के साथ मिश्रित कर चूर्ण रूप में या जेली के रूप में इन सल्फाइडों को इस्तेमाल किया जाता है। मकई के स्टार्च का इस काम के लिए उपयोग होता है, किन्तु इसके साथ एक दोष यह है कि पानी और सल्फाइड मिलाने पर यह बहुत गाढ़ा हो जाता है। इस दोष के कारण बाल उड़ाने वाले अच्छे पाउडरों में स्टार्च के स्थान में हलके प्रकार के मैग्नी-शियम कार्बोनेट का अधिक उपयोग होता है।

दवाओं की गोलियाँ बनाने में भी स्टार्च का उपयोग होता है। इस काम में स्टार्च का उपयोग दो उद्देश्यों की पूर्ति करता है। पहला तो यह कि स्टार्च दवा के चूर्ण के कणों को परस्पर जुटा कर गोली के रूप में परिणत होने में सहायक होता है, और दूसरा यह कि गोली के ऊपर इसका एक आवरण होने से यह नमी तथा वायु से गोली की रक्षा करता है। ऐसपिरीन (aspirin) की टिकियाँ बनाने में स्टार्च का उपयोग एक अन्य प्रयोजन से भी किया जाता है। ये टिकियाँ ऐसीटिल सैलीसिलिक अम्ल (जिसे ऐसपिरीन कहते हैं) को स्टार्च में मिश्रित कर तथा आवश्यकतानुसार कोई अन्य दवा भी मिला कर (कैफीन भी प्रायः मिलायी जाती है) बनायी जाती हैं। ये टिकियाँ जब सिर के दर्द आदि में निगल ली जाती हैं तो आमाशय में पहुँच कर इन का स्टार्च शीघ्र पानी शोषित कर फूलता है। स्टार्च के फूलने के कारण टिकियों के भीतर एक खिंचाव उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप टिकियाँ शीघ्र टूट कर चूर्ण में परिणत हो जाती हैं। स्टार्च का यह कार्य खाने की दवाओं की गोलियों में बहुत महत्त्व का है।

कुछ स्टार्चों में यह गुण है कि जब उनकी लेई ठण्ढक द्वारा जमा दी जाती है तो वे स्पंज की तरह के पदार्थ में परिणत हो जाते हैं। इस गुण का उपयोग स्टार्च से मुलायम तथा लचीली पट्टी बनाने में लिया जाता है। यह पट्टी शरीर के भीतर के भागों की चीर-फाड़ में डाक्टरों द्वारा उपयोग की जाती है, क्योंकि इसमें केवल स्टार्च होने के कारण यह शरीर के ऊतकों द्वारा धीरे-धीरे अन्दर शोषित की जा सकती है और उससे कोई हानि नहीं होती।

बाहरी घावों के लिए बिभिन्न मलहम तैयार करने में भी स्टार्च का उपयोग होता है। स्टार्च में फार्मैल्डीहाइड मिला कर एक मलहम आजकल बहुत बनाया जाता है जो

बाजार मे 'ऐमिलोफार्म' (amyloform) के नाम से बेचा जाता है। घावो तथा फुन्सियो के लिए यह अच्छा मलहम है।

बागबानी में स्टार्च का उपयोग (Use of starch in horticulture)—फलो, तरकारियो तथा कृषि के पौधो को हानि पहुँचाने वाले बहुत से कीट-पतगो को मारने के लिए विभिन्न सूखे पाउडरो मे स्टार्च का उपयोग होता है। इन पाउडरो मे स्टार्च के साथ कोई कीटनाशक पदार्थ मिला रहता है। उदाहरणार्थ, स्टार्च मे सुहागा, सोडियम क्लोराइड और लेड आर्सिनेट मिला कर एक पाउडर बनाया जाता है जिसे गुबरैलो (beetles) तथा अन्य कीडो पर छिड़कने से वे मर जाते है।

फफूँदो, जीवाणुओ तथा पौधो को हानि पहुँचाने वाले अन्य अणुजीवो को नष्ट करने के हेतु छिडक कर इस्तेमाल करने के लिए विभिन्न विलयन बनाये जाते है। इन विलयनो मे भी स्टार्च का उपयोग किया जाता है। इनमे फफूँद, जीवाणु आदि को मारने के लिए कोई विषैला पदार्थ रहता है और उसके साथ कोई एक ऐसा पदार्थ और रहता है जो विलयन को पत्तियो की सतह तथा तनो की दरारो पर फैलने मे सहायक होता है। साधारण पानी के विलयन से पत्तियाँ भीगती नही है। इस काम के लिए विलेय स्टार्च या डेक्सट्रिन का उपयोग अधिकतर होता है। इनकी उपस्थिति से पत्तियाँ ठीक से भीग जाती है और फिर विलयन का विष पत्तियो की पूरी सतह पर फैल कर उनके सम्पर्क मे आ जाता है और वहाँ उपस्थित अणुजीवो पर अपना प्रभाव डालता है।

विस्फोटक तथा ईंधन के सम्बन्ध में स्टार्च का उपयोग (Use of starch in explosives and fuels)—विभिन्न विस्फोटक बनाने मे स्टार्च का उपयोग होता है। इस काम मे स्टार्च का उपयोग दो प्रयोजनो से किया जाता है। एक तो विस्फोटक पदार्थ के कणो को परस्पर जुटा कर उन्हे विभिन्न ठोस रूप देने मे और दूसरा विस्फोटक पदार्थ की विस्फोटन शक्ति को नियन्त्रित रखने मे। बहुत से विस्फोटक पदार्थ इतने शक्तिशाली विस्फोटक होते है कि उन्हे रखने तथा शुद्ध रूप मे उपयोग करने मे बडा भय रहता है। इन पदार्थों के साथ कोई अक्रिय पदार्थ मिला देने से इनकी विस्फोटन शक्ति घट जाती है और तब ये बिना विशेष भय के प्रयोग मे लाये जा सकते है। एक अक्रिय पदार्थ होने से इस काम के लिए स्टार्च का बहुत उपयोग होता है। डाइनमाइट इसी प्रकार से नाइट्रोग्लिसरीन से बनाया जाता है। इसमे तीन भाग स्टार्च और एक भाग नाइट्रोग्लिसरीन रहता है। नाइट्रोग्लिसरीन शुद्ध रूप मे इतना तीव्र विस्फोटक है कि हलका सा भी धक्का या झटका लगने पर

विस्फोटित हो जाता है। अत स्टार्च के साथ मिला कर इसकी विस्फोटन शक्ति को नियन्त्रित करने के बाद ही इसका उपयोग सुरक्षित रूप से किया जाता है।

कुछ अधिक प्रचलित विस्फोटक जिनमे स्टार्च का उपयोग अक्रिय पदार्थ के रूप मे उनके विस्फोटन को नियन्त्रित करने या उनके अवयवों को परस्पर जुटा कर उन्हे कोई ठोस रूप देने के लिए किया जाता है, निम्न है —

ऐबेलाइट (Abelite)—इसमे स्टार्च, ऐमोनियम नाइट्रेट, टी० एन० टी० (ट्राइ-नाइट्रोटाल्युईन) और सोडियम क्लोराइड रहता है।

ऐमोनिया डाइनमाइट (Ammonia dynamite) मे २० प्रतिशत नाइट्रो-ग्लिसरीन, ६० प्रतिशत चावल का स्टार्च या आटा और शेष ऐमोनियम नाइट्रेट और सोडियम नाइट्रेट रहता है।

बोबीनाइट (Bobbinite) मे, जो एक प्रकार की बारूद है, स्टार्च और पैराफिन मोम अन्य विस्फोटक पदार्थों के साथ रहता है।

कार्बोनाइट (Carbonite) मे विस्फोटक पदार्थों के साथ चावल या गेहूँ का स्टार्च मिश्रित रहता है। यह एक विस्फोटक है जिसका कोयले की खदानो मे विस्फोटन के लिए उपयोग होता है।

फुलगुराइट (Fulgurite) विस्फोटक मे ४० प्रतिशत तक गेहूँ का स्टार्च रहता है।

अक्रिय पदार्थ के रूप मे उपयोग होने के अतिरिक्त स्टार्च से सीधे विस्फोटक पदार्थ भी बनाया जाता है। स्टार्च को नाइट्रिक अम्ल से अभिकृत करने पर स्टार्च नाइट्रेट यौगिक बनता है जो एक तेज विस्फोटक है। स्टार्च नाइट्रेट बनाने की विधि अध्याय १२ मे बतलायी जा चुकी है। स्टार्च नाइट्रेट बाजार मे नाइट्रोस्टार्च के नाम से बिकता है। नाइट्रोस्टार्च से बनाये जाने वाले विस्फोटको मे से दो का सूत्र नीचे दिया जाता है —

(१)	नाइट्रोस्टार्च	..	५० प्रतिशत
	सोडियम नाइट्रेट	...	४७ ५ ,,
	कोई तेल	..	१ ५ ,,
	सोडियम बाइ-कार्बोनेट	...	१ ० ,,

ऊपर के मिश्रण से बने विस्फोटक का चूने के पत्थर तथा ग्रेनाइट की खुदाई मे बहुत उपयोग होता है।

(२)	नाइट्रोस्टार्च	१५ प्रतिशत
	ऐमोनियम नाइट्रेट	७५ ,,
	टी० एन० टी०	५ ,,
	कोयले का चूर्ण	३ ,,
	ऐल्यूमिनियम चूर्ण	१ ,,
	तेल (कोई भी)	१ ,,

ऊपर के मिश्रण से बना विस्फोटक शीघ्र विस्फोटित नही होता। इसका उपयोग उन खदानो मे किया जाता है जहाँ आग का अधिक भय रहता है।

विभिन्न प्रकार के पटाखे तथा दियासलाई बनाने मे भी स्टार्च का उपयोग किया जाता है। दियासलाई के मसाले मे लगभग १५ प्रतिशत तक स्टार्च मिलाया जाता है। स्टार्च के रहने से मसाला तीलियो पर ठीक से चिपकता है। इसका दूसरा लाभ यह होता है कि जब दियासलाई जलायी जाती है तो मसाले मे मौजूद स्टार्च दियासलाई को जलती रखने मे सहायक होता है और ईधन का काम करता है।

खदानो मे तथा घरो मे भी तोडते समय बहुत सा कोयला चूर रूप मे हो जाता है, और इस रूप मे ईधन के काम मे इसे लाने मे कठिनाई होती है। कोयले के इस चूर मे स्टार्च मिला कर इसकी टिकियाँ बना ली जाती है जो फिर ईधन के रूप मे सरलता से जलाने के काम मे आ जाती है। इस प्रकार बहुत सा व्यर्थ कोयला जलाने के उपयोग मे आ जाता है।

कोयले की धुलाई मे पानी के साथ बह कर कोयले के महीन कण निकल जाते है। ये कण पानी मे मिट्टी तथा अन्य अपद्रव्यो के साथ निलम्बित अवस्था मे रहते है और उन्हे पृथक् करना कठिन होता है। इस निलम्बन मे यदि स्टार्च मिला दिया जाता है तो कोयले के महीन कण स्टार्च के साथ परस्पर जुट कर एकत्रित हो जाते है और नीचे तली मे बैठ जाते है। इस प्रकार स्टार्च की सहायता से कोयले के कण टिकियो के रूप मे परिवर्तित कर ईंधन के काम मे लाये जाते है।

स्टार्च के कुछ अन्य उपयोग—स्टार्च का उपयोग झील तथा समुद्र के पानी से नमक निकालने मे भी किया जाता है। झील या समुद्र के पानी मे, जिसमे नमक घुला रहता है, मिट्टी भी पर्याप्त मात्रा मे निलम्बित अवस्था मे रहती है। इस पानी में थोडा श्लिषीकृत स्टार्च मिला देने से निलम्बित मिट्टी शीघ्र नीचे तली मे तलछट के रूप मे बैठ जाती है और ऊपर से स्वच्छ पानी को निथार कर अलग किया जा सकता है। इस पानी को फिर धूप मे सुखा कर इससे घुला नमक प्राप्त कर लिया जाता है।

तेल के कुओ की खुदाई मे भी स्टार्च का उपयोग किया जाता है। कुओ की

खुदाई मे मिट्टी के अवयवों को कलिलीय अवस्था (colloidal state) मे रखने की आवश्यकता पडती है, क्योंकि यदि मिट्टी पानी के साथ निलम्बित अवस्था मे न रह कर जमने लगती है तो खुदाई के ममय कुओं में जो नल लगाये जाते है उनके छेदो मे जम कर छेदों को बन्द कर देती है। यदि मिट्टी मे स्टार्च मिला दिया जाता है तो मिट्टी कलिलीय अवस्था मे बनी रहती है और जमती नही।

कास्टिक सोडा के कारखानो मे, जहाँ चूने से कास्टिक सोडा बनाया जाता है, स्टार्च का उपयोग अवक्षेप को शीघ्र नीचे तली मे बैठाने के लिए किया जाता है। स्टार्च की लगभग ० ०१ प्रतिशत मात्रा मिला देने से अवक्षेप बहुत शीघ्र नीचे बैठ जाता है।

स्टार्च से एक स्नेहक (lubricant) बनाया जाता है जो उन उपकरणो तथा यन्त्रो मे उपयोग होता है जिनमे वसा को घुलाने वाले विलायको को भरने की आवश्यकता होती है। यह स्नेहक निम्न प्रकार से बनाया जाता है—९ भाग विलेय स्टार्च को २२ भाग ग्लिसरोल मे मिला कर मिश्रण को १४०° से० ग्रे० ताप पर तब तक गरम किया जाता है जब तक समाग जेली नही प्राप्त हो जाती। यह जेली उपकरणो की रोधनियो (stop cocks) को चिकना रखने के लिए उन पर लगायी जाती है।

कठोर जल को मृदु बनाने के लिए भी स्टार्च का उपयोग होता है। नीचे एक सूत्र दिया जाता है जिसका बहुत उपयोग सेनाओं द्वारा पानी को मृदु करने के लिए किया जाता है —

सोडा भस्म	...	७६ प्रतिशत
ट्राइसोडियम फास्फेट	..	१० ,,
स्टार्च (या डेक्सट्रिन)	...	१ ,,
पानी	...	११ ,,
टैनिक अम्ल	..	२ ,,

विभिन्न प्रकार की ढलाई मे तथा मोमजामा बनाने मे स्टार्च चूर्ण का उपयोग फफूँदो की वृद्धि को रोकने के लिए होता है। साँचो के चारो ओर स्टार्च चूर्ण छिडक देने से ढलाई अधिक ठीक होती है और ढला पदार्थ साँचो पर चिपकने नही पाता। मोमजामे पर स्टार्च चूर्ण छिडक देने से फफूँदों का आक्रमण इस पर नही होता।

विनिल ऐसीटेट से बहुलकीकरण द्वारा प्लास्टिक बनाये जाते है। इसमे थोडा स्टार्च डाला जाता है जो आकीर्णक का काम करता है।

स्टार्च को डाइमेथिल सल्फेट से अभिकृत कर डाइमेथिल स्टार्च प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग रबर के दूध को क्रीम के रूप में परिवर्तित करने के लिए किया जाता

है। रबर के सामानो को सुरक्षित रखने के लिए उन पर स्टार्च चूर्ण छिडका जाता है।

सीमेट के जोडने के गुण मे वृद्धि करने के लिए स्टार्च सीमेट मे भी मिलाया जाता है। ४० प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट के विलयन मे ६ भाग स्टार्च मिला कर इस निलम्बन को सीमेट मे मिलाने से सीमेट के जोड की मजबूती बढ जाती है।

चमडे के उद्योग मे चमडे को चिकना बनाने मे स्टार्च का उपयोग होता है।

बैटरी की शुष्क सेलो (dry cells) मे स्टार्च कई प्रकार से उपयोग किया जाता है। सेल की दीवारो पर जो लेबल चिपकाया जाता है उसे चिपकाने के लिए चावल के स्टार्च मे थोडा ऐमोनियम क्लोराइड और जिक क्लोराइड मिला कर आसजक बनाया जाता है। सेल के भीतर जो मसाला भरा जाता है वह लेई के रूप मे रखा जाता है। इस मसाले को लेई के रूप मे रखने के लिए इसमे चावल का स्टार्च मिलाया जाता है। शुष्क सेलो का मसाला बनाने का एक सूत्र निम्न प्रकार है —

दो विलयन पहले अलग अलग बनाये जाते है। एक विलयन मे जिक क्लोराइड की अधिक मात्रा तथा ऐमोनियम क्लोराइड की थोडी मात्रा घुली रहती है। दूसरे विलयन मे अधिक ऐमोनियम क्लोराइड, थोडा जिक क्लोराइड और थोडा स्टार्च रहता है। इन दोनो विलयनो को उचित अनुपात मे मिला कर रखने पर मिश्रण एक निश्चित समय के भीतर जम जाता है। यही जमा मसाला शुष्क सेलो मे भरा जाता है।

चावल के स्टार्च का एक महत्त्व का उपयोग दीप्त पेण्ट (luminous paints) बनाने मे है। दीप्त पेण्ट बनाने के लिए जो पदार्थ उपयोग किये जाते है उन्हे बहुत शुद्ध लेना पडता है। यदि थोडा भी पदार्थो मे अपद्रव्य मिला रहता है तो दीप्ति के रग मे अन्तर आ जाता है तथा चमक मे कमी हो जाती है। दीप्त पेण्ट साधारणत भारी धातुओ के सल्फाइडो से बनाये जाते हैं। इन सल्फाइडो मे यह गुण होता है कि अँधेरे मे ये दीप्ति विकीर्ण करते है। दीप्त पेण्ट बनाने के लए निर्धारित धातु सल्फाइडो को स्टार्च के साथ गरम किया जाता है। स्टार्च अवकारक का काम करता है और धातु सल्फाइडो को कुछ अश तक अवकृत कर देता है। इस रूप मे ये सल्फाइड दीप्ति अधिक अच्छी देते है। चावल का स्टार्च इस काम के लिए अन्य स्टार्चो से अधिक उपयुक्त इस कारण से होता है कि इसमे लोहे के यौगिको की अपद्रव्यता रहने की सम्भावना सब से कम रहती है।

लाक्षक पेण्ट (लैकर पेण्ट, lacquer paints) मे आजकल स्टार्च के ईथर तथा एस्टरो का उपयोग सेल्यूलोस एस्टरो की अपेक्षा अधिक होता है। नाइट्रोस्टार्च का उपयोग भी इस काम के लिए बहुत होता है।

स्टार्च को फार्मेल्डीहाइड से अभिकृत कर एक पारदर्शक प्लास्टिक भी बनाया जाता है। इसे बनाने के लिए स्टार्च मे फार्मेल्डीहाइड मिला कर वायु की अनुपस्थिति मे इतना गरम किया जाता है कि मिश्रण आयोडीन के साथ नीला रग देना बन्द कर दे। यह प्लास्टिक ऊँचे ताप पर मुलायम हो जाता है और विभिन्न आकारो मे ढाला जा सकता है।

स्टार्च से छपाई के बेलन भी आजकल बनाये जाते है। २५ भाग स्टार्च को ३० भाग मैग्नीशियम-ग्लिसरीन चाशनी मे मिला कर २४ घण्टे तक रख दिया जाता है। इसे फिर साँचो मे डाल कर बेलनो के रूप मे ढाला जाता है। ये बेलन प्रेसो मे छपाई के लिए उपयोग मे आते है।

स्टार्च से अनेक रासायनिक यौगिक भी आजकल प्राप्त किये जाते है। ग्लूकोस और माल्टोस की चर्चा पीछे की जा चुकी है। व्यवसाय मे सारबिटॉल (sorbitol) भी आजकल स्टार्च से बनाया जाता है। स्टार्च को उचित सीमा तक जल-विश्लेपित करने और फिर निकेल की उपस्थिति मे १०० वायुमण्डल के दाब पर लगभग २००° ताप पर हाइड्रोजनीकृत करने पर सारबिटॉल बनता है।

अध्याय १९

स्टार्च-उद्योग के उपजात और उनका उपयोग

विभिन्न वस्तुओ से स्टार्च बनाने मे विभिन्न उपजात (उपद्रव्य) प्राप्त होते हे। कुछ उपजातो का कोई उपयोग नही है और उन्हे फेकने की एक समस्या रहती है। कुछ उपजात उपयोगी है और उन्हे उपयोग मे लाया जाता है।

मकई का स्टार्च बनाने मे निम्न उपजात प्राप्त होते है —सूखा ग्लूटेन, चोकर, अकुर की खली और तेल। तेल लगभग ३ प्रतिशत तक मकई की तोल के अनुपात से प्राप्त होता है। यह तेल पेण्ट बनाने, साबुन बनाने तथा अन्य विभिन्न कामो मे आता है। स्टार्च बनाने की क्रिया मे जो पानी अनाज को धोने, स्टार्च को निलम्बित करने तथा धोने के लिए प्रयोग किया जाता है उसमे मकई मे वर्तमान खनिज लवण और अधिकाश विलेय प्रोटीन घुली रहती है। इस धोवन को सान्द्र कर जानवरो के चारे मे मिला कर जानवरो को खिला दिया जाता है। प्राय धोवन को पूर्ण वाष्पित कर इसमे घुले खनिज लवण और प्रोटीन को ठोस रूप मे पृथक् भी प्राप्त किया जाता है और यीस्ट तथा अन्य फफूँदो और जीवाणुओ के कल्चर बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। प्राय: धोवन मे से उसमे घुले पदार्थो को चूने द्वारा अवक्षेपित कर पृथक् किया जाता है और फिर इसे प्रेसो मे दबा कर बट्टी (cake) के रूप मे प्राप्त किया जाता है।

मकई का ग्लूटेन (प्रोटीन) विभिन्न शुद्धता का बाजार मे बिकता है। अधिक शुद्ध रूप जो जलीय ऐलकोहल मे विलेय होता है जीन (zein) होता है। मकई से प्राप्त प्रोटीनो का मुख्य उपयोग प्लास्टिक बनाने मे भराऊ पदार्थ के रूप मे है। इन प्रोटीनो का प्राकृतिक तथा सश्लेषित दोनो ही प्रकार के रेजिनो (resins) मे उपयोग किया जा सकता है।

जीन केवल मकई से ही उपजात के रूप मे प्राप्त होता है और बाजारो मे सफेद चूर्ण के रूप मे बिकने के लिए रखा जाता है। यह स्वाद तथा गन्धरहित होता है। इस पर प्रकाश का कोई प्रभाव नही पडता और गर्मी से यह सुघट्य हो जाता है। यह अज्वलनशील होता है और बिजली के लिए अच्छा पृथक्कारी (insulator) है। यह अजल ऐलकोहल तथा अन्य कार्बनिक विलायको मे अविलेय है। तनु अम्लों तथा तनु क्षारो मे भी यह नही घुलता। यह जलीय ऐलकोहल, गलित फीनोल, यूरिया के

सान्द्र विलयन तथा कास्टिक क्षार के सान्द्र विलयन मे विलेय होता है। जीन का उपयोग कॉच की तरह के पारदर्शक प्लास्टिक बनाने मे, आसजक बनाने मे तथा कागज का सज्जीकरण करने मे होता है।

गेहूँ से स्टार्च बनाने मे सबसे महत्त्व का उपजात ग्लूटेन है। यह मधुमेह के रोगियो के लिए भोजन बनाने, जानवरो को चारे के साथ खिलाने, कपडे की छपाई मे रगो के साथ गाढक के रूप मे मिलाने तथा सज्जक और आसजक बनाने के काम मे आता है। इसका नियत्रित अवस्था मे किण्वन कराने से एक पदार्थ प्राप्त होता है जो बडा अच्छा सज्जक (sizing material) होता है। ग्लूटेन को तुरन्त सुखा कर रखा जाता है। यदि यह दो-तीन दिनो तक गीला रहता है तो विच्छेदित हो जाता है।

ग्लूटेन से आजकल बडी मात्रा मे सोडियम ग्लूटामेट (ग्लूटामिक अम्ल का सोडियम लवण) भी बनाया जाता है। सोडियम ग्लूटामेट का स्वाद बहुत अश तक मास के रस से मिलता है। इस कारण इसका बडा उपयोग आजकल सूप तथा अन्य पेय बनाने मे होता है।

आलू से स्टार्च निकालने के बाद अन्त मे एक लुगदी उपजात के रूप मे बच रहती है। इसमे थोडा चूना मिला कर फिल्टर प्रेसो द्वारा छानने से इसका अधिकाश पानी निकल जाता है और बट्टी के रूप मे खली प्राप्त होती है। यह खली चारे के साथ जानवरो को खिलाने के लिए पौष्टिक भोजन है।

आलू से स्टार्च बनाने की क्रिया मे जो धोवन प्राप्त होता है उसमे आलू के खनिज लवण तथा कुछ प्रोटीन घुली रहती है। इस धोवन मे हवा प्रवाहित करने से इसकी समस्त प्रोटीन फेन के साथ ऊपर आ जाती है। फेन को पृथक् कर फिर इसमे से प्रोटीन अलग निकाल ली जाती है।

मकई, गेहूँ और आलू से जो प्रोटीन उपजात के रूप मे प्राप्त होती है उनसे विभिन्न ऐमिनो अम्ल (amino acids) भी बनाये जाते है। इन प्रोटीनो को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा जल-विश्लेषित करने पर इनके ऐमिनो अम्ल पृथक् हो जाते है। फिर विलयन को उपयुक्त *p*H पर ला कर विभिन्न ऐमिनो अम्ल अवक्षेपित कर लिये जाते है। ल्यूसीन, टाइरोसिन आदि ऐमिनो अम्ल इन्ही उपजात प्रोटीनो से आजकल प्राप्त किये जाते है।

अध्याय २०

स्टार्च तथा स्टार्च-पदार्थों का परिरक्षण

अच्छा भोजन पदार्थ होने के कारण स्टार्च पर और इससे बनाये गये विभिन्न पदार्थों पर फफूँद और जीवाणु शीघ्र फैलते है और इनके फैलने पर पदार्थ खराब हो जाते है। स्टार्च पर आक्रमण करने वाले अणुजीव तीन प्रकार के होते है—(१) फफूँद (fungi), (२) बैसिलस कोलाई (Bacillus coli) और (३) ऊष्मा-जीवाणु (thermophilic bacteria)। स्टार्च पर आक्रमण करने वाले अणुजीवो की सख्या बहुत अश तक इस बात पर भी निर्भर करती है कि स्टार्च को बनाते समय उसे किन रासायनिक पदार्थो से उपचारित किया गया है। साधारण रीति से यह देखा गया है कि आक्सीकृत स्टार्च मे जीवाणु कम आक्रमण करते है। यह भी देखा गया है कि यदि स्टार्च को हवा मे धीमी गति से सुखाया जाता है तो इसमे जीवाणु बहुत शीघ्र आ जाते है, किन्तु यदि स्टार्च को ऊँचे ताप पर शीघ्र सुखा दिया जाता है तो जीवाणु जल्दी इस स्टार्च पर आक्रमण नही करते।

स्टार्च को ठण्ढी और सूखी जगह मे रखने से इसमे जीवाणुओ की सख्या घट जाती है, किन्तु जब काम मे लाने के लिए इसमे पानी मिलाया जाता है तो इसमे मौजूद जीवाणु क्रियाशील हो कर शीघ्र वृद्धि करते है और फलस्वरूप उनकी सख्या मे तेजी से वृद्धि होती है। बेंजोइक अम्ल और पैराफार्मैल्डीहाइड का मिश्रण जीवाणुओ की वृद्धि रोकने के लिए अच्छा सिद्ध हुआ है। फफूँदो के आक्रमण से स्टार्च को बचाने के लिए ताँबे के लवण उपयोगी होते है।

भोजन पदार्थो के अर्थ मे उपयोग होने वाले स्टार्च मे जीवाणुओ का रहना हानिकारक है, क्योकि इन जीवाणुओ से विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अत भोजन की वस्तुओ के सम्बन्ध मे काम मे लाये जाने वाले स्टार्च को जीवाणुरहित रखना व्यवसाय मे एक महत्त्व की समस्या है। ऊष्मा-जीवाणु ताप के प्रति उदासीन रहते है, अत स्टार्च को इन जीवाणुओ से रहित करना एक बड़ी कठिन समस्या होती है। ऊष्मा-जीवाणु को कम करने की एक विधि यह है कि बनाते समय स्टार्च मे पानी का अश दो प्रतिशत से अधिक न रखा जाय और अन्त मे स्टार्च को १२२°

से० ग्रे० ताप पर लगभग तीन घण्टे तक गरम किया जाय। इस विधि से स्टार्च के समस्त जीवाणु नष्ट हो जाते है। यदि स्टार्च मे ५ प्रतिशत या इससे अधिक पानी रहता है तो स्टार्च को १००° से० ग्रे० से ऊँचे ताप पर गरम करने से स्टार्च जल-विच्छेदित हो जाता है और इसमे मौजूद जीवाणु भी पूर्ण रूप से नष्ट नही होते।

स्टार्च को नमी और गर्म स्थान मे नही रखना चाहिए। बहुत से फफूँदो के स्पोर वायु द्वारा उड कर भोजन पदार्थो पर पहुँचते है और यदि उन्हे उपयुक्त नमी और गर्मी मिल जाती है तो वे वही उग कर फैलते है।

स्टार्च से कोई भी पदार्थ बनाते समय सब से मुख्य बात यह है कि सफाई का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय। साथ ही जिन डब्बो या बर्तनो मे पदार्थ को बन जाने के बाद रखा जाय उन्हे भी इस प्रकार उपचारित कर लिया जाय कि उनमे जीवाणु तथा फफूँदो के स्पोर न रहने पाये। विभिन्न पदार्थो को परिरक्षित रखने के लिए उनमे विभिन्न परिरक्षक भी डाले जाते है और इन पदार्थों को जिन बर्तनो मे रखना होता है उन्हे भी विभिन्न प्रकार से उपचारित कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ, उन पीपो या डब्बो को जिनमे स्टार्च आसजक या सज्जक भर कर रखना होता है, पहले थोडा कास्टिक क्षार और एक प्रतिशत फार्मैल्डीहाइड मिश्रित पानी से भली भाँति धोया जाता है और फिर पीपो को उलटा कर उनमे गरम भाप प्रवाहित की जाती है। इस विधि से उपचारित होने पर पीपो के अन्दर के सब अणुजीव नष्ट हो जाते है। पीपो मे भपेरा (steaming) उसी समय देना चाहिए जिस समय वस्तु को भरना हो। लकडी के बने पीपो को उपचारित करने के बाद उनके अन्दर की सतह पर प्राय मोम की एक पतली पर्त लगा दी जाती है। इससे भी फफूँदो का आक्रमण पदार्थ पर शीघ्र नही होने पाता।

स्टार्च से सज्जक बनाने में ताप साधारणत १००° से० ग्रे० के आसपास रखा जाता है। इस ताप पर बहुत से फफूँदो के स्पोर नष्ट नही होते। सज्जको मे प्राय ब्यूट्रिक जीवाणु भी पहुँच जाते है जो स्टार्च को किण्वित कर ब्यूट्रिक अम्ल मे परिवर्तित कर देते है। वायु से अन्य जीवाणु तथा फफूँदो के स्पोर भी सज्जको मे पहुँच कर उनके स्टार्च को जल-विश्लेषित कर देते है। कपडो पर जब स्टार्च सज्जक लगाया जाता है तो यह हवा से धीरे-धीरे नमी सोखता है और जब नमी की मात्रा ८-१० प्रतिशत हो जाती है तब कपडे पर लगे सज्जक पर कुछ फफूँद आक्रमण कर वृद्धि करते है। अत सज्जको मे परिरक्षण के लिए विभिन्न रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इन पदार्थों में निम्न मुख्य हैं —जिक क्लोराइड, जिंक सल्फेट, बेरियम क्लोराइड, सोडियम क्लोराइड, फीनोल, क्रेसाइलिक अम्ल, फार्मैल्डीहाइड, सैलीसिलिक अम्ल

और मैग्नीशियम क्लोराइड। फीनोल और क्रेसाइलिक अम्ल मे तेज गध होती है जिसके कारण इनका उपयोग कपडे के सज्जको मे तथा उन आसजको मे, जो भोजन पदार्थो की डब्बाबन्दी मे उपयोग होते है, नही किया जा सकता। सैलीसिलिक अम्ल मे एक दोप यह होता है कि थोडा सा भी लोहे का अश पदार्थ मे होने पर यह लोहे से अभिकृत कर एक गहरा रगीन यौगिक बनाता है जिसके कारण पदार्थ का रग खराब हो जाता है।

मैग्नीशियम क्लोराइड का कपडे के सज्जको मे बहुत उपयोग होता है। इसका उपयोग तीन प्रयोजनो से किया जाता है.—स्टार्च को घुलने मे सहायता देने के लिए, कपडे का वजन बढाने के लिए तथा अपने जलग्राही गुण के कारण कपडे मे नमी रोक रखने के लिए, जिससे कपडा छूने मे मुलायम मालूम हो। इसमे फफूंदो की वृद्धि को रोकने का भी गुण होता है।

नीचे की सूची मे आसजको और सज्जको मे उपयोग होने वाले साधारण परि-रक्षको के नाम तथा उनकी उचित मात्राएँ दी गयी हैं —

जिक सल्फेट	१ भाग २५० भाग मे
सोडियम सैलीसिलेट	१ भाग १००० भाग मे
सोडियम फीनेट	१ भाग २०० से १००० तक भाग मे
सैलीसिलिक अम्ल	१ भाग १००० भाग मे
फीनोल	१ भाग १००० भाग मे
पैराफार्मैल्डीहाइड	१ भाग ४०० से २००० तक भाग मे
फार्मैल्डीहाइड	१ भाग ४०० से २००० तक भाग मे
शिरलन	१ भाग १५०० भाग मे
बीटा-नैफ्थाल	१ भाग २५० भाग मे
बोरिक अम्ल	१ भाग २०० भाग मे
क्रिसॉल	१ भाग १००० भाग मे
ऐसीटिक अम्ल	१ भाग १००० भाग मे
फिटकरी	१ भाग १०० भाग मे
हेक्सामेथिलीन ट्रेटामीन	१ भाग २५० भाग मे

स्टार्च मे ब्यूट्रिक और लैक्टिक किण्वन होने से रोकने के लिए विलेय फ्लोराइड लवणो के विलयन उपयोग किये जाते हैं। ऐल्यूमिनियम क्लोराइड भी इस काम के लिए बहुत उपयोगी है।

फार्मैल्डीहाइड और हेक्सामेथिलीन ट्रेटामीन अच्छे परिरक्षक है किन्तु हेक्सा-मेथिलीन ट्रेटामीन बहुत महँगा पदार्थ है और साधारण वस्तुओ के परिरक्षण मे नही उपयोग किया जा सकता। अधिकाश आसजक और सज्जको मे, जिनमे गध का रहना आपत्तिजनक नही समझा जाता, आधा प्रतिशत फीनोल और आधा प्रतिशत फार्मैल्डी-हाइड परिरक्षक के रूप मे डाला जाता है। फार्मैल्डीहाइड के साथ एक मुख्य लाभ यह है कि यह अम्लीय तथा क्षारीय दोनो प्रकार के आसजको मे उपयोग किया जा सकता है। दूसरा लाभ यह है कि आटे की लेई की आसजकता इसकी उपस्थिति मे बढ जाती है। बीटा-नैफ्थाल का उपयोग भी व्यापक रूप से होता है। इसमे फीनोल की अपेक्षा कम गध रहती है।

बोरिक अम्ल और सुहागा अच्छे परिरक्षक नही है। जिन आसजको में ये डाले जाते है उनमे प्राय फफूँदो की वृद्धि होती देखी गयी है, विशेष कर गेहूँ या मकई के आटे से बने आसजको मे जिनमे कुछ प्रोटीन का अश भी रहता है। फर्फ्यूराल (furfural), डाइमेथिल ग्लाइकॉल, प्रोपिलीन ग्लाइकॉल और थाईमॉल (thymol) आदि भी फफूँदो की वृद्धि रोकने के लिए अच्छे परिरक्षक है किन्तु ये सब भी इतने महँगे है कि व्यापक रूप से इनका उपयोग साधारण पदार्थों के परिरक्षण के लिए नही किया जा सकता।

जब फीनोल या फार्मैल्डीहाइड का उपयोग परिरक्षक के रूप मे किया जाता है तब प्राय पदार्थों मे इनकी गध को दबाने या हटाने के लिए टर्पीनिऑल (terpineol) तेल थोडा सा डाल दिया जाता है। टर्पीनिआल मे तीव्र अच्छी सुगन्ध होती है। अत पदार्थ मे फीनोल या फार्मैल्डीहाइड की गध दब जाती है और टर्पीनिऑल की सुगन्ध आने लगती है।

आर्थो-बेंजिल फीनोल (*o*-benzyl phenol) और ग्लिसरोल डाइऐसीटेट (glycerol diacetate) का १ २ अनुपात का मिश्रण भी बडा अच्छा परिरक्षक है। इस मिश्रण की ० १ प्रतिशत मात्रा आसजको और सज्जको के लिए पर्याप्त होती है। यह जीवाणुओ तथा फफूँदो दोनो की ही वृद्धि रोक देता है। इसमे कोई गध भी नही होती, अत यह बहुत उपयुक्त परिरक्षक है।

अध्याय २१

स्टार्च का परीक्षण और विश्लेषण

जैसा हम पीछे पढ चुके है, विभिन्न उद्योगो मे स्टार्च के बहुत से उपयोग है और प्रत्येक उपयोग की दृष्टि से इसमे विभिन्न गुण अपेक्षित है। अत उद्योगो मे उपयोग होने की उपयुक्तता की दृष्टि से स्टार्च के विभिन्न परीक्षण करने आवश्यक होते है। प्रत्येक प्रकार के कार्य मे उपयोग होने के आधार पर स्टार्च के विभिन्न परीक्षण किये जाते है। परीक्षणो का प्रकार इस बात पर निर्भर करता है कि किस उद्देश्य से परीक्षण किया जा रहा है।

साधारण रीति से निम्न परीक्षण करना आवश्यक होता है :—(१) स्टार्च-लेई की श्यानता (viscosity) या तरलता (fluidity), (२) क्षार तरलता (alkali-fluidity) (यह परीक्षण विशेष कर अम्ल द्वारा परिवर्तित किये गये स्टार्च के लिए आवश्यक है), (३) रग, (४) गध, (५) अम्लीयता या क्षारीयता।

किसी पदार्थ मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा जानने के लिए साधारण रीति से उस पदार्थ मे वर्तमान जल, प्रोटीन, खनिज पदार्थ, रेशे और वसा की प्रतिशत मात्राएँ पहले ज्ञात की जाती है और फिर अन्तर द्वारा स्टार्च की प्रतिशत मात्रा मालूम की जाती है। स्टार्च की मात्रा का सीधे परिमापन करने की भी कुछ विधियाँ है किन्तु इन विधियो से प्राप्त फलो की शुद्धता उनमे मौजूद अपद्रव्यो के स्वभाव पर निर्भर करती है। पौधो मे स्टार्च के साथ सेल्यूलोस, गोद, पेटोसान, ग्लाइकोसाइड आदि विभिन्न पदार्थ उपस्थित रहते है। इन पदार्थों की उपस्थिति के कारण स्टार्च का ठीक परिमापन करने मे कठिनाई होती है।

स्टार्च के भौतिक परीक्षण भी उसे पहचानने मे महत्त्व के है। स्टार्च का रूप, कणो का आकार तथा उनके फूलने और रंग ग्रहण करने की शक्ति ज्ञात कर स्टार्च की जाति ज्ञात की जाती है। साधारण रीति से स्टार्च के विश्लेषण मे जल, खनिज पदार्थ, प्रोटीन और वसा का परिमापन किया जाता है।

रूप (Appearance)—स्टार्च को स्वच्छ, सफेद और चमकीला होना चाहिए और इसमे धूल आदि के कण नही होने चाहिए। धूल के कणो को देखने के लिए स्टार्च

को एक चिकने कागज पर फैला दिया जाता है और फिर उसके ऊपर काँच की चद्दर का एक बड़ा टुकड़ा रखा जाता है। काँच पर दस वर्ग सेंटीमीटर का भाग किसी जगह खींच लिया जाता है। इस क्षेत्रफल के भीतर धूल के कणों के धब्बे देखे जाते हैं। इन धब्बों को गिन कर यह मालूम कर लिया जाता है कि धूल के कणों की अपद्रव्यता किस अंश तक है। अच्छे शुद्ध स्टार्च में १० वर्ग सेंटीमीटर में ३० धब्बों से अधिक नहीं होना चाहिए।

सूक्ष्मदर्शी परीक्षण—विभिन्न पौधों तथा स्रोतों से प्राप्त स्टार्च के कणों का रूप और आकार भिन्न होता है। अतः सूक्ष्मदर्शी द्वारा देख कर यह जाना जा सकता है कि किसी पदार्थ में कौन सा स्टार्च है। कणों के आकार के अतिरिक्त प्रत्येक स्टार्च का श्लिषीकरण ताप भी भिन्न होता है। अतः सूक्ष्मदर्शी द्वारा यह ज्ञात करने से कि कण किस ताप पर फूलना प्रारम्भ करते हैं और किस ताप पर श्लिषीकृत होते हैं, यह मालूम हो जाता है कि किसी पदार्थ में उपस्थित स्टार्च किस स्रोत से प्राप्त किया गया है। नीचे की तालिका में कुछ स्टार्चों के फूलने का तथा श्लिषीकरण का ताप दिया गया है:—

स्टार्च का प्रकार	फूलना आरम्भ होने का ताप (सेंटीग्रेड में)	श्लिषीकरण आरम्भ होने का ताप	श्लिषीकरण पूर्ण होने का ताप
गेहूँ	५०°	६५°	६७.५°
टैपियोका	४९°	६२.५°	६९°
अरारोट	६६°	६६.५°	७०°
सैगो	६६°	६६.५°	७०°
चावल	५४°	५९°	६१°
जौ	३७.५°	५७.५°	६२.५°
मकई	५०°	५५°	६२.५°
आलू	४६°	५९°	६२.५°
राई	४५°	५०°	५५°

सूक्ष्मदर्शी द्वारा परीक्षण करने के लिए स्टार्च के कुछ कणों को एक बूँद पानी के साथ स्लाइड (slide) पर रख कर देखा जाता है। इस परीक्षण में कणों का आकार तथा नाप देखी जाती है। नाप में लम्बाई माइक्रन इकाई में व्यक्त की जाती है (माइक्रन = १/१००० मिलीमीटर)। कणों में हाइलम की स्थिति तथा उसके चारों

ओर के वृत्तो का रूप भी देखा जाता है। हाइलम वह बिन्दु होता है जिसके चारो ओर कण की वृद्धि होती है। हाइलम का स्थान, उसका आकार तथा नाप विभिन्न स्टार्चो मे भिन्न होता है और इससे भी स्टार्चो के पहचानने मे सहायता मिलती है।

नीचे की तालिका मे कुछ स्टार्चो के कणो का आकार और नाप दी गयी है —

स्टार्च का प्रकार	कणो का रूप	कणों की लम्बाई	विशेष
गेहूँ	पतला और लम्बा	२५ से ३५ μ	पानी के साथ उबालने पर गोलाई से मुड़ कर विभिन्न आकार धारण करते है
जौ	अडाकार, हाइलम नही रहता	२०–३५ μ	
मकई	बहुभुजाकार, हाइलम स्पष्ट रहता है	१०–२५ μ	
राई	गेहूँ की तरह	४० μ	उबालने पर गेहूँ की तरह ही आकार परिवर्तन करते है
चावल	बहुभुजाकार, हाइलम स्पष्ट नही रहता	३–५ μ	प्राय सयुक्त कण
मटर	बेडौल, हाइलम स्पष्ट रहता है		
कैसावा	गोल, एक ओर चपटा, हाइलम स्पष्ट	१५–२५ μ	
आलू	अडाकार, चपटा	१५–३५ μ	
अरारोट	अडाकार	१५–६५ μ	पानी के साथ श्लिषीकृत होने पर कण चिकने थैले के आकार के हो जाते है
सैगो	अडाकार	१५–६५ μ	

स्टार्च के मिश्रणो का परीक्षण करने के लिए दो विधियाँ है—(१) एक रगने की विधि और (२) दूसरी फुलाने (उत्फुल्लन) की विधि।

रगने की विधि (Staining method)—विभिन्न स्टार्चो मे कार्बनिक रगो (organic dyes) के लिए भिन्न अश तक आकर्षण होता है, अत कोई स्टार्च एक रग अधिक ग्रहण करता है किन्तु दूसरा स्टार्च नही ग्रहण करता। ऐसे स्टार्चों के मिश्रणो को किसी उपयुक्त रग से रगने पर इनके अवयवो को शीघ्रता से और सरलता से पहचाना जा सकता है।

स्टार्च को स्लाइड पर रगने के लिए निम्न रगो का विलयन प्रयोग किया जाता है—मेथिलीन ब्लू (methylene blue), सैफ्रानीन (safranine), मेथिल वायलेट (methyl violet), पिकरिक अम्ल (picric acid), कांगो रेड (congo red) आदि।

आलू, राई और गेहूँ के स्टार्चों तथा ग्लूटेन के मिश्रण मे अवयवो को रग द्वारा पहचानने की एक विधि निम्न प्रकार है:—

मिश्रण की थोडी मात्रा को फीनोल के ३ प्रतिशत विलयन मे निलम्बित कर २४ घटे तक छोड दिया जाता है। इसके बाद इस निलम्बन की एक बूँद स्लाइड पर रख कर सुखा ली जाती है और फिर इस स्लाइड को विलेय ब्लू (soluble blue), ओरसाइन (orcein . लाइकेन से प्राप्त एक लाल चूर्ण) और इओसिन (eosin) रगो के मिश्रण के जलीय ऐलकोहल मे बने विलयन मे डुबा कर दस मिनट तक रखा जाता है। इसके बाद स्लाइड को इस रग के विलयन मे से निकाल कर और धो कर सैफ्रानीन के विलयन मे १५ मिनट तक डुबाया जाता है। फिर धो कर ०.५ प्रतिशत पोटैसियम डाइक्रोमेट के विलयन में ३० मिनट तक डुबाया जाता है। अन्त मे स्लाइड को पहले पानी से, फिर ऐलकोहल से और बाद मे जाइलीन (xylene) से धो कर और फिर कैनाडा बालसम की एक बूँद स्टार्च के स्थान पर डाल कर रख दिया जाता है। यह स्लाइड स्थायी रूप से बहुत समय तक रखी जा सकती है। इस विधि से रगने पर आलू का स्टार्च लाल, गेहूँ का गहरा पाटल वर्ण (pink), राई का पीला तथा ग्लूटेन नीला हो जाता है।

मेथिल आरेज (methyl orange), फुक्सिन (fuchsin) और मेथिल ग्रीन (methyl green) रगों का मिश्रण भी आलू के स्टार्च को पहचानने के लिए उपयोगी है। यह मिश्रण आलू के स्टार्च को नीला रगता है। थायोनीन (thionine) से भी आलू के स्टार्च की पहचान हो जाती है। इसका उपयोग रोटी में आलू के स्टार्च की मिलावट मालूम करने के लिए बहुत होता है। इसके द्वारा रंगने पर आलू का स्टार्च

हलका बैंगनी हो जाता है, किन्तु गेहूँ और राई के स्टार्चो पर इसका कोई प्रभाव नही पडता।

गिरि और भार्गव की विधि[1] (Giri and Bhargava's method)—साधारण रीति से सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण करने पर विभिन्न स्टार्च-कणो के अलग-अलग आकार पहचाने जा सकते हैं और इस प्रकार एक स्टार्च मे दूसरे स्टार्च की मिलावट मालूम हो जाती है। किन्तु प्राय. कणो के आकारो की समानता के कारण दो स्टार्चो की परस्पर की मिलावट का मालूम करना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, गेहूँ के स्टार्च मे चावल के स्टार्च की थोडी मात्रा मिश्रित होने पर पहचानना कठिन होता है। एक दूसरी कठिनाई कणो के आकारो द्वारा पहचानने मे यह होती है कि विभिन्न क्रियाओ मे स्टार्च के कणो का आकार प्राय नष्ट हो जाता है या विकृत हो जाता है और तब सूक्ष्मदर्शी द्वारा कणो के आकार का निरीक्षण कर स्टार्च को पहचानना सम्भव नही होता। गिरि और भार्गव ने स्टार्चो को एक-दूसरे से पहचानने की एक सरल विधि ज्ञात की है जिसमे ऊपर वर्णित कठिनाई नही उपस्थित होती। विधि निम्न प्रकार है :—

० ८ ग्राम स्टार्च को १०० घ० से० उबलते पानी मे डाल कर एक मिनट तक उबाला जाता है और फिर महीन कपडे से छान कर इसमे एक प्रतिशत एगर (agar) विलयन का समान आयतन मिलाया जाता है। इस विलयन का pH ऐसीटेट बफर (acetate buffer) द्वारा ४ ६ रखा जाता है। अब गरम विलयन को पेट्री प्यालियो (petri dishes) मे आधी ऊँचाई तक भर कर और ढक कर छोड दिया जाता है। ठढा होने पर विलयन जेली के रूप मे पेट्री प्यालियो मे जम जाता है। पेट्री प्याली में जमी जेली के मध्य मे अब एक बूँद ऐमिलेस विलयन डाल कर प्याली को २४ घटो के लिए कमरे के ताप पर रख दिया जाता है। मध्य बिन्दु से ऐमिलेस विलयन विसरण कर प्याली मे चारो ओर फैलता है। २४ घटे के बाद प्याली मे N/२०० आयोडीन विलयन भर दिया जाता है। एक-दो मिनट बाद ही रगीन वृत्त जेली पर बन जाते है। विभिन्न स्टार्चों के साथ पृथक्-पृथक् रग और आकार के वृत्त बनते है। विभिन्न ऐमिलेस से भी इन वृत्तो के रग और आकार मे अन्तर आ जाता है। उदाहरणार्थ, गेहूँ के स्टार्च के साथ माल्ट ऐमिलेस का उपयोग कर ऊपर का परीक्षण करने पर जेली के मध्य मे एक गहरे हरे रग का प्रदेश बनता है और इसे घेरता हुआ बैंगनी रग का दूसरा प्रदेश बनता है। चावल और जौ के स्टार्च के साथ मध्य मे एक गहरा नीला प्रदेश बनता है; गेहूँ की तरह हरा नही।

गेहूँ के आटे में जई के आटे की मिलावट ज्ञात करना—जई के आटे मे स्टार्च के

कण सयुक्त अवस्था मे बडी सख्या मे रहते है किन्तु गेहूँ मे सयुक्त कण नही रहते। सूक्ष्मदर्शी द्वारा इन सयुक्त कणो की सख्या देख कर गिनी जा सकती है। इसकी विधि इस प्रकार है —

आटे की ३० मिलीग्राम मात्रा को ० २ घ० सें० पतले ट्रैगाकैंथ म्युसिलेज मे मिश्रित कर निलम्बन बनाया जाता है। इसमे फिर ० ०५ प्रतिशत कागो रेड (congo red) और जरा सा ऐमोनिया डाल कर भली भाँति मिला दिया जाता है। प्रोटीन, कोशिकाओ की दीवारे और टूटे स्टार्च-कण लाल रग से रँग जाते है। गेहूँ के कण जो अकेले रहते हैं उन पर कोई रग नही चढता। जई के सयुक्त कण भूरे रग के हो जाते हैं। निलम्बन की एक बूंद कांच की स्लाइड पर रख कर सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखी जाती है और एक चिह्नित वर्ग स्थान के भीतर जितने सयुक्त कण दिखलाई देते है उन्हे गिन लिया जाता है और फिर इसके आधार पर गणना द्वारा जई के आटे की प्रतिशत मात्रा गेहूँ के आटे मे ज्ञात हो जाती है।

गेहूँ के आटे में चावल या मकई के आटे की मिलावट ज्ञात करना—इसके लिए कई विधियाँ है। एक विधि नीचे दी जाती है —

जिस आटे की परीक्षा करनी है उसे ९० छेद की चलनी से छान कर १००° सें० ग्रे० ताप पर २४ घटे तक सुखाया जाता है। इस सुखाये आटे मे से एक ग्राम तोल कर १०० घ० सें० के चिह्नित फ्लास्क मे ले कर इसमे १.८ प्रतिशत पोटैसियम हाइड्राक्साइड विलयन इतना डाला जाता है कि फ्लास्क लगभग आधा भर जाय। इसके बाद इसमें ३ घ० सें० तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर मिला दिया जाता है और फिर पोटैसियम हाइड्राक्साइड विलयन की आवश्यकतानुसार मात्रा डाल कर कुल आयतन को १०० घ० सें० कर लिया जाता है। फ्लास्क को लगभग १५ मिनट तक हिलाते हैं जिससे एक समाग निलम्बन बन जाय। इस निलम्बन की २५ घ० सें० मात्रा एक अपकेन्द्री यत्र मे डाल कर यत्र को १००० चक्र प्रति मिनट की गति से १५ मिनट तक घुमाते हैं। फिर ऊपर से द्रव को निथार कर फेंकने के बाद तलछट मे थोडा तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर फिर अपकेन्द्री यत्र को ५ मिनट तक घुमाते है। अम्ल द्वारा धोने की क्रिया तब तक बार-बार की जाती है जब तक धोवन मे आयोडीन द्वारा स्टार्च का परीक्षण आता रहता है। अन्त मे तलछट को पोटैसियम हाइड्राक्साइड के विलयन से एक बार धो कर फिर पानी से कई बार धोया जाता है जिससे तलछट मे कोई क्षारीयता न रहे और यह बिल्कुल उदासीन रहे। अब तलछट को निकाल कर इसे १००° सें० ग्रे० ताप पर सुखा कर तोल लिया जाता है। यह तलछट मकई (या चावल) का स्टार्च होता है और इसकी तोल से

गणना कर गेहूँ के आटे मे मकई (या चावल) की प्रतिशत मिलावट ज्ञात कर ली जाती है।

नमी का परिमापन (Estimation of moisture)—वायु में सुखाये गये गेहूँ के स्टार्च मे लगभग १३ प्रतिशत और आलू के स्टार्च मे २२ प्रतिशत तक पानी का अश रहता है। यदि इससे अधिक पानी इन स्टार्चो मे हो तो इसका अर्थ है कि ये ठीक से सुखाये नही गये हैं। जल की मात्रा का परिमापन करने की दो मुख्य विधियाँ है —

(क) **वाष्पन विधि**—एक पोर्सलिन की छोटी प्याली मे लगभग एक ग्राम स्टार्च तोल लिया जाता है। इसे ४०° सें० ग्रे० ताप पर दो-तीन घटे तक रखा रहने दिया जाता है। इस ताप पर धीरे-धीरे अधिकाश पानी उड कर निकल जाता है। अब इसे १२०° सें० ग्रे० ताप पर लगभग ४-५ घटे तक रखा जाता है। स्टार्च का शेष समस्त पानी भी उड कर अब निकल जाता है। प्याली को बीच-बीच मे कई बार तब तक तोलते है जब तक तोल स्थिर नही हो जाती। अब आरम्भ की तोल से इस तोल को घटा कर पानी की मात्रा ज्ञात हो जाती है। पानी का परिमापन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ताप आरम्भ से ही ऊँचा न रखा जाय, अन्यथा स्टार्च मे मौजूद पानी द्वारा स्टार्च का थोडा श्लिषीकरण हो जाता है और यह श्लिषीकृत स्टार्च शेष पानी को वाष्पीभूत हो कर बाहर निकलने से रोकता है।

(ख) **निष्कर्षण विधि**—पिरीडीन, मेथिल ऐलकोहल, सल्फर डाइ-आक्साइड और आयोडीन के मिश्रण मे पानी शोषित करने का विशेष गुण होता है। स्टार्च की एक निश्चित मात्रा को इस मिश्रण से उपचारित कर उसका समस्त पानी इस मिश्रण मे शोषित करा दिया जाता है और फिर स्टार्च को तोलने पर इस पानी की मात्रा ज्ञात हो जाती है। इस निष्कर्षण विधि द्वारा लगभग १ घटे मे ही परिमापन हो जाता है। वाष्पन विधि मे लगभग ६-७ घटे लगते है।

खनिज पदार्थ का परिमापन (Estimation of mineral matter)—खनिज पदार्थ का परिमापन निम्न प्रकार से किया जाता है —

प्लैटिनम की एक प्याली (या घडिया) को तोल कर उसमे लगभग ५ ग्राम स्टार्च ले कर फिर तोल लिया जाता है। प्याली (या घडिया) को अब बद भट्ठी मे रख कर स्टार्च को जलाया जाता है। जब स्टार्च पूर्ण रूप से जल कर भस्म मे परिणत हो जाता है तब प्याली को भट्ठी मे से निकाल कर और ठढा कर तोला जाता है और भस्म की तोल ज्ञात कर ली जाती है। फिर गणना द्वारा स्टार्च मे खनिज पदार्थ की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

गेहूँ तथा अन्य अनाजो के स्टार्चों मे खनिज पदार्थ की मात्रा लगभग ० १५ से ० २ प्रतिशत तक रहती है। यदि इससे अधिक मात्रा परिमापन मे प्राप्त हो तो स्टार्च मे किसी खनिज द्रव्य की मिलावट समझनी चाहिए।

वसा का परिमापन (Estimation of fat)—पानी और मेथिल ऐलकोहल को १५ ८५ के अनुपात मे मिश्रित कर इस विलायक द्वारा स्टार्च की एक निश्चित मात्रा (लगभग १०० ग्राम) का निष्कर्षण किया जाता है। स्टार्च मे मौजूद सब वसा इस विलायक मे घुल कर निकल आती है। फिर निष्कर्ष को वाष्पित कर उसमे घुली वसा प्राप्त कर ली जाती है। इसे तोल कर गणना द्वारा स्टार्च मे इसकी प्रतिशत मात्रा ज्ञात कर ली जाती है।

स्टार्च मे वसा अपद्रव्य के रूप मे थोडी मात्रा मे ही रहती है। साधारण रीति से इसकी प्रतिशत मात्रा ० १ से ० ८ तक विभिन्न स्टार्चों मे रहती है। चावल के स्टार्च मे वसा लगभग ० ८ प्रतिशत और मकई के स्टार्च मे लगभग ०.५ प्रतिशत रहती है।

प्रोटीन का परिमापन (Estimation of proteins)—प्रोटीन की मात्रा सीधे ज्ञात करने की कोई विधि नही है। स्टार्च मे केल्डाल की विधि (Kjeldahl's method) से नाइट्रोजन की मात्रा पहले ज्ञात की जाती है और फिर इसे ६ २५ से गुणा करने पर प्रोटीन की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

केल्डाल विधि द्वारा नाइट्रोजन निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है :—

स्टार्च की एक निश्चित मात्रा (० ५ से १ ग्राम) एक केल्डाल-फ्लास्क मे ले कर उसमे लगभग ३० घ० से० सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल डाला जाता है। कापर सल्फेट के कुछ मणिभ तथा लगभग ५ ग्राम पोटैसियम सल्फेट भी फ्लास्क मे डाल दिया जाता है। फ्लास्क को अब बुन्सन ज्वालक (बर्नर) की सीधी ज्वाला पर खूब तेज आँच पर तब तक गरम किया जाता है जब तक फ्लास्क का द्रव रगरहित या हलके हरे रग का नही हो जाता। स्टार्च मे उपस्थित प्रोटीन का नाइट्रोजन पहले ऐमोनिया मे बदल जाता है, फिर यह ऐमोनिया तुरन्त ही फ्लास्क के सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ मिल कर ऐमोनियम सल्फेट लवण बनाती है। ठढा होने के बाद फ्लास्क मे थोडा आसुत जल डाल कर द्रव को कुछ तनु कर लिया जाता है। इस द्रव को अब ५०० घ० से० नाप के एक आसवन-फ्लास्क मे उडेल लिया जाता है। केल्डाल-फ्लास्क को दो-तीन बार आसुत जल से धो कर धोवन को भी आसवन-फ्लास्क मे डाल देते है जिससे द्रव का जरा सा भी अश बाहर न निकलने पाये। आसवन-फ्लास्क मे अब आवश्यक मात्रा से कुछ अधिक कास्टिक सोडा डाल कर फ्लास्क को चित्र १७ के अनुसार एक सघनन और सग्राही से सम्बन्धित कर गर्म किया जाता है। जो ऐमोनिया गैस निकलती है वह

सग्राही मे भरे प्रामाणिक (standard) सल्फ्यूरिक अम्ल (या हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) के निश्चित आयतन मे शोषित कर ली जाती है। इस अम्ल को प्रामाणिक कास्टिक सोडा के विलयन के साथ अनुमापित (titrate) करने पर गणना द्वारा शोषित हुई
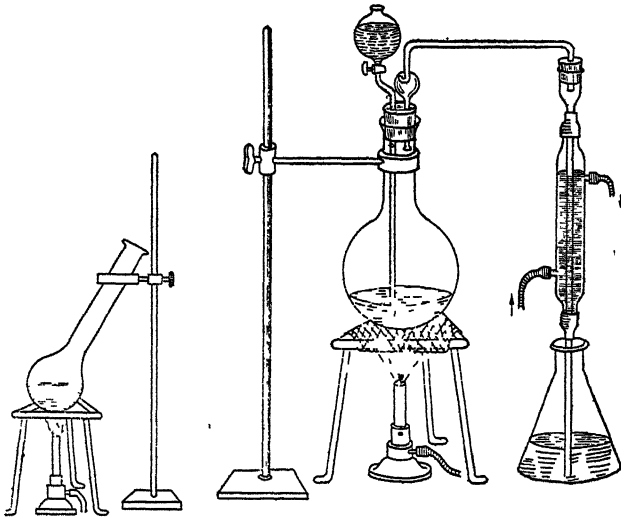
चित्र १७—नाइट्रोजन ज्ञात करने की केल्डाल विधि

ऐमोनिया की मात्रा मालूम हो जाती है। इससे फिर नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा ज्ञात कर ली जाती है।

विभिन्न अनाजो के स्टार्च मे प्रोटीन की मात्रा साधारणत ० १ से १ प्रतिशत तक रहती है।

श्यानता परीक्षण (Viscosity test)—स्टार्च के परीक्षण के लिए सब से अधिक उपयोग होने वाला परीक्षण स्टार्च-विलयन की श्यानता देखना है। श्यानता ज्ञात करने के लिए स्टार्च का तनु विलयन या तनु लेई लेना ही ठीक रहता है। ऊँची सान्द्रता के विलयन या लेई की श्यानता द्वारा निष्कर्ष ठीक नही निकाला जा सकता।

श्यानता ज्ञात करने के लिए कोई भी अच्छा श्यानतामापक (viscometer) प्रयोग मे लाया जा सकता है। स्टार्च-विलयन की श्यानता कुछ अश तक विलयन बनाने की विधि तथा श्यानता मापने की विधि दोनो पर निर्भर करती है। अत किसी भी प्रयोगशाला या कारखाने मे विलयन बनाने की विधि तथा श्यानता मापने

की विधि कोई प्रामाणिक चुन लेनी चाहिए और सदा इन्हीं विधियों का प्रयोग परीक्षण के लिए करना चाहिए। तभी विभिन्न स्टार्चों की श्यानता का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है। साधारण रीति से श्यानता परिमापन में निम्न बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है :—

(क) स्टार्च का विलयन या लेई बनाते समय पानी सदा एक ही ताप का लिया जाय और ताप की वृद्धि भी विलयन बनाते समय सदा एक क्रम से की जाय तथा उच्चतम ताप जिस पर लेई को पकाया जाय वह भी सदा एक ही निर्धारित हो।

(ख) विलयन या लेई को पकाते समय इसे विलोडित करने की गति भी सदा एक ही हो।

(ग) विलयन या लेई बनाना आरम्भ करने से ले कर बना कर समाप्त करने तक का समय भी एक निर्धारित हो और सदा प्रत्येक स्टार्च का विलयन या लेई बनाने में इतना ही समय लगे।

श्यानता-परिमापन के लिए स्टार्च का विलयन (या लेई) आसुत जल में बनाना चाहिए और बनाने की क्रिया में इसे ऐसे ऊष्मक पर गरम करना चाहिए जिसका ताप ठीक से नियंत्रित किया जा सके। विलोडन की क्रिया के लिए यान्त्रिक प्रबन्ध रखना अधिक ठीक होता है। श्यानतामापक को भी पहले से ही उस ताप तक गरम पानी में रख कर गरम कर लेना चाहिए जिस ताप पर श्यानता ज्ञात करनी है और फिर स्टार्च-विलयन या लेई को श्यानतामापक में शीघ्रता से भरना चाहिए जिससे विलयन या लेई का ताप अधिक गिरने न पाये।

श्यानता मापने की कई विधियाँ हैं। यहाँ हम कुछ मुख्य विधियों का उल्लेख करेंगे।

(क) छिद्र-प्रवाह विधि (Orifice flow method)—यह विधि इस सिद्धान्त पर आधारित है कि द्रव के प्रवाह की गति उसकी श्यानता पर निर्भर करती है। इस विधि में स्टार्च-विलयन (या लेई) के एक निश्चित आयतन को किसी छिद्र में से हो कर प्रवाहित होने दिया जाता है और विलयन (या लेई) की प्रवाह गति मालूम की जाती है। प्रवाह-गति मालूम हो जाने से श्यानता मालूम हो जाती है। इस सिद्धान्त पर आधारित कुछ विधियों में स्टार्च-विलयन के एक निश्चित आयतन के प्रवाह का समय सेकेंड में मालूम किया जाता है और कुछ विधियों में यह मालूम किया जाता है कि एक निर्धारित समय में विलयन का कितना आयतन प्रवाहित हुआ है। दूसरे प्रकार की विधियों में प्राप्त फल को **तरलता** (fluidity) कहते हैं। यह

श्यानता का ठीक विपरीत होता है। तरलता जितनी अधिक होती है श्यानता उतनी ही कम होती है।

प्रवाह-गति ज्ञात करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणो का प्रयोग किया जाता है। इनमे **स्काट का उपकरण** (Scott's apparatus) सबसे अधिक प्रचलित है और इस उपकरण से श्यानता निकालने को **स्काट परीक्षण** (Scott test) के नाम से सबोधित किया जाता है।

स्काट परीक्षण (Scott test)—६०० घ० से० धारिता का जर्मन-सिल्वर का बना एक बीकर लिया जाता है और उसमे स्टार्च की एक निश्चित मात्रा को ठीक से तोल कर ले लिया जाता है। इसमे २८० घ० से० आसुत जल डाल कर और हिला कर बीकर को वाष्प-ऊष्मक पर तुरन्त रख दिया जाता है। वाष्प-ऊष्मक पर बीकर को उस समय रखना चाहिए जब उसका पानी तेजी से उबल रहा हो और जब बीकर को वाष्प-ऊष्मक पर रखा जाय तब स्टाप घडी को भी चला देना चाहिए। बीकर के स्टार्च को ठीक ५ मिनट तक आरम्भ मे तेजी से हिला कर विलोडित किया जाता है। फिर बीकर को कॉच के ढक्कन (beaker cover) द्वारा ढक कर बिना विलोडित किये ५ मिनट तक पकने दिया जाता है। अब ढक्कन को हटा कर और उसकी सतह पर जमी पानी की बूँदो को बीकर मे ही गिरा कर विलयन को १५ सेकेड तक पुन हिलाया जाता है और पुन ढक्कन द्वारा ढक कर १५ मिनट तक फिर पकने दिया जाता है। फिर ढक्कन को हटा कर पहले की ही भाँति इसकी सतह पर जमी पानी की बूँदो को बीकर मे गिरा कर १५ सेकेड तक हिलाया जाता है। विलयन को हिलाने की गति प्रत्येक स्टार्च का विलयन बनाते समय एक ही रखनी चाहिए।

इसी बीच स्काट-उपकरण मे स्थित प्याले (Scott cup) को उपकरण से सम्बन्धित जल-ऊष्मक पर गरम कर लिया जाता है। स्काट-उपकरण मे एक २५० घ० सें० धारिता का फ्लास्क होता है जिसमे २०० घ० सें० आयतन का चिह्न लगा होता है। ऊपर की विधि से तैयार किये गये स्टार्च-विलयन की २०० घ० सें० मात्रा शीघ्रता से इस फ्लास्क द्वारा माप कर स्काट-प्याले मे भर दी जाती है और फिर तुरन्त ही प्याले के नीचे की नली मे लगी रोधनी (stop cock) खोल दी जाती है। रोधनी के खोलने के साथ ही साथ स्टाप घडी (stop watch) भी चला दी जाती है। जितने समय मे स्टार्च-विलयन स्काट-प्याले से प्रवाहित हो कर बाहर निकल जाता है वह समय स्टाप-घडी द्वारा ज्ञात हो जाता है। यह समय उस स्टार्च-विलयन की **स्काट श्यानता** (Scott viscosity) कहलाता है।

विभिन्न स्टार्चों की श्यानता मे बहुत अन्तर होता है। इस कारण विभिन्न स्टार्चों

की विभिन्न तोलें इस प्रयोग मे ली जाती हैं, किन्तु पानी की मात्रा सभी परीक्षणो मे समान ही रखी जाती है। टैपियोका आदि मोटे स्टार्चों के लिए १० ग्राम मात्रा ली जाती है, अपरिवर्तित मकई के स्टार्च के लिए १५ ग्राम, मध्यम सीमा तक परिवर्तित किये गये स्टार्चों के लिए २८ ५ ग्राम और अधिक परिवर्तित स्टार्चों के लिए १०० ग्राम मात्रा प्रयोग मे ली जाती है। प्रवाह के लिए ५० घ० सें० या १०० घ० सें० विलयन ले कर उसके प्रवाह का समय ज्ञात किया जाता है। साधारण रीति से आयतन इतना लेना चाहिए कि प्रवाह का समय ठीक से मापा जा सके, किन्तु साथ ही इतना अधिक आयतन भी नही लेना चाहिए कि प्रवाह मे बहुत अधिक समय लगे।
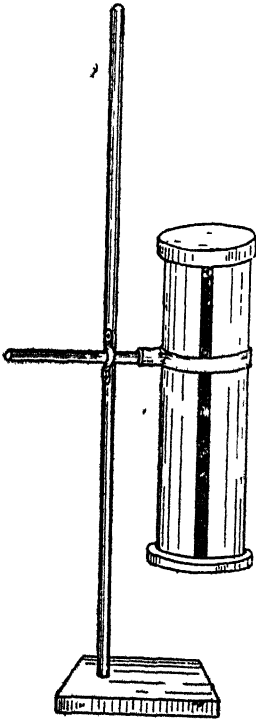
चित्र १८—क्षुरधार-छिद्र आकार का श्यानतामापक

क्षुर-धार आकार के छिद्र वाला श्यानतामापक (Knife-edge orifice)—आज कल इस श्यानता-मापक का बहुत उपयोग स्टार्च तथा डेक्सट्रिन के विलयनो की श्यानता ज्ञात करने के लिए होता है। इसमे धातु की ० ८ मिलीमीटर मोटी एक प्लेट होती है जिसमे एक लम्बी दरार बनी रहती है और एक कॉंच की नली (cylinder) होती है जिसके भीतर का व्यास ३३ मिलीमीटर और लम्बाई ३०५ मिली-मीटर होती है। इस नली में एक चिह्न ऊपर की ओर तथा एक चिह्न नीचे की ओर बना रहता है और इन दो चिह्नो के बीच का आयतन १०० घ० से० होता है। कॉंच की यह नली धातु की प्लेट से एक फ्रेम द्वारा सम्बन्धित रहती है। पूरे उपकरण को एक स्थिर ताप के पानी के भीतर रख कर स्टार्च विलयन को नली मे ऊपर के चिह्न से कुछ ऊपर तक भर दिया जाता है और दोनो चिह्नो के बीच मे भरे विलयन के प्रवाह का समय ज्ञात किया जाता है। इस उपकरण द्वारा बहुत शीघ्र श्यानता ज्ञात हो जाती है।

ठढे स्टार्च विलयनो की श्यानता निकालने के लिए विलयन की सान्द्रता कम रखनी चाहिए। साधारण रीति से २ प्रतिशत से अधिक का विलयन नही बनाना चाहिए जिससे ठढा होने पर विलयन पतला रहे। यदि विलयन की सान्द्रता अधिक रहती है तो ठढा होने पर यह गाढ़ी लेई के रूप मे हो जाता है या जेली के रूप में जम

जाता है। किन्तु विलयन को आरम्भ मे बतलायी विधि के अनुसार गरम कर ही बनाना चाहिए और बाद मे निर्धारित ताप पर रख कर ठढा करना चाहिए।

श्यानता वक्र (Viscosity curves)—स्टार्च विलयन की श्यानता ताप के अनुसार घटती बढती रहती है। जब स्टार्च श्लिषीकृत होता है तो इसकी श्यानता कणो के फूलने के साथ-साथ बढती है। एक सीमा तक बढने के बाद श्यानता फिर घटने लगती है। ताप के अन्तर से श्यानता के बढने और घटने की गति मे विभिन्न स्टार्चो मे अन्तर होता है। अत इनके विलयनो की श्यानता की वृद्धि तथा घटने के सम्बन्ध का वक्र (ग्राफ) बना लेने से स्टार्चो की पहचान सरलता से हो जाती है।

आजकल इस प्रकार के श्यानतामापक बने हैं जिनके द्वारा विभिन्न तापो पर श्यानता तुरन्त मालूम हो जाती है।

श्लिष परीक्षण (Gel testing)—जैसा हम पीछे पढ चुके हैं, कुछ स्टार्चो के सान्द्र विलयन कुछ घटे रखे रहने पर कडे श्लिष के रूप मे जम जाते है। इस गुण के कारण ही स्टार्च का उपयोग पुडिंग आदि भोजन पदार्थो मे तथा कुछ उद्योगो मे किया जाता है। श्लिष परीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि स्टार्च इस प्रकार के कामो के लिए कहाँ तक उपयुक्त है।

स्टार्च का श्लिषीय गुण ठीक से तभी परिमापित किया जा सकता है जब स्टार्च को पकाने के लिए उतनी ही सावधानी रखी जाय जितनी श्यानता परीक्षण के लिए रखी जाती है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि परीक्षण प्रामाणिक अवस्था मे सावधानी से किया जाय। श्लिष की मजबूती (strength) उसके जमने के समय, रखने के ताप, साँचे की नाप और सतह के आकार पर निर्भर करती है। श्लिष की मजबूती प्रथम १० घटो मे तेज़ी से बढती है और फिर धीरे-धीरे बढ कर १८ घटे मे स्थिर (constant) हो जाती है। ताप बढाने पर १२° से० ग्रे० से ऊपर श्लिष की मज़बूती तेजी से घटती है और जैसे-जैसे ताप मे वृद्धि की जाती है मज़बूती भी अधिक तेज़ी से घटती है। यदि स्टार्च-श्लिष को हवा मे खुला रख कर जमने दिया जाता है तो सतह पर एक कडी पर्त जम जाती है और इसके कारण श्लिष परीक्षण ठीक से नही किया जा सकता। गरम विलयन को साँचे मे भरने के बाद तुरन्त सतह पर थोडा किरोसीन तेल डाल कर तेल से सतह को ढक देना चाहिए। इस प्रकार तेल से ढकी रहने पर सतह पर कडी पर्त नही बनने पाती। श्लिष परीक्षण मे इस कडी पर्त से कोई अन्तर न आने पाये इसके लिए श्लिष को साँचे मे से निकाल कर पेदी की ओर से इसका परीक्षण किया जाता है।

श्लिष के गुणो का परीक्षण करने के लिए कई विधियाँ है। इन सब विधियो मे

साधारणत या तो यह मापा जाता है कि कितना बल (force) लगाने पर श्लिष टूटता है या एक निश्चित भार रखने पर श्लिष के रूप मे कितना परिवर्तन होता है। पहली माप को "श्लिष की मजबूती" (gel strength) कहते है और दूसरी माप को "श्लिष की दृढता" (rigidity) कहते है। मोटे तौर से आपेक्षिक दृढता श्लिषो की सतहो को अगुली से दबा कर या श्लिषो को साँचो से निकाल कर रखने और रखे रहने पर उनके रूप मे होने वाले परिवर्तन से अनुमानित की जा सकती है।

चित्र १९—ब्रिमहाल और हिक्सन का दृढतामापक
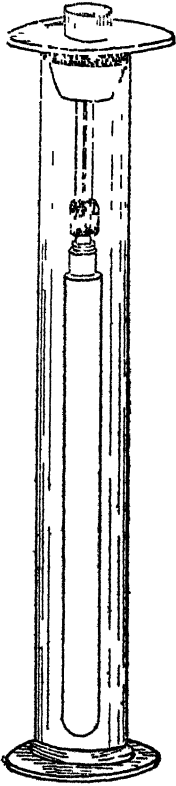
श्लिष की दृढता का परिमापन—इस परिमापन के लिए **ब्रिमहाल और हिक्सन का दृढ़तामापक** (Brimhall and Hixon's rigidometer) उपयोग होता है। इसमे एक लम्बा सिलिंडर होता है जिसमे एक पतली नली एक तार द्वारा लटकी रहती है। तार के ऊपरी सिरे पर एक निर्देशक (pointer) लगा रहता है और सिलिंडर के मुँह के पास एक चिह्नित पटरी (graduated scale) रहती है। सिलिंडर मे स्टार्च-विलयन भर कर नली को इसके बीच मे खडा कर दिया जाता है और विलयन को जमने दिया जाता है। विलयन के श्लिष मे जमने से तार मुडता है और फलस्वरूप उससे लटकी नली भी घूमती है। नली के घुमाव की मात्रा मालूम की जाती है। इसे मापने के लिए नली पर लगे दर्पण से परावर्तित होने वाली किरण के विचलन (deflection) को मापा जाता है। इससे फिर दृढता ज्ञात हो जाती है। इस परीक्षण मे इस बात का ध्यान रखा जाता है कि तार इतना अधिक न मुडे कि श्लिष मे कोई आवश्यकता से अधिक खिचाव उत्पन्न हो।

एक दूसरा उपकरण जो उपयोग मे आता है ब्लूम का श्लिषमापक (Bloom gelometer) है। इस उपकरण द्वारा वह भार (weight) ज्ञात किया जाता है जो १२ ५ मिलीमीटर व्यास की एक छड द्वारा श्लिष मे ४ मिलीमीटर गहरा गढा करने के लिए आवश्यक होता है। छड के ऊपर शीशे की गोलियो के रूप में भार रखा जाता है। जो भार ग्रामो मे आता है उसे ब्लूम संख्या (Bloom number) कहते है और यह सख्या आपेक्षिक टिकाऊपन (relative rigidity) को व्यक्त करती है।

श्लिष की मजबूती—जैसा पहले बतलाया जा चुका है, वह बल जिस पर श्लिष टूटता है श्लिष की मजबूती कहलाता है। बेकर के श्लिषमापक (Baker's gel tester) द्वारा यह माप की जाती है। इसमे ऐसा स्थान होता है कि एक छड जो श्लिष पर टिकाई जाती है उसके ऊपर पानी भरने का प्रबन्ध रहता है। इस छड के ऊपर धीरे-धीरे पानी डाल कर भार बढाते जाते हैं। छड भार की वृद्धि के साथ धीरे-धीरे श्लिष मे घुसती जाती है। जब छड इतनी अन्दर घुस जाती है कि श्लिष टूटता है तो मैनोमीटर द्वारा छड के इस दाब (pressure) को ज्ञात कर लिया जाता है।

श्लिषीकरण तथा जल-धारण क्षमता का परिमापन (Estimation of gelling and water-holding power)—जो स्टार्च जितना शीघ्र श्लिषीकृत होता है और जितने अधिक समय तक पानी रोक रखने की क्षमता रखता है वह उतना ही अधिक अच्छा आसजक लेई या अन्य कार्य के लिए लेई बनाने के लिए होता है। मामूली प्रकार के स्टार्चो की लेई थोडे समय मे ही पानी छोड कर ढीली पड जाती है, किन्तु अच्छी जाति के स्टार्चो की लेई अधिक समय तक पानी रोके रहती है और कडी बनी रहती है।

श्लिषीकरण क्षमता ज्ञात करने की निम्न दो विधियाँ हैं —

(१) **पहली विधि**—लगभग ४ ग्राम स्टार्च को ५० घ० सें० पानी मे निलम्बित कर उबलने के ताप तक गरम किया जाता है। जब विलयन उबलना आरम्भ करता है तब तुरन्त ही ज्वालक हटा कर अधिक गरम करना रोक देते है। यह ध्यान रखा जाता है कि स्टार्च-विलयन को एक मिनट से अधिक समय तक न उबलने दिया जाय। अब विलयन को धीरे-धीरे ठढा होने के लिए अलग रख दिया जाता है। ठढा होने पर जेली के रूप मे विलयन जम जाता है। जेली बन जाने के बाद बर्तन को उलटा कर यह देखा जाता है कि जेली बर्तन से गिरती तो नही और न बहती ही है। यदि जेली बर्तन को उलटने पर नही गिरती तो स्टार्च मे श्लिषीकरण क्षमता अच्छी समझी जाती है।

(२) **दूसरी विधि**—इस विधि द्वारा विभिन्न स्टार्चों के श्लिषीकरण गुण की तुलना करने के लिए प्रत्येक स्टार्च की १६.६ प्रतिशत जेली एक ही नाप की प्याली मे एक ही अवस्था मे बनायी जाती है। ठढा होने पर जब जेली जम जाती है तो इसे एक फिल्टर कागज़ पर निकाल लिया जाता है और ऐसे स्थान मे रख दिया जाता है जहाँ तेज हवा न चल रही हो। फिल्टर कागज पर क्रम से १ घटे, १२ घटे और २४ घटे बाद पानी के विसरण के फलस्वरूप बने वृत्तो का निरीक्षण किया जाता है। जिस स्टार्च की जेली से एक ही समय मे सब से बडा वृत्त बनता है वह स्टार्च सब से निम्न कोटि का होता है और जिसकी जेली से सबसे छोटा पानी का वृत्त बनता है वह स्टार्च सबसे अच्छी कोटि का होता है।

सिनेरेसिस परीक्षण (Syneresis test)—रखे रहने पर कुछ समय बाद श्लिष से कुछ पानी पृथक् हो कर निकल जाता है और श्लिष अधिक सान्द्र हो जाता है। पानी के इस प्रकार श्लिष से पृथक् होने को सिनेरेसिस कहते है। सिनेरेसिस की मात्रा श्लिष की आयु तथा उसकी सतह के खुला रहने पर निर्भर करती है। सान्द्रता की वृद्धि के साथ-साथ सिनेरेसिस की मात्रा घटती है। विलयन बनाने मे स्टार्च को कितने समय तक गरम किया गया है, इसका सिनेरेसिस पर कोई प्रभाव नही पडता। कुछ लवण, जैसे ऐसीटेट, सल्फेट, आक्सलेट और साइट्रेट की उपस्थिति सिनेरेसिस मे वृद्धि करती है, किन्तु अन्य अधिकाश लवण सिनेरेसिस को घटाते है। जिस स्टार्च-श्लिष मे जितना अधिक सिनेरेसिस का गुण होता है उतना ही वह अनुपयुक्त समझा जाता है। जिस स्टार्च के श्लिष मे सिनेरेसिस का गुण सब से कम होता है वह ही श्लिष बनाने के लिए सब से अच्छा समझा जाता है।

सिनेरेसिस का परिमापन निम्न प्रकार से किया जाता है :—

विभिन्न स्टार्चों के एक ही विधि तथा समान अवस्था मे श्लिष बना लिये जाते है। जब श्लिष ठीक से जम कर कडा हो जाता है तो इसे सँभाल कर साँचे मे से इस प्रकार निकाला जाता है कि उसके आकार मे कोई परिवर्तन न होने पाये। श्लिष की इस प्रकार प्राप्त बट्टियो को अलग-अलग छन्ने कागज़ (filter paper) के ऊपर एक ऐसे स्थान मे रख दिया जाता है जहाँ तेज़ हवा न चल रही हो और जहाँ का ताप एक निश्चित अंश तक स्थायी रहे। थोडे-थोडे निर्धारित समय के बाद प्रत्येक बट्टी के नीचे के छन्ने कागज़ मे जितनी दूर तक पानी विसरित हो कर फैला है उस दूरी को नाप लिया जाता है। जिस स्टार्च-श्लिष की बट्टी के साथ जितनी कम दूरी तक पानी छन्ने कागज़ पर विसरित होता है वह उतना ही अच्छा समझा जाता है।

श्लिषीकरण ताप (Gelatinisation temperature)—जब स्टार्च को पानी के साथ गरम किया जाता है तो स्टार्च के कणो का द्विवर्तन (birefringence) पहले नष्ट होता है, फिर ताप की वृद्धि के साथ कण फूलते जाते हैं, श्यानता बढती जाती है और मिश्रण का रूप धुँधले निलम्बन (cloudy suspension) से पारभासक विलयन मे बदल जाता है। ये परिवर्तन प्रत्येक स्टार्च के साथ ताप की निश्चित सीमाओ के भीतर होते है। अत. किसी स्टार्च मे ये परिवर्तन किन तापो पर होते है यह निरीक्षण कर उस स्टार्च को पहचानने मे सहायता मिलती है। ये सब परिवर्तन श्लिषीकरण के अन्तर्गत है और इनसे सम्बन्धित ताप की सीमाओ को 'श्लिषीकरण ताप सीमा' (Gelatinisation temperature limit) कहते है। विभिन्न अपद्रव्यो

की उपस्थिति तथा स्टार्च-विलयन की सान्द्रता का प्रभाव 'श्लिषीकरण ताप सीमा' पर पडता है। अत यह परीक्षण एक ही निर्धारित सान्द्रता तथा समान अवस्था मे विभिन्न स्टार्चों के साथ करना चाहिए।

(क) **द्विवर्तन का नष्ट या विलीन होना** (Loss of birefringence)—एक परखनली मे थोडे स्टार्च को पानी मे निलम्बित कर जल-ऊष्मक पर धीरे-धीरे गरम किया जाता है। बीच-बीच मे परखनली से थोडा निलम्बन निकाल कर **वर्तन-सूक्ष्म-दर्शी** (polarising microscope) द्वारा देखा जाता है। कुछ सूक्ष्मदर्शी मे ऐसा प्रबन्ध रहता है कि जब निलम्बन उसके प्लैटफार्म पर निरीक्षण के लिए रखा रहता है तो गरम भी किया जा सकता है। ऐसे सूक्ष्मदर्शी द्वारा गरम होते समय के परिवर्तनो का निरीक्षण बहुत सरलता से किया जा सकता है। विभिन्न वैज्ञानिक विभिन्न अश तक के परिवर्तन से सम्बन्धित ताप को 'श्लिषीकरण ताप' मानते हैं। कुछ लोगो के अनुसार वह ताप जिस पर बडे कणो का द्विवर्तन नष्ट हो जाता है, 'श्लिषीकरण ताप' माना जाता है, किन्तु कुछ अन्य लोगो के अनुसार वह ताप जिस पर अधिकाश कणो का द्विवर्तन नष्ट हो जाता है, 'श्लिषीकरण ताप' माना जाता है। कुछ वैज्ञानिको का मत है कि परीक्षण के लिए 'श्लिषीकरण ताप' उस ताप को लेना चाहिए जिस पर समस्त कणो का द्विवर्तन नष्ट हो गया है।

(ख) **पारभासकता** (Translucency)—जब बिजली का बल्ब कॉच के बर्तन मे भरे स्टार्च-निलम्बन मे डुबा दिया जाता है और निलम्बन को गरम किया जाता है तो एक निश्चित ताप पर पारभासकता मे एकदम परिवर्तन होता है। इस ताप को ज्ञात करने की एक विधि मालूम की गयी है। इस विधि मे प्रकाश की किरण स्टार्च-निलम्बन के भीतर से भेजी जाती है और यह किरण एक फोटोइलेक्ट्रिक सेल (photoelectric cell) को प्रभावित करती है जो एक माइक्रोएमीटर (micro-ammeter) से सम्बन्धित रहता है। बिजली की धारा और ताप के पाठ्याक (readings) ले लिये जाते है और फिर इनके आधार पर ग्राफ कागज पर वक्र (curves) खीचे जाते है। ये वक्र श्लिषीकरण का आरम्भ और उसकी सीमा व्यक्त करते है। प्रत्येक स्टार्च के साथ विशेष प्रकार का वक्र प्राप्त होता है और इसके द्वारा स्टार्च की पहचान हो जाती है।

(ग) **वर्तनांकमापी विधि** (Refractometric method)—इस विधि में स्टार्च-निलम्बन को धीरे-धीरे गरम किया जाता है और बीच-बीच मे एक-एक बूँद निकाल कर तथा **एबे वर्तनांकमापी** (Abbe refractometer) मे रख कर उसका वर्तनाक (refractive index) देखा जाता है। श्लिषीकरण की क्रिया मे वर्तनाक

०° से एक अधिकतम सीमा तक बढ़ता है। ताप और वर्तनाकों का ग्राफ खीचा जाता है। प्रत्येक स्टार्च का अपना एक विशेष वक्र आता है और इन वक्रो द्वारा स्टार्चों की पहचान की जा सकती है। इस विधि द्वारा पर्याप्त अश तक शुद्ध फल प्राप्त होता है।

क्षार-तरलता परीक्षण—परिवर्तित स्टार्चों का परीक्षण करने के लिए क्षार-तरलता का उपयोग बहुत होता है। स्टार्च की क्षार-तरलता उसके परिवर्तन की मात्रा के अनुसार नियमित रूप से बढती है। अम्ल द्वारा परिवर्तित किया गया मकई का स्टार्च बाज़ार में अपनी क्षार-तरलता सख्या के आधार पर बिकता है।

क्षार-तरलता ज्ञात करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणो का प्रयोग किया जाता है जिनमे साधारणत विभिन्न आकार की कीपे रहती हैं। ये कीपे काँच की होती है और इनका व्यास ४ इच होता है तथा शाखा बहुत छोटी होती है। शाखा के व्यास की नाप की एक काँच-नली को गला कर और खीच कर एक छोटा छेद बनाया जाता है जिसका व्यास लगभग १/१६ इच होता है। कीप की शाखा से इस काँच-नली को जो लगभग २ इच लम्बी रहती है जोड दिया जाता है। पूरा उपकरण इस नाप का होता है कि जब कीप मे ११० घ० से० आसुत जल २५° से० ग्रे० ताप पर भरा जाता है तो इसमें से १०० घ० से० जल बाहर के छेद से प्रवाहित हो कर ७० सेकेंड मे निकलता है।

क्षार-तरलता निकालने की पूरी विधि निम्न प्रकार है —

५ ग्राम स्टार्च को २५० घ० सें० धारिता के बीकर मे ले कर इसमें १० घ० सें० आसुत जल डाल कर और फेंट कर ठीक से मिला दिया जाता है। अब एक प्रतिशत कास्टिक सोडा विलयन की ९० घ० सें० मात्रा डाल कर विलयन को तीन मिनट तक विलोडित किया जाता है। बीकर को अब एक जल-ऊष्मक पर जिसका ताप २५° से० ग्रे० रहता है रख कर ३० मिनट तक शान्त छोड दिया जाता है। तरलता-कीप को भी इस जल-ऊष्मक के पानी मे डुबाये रखा जाता है और परीक्षण करने के केवल तीन मिनट पहले निकाला जाता है। अब तरलता-कीप के नीचे के सिरे को अगुली द्वारा बद कर इसमे स्टार्च-विलयन सँभाल कर भर दिया जाता है और यह देख लिया जाता है कि कोई हवा के बुलबुले न रहने पायें। सिरे के नीचे १०० घ० सें० का चिह्नित सिलिंडर रखा जाता है और कीप मे से विलयन को प्रवाहित होने दिया जाता है। जैसे ही सिरे में से विलयन को प्रवाहित होने देने के लिए अंगुली हटायी जाती है स्टाप-घड़ी को चला दिया जाता है। ७० सेकेंड होते ही कीप को सिलिंडर के ऊपर से हटा दिया जाता है। सिलिंडर मे, इस ७० सेकेंड मे जितना विलयन एकत्रित हुआ है उसका

आयतन सिलिडर मे लगे चिह्नो से पढ कर मालूम कर लिया जाता है। यही आयतन क्षार-तरलता व्यक्त करता है।

क्षार-चल अक (alkali-labile value) **परीक्षण**—विभिन्न स्टार्चों, परिर्वितत स्टार्चों तथा डेक्सट्रिन को उनके क्षार-चल अक ज्ञात कर सरलता से पहचाना जा सकता है। यह विधि टी० सी० टेलर ने निकाली है और इस गुण पर आधारित है कि स्टार्च तथा डेक्सट्रिन मे कुछ भाग ऐसा होता है जो क्षार द्वारा शीघ्र अभिकृत हो जाता है। इस विधि से परीक्षण शीघ्र हो जाता है और स्टार्च तथा डेक्सट्रिन की पहचान सन्तोषप्रद रीति से हो जाती है। परीक्षण की विधि निम्न भाँति है :—

पाइरेक्स काँच की बनी ८″ × १″ इच नाप की एक परखनली मे लगभग ० ०५ ग्राम स्टार्च (या डेक्सट्रिन) जिसकी परीक्षा करनी है तोल कर ले लिया जाता है और इसमे १० घ० से० N/१० कास्टिक सोडा विलयन डाला जाता है। परखनली मे एक ढीला डाट लगा कर इसे उबलते पानी मे एक घटे तक गरम किया जाता है। इसके बाद इसे आधा मिनट तक नल के बहते ठढे पानी मे रख कर ठढा किया जाता है और फिर तुरन्त ही इसमे १० घ० से० N/१० HCl डाल कर और परखनली को हिला कर ठीक से मिला दिया जाता है। परखनली के पदार्थ को अब २५० घ० से० के एक शुण्डाकार फ्लास्क मे उडेल दिया जाता है। परखनली को १० घ० से० आसुत जल से दो बार धो कर धोवन को भी फ्लास्क मे डाल दिया जाता है। अब फ्लास्क के द्रव मे दो बूँद नाइट्राज़ीन पीला विलयन (nitrazine yellow solution) डाल कर द्रव को N/१० NaOH द्वारा उदासीन किया जाता है। इसके बाद ५ घ० से० N/१० NaOH और डाल कर फिर ५ घ० से० ० ०२५M प्रामाणिक आयोडीन विलयन डाला जाता है। पिछले तीनो विलयन तीन मिनट के भीतर मिला देना चाहिए। अब फ्लास्क को ४५ मिनट तक अँधेरे मे २५°–३०° से० ग्रे० ताप पर रख दिया जाता है। इसके बाद इसमे ५ घ० सें० सान्द्र HCl डाल कर ठीक से फ्लास्क को हिला कर मिला दिया जाता है और फिर तुरन्त ही फ्लास्क के द्रव को ० ०२५ M थायोसलफेट विलयन द्वारा अनुमापित किया जाता है। गणना द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि कितना मिलीग्राम आयोडीन अभिक्रिया मे उपयोग हुआ है। इसे १०० से गुणा करने पर जो सख्या प्राप्त हो उसे फिर आरम्भ मे लिये गये स्टार्च की मिलीग्राम मात्रा से भाग देने पर जो अक प्राप्त हो वह उस स्टार्च का **क्षार-चल अंक** है।

यदि स्टार्च, जिसका क्षार-चल अक ज्ञात करना है, लेई के रूप मे है तो इसे पहले अजल शुद्ध मेथिल ऐलकोहल (जिसमे ऐसीटोन बिल्कुल न हो) द्वारा अवक्षेपित किया जाता है और फिर इस अवक्षेप का क्षार-चल अक ज्ञात किया जाता है। यदि लेई

मे कोई विद्युद्विश्लेष्य (electıolyte) पदार्थ नही रहता तो कुछ बूंद N/१० बेरियम क्लोराइड विलयन डाल दिया जाता है। इससे अवक्षेपण मे सहायता मिलती है। इस परीक्षण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मुक्त क्लोरीन, हाइपोक्लोरस अम्ल, कोई पर-आक्साइड, सुहागा या सल्फर डाइ-आक्साइड की किचित् मात्रा भी स्टार्च मे नही होनी चाहिए, क्योंकि ये पदार्थ स्वय आयोडीन को शोषित करते है।

मकई के स्टार्च का क्षार-चल अक लगभग २२ होता है, टैपियोका स्टार्च का १४ और पीले डेक्सट्रिन का २०। विभिन्न स्टार्चों तथा डेक्सट्रिन के क्षार-अको मे एक दूसरे से बहुत भिन्नता होती है, अत इस परीक्षण द्वारा विभिन्न स्टार्च तथा डेक्सट्रिन सरलता से एक दूसरे से पहचाने जा सकते है।

क्षार-अक विधि——ऊपर की विधि से थोडी परिवर्तित एक दूसरी सरल विधि जिसे क्षारमितीय (alkalımetrıc) विधि कहते है ज्ञात की गयी है। इसके द्वारा स्टार्च का आपेक्षिक जल-विच्छेदन परिमापित किया जाता है। यह विधि निम्न भाँति है —

०.५ ग्राम स्टार्च को तोल कर एक फ्लास्क मे लिया जाता है। इसमे १० घ० से० पानी डाल कर निलम्बित अवस्था मे कर लिया जाता है। फिर २५ घ० से० ०.४ N कास्टिक सोडा विलयन और ६५ घ० से० गरम आसुत जल डाल कर हिलाया जाता है। अब फ्लास्क को डाट से बद कर उबलते पानी मे रख कर लगभग एक घटे तक गरम किया जाता है। इसके बाद फ्लास्क को ठढे पानी मे रख कर इसमे लगभग ५०-७५ घ० से० ठढा आसुत जल डाला जाता है जिससे स्टार्च का और अधिक जल-विच्छेदन होना रुक जाय। अब फ्लास्क के द्रव मे थाइमाल ब्लू (thymol blue) विलयन की दो बूँदे डाल कर ० २ N सल्फ्यूरिक अम्ल से अनुमापित किया जाता है। जितने आयतन अम्ल उपयोग होता है उसे अम्ल की प्रामाणिकता सख्या (normalty) तथा १० से गुणा करने पर जो मान प्राप्त हो उसे स्टार्च की तोल से भाग देने पर अत मे जो सख्या प्राप्त होती है वह क्षार-अक (alkalı number) कहलाती है। कुछ स्टार्चों के क्षार-अक नीचे की सूची मे दिये जाते है —

क्षार-अंक

गेहूँ का स्टार्च	९.८ से ११ ५
चावल का स्टार्च	६.५ से ७.५
मकई का स्टार्च	९.८ से १२ २
आलू का स्टार्च	५.८ से ७.०

टैपियोका स्टार्च	६०–७१
डेक्सट्रिन (पीला)	१२५–१४०

प्रवाह-परीक्षण (या शुष्क स्टार्च की तरलता का परिमापन) (Flow or mobility test of dry starch)—स्टार्च का प्रवाह मापने के लिए सूखे स्टार्च की एक निश्चित मात्रा को एक बद चलनी मे रख कर एक निश्चित गति से यत्र द्वारा हिलाया जाता है। एक निर्धारित समय मे चलनी से स्टार्च की जितनी मात्रा छन कर बाहर निकलती है उसे तोल लिया जाता है। यही मात्रा स्टार्च की तरलता को व्यक्त करती है।

एक दूसरी विधि निम्न प्रकार है.—स्टार्च को प्रामाणिक अश तक महीन पीस कर इसकी थोडी मात्रा को एक कॉच की प्लेट पर रखा जाता है। इस प्लेट को झुकाने का प्रबन्ध रहता है और जिस कोण तक यह झुकायी जाती है उसे मालूम करने के लिए पीछे की ओर एक स्केल रहता है। प्रयोग मे प्लेट को धीमी गति से तिरछी करते जाते है और वह कोण जिस पर स्टार्च प्लेट पर से नीचे झुकी ओर फिसलना शुरू करता है, स्केल द्वारा मालूम कर लिया जाता है। जितनी अधिक तरलता स्टार्च मे होती है उतने ही कम कोण पर वह फिसलना आरम्भ करता है।

निर्देश

1 K V Giri and P N Bhargava, J Indian Inst , Sci , 1936, **19**A, 53, K. V Giri, Science, 1935, **81**, 343

2 T C Taylor and J C Keresztesy, *Ind Eng Chem* , 1936, **28**, 502

3 R W Kerr, *Chemistry and Industry of Starch*, New York, 1944, pp 109

अध्याय २२

स्टार्च का परिमापन

आटे मे तथा अन्य पदार्थों मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करने की कई विधियाँ है। इनमे से कुछ विधियाँ ऐसी है जिनमे स्टार्च को बिना जल-विश्लेषित किये परिमापित किया जाता है और कुछ विधियाँ ऐसी है जिनमे स्टार्च का परिमापन करने के लिए उसे जल-विश्लेषित किया जाता है।

स्टार्च का परिमापन करने की बिना जल-विश्लेषण की विधियाँ (Non-hydrolytic Methods)

इन विधियो मे स्टार्च को किसी विलायक मे आकीर्ण किया जाता है और फिर या तो (क) इसे पृथक् कर तोल लिया जाता है, या (ख) किसी यौगिक के रूप मे अवक्षेपित कर तोला जाता है, या (ग) पोलैरीमीटर द्वारा इसका घूर्णन ज्ञात कर इसकी मात्रा ज्ञात कर ली जाती है।

(१) **हर्ड और केंट-जोन्स विधि**[1] (Hurd and Kent-Jones method)—इस विधि मे जिस पदार्थ में स्टार्च की मात्रा ज्ञात करनी है उसकी एक ग्राम मात्रा को अम्ल द्वारा अच्छी प्रकार धोयी गयी एक ग्राम बालू के साथ मिश्रित कर एक अपकेन्द्री नली (centrifuge tube) मे ईथर के साथ भर दिया जाता है। एक मिनट तक नली को हिला कर फिर अपकेन्द्री मशीन मे घुमाया जाता है। ऊपर पृथक् हुए स्वच्छ द्रव को निथार कर निकाल दिया जाता है। एक बार पुन नली की पेंदी मे बचे ठोस मे ईथर मिला कर और पहले की भाँति हिला कर अपकेन्द्री मशीन मे घुमाया जाता है और पृथक् हुए द्रव को ऊपर से निथार कर निकाल दिया जाता है। नली में बचे अवशिष्ट (residue) मे अब २.५ घ० सें० पानी और ०.२५ घ० सें० नार्मल (N) कास्टिक सोडा विलयन डाल कर सब को अच्छी तरह हिला कर मिला दिया जाता है। पन्द्रह मिनट बाद पहले ५ घ० सें० शुद्ध मेथिल ऐलकोहल और फिर तुरन्त ५ घ० सें० जलीय मेथिल ऐलकोहल (जिसमे मेथिल ऐलकोहल और पानी का अनुपात २ : १ रहता है) डाल कर और अच्छी प्रकार मिला कर नली को पुनः अपकेन्द्री मशीन में घुमाया जाता

है। ऐलकोहल की तह ऊपर पृथक् हो जाती है। इसे निथार कर निकाल दिया जाता है। अवशिष्ट को जलीय ऐलकोहल से दो बार और अन्त मे पानी से तीन बार धोया जाता है। प्रत्येक बार धोने के लिए १० घ० से० द्रव लिया जाता है।

पानी से धोने के बाद नली के अवशिष्ट मे थोडा पानी मिला कर एक गाढी लेई के रूप मे कर लिया जाता है। यह ध्यान रखा जाता है कि ढोके न बनने पाये। इस लेई को एक १०० घ० से० चिह्नित फ्लास्क (graduated flask) मे उडेल दिया जाता है। २० घ० से० पानी से कई बार नली को धो कर धोवन को फ्लास्क मे ही डाल दिया जाता है जिससे नली का सम्पूर्ण पदार्थ फ्लास्क मे पहुँच जाय। नली को फिर सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की थोडी-थोडी मात्रा से कई बार धो कर इस अम्ल को भी फ्लास्क मे ही डाल दिया जाता है। अब आवश्यकतानुसार थोड़ा और सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल फ्लास्क मे डाल कर आयतन को पूरा १०० घ० से० कर लिया जाता है। फ्लास्क को थोडी देर तक अच्छी प्रकार हिलाने के बाद इसके विलयन को एक गूश-मूषा (gooch crucible) द्वारा, जिसमे ऐस्बेस्टास के ऊपर अम्ल से धोयी हुई बालू पर्त के रूप मे बिछी रहती है, छाना जाता है। छनित (filtrate) मे से एक पिपेट द्वारा ५० घ० से० द्रव माप कर एक बीकर मे निकाला जाता है। इसमे फिर ९६ प्रतिशत ऐलकोहल की ११० घ० से० मात्रा माप कर डाल दी जाती है और सब को ठीक से हिला कर मिला दिया जाता है। एक अवक्षेप बनता है। बीकर के कुल पदार्थ को दस मिनट तक अपकेन्द्री मशीन मे घुमाया जाता है जिससे समस्त अवक्षेप नीचे तली मे बैठ जाय। ऊपर पृथक् हुए द्रव को निथार कर फेंक दिया जाता है। अवक्षेप को फिर चार बार ७० प्रतिशत ऐलकोहल से और बाद मे दो बार ९६ प्रतिशत ऐलकोहल से धोया जाता है। अन्त मे ९६ प्रतिशत ऐलकोहल मे हिला कर पहले से तोली हुई गूश-मूषा मे अवक्षेप को पहुँचा दिया जाता है। यहाँ एक बार ईथर द्वारा भी अवक्षेप को धो दिया जाता है। फिर गूश-मूषा को लगभग १५ मिनट तक ४०° से० ग्रे० पर रखने के बाद १३०° से० ग्रे० ताप पर रख कर अवक्षेप को पूर्ण रूप से सुखा लिया जाता है और फिर मूषा को तोल कर अवक्षेप की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। यह स्टार्च की तोल होती है। गणना द्वारा फिर आरम्भ मे लिये गये पदार्थ मे स्टार्च की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

ऊपर बतलायी विधि व्यापारिक क्षेत्र मे सब प्रकार के आटे मे स्टार्च की मात्रा ज्ञात करने के लिए काफी सन्तोषप्रद है। चोकर तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ का परिमापन, जिसमे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा कम होती है, ऊपर की विधि से करने के लिए २.५ ग्राम पदार्थ लेना चाहिए।

(२) आयोडीन विधि—स्टार्च और आयोडीन के परस्पर के सयोग से बने योगशील यौगिक द्वारा भी स्टार्च का परिमापन किया जाता है। इसकी भी कई विधियाँ है। इन विधियो मे विभिन्न पदार्थों के विलयनो का उपयोग स्टार्च का आकीर्णन करने के लिए किया जाता है। स्टार्च के आयोडीन यौगिक द्वारा स्टार्च का परिमापन करने की एक सरल विधि निम्न प्रकार है.—

आटे की एक निश्चित मात्रा तौल कर कैल्सियम क्लोराइड विलयन मे घोली जाती है, फिर इसमे आयोडीन विलयन मिलाया जाता है। स्टार्च आयोडाइड अवक्षेप के रूप मे पृथक् हो जाता है। कैल्सियम क्लोराइड का कार्य स्टार्च आयोडाइड यौगिक को अवक्षेपित करना है। अवक्षेप को छान कर अलग प्राप्त कर लिया जाता है और फिर ऐलकोहल द्वारा इसका विच्छेदन किया जाता है। स्टार्च पृथक् हो जाता है। इसे छान कर और सुखा कर इसकी तोल ज्ञात कर ली जाती है और फिर गणना द्वारा आटे मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो जाती है।

(३) पोलैरीमीटर विधि—पोलैरीमीटर द्वारा स्टार्च का परिमापन करने की भी कई विधियाँ है। इन सब विधियो मे आटे को किसी उपयुक्त विलायक मे आकीर्ण किया जाता है और फिर इस विलयन का घूर्णन पोलैरीमीटर द्वारा मालूम कर गणना द्वारा स्टार्च की मात्रा मालूम कर ली जाती है। पोलैरीमीटर की विधियाँ इस सिद्धान्त पर आधारित है कि स्टार्च का एक निश्चित विशिष्ट घूर्णन (specific rotation) होता है और सभी स्टार्चों का विशिष्ट घूर्णन एक ही होता है। किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। विभिन्न स्टार्चों के विशिष्ट घूर्णन मे थोड़ा अन्तर होता है। यह घूर्णन +१८०° से +२२०° तक देखा गया है।

पोलैरीमीटर की सहायता से परिमापन करने की एक विधि नीचे दी जाती है .—

आटे की एक निश्चित तोल को N/५०० कैल्सियम क्लोराइड विलयन के साथ लगभग १५ मिनट तक उबाला जाता है। विलयन का *p*H २.५ रखा जाता है। उबलते समय शोफन को रोकने के लिए एक-दो बूँद नार्मल-आक्टाइल ऐलकोहल (*n*-octyl alcohol) डाल दिया जाता है। विलयन को ठढा कर फिर इसमे २० प्रतिशत स्टैनिक क्लोराइड विलयन मिलाया जाता है। स्टैनिक क्लोराइड विलयन मे उपस्थित प्रोटीन को अवक्षेपित कर देता है। अवक्षेप को छान कर निकाल दिया जाता है और छने हुए स्वच्छ द्रव का घूर्णन पोलैरीमीटर में निरीक्षण कर ज्ञात किया जाता है। फिर गणना द्वारा स्टार्च की मात्रा मालूम कर ली जाती है।

एक अन्य विधि जिसे सी० जे० लिंटनर (C. J. Lintner) ने निकाला है निम्न प्रकार है :—

लिंटनर विधि[२]—इस विधि मे ५ ग्राम पदार्थ (आटे) को २० घ० सें० पानी के साथ एक बीकर मे मिश्रित किया जाता है। इसमे फिर ४० घ० सें० हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाल कर लगभग ३० मिनट तक अलग रख दिया जाता है। इसके बाद बीकर के कुल पदार्थ को एक फ्लास्क मे उडेल दिया जाता है। बीकर को १ १२५ विशिष्ट गुरुत्व के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलयन द्वारा आवश्यकतानुसार कई बार धो कर फ्लास्क मे ही धोवन को डाल दिया जाता है। अब ४ प्रतिशत फास्फोटग्सटिक अम्ल के विलयन की १० घ० सें० मात्रा डाल कर मिला दी जाती है और फिर आवश्यकतानुसार हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिला कर आयतन को २०० घ० सें० कर दिया जाता है। अब विलयन को छान कर छने हुए स्वच्छ विलयन को २०० मिलीमीटर लम्बी पोलैरीमीटर नली मे भर कर पोलैरीमीटर द्वारा इसका घूर्णन सोडियम प्रकाश मे ज्ञात किया जाता है और फिर गणना कर विशिष्ट घूर्णन ज्ञात कर लिया जाता है। विशिष्ट घूर्णन से गणना द्वारा स्टार्च की प्रतिशत मात्रा आरम्भ मे लिए गये पदार्थ मे मालूम हो जाती है। गणना के लिए जौ के स्टार्च का विशिष्ट घूर्णन प्रामाणिक माना जाता है और प्रतिशत स्टार्च निकालने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है :—

$$\text{प्रतिशत स्टार्च} = \frac{४००० \times \text{अवलोकित घूर्णन}}{\text{ल} \times [\alpha]_D^{२०}}$$

[ल = पोलैरीमीटर नली की डेसीमीटर मे लम्बाई, $[\alpha]_D^{२०}$ = २०० ३ (जौ के स्टार्च का विशिष्ट घूर्णन)]

लिंटनर की ऊपर वर्णित विधि बहुत सन्तोषप्रद है। इसके द्वारा विभिन्न पदार्थों मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा सुविधापूर्वक ज्ञात की जा सकती है। कुछ लोगो के मत के अनुसार ऊपर के सूत्र मे $[\alpha]_D^{२०}$ का मूल्य २०२ लेने से अधिक सन्तोषप्रद फल प्राप्त होते है।

स्टार्च का परिमापन करने की जल-विश्लेषण की विधियाँ (Hydrolytic methods)—इन विधियो मे आटे या उस पदार्थ को जिसमे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करनी होती है, जल-विश्लेषित कर शर्करा मे परिणत कर दिया जाता है और फिर शर्करा की मात्रा ज्ञात कर स्टार्च की मात्रा गणना द्वारा मालूम हो जाती है। जल-विश्लेषण अम्ल तथा एजाइम दोनो द्वारा कराया जा सकता है।

(१) अम्ल द्वारा जल-विश्लेषण—तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल या तनु सल्फ्यूरिक अम्ल का उपयोग स्टार्च का जल-विश्लेषण कराने के लिए साधारणत होता है। अम्ल द्वारा पदार्थ मे मौजूद स्टार्च जल-विश्लेषित हो कर ग्लूकोस मे परिणत हो जाता है।

ग्लूकोस की मात्रा फेहलिंग विलयन से अनुमापित कर ज्ञात कर ली जाती है, फिर इसे ०.९० से गुणा करने पर स्टार्च की मात्रा प्राप्त हो जाती है।

अम्ल द्वारा जल-विश्लेषण करा कर स्टार्च का परिमापन करने की विधियाँ उन्ही पदार्थों के लिए उपयुक्त है जिनमे सेल्यूलोस या कोई अन्य ऐसा कार्बोहाइड्रेट मौजूद नही है जो जल-विश्लेषित होने पर ग्लूकोस उत्पन्न करता हो। सेल्यूलोस की उपस्थिति मे अम्ल द्वारा जल-विश्लेषण कराने की विधि थोडे परिवर्तित रूप मे प्रयोग मे लायी जाती है। तनु अम्ल स्टार्च पर ६०°-८०° से० ग्रे० ताप पर शीघ्र अभिक्रिया कर उसे जल-विश्लेषित कर देता है, किन्तु सेल्यूलोस पर अभिक्रिया नही करता। अत सेल्यूलोस के उपस्थित रहने पर पदार्थ को ०.०२N अम्ल द्वारा ६०°-८०° से० ग्रे० ताप पर थोडे समय तक उपचारित किया जाता है। पदार्थ का स्टार्च जल-विश्लेषित हो कर विलयन के रूप मे प्राप्त होता है किन्तु सेल्यूलोस अनघुले रूप मे बचा रहता है। विलयन को छान कर सेल्यूलोस को पृथक् कर लिया जाता है और छने विलयन मे थोडा अधिक सान्द्र अम्ल डाल कर तथा उबाल कर जल-विश्लेषण की क्रिया को पूर्ण कर लिया जाता है। फिर विलयन मे ग्लकोस की मात्रा फेहलिंग विलयन से अनुमापित कर ज्ञात कर ली जाती है और ग्लूकोस की इस प्रकार प्राप्त मात्रा से गणना द्वारा पदार्थ मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो जाती है।

(२) **एन्जाइम द्वारा जल-विश्लेषण**—एन्जाइम द्वारा स्टार्च जल-विश्लेषित हो कर डेक्सिट्रिन, माल्टोस और ग्लूकोस उत्पन्न करता है। विभिन्न विधियो में एन्जाइम की क्रिया के बाद अम्ल द्वारा जल-विश्लेषण करा कर क्रिया को पूर्ण कराया जाता है।

(क) **माल्ट डायस्टेस विधि** (Malt diastase method)—जिस आटे मे अथवा पदार्थ मे स्टार्च की मात्रा ज्ञात करनी होती है उसकी एक निश्चित मात्रा को तोल कर थोडे पानी के साथ लेई के रूप मे कर लिया जाता है। इसमे फिर माल्ट (जौ) से प्राप्त किये गये डायस्टेस की उपयुक्त मात्रा मिला कर थोडे समय तक (लगभग २ घटा) अलग रख दिया जाता है। स्टार्च जल-विश्लेषित हो कर माल्टोस मे परिवर्तित हो जाता है। पदार्थ मे थोडा पानी मिला कर छान लिया जाता है। छनित मे माल्टोस विलयन के रूप मे रहता है। फेहलिंग विलयन द्वारा अनुमापित कर माल्टोस की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। इसके साथ ही बहुत शुद्ध और प्रामाणिक आलू के स्टार्च को भी ऊपर की ही अवस्था मे डायस्टेस द्वारा माल्टोस में जल-विश्लेषित कर उत्पन्न माल्टोस का परिमापन भी फेहलिंग द्वारा ऊपर की ही भाँति किया जाता है। फिर निम्न सूत्र की सहायता से लिये गये आटे मे स्टार्च की प्रतिशत मात्रा गणना कर ज्ञात कर ली जाती है:—

पदार्थ मे स्टार्च का प्रतिशत $= \frac{१०० \text{ म}}{\text{मा}}$

ऊपर के सूत्र मे 'म' माल्टोस की वह मात्रा है जो १०० भाग पदार्थ से प्राप्त होती है और 'मा' १०० भाग आलू के स्टार्च से प्राप्त माल्टोस की मात्रा है।

(ख) टैकाडायस्टेस द्वारा जल-विश्लेषण करा कर (By hydrolysing with takadiastase)—टैकाडायस्टेस का उपयोग स्टार्च का मात्रात्मक परिमापन करने के लिए सन् १९१४ से आरम्भ हुआ है। यह स्टार्च को ग्लूकोस मे जल-विश्लेषित कर देता है। जल-विश्लेषण के बाद उत्पन्न हुए ग्लूकोस की मात्रा फेह्लिंग विलयन द्वारा अनुमापित कर ज्ञात कर ली जाती है। इस मात्रा को ०.९३ से गुणा करने पर स्टार्च की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

पौधो के विभिन्न भागो मे स्टार्च की मात्रा ज्ञात करने के लिए टैकाडायस्टेस का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

(३) एंजाइम और अम्ल दोनों के प्रयोग द्वारा जल-विश्लेषण करा कर: मेरकर की विधि[3] (Maerker's method)—जिस पदार्थ मे स्टार्च की मात्रा ज्ञात करनी होती है उसे महीन चूर्ण कर इस चूर्ण की तीन ग्राम मात्रा का ईथर द्वारा निष्कर्षण किया जाता है। इसके बाद इसे १०० घ० सें० आसुत पानी के साथ उबाल कर और फिर ६५° सें० ग्रे० तक ठढा कर इसमे १० प्रतिशत माल्ट निष्कर्ष की १० घ० सें० मात्रा डाली जाती है और फिर इसे दो घटे तक किण्वित होने के लिए अलग रख दिया जाता है। दो घटे बाद कुल पदार्थ को उबलते पानी मे रख कर आधा घटे तक गरम किया जाता है और फिर ६५° सें० ग्रे० तक ठढा कर इसमे १० प्रतिशत माल्ट निष्कर्ष की १० घ० सें० मात्रा पुन. डाल कर इसे आधा घटे तक किण्वित होने के लिए और रख दिया जाता है। इसके बाद इसे फिर पहले की भाँति उबलते पानी मे रख कर गरम किया जाता है और फिर ठढा कर कुल द्रव मे पानी मिला कर आयतन २५० घ० सें० कर लिया जाता है। अब इसे छान कर छनित मे से २०० घ० सें० मात्रा एक शुण्डाकार फ्लास्क मे निकाली जाती है। इसमे २५ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की १५ घ० सें० मात्रा मिला कर इसे उबलते पानी मे लगभग २½ घटे तक गरम किया जाता है। अब इसे ठढा कर इसके अम्ल को कास्टिक सोडा विलयन द्वारा उदासीन किया जाता है और फिर इसमे मौजूद ग्लूकोस को फेह्लिंग विलयन द्वारा अनुमापित कर ज्ञात कर लिया जाता है। ग्लूकोस की मात्रा को ० ९३ से गुणा करने पर स्टार्च की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

स्टार्च का परिमापन करने की ऊपर वर्णित सभी विधियो मे कुछ न कुछ त्रुटियाँ है। कोई भी विधि पूर्ण सन्तोषप्रद नही कही जा सकती।

निर्देश

1 C. W Herd and D. W. Kent-Jones, J Soc. Chem. Ind., 1931, **50**, 15T

2. C. J Lintner, *Zeit. ges Brauw* , 1907, **30**, 109.

3 M Maerker, Chem-Ztg , 1885, **9**, 319.

अध्याय २३

डेक्सट्रिन का विश्लेषण

(Analysis of Dextrins)

डेक्सट्रिन का पूर्ण विश्लेषण करने मे निम्न बातो का परीक्षण तथा परिमापन किया जाता है.—

रूप (Appearance), **रंग और स्पर्श**—डेक्सट्रिन विभिन्न रगो का होता है और इसका रग बहुत अश तक इसके बनाने की विधि पर निर्भर करता है।

डेक्सट्रिन बनाने के लिए जितनी अच्छी जाति का स्टार्च लिया जाता है उतना ही साफ रग का और अच्छा डेक्सट्रिन प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, आलू और टैपियोका के अच्छे शुद्ध स्टार्च से चमकीला डेक्सट्रिन बनता है, किन्तु यदि स्टार्च शुद्ध नही है तो डेक्सट्रिन की चमक मे कमी आ जाती है। मकई और गेहूँ के स्टार्च से बना डेक्सट्रिन जटा की तरह लम्बे टुकडो के रूप मे रहता है। अत डेक्सट्रिन के रूप और रग से कुछ अनुमान हो जाता है कि किस स्टार्च से यह बनाया गया है।

डेक्सट्रिन बनाने मे उपयोग हुए अम्ल का भी प्रभाव इसके रग और रूप पर पडता है। साधारण रीति से नाइट्रिक अम्ल के उपयोग से बनाये गये डेक्सट्रिन का रग लाल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से पीला और सल्फ्यूरिक अम्ल से गहरा भूरा होता है। अत रग से यह भी मालूम हो सकता है कि डेक्सट्रिन बनाने मे किस अम्ल का उपयोग हुआ है।

डेक्सट्रिन यद्यपि पानी मे विलेय होता है पर ग्लिसरोल मे निलम्बित अवस्था मे रहता है। ऐलकोहल मे भी यह निलम्बित अवस्था मे ही रहता है। डेक्सट्रिन का ऐलकोहल या ग्लिसरोल मे निलम्बन बना कर इसकी एक बूँद कॉच की स्लाइड पर रख कर सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण करने से यह ज्ञात हो जाता है कि डेक्सट्रिन के कण किस प्रकार के हैं। यदि स्टार्च का अधिक परिवर्तन नही हो पाया है तो डेक्सट्रिन के कण स्टार्च के कणो के समान बहुत अश तक रहते है। अत इस परीक्षण से यह ज्ञात किया जा सकता है कि डेक्सट्रिन बनाने मे स्टार्च का पूर्ण परिवर्तन हो गया है या नही और कुछ अपरिवर्तित स्टार्च तो नही बचा रह गया है।

जब डेक्सट्रिन विलयन के रूप मे बनाया गया है और फिर विलयन को वाष्पित कर ठोस रूप मे प्राप्त किया गया है तब सूक्ष्मदर्शी द्वारा इसके कणो का ऊपर की भांति परीक्षण करने से कोई विशेष लाभ नही होता। ऐसी अवस्था मे सूक्ष्मदर्शी परीक्षण द्वारा यह नही जाना जा सकता कि किस स्टार्च से वह डेक्सट्रिन बनाया गया है। कुछ डेक्सट्रिनो को गरम करने पर एक विशेष प्रकार की गध निकलती है और प्राय इस गध से यह जाना जा सकता है कि वह किस स्टार्च से प्राप्त किया गया है। मकई और आलू के स्टार्चों से बनाये गये डेक्सट्रिनो को गध द्वारा विशेष सरलता से पहचाना जा सकता है।

प्राय हाथ के स्पर्श से भी कुछ अनुमान लग जाता है कि कोई डेक्सट्रिन किस स्टार्च से बनाया गया है। आलू के स्टार्च का डेक्सट्रिन सूखे चूर्ण की अवस्था मे हाथ से छूने पर हाथ मे चिपकता नही है, टैपियोका तथा गेहूँ आदि अनाजो के स्टार्च से बनाये गये डेक्सट्रिन हाथ मे चिपकते है। आलू के स्टार्च का डेक्सट्रिन छूने मे अन्य स्टार्चों के डेक्सट्रिनो की अपेक्षा अधिक कठोर भी होता है।

सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने से डेक्सट्रिन मे धूल तथा अन्य ठोस पदार्थों की अपद्रव्यता भी ज्ञात हो जाती है। विभिन्न ठोस अपद्रव्यो के रहने पर डेक्सट्रिन के आसजक गुण पर प्रभाव पडता है और अच्छा आसजक नही बनता। अत' यह देखना भी बहुत आवश्यक है कि डेक्सट्रिन मे इस प्रकार के कोई ठोस अपद्रव्य न हो।

गंध और स्वाद (Smell and taste)—विभिन्न स्टार्चों से बने डेक्सट्रिनो में अपनी-अपनी विशेष गंध होती है और इस गध द्वारा प्रत्येक प्रकार के डेक्सट्रिन को पहचाना जा सकता है। डेक्सट्रिन की गन्ध विलयन की अवस्था मे अधिक स्पष्ट होती है, अत गध पहचानने के लिए सदा डेक्सट्रिन को पानी मे घुला लेना चाहिए। इसके लिए सब से सरल परीक्षण यह होता है कि हथेली पर जरा सा डेक्सट्रिन रख कर और उसमे एक बूंद पानी मिला कर अंगुली से अच्छी तरह रगड़ा जाय और तब हथेली को नाक के पास ला कर उसकी गध सूंघी जाय।

जीभ पर जरा सा डेक्सट्रिन रख कर उसके स्वाद से भी प्राय' यह अनुमान लग जाता है कि डेक्सट्रिन मे कितनी शर्करा मौजूद है और वह अम्ल द्वारा स्टार्च को जल-विश्लेषित कर बनाया गया है या भून कर।

आयोडीन परीक्षण—विभिन्न डेक्सट्रिन आयोडीन के तनु विलयन के साथ विभिन्न रंग देते है। इस परीक्षण से यह अनुमान कुछ हो जाता है कि स्टार्च का डेक्सट्रिन मे किस अश तक परिवर्तन हुआ है।

साधारण रूप से आयोडीन परीक्षण के लिए लगभग ०.१ ग्राम डेक्सट्रिन को एक

परखनली मे ले कर उसमे १५ घ० सें० पानी डाल कर घुला लिया जाता है। फिर इस विलयन मे N/५० शक्ति के आयोडीन विलयन (पोटैसियम आयोडाइड मे बने) की कुछ बूंदे (२-४ बूंदे) डाल कर और विलयन को हिला कर रग का निरीक्षण किया जाता है।

प्राय आयोडीन द्वारा उत्पन्न रग रखने पर धीरे-धीरे हलका होता जाता है। इसका कारण सम्भवत डेक्सट्रिन मे मौजूद शर्करा है और इस प्रकार रग के हलके होने की गति से डेक्सट्रिन मे मौजूद शर्करा का भी कुछ अनुमान हो जाता है।

विभिन्न डेक्सट्रिनो के साथ आयोडीन निम्न रग देता है —

अधिक पकाया गया सफेद डेक्सट्रिन—नीला रग

मध्यम अश तक पकाया गया डेक्सट्रिन—आरम्भ मे नीला रग किन्तु रखने पर शीघ्र हलका हो जाता है।

पीला डेक्सट्रिन—आरम्भ मे लाल-बैंगनी, किन्तु थोडी देर मे रग विलीन हो जाता है।

पूर्ण रूप से बने डेक्सट्रिनो मे इस परीक्षण से कोई अन्तर नही मालूम होता। अत यह परीक्षण केवल यही ज्ञात करने के लिए सहायक है कि किस अश तक स्टार्च का परिवर्तन डेक्सट्रिन मे हुआ है।

जल का परिमापन (Estimation of moisture)—डेक्सट्रिन मे जल की मात्रा ज्ञात करने के लिए डेक्सट्रिन की लगभग ५ ग्राम मात्रा को एक पोर्सलिन की प्याली मे तोल कर १०५°-११०° सें० ग्रे० पर ४-५ घटे तक गरम किया जाता है और जब तोल स्थिर हो जाती है तो पहली तोल से बाद की स्थिर तोल को घटा कर पानी की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। यदि डेक्सट्रिन द्रव रूप मे होता है तो इसमे तपायी गयी बालू (ignited sand) की एक निश्चित मात्रा तोल कर पहले मिला दी जाती है और फिर इसे आरम्भ मे निम्न ताप पर और बाद मे धीरे-धीरे ताप बढा कर १०५° सें० ग्रे० तक ला कर सुखाया जाता है। इसे फिर शोषित्र (desiccator) मे रख कर ठढा करने के बाद तुरन्त तोल लिया जाता है। भार मे जो कमी आती है वह डेक्सट्रिन मे पानी की मात्रा होती है।

डेक्सट्रिनो मे साधारणत १ प्रतिशत से १५ प्रतिशत तक जल की मात्रा रहती है। डेक्सट्रिनो मे वायुमडल से आर्द्रता शोषित करने का गुण होता है। अत. इन्हे वायुमडल मे अधिक समय तक खुला नही रखना चाहिए।

श्यानता और स्थायित्व (Viscosity and stability) **का परिमापन**—श्यानता परीक्षण से डेक्सट्रिन बनाने मे नियत्रण सरलता से रखा जा सकता है।

इस परीक्षण से यह ज्ञात हो जाता है कि स्टार्च किस अश तक डेक्सट्रिन मे परिवर्तित हो गया है और किस प्रकार का डेक्सट्रिन बना है। श्यानता की माप के लिए डेक्स-ट्रिन का ५० प्रतिशत से ७५ प्रतिशत तक विलयन बनाया जाता है। डेक्सट्रिन के बनाने की क्रिया पर नियत्रण रखने के लिए यह परीक्षण थोडे-थोडे समय मे निम्न रीति से किया जाता है —

मर्जक (roastei, जहाँ स्टार्च भूना जा रहा है) मे से थोडा डेक्सट्रिन निकाल कर तुरन्त तोला जाता है और फिर पानी की एक निर्धारित मात्रा मे डाल कर ८०° से० ग्रे० पर घोल लिया जाता है। इस विलयन की श्यानता फिर श्यानतामापक (viscometei) द्वारा ५०° से० ग्रे० पर मालूम की जाती है। प्रामाणिक डेक्स-ट्रिन के समान सान्द्रता के विलयन की श्यानता से तुलना करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि डेक्सट्रिन उचित प्रकार का बन गया है अथवा नही और उसी के अनुसार भूनने की क्रिया नियत्रित की जाती है।

स्थायित्व का परिमापन करने के लिए वह विलयन जो श्यानता की माप करने के लिए बनाया गया है, २४ घटे तक अलग रख दिया जाता है और फिर पुन इसकी श्यानता माप कर यह देखा जाता है कि इसमे कोई परिवर्तन हुआ है अथवा नही। साथ ही यह भी देखा जाता है कि रखने पर विलयन मे कोई धुँधलापन तो नही उत्पन्न हुआ है। कम अम्ल की मात्रा के साथ अधिक ऊँचे ताप पर स्टार्च को गरम करने पर जो पीला डेक्सट्रिन बनता है उसका विलयन रखने पर धुँधला हो जाता है, और प्राय. धुँधलापन इतना अधिक धीरे-धीरे बढता है कि विलयन एक पीली लेई का रूप ले लेता है। इस डेक्सट्रिन के विलयन की श्यानता आरम्भ मे वही हो सकती है जितनी प्रामाणिक डेक्सट्रिन के विलयन की है किन्तु रखने पर इसकी श्यानता बढती है। एक अच्छे डेक्सट्रिन के विलयन की श्यानता मे रखने पर कोई अन्तर नही आना चाहिए और न कोई धुँधलापन उत्पन्न होना चाहिए।

प्राय डेक्सट्रिन के विलयन को कई दिनो तक रख देने पर इसकी सतह पर बहुत सी महीन लकीरें सी दिखलाई देती हैं। यह डेक्सट्रिन मे शर्करा की अधिक मात्रा के रहने के कारण होता है। अत. इससे यह ज्ञात हो जाता है कि डेक्सट्रिन मे शर्करा अधिक है। ऐसा डेक्सट्रिन आसजक के कार्य के लिए उपयुक्त नही होता।

खनिज पदार्थ का परिमापन—डेक्सट्रिन मे खनिज पदार्थ की मात्रा ज्ञात करने के लिए इसे जला कर भस्म मे परिणत किया जाता है। यही भस्म डेक्सट्रिन का खनिज पदार्थ होता है। इसे तोल कर इसकी मात्रा ज्ञात कर ली जाती है।

भस्म की प्रतिशत मात्रा मालूम करने के लिए लगभग १० ग्राम डेक्सट्रिन को एक

प्लैटिनम की घडिया मे तोला जाता है और फिर बिजली की भट्ठी मे घडिया को रख कर साधारण ताप पर डेक्सट्रिन को धीरे-धीरे जलाया जाता है। डेक्सट्रिन के जल चुकने के बाद बचे भस्म मे एक-दो बूंद १० प्रतिशत ऐमोनियम नाइट्रेट विलयन डाल कर भस्म को पुन भट्ठी मे गरम किया जाता है। ऐमोनियम नाइट्रेट भस्म मे शेष बचे कार्बन के सूक्ष्म कणो को भी शीघ्र जला कर कार्बन डाइ-आक्साइड मे परिणत कर देता है और अब भस्म मे कार्बन के कोई कण नही बचते। घडिया को ठढा कर तोल लिया जाता है और भस्म की मात्रा मालूम हो जाती है। इससे फिर गणना कर डेक्सट्रिन मे खनिज पदार्थ की प्रतिशत मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। भस्म मे साधारणत कैल्सियम के सल्फेट, क्लोराइड और फास्फेट लवण रहते है।

डेक्सट्रिन मे खनिज पदार्थ की मात्रा मालूम करने के बाद फिर उस स्टार्च मे खनिज पदार्थ की मात्रा मालूम की जाती है जिससे वह डेक्सट्रिन बनाया गया है। दोनो के खनिज पदार्थो की तुलना करने से यह ज्ञात हो जाता है कि डेक्सट्रिन मे कोई अतिरिक्त बालू या धूल या अन्य भराऊ खनिज पदार्थ तो नही मिलाया गया है। साधारण रीति से अच्छे डेक्सट्रिन मे खनिज द्रव्य की प्रतिशत मात्रा ० १ से ० ५ तक होती है।

प्राय डेक्सट्रिनो मे सोडा भस्म और सुहागा मिला कर बाजार मे आसजक के रूप मे उपयोग होने के लिए रखा जाता है। ऐसे डेक्सट्रिनो के भस्म की परीक्षा करने से इन पदार्थो की उपस्थिति ज्ञात हो जाती है।

अम्लीयता (Acidity)—अम्लीयता ज्ञात करने के लिए १० ग्राम डेक्सट्रिन को १०० घ०सें० पानी मे घोल कर N/१० कास्टिक सोडा विलयन द्वारा अनुमापित किया जाता है। अनुमापन मे फीनोलफ्थैलीन (phenolphthalein) सूचक (indicator) के रूप मे उपयोग किया जाता है। इस अनुमापन मे यदि ५ घ० सें० से अधिक कास्टिक सोडा लगता है तो डेक्सट्रिन की अम्लीयता अधिक समझी जाती है।

डेक्सट्रिन में स्टार्च की मात्रा का परिमापन—स्टार्च की उपस्थिति से डेक्स-ट्रिन के भौतिक गुणो मे तथा विलेयता मे अन्तर आ जाता है। अत डेक्सट्रिन की उपयोगिता का मूल्याकन करने के लिए यह देखना बहुत आवश्यक है कि इसमे बिना परिवर्तित हुए कितना स्टार्च बच रहा है। इसके परिमापन की कई विधियाँ है। नीचे एक विधि दी जाती है —

एक ग्राम डेक्सट्रिन को ० ७ प्रतिशत कास्टिक पोटाश विलयन के साथ गरम कर पहले श्लिषीकृत कर लिया जाता है और फिर ठढा कर तथा पानी मिला कर इसका आयतन २०० घ० सें० कर लिया जाता है। इसमे से १० घ० सें० मात्रा एक बीकर मे

निकाल कर उसे तनु ऐसीटिक अम्ल द्वारा उदासीन किया जाता है और फिर उसमे ०.१ N आयोडीन विलयन की १ घ० सें० मात्रा डाली जाती है। अब एक दूसरे बीकर मे ५० प्रतिशत ऐलकोहल का १०० घ० सें० आयतन ले कर उसमें १० प्रतिशत पोटैसियम ऐसीटेट विलयन का ४ घ० सें० आयतन मिला कर एक अभिकर्मक तैयार किया जाता है। इस अभिकर्मक की ४० घ० सें० मात्रा पहले वाले बीकर मे डाली जाती है, १० मिनट तक बीकर को अलग शात रख दिया जाता है और फिर ऊपर पृथक् हुए स्वच्छ द्रव को निथार कर फेक दिया जाता है। बीकर मे बचे अवशिष्ट को ५० प्रतिशत ऐलकोहल से दो बार धोने के बाद अन्त मे ९५ प्रतिशत ऐलकोहल से दो बार धोया जाता है। अब समस्त अवशिष्ट को ९५ प्रतिशत ऐलकोहल की सहायता से एक गूश घडिया (Gooch crucible) मे, जिसकी तोल पहले ले ली गयी है, ले लिया जाता है। बीकर को ऐलकोहल द्वारा कई बार धो कर धोवन को भी गूश-घडिया मे ही डालते है जिससे अवशिष्ट का प्रत्येक कण घडिया मे पहुँच जाय। अब घडिया को विद्युत-तापक (electric heater) मे रख कर १००° सें० ग्रे० ताप पर अवशिष्ट को सुखा लिया जाता है और फिर घडिया को तोल कर तथा इस तोल से इसकी आरम्भ की तोल को घटा कर अवशिष्ट की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। यह अवशिष्ट डेक्सट्रिन मे उपस्थित स्टार्च का आयोडीन के साथ बना स्टार्च आयोडाइड यौगिक होता है। अवशिष्ट की तोल को ० ८८६५ से गुणा करने पर स्टार्च की तोल ज्ञात हो जाती है और फिर गणना द्वारा डेक्सट्रिन मे इसकी प्रतिशत मात्रा मालूम हो जाती है।

डेक्सट्रिन में शर्करा का परिमापन—शर्कराओ का परिमापन उनके अवकारक गुण पर आधारित है। इनके द्वारा फेहलिंग विलयन का अवकरण करा कर शर्करा की मात्रा ज्ञात की जाती है। यद्यपि डेक्सट्रिन मे भी सूक्ष्म मात्रा मे अवकारक गुण होता है, पर यह शर्करा की तुलना मे इतना कम होता है कि इसे नगण्य माना जा सकता है।

शर्कराओ का परिमापन करने की सब से सरल और अच्छी विधि लाने और आयनोन (Lane and Eynon) की है।

(क) **लाने और आयनोन की विधि** (Lane and Eynon's method)[1]—इस विधि मे डेक्सट्रिन की उपयुक्त मात्रा को तोल कर एक निश्चित सान्द्रता का विलयन बनाया जाता है। विलयन की सान्द्रता इतनी होनी चाहिए कि जब १० घ० सें० फेहलिंग का विलयन इसके द्वारा अनुमापित किया जाय तो इसकी लगभग १५-२० घ० सें० मात्रा का उपयोग हो।

२५० घ० स० धारिता के एक शुण्डाकार फ्लास्क में प्रामाणिक फेहलिंग विलयन की १० घ० सें० मात्रा ले कर इसमें ब्यूरेट से डेक्सट्रिन का इतना विलयन डाला जाता

है कि वह फेहलिंग विलयन का पूर्ण अवकरण करने से थोडा ही कम हो (१ या २ घ० से० कम)। अब फ्लास्क को ज्वालक के ऊपर रख दिया जाता है। जैसे ही विलयन मे उबाल आरम्भ होता है उसमे एक प्रतिशत मेथिलीन ब्लू (methylene blue) विलयन की दो बूँदें डाल कर ब्यूरेट से डेक्सट्रिन विलयन की और मात्रा बूँद-बूँद कर शीघ्रता से तब तक डाली जाती है जब तक फ्लास्क के विलयन का रग नीले या हरे से एकदम लाल नही हो जाता। जैसे ही फ्लास्क का विलयन लाल होता है ब्यूरेट से पढ कर यह मालूम कर लिया जाता है कि कुल कितना डेक्सट्रिन विलयन लगा। इस डेक्सट्रिन विलयन मे उपस्थित शर्करा द्वारा फेहलिंग विलयन का पूर्ण अवकरण हुआ है। अत अब गणना द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि डेक्सट्रिन मे ग्लूकोस की कितने प्रतिशत मात्रा मौजूद है। डेक्सट्रिन मे यद्यपि ग्लूकोस के अतिरिक्त अन्य शर्कराएँ भी हो सकती है पर गणना द्वारा शर्करा की मात्रा ग्लूकोस के रूप मे ही निकाली जाती है।

लाने और आयनोन की विधि बहुत शुद्ध फल देती है। शुद्ध फल प्राप्त करने के लिए यह ध्यान रखना पडता है कि अनुमानन के समाप्त होने के समय फ्लास्क मे विलयन बराबर उबलता रहे। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि मेथिलीन ब्लू विलयन की सदा निर्धारित दो बूँदे (या एक बूँद जो आरम्भ मे डाली गयी हो) ही प्रत्येक अनुमापन मे उपयोग की जायँ। ऐसा नही करना चाहिए कि एक बार अनुमापन मे एक बूँद डाली जाय और फिर दूसरे अनुमापन मे दो बूंदें डाली जायँ। इन सब बातो का ध्यान रखने पर इस विधि से फल बहुत शुद्ध प्राप्त होता है।

(ख) हिंटन और मैकारा की विधि (Hinton and Macara's method)[२]—इस विधि मे एक प्रतिशत डेक्सट्रिन विलयन की १० घ० से० मात्रा पानी मे मिला कर ५० घ०सें० आयतन कर लिया जाता है। अब इसमे क्रम से १ घ० से० ० १ N कास्टिक पोटाश, २ घ० से० १० प्रतिशत पोटैसियम आयोडाइड विलयन और १० घ० सें० क्लोरामीन-T विलयन (७ १ ग्राम प्रति लीटर) डाल कर और मिला कर १॥ घंटे तक अलग रख दिया जाता है। इसके बाद इसे तनु सलफ्यूरिक अम्ल द्वारा अम्लीय किया जाता है। जो आयोडीन उत्पन्न होती है उसे ० ०२ N सोडियम थायोसलफेट विलयन द्वारा अनुमापित किया जाता है। अलग से केवल पानी की भी उतनी मात्रा ले कर जितनी डेक्सट्रिन विलयन की ली गयी थी, ऊपर की भाँति ही अनुमापन किया जाता है और इसके अनुसार डेक्सट्रिन के अनुमापन मे उपयोग हुए सोडियम थायोसल्फेट के पाठ्याक मे आवश्यक परिवर्तन कर लिया जाता है। डेक्सट्रिन के अनुमापन मे ० ०२N सोडियम थायोसल्फेट विलयन के जितने घ० सें० आयतन उपयोग हुए है उसे १ ८००२

से गुणा करने पर ग्लूकोस की मात्रा मिलीग्राम मे प्राप्त हो जाती है। फिर गणना द्वारा डेक्सट्रिन मे ग्लूकोस की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

इस विधि द्वारा भी शुद्ध फल प्राप्त होता है।

सरेस की उपस्थिति मे डेक्सट्रिन का पहचानना और उसका परिमापन (Detection and estimation of dextrins in presence of glue)—प्राय जन्तुओ से प्राप्त सरेस मे डेक्सट्रिन की मिलावट कर दी जाती है या किसी विशेष प्रयोजन से डेक्सट्रिन मिलाया जाता है। अत डेक्सट्रिन का सरेस मे पहचानना और उसकी मात्रा ज्ञात करना प्राय आवश्यक होता है। यदि सरेस मे पृथक् रूप से ठोस अवस्था मे डेक्सट्रिन मिलाया गया है तो सूक्ष्मदर्शी द्वारा प्राय यह जाना जा सकता है।

सरेस की उपस्थिति मे डेक्सट्रिन का परिमापन निम्न विधि से किया जाता है :—

० ६ ग्राम सरेस को १० घ० सें० तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मे (५ घ० सें० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल १०० घ० सें० पानी मे) कुछ समय तक भिगो कर ६०° सें० ग्रे० ताप पर गरम किया जाता है। सरेस मे मौजूद डेक्सट्रिन का ग्लूकोस मे जल-विश्लेपण हो जाता है। जल-विश्लेषण हो जाने के बाद विलयन मे पानी मिला कर इसका आयतन ५० घ० सें० कर लिया जाता है। इसे फिर कास्टिक सोडा विलयन द्वारा उदासीन कर फेह्लिग विलयन द्वारा अनुमापित कर लिया जाता है और गणना द्वारा ग्लूकोस की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। ग्लूकोस की इस मात्रा को ० ९ से गुणा करने पर तुल्याक डेक्सट्रिन की मात्रा ज्ञात हो जाती है।

डेक्सट्रिन मे क्लोराइड का परिमापन—प्राय डेक्सट्रिन मे सूक्ष्म मात्राओ मे क्लोराइड लवण या हाइपोक्लोरस अम्ल मौजूद रहता है। क्लोराइड अथवा क्लोरीन के अन्य यौगिको की उपस्थिति डेक्सट्रिन को अनेक कामो के लिए अनुपयुक्त कर देती है। अत इनका रहना ठीक नही है।

क्लोराइड की डेक्सट्रिन मे उपस्थिति अधिकतर स्टार्च मे मौजूद क्लोराइड के कारण होती है। स्टार्च बनाते समय यदि क्लोरीन का उपयोग रग निकालने के लिए किया गया है तो बाद मे स्टार्च को अच्छी प्रकार पानी से धो कर क्लोरीन को निकाल देना चाहिए। स्टार्च को ठीक से न धोने के कारण क्लोरीन स्टार्च मे रह जाती है और इस स्टार्च से डेक्सट्रिन बनाने मे यही क्लोरीन डेक्सट्रिन मे क्लोराइड के रूप मे पहुँच जाती है।

क्लोराइड का परीक्षण सिल्वर नाइट्रेट द्वारा किया जा सकता है। डेक्सट्रिन की थोडी मात्रा को आसुत जल में घोल कर और उसमे कुछ बूँदे तनु नाइट्रिक अम्ल की डाल कर सिल्वर नाइट्रेट विलयन की कुछ बूँदें डालने पर यदि सफेद अवक्षेप प्राप्त होता

है तो डेक्सट्रिन मे क्लोराइड की उपस्थिति निश्चित रहती है। इसका परिमापन भी ज्ञात शक्ति के सिल्वर नाइट्रेट (N/३०) द्वारा अनुमापित कर किया जा सकता है। इस अनुमापन मे पोटैसियम क्रोमेट के तनु विलयन की एक-दो बूँदे सूचक (indicator) के रूप मे उपयोग की जाती है।

निर्देश

1 J H Lane and L Eynou, J Soc Chem Ind, 1923, **42,** 32T, 143T, 463T, 1925, **44,** 150T, 1927, 46, 434T, 1931, **50,** 85T see also J Fitelson, J Assoc Offic Agric Chem, 1932, **15,** 624.

2 C. L. Hinton and T Macara, Analyst, 1927, **52,** 668.

अनुक्रमणिका

अरारोट ४९
आइसोप्रीन २०८
आभादायक २९८
आरगॉल १९५
आलिगोसैकराइड ४
आसजक ५
स्टार्च से बने २२५-२४६
डेक्सट्रिन से बने २४८-२५५
इन्वर्टेस १४
एंज़ाइम ९-१६
एक-सैकराइड २
एथिल ऐलकोहल १०८-२०४
ऐमिलेस १४, २२-३०
ऐमिलोपेक्टिन ८२-८४, १६१-१६५
ऐमिलोस ८२-८४, १५५-१६१
ऐराबिनोस ३
ऐलकोहल ७
ऐल्डोस ३
ऐसीटिक अम्ल २
ऐसीटिन २११
ओलीन २१२
कार्डाइट २१४
कार्बन स्वीकरण १६८
कार्बोहाइड्रेट १, २, ५, १६८-१८७
किण्व १०
किण्वन ७, ९
किण्वभोज १४
कीटोस ३
क्रोमोप्लास्ट १६९
क्लोरीटोन २०८
क्लोरोप्लास्ट १६९
क्लोरोफार्म २०७
गाढक ३००
गैलेक्टोस ३
ग्लाइकोजेन ५
ग्लिसरोल २०९-२१४
ग्लूकोस ३, ११७-१४४
ग्लूटेन ३३
ग्लूटेनीय स्टार्च ८५
टार्टर १९५
टेट्रोस ३
टैपियोका स्टार्च ४८
ट्राइओस ३
ट्राइ मेथिल स्टार्च १००
डाइनमाइट २१४
डाइमेथिल स्टार्च १००
डायस्टेस १४
डेक्सट्रिन १, ७, १०२-११६
विश्लेषण ३५१-३५९
नाइट्रोग्लिसरीन २१३
नीलरंजक २९८
पत्ती का आकार १७१

पश्चगमन ८९
पाक-चूर्ण २६२
पामीटिन २१२
पालीसैकराइड ५
सक्रियकारक १८२
पेंटोस ३
पौधो की कोशिकाएँ १६८
पौधों मे स्टार्च तथा अन्य कार्बोहाइड्रेट का सग्रह १७७
पौधो मे स्टार्च और सुक्रोस का सम्बन्ध १८३
प्रकाश सश्लेषण १७२-१८६
प्रमाण स्पिरिट १९७
प्रोटोप्लाज्म १६८
प्लैस्टिड १६८
फर्मेण्ट १०
फार्मैल्डीहाइड २
फ्रुक्टोस ३
फ्यूजेल तेल १९५
बहु-सैकराइड ५
ब्यूटाडाईन २०२
ब्यूटिल ऐलकोहल २०४
ब्यूटिलीन ग्लाइकाल २१७
ब्लास्टिग जेली २१४
मकई का स्टार्च ५१
माइकोडरमा ऐसीटी १४
मॉनोसैकराइड २
माल्टोस ४, ७, १४५-१५३
मेथिलेटेड स्पिरिट १९६
मोमीय स्टार्च ८५
यीस्ट १०
यूरियेस १३
रेनेट १४
रैफिनोस ४
रैमनोस २
लघु-सैकराइड ४
लाइपेस १५
लैक्टोस ४
लैक्टिक अम्ल २, २१४-२१७
ल्यकोप्लास्ट १६९
विलेय स्टार्च ९७
शराब १९८
शर्करा १, २
श्लिषीकरण ८८
सज्जीकरण ७, २८०-२८४
समाप्त वाश १९५
सल्फोनल २०७
साइटोक्रोम, आक्सीडेस १४
साबूदाना ४६-४८
सैगो स्टार्च ४६-४८
सेल्यूलोस १, २
स्टार्च १, २, ३५-९५
उपयोग २६०, २६४, ३०५-३१६
परिमापन ३४४-३४९
परिरक्षण ३१९-३२२
परीक्षण और विश्लेषण ३२३-३४३
स्टार्च उद्योग के उपजात ३१७-३१८
स्टार्च और कागज उद्योग २७९-२८७
स्टार्च और वस्त्र उद्योग २८८-३०४
स्टार्च और भोजन व्यवसाय २५६-२७८
स्टार्च के एस्टर ९८-१००
स्टार्च के ईथर १००-१०१
हेक्सोस ३

शब्दकोश

अक्रिय inactive
अग्न्याशय pancreas
अजल anhydrous
अणु molecule
अणुजीव micro-organism
अति तप्त super heated
अति परवलय hyperbola
अध सादटकी settling tank
अधि over
अधिपृष्ठ द्रव supernatant liquid
अधिशोषण adsorption
अधिशोषित adsorb
अनासुत undistilled
अनुकूलतम optimum
अनुत्क्रमणीय irreversible
अनुप्रस्थ transverse
अनुमापन titration
अपकेन्द्री centrifugal
अपद्रव्य impurity
अपलयन peptise
अपारदर्शकता opacity
अपारदर्शिता opacity
अपोहन dialysis
अपोहित dialyse
अभिकर्मक reagent
अभिक्रिया reaction
अमणिभीय non-crystalline, amorphous
अम्ल acid
अर्ध-पारदर्शकता translucency
अवकरण reduction
अवक्रमण degradation
अवकारक reducing agent
अवकारकहीन non-reducing
अवपात fall
अवशिष्ट residue
अवशोषण adsorption
अवक्षेप precipitate
अवक्षेपण precipitation
अविरत continuous
अविलेय insoluble
अविलेयकरण insolubilisation
असममित asymmetric
आकीर्ण disperse
आकीर्णक dispersant
आकीर्णन dispersion
आक्सीकरण oxidation
आणविक molecular
आन्तराकर्षण cohesion
आभादायक tinting agent
आमज्जक steeping agent
आमज्जन steeping

आम्लिक acidic
आयतनात्मक volumetric
आयन ion
आर्द्रताकारक wetting agent
आर्द्रताग्राही hygroscopic
आसवन distillaton
आसुत distillate, distilled
आसजक adhesive
इक्षशर्करा cane sugar
ईथरीकरण etherification
उत्क्रमणीय reversible
उत्पाद product
उत्प्रेरक catalysis
उत्फुल्लक swelling agent
उदासीन neutral
उदासीनीकरण neutralization
उप-अभिक्रिया side reaction
उपकरण apparatus
उपचार treatment, treat
उपचारित treated
उपजात by-product
उपापचय metabolism
ऊतक tissue
ऊर्जा energy
ऊष्मक bath, oven
ऊष्मा heat
एस्टरीकरण esterification
ऐमोनीय ammoniacal
ऐल्कोहली alcoholic
ओसाई मिल winnowing mills
कन्द tuber
कपाट valve
कलिल colloid
काट section
कार्बनिक organic
किण्व ferment
किण्वन fermentation
किण्वभोज substrate
कुडली coil
कुशूल bin
कृत्रिम artificial
कोशिका cell
क्रिया action
खनिज mineral
खाद्यधानी hopper
गलनाक melting point
गाढक thickener
गुणधर्म property
घड़िया crucible
घनमिल hammer
घूर्ण rotary
चक्की mill
चलनी sieve
चूषक पम्प suction pump
चूषण पम्प suction pump
छनित filtrate
जन्तु-कोयला animal charcoal
जलग्राही hygroscopic
जल-धारण शक्ति water holding capacity
जलयोजित hydrated
जल-शोषण क्षमता water absorbing

capacity
जल-विश्लेषण hydrolysis
जीव-द्रव्य protoplasm
ज्वलनशील inflammable
तनु dilute
तन्तु fiber
तरलता fluidity
तल-तनाव surface tension
तुल्यांक equivalent
त्रि-अंगी ternary
दमकांक flash point
दक्षिणावर्ती dextro-rotatory
दीप्त luminous
दुग्धशर्करा lactose
दृढतामापक rigidometer
द्रवीकरण liquefying agent
द्राक्षशर्करा glucose
द्वारकोशिका guard cell
द्वि-अंगी binary
द्विवर्णता dichroism
द्विवर्तनता birefringence
द्विवर्तनशील birefringent
ध्रुवन-तल plane of polarization
ध्रुवीयण polarization
नम्य flexible
नली tube
नाइट्रोकरण nitration
निथारना decantation
निपीडक squeezing
नाभिक nucleus
निरन्त endless
निर्जलीकारक dehydrating agent
निर्देशक pointer
निर्वात vacuum
निलम्बन suspension
निपेचन fertilization
निष्कर्ष extract
निष्पीडन strain
निष्क्रिय inactive
नि सक्रामक disinfectant
नीलरजक bluing agent
न्यून under
पट्टा belt
परमाणु atom
परवर्ती घूर्णन mutarotation
पर्णमध्य mesophyll
परिपाकीकरण maturing
परिमापन estimation
परिरक्षक preservative, protective
परिरक्षण preservation
परिशुद्ध absolute
परीक्षण test
पश्चगमन retrogradation
पाकचूर्ण baking powder
पायस emulsion
पारगम्यता transparency
पारदर्शक transparent
पृथक्कारी insulator
पोषक माध्यम nutrient medium
पकक slurry
प्रकन्द rhizome
प्रकाश-निष्क्रिय optically inactive

प्रकाश-सक्रिय optically active
प्रकाश-सश्लेषण photosynthesis
प्रकृत normal
प्रक्रम mechanism
प्रतिकर्षक repelling
प्रतिधारा counter current
प्रतिपूय antiseptic
प्रतिरोधक buffer, resistant
प्रभाजन fraction
प्रभाजक स्तम्भ fractionating column
प्रभाजी fractional
प्रलाक्षा रस lacquer
प्रवाह flow, mobility
प्रवृद्धकारक swelling agent
प्रसाधक dressing
प्रसाधन cosmetics
प्रामाणिक standard
प्रेक्षण observation
फफूंद fungus
बन्ध bond
बन्धुता affinity
बहु poly-
बहुलकीकरण polymerization
बेलन roller
भर्जक roaster
भास्मिक basic
भित्ति wall
भगुर brittle
भजक destructive
भ्रूणपोष endosperm
मणिभ crystal
मणिभीय crystalline
मातृ-द्राव mother liquor
मात्रात्मक quantitative
मषा crucible
मृदूतक parenchyma
मेथिलीकरण methylation
मोम wax
मोमीय waxy, waxed
यवशर्करा maltose
यौगिक compound
रसद्रव्य chemical
रेडियोधर्मी radioactive
रोधनी stop cock
रगस्थापक mordant
रध्र stoma, stomata (बहुवचन)
लघुसैकराइड oligosaccharide
लपेटन roll
लुगदी pulp
वक्र curve
वर्णक pigment
वर्णक्रम spectrum
वर्ण-चित्र spectrum
वर्तन-सूक्ष्मदर्शी polarising microscope
वर्तनाक refractive index
वर्तनाकमापी refractometric
वलय ring
वातकक्ष air space
वामावर्ती laevorotatory
वाष्प आसवन steam distillation
वाष्पक evaporator

वाष्पन evaporation
वाष्पशील volatile
वाहक conveyer, carrier
वाहिनी vascular
विघटन decomposition, degradation
विच्छेदन decomposition
विचलन deflection
विद्युत्-आवेश electric charge
विद्युत्-विश्लेषण electrolysis
विद्युद्विश्लेष्य electrolyte
विन्यास समावयवी stereoisomer
विरजक चूर्ण bleaching powder
विलयन solution
विलायक solvent
विलेय soluble
विलेयता solubility
विलोडक stirrer
विशिष्ट गुरुत्व specific gravity
विशिष्ट घूर्णन specific rotation
विशीर्णता crumbliness
विश्लेषक analyser
विश्लेषण analysis
विसज्जीकरण desizing
विसरण diffusion
विस्फोटक explosive
विस्फोटन explosion
वृत्त ring
व्युत्पन्न derivative
शर्करा sugar
शर्करीकरण saccharification
शीतक cooler
शृंखला chain
शोधन refining
शोषक dryer
शोषित्र desiccator
श्यानता viscosity
श्यानतामापक viscometer
श्लिष gel
श्लिषकारक gel former
श्लिषीकरण gelatinization
सकंप shaking
सक्रिय active
सक्रियकारक activator
सक्रियता activity
सज्जक sizing agent
सज्जीकरण sizing
सधूम fuming
समक्वाथी constant boiling
समांग homogeneous
समात्रा mass
समापन finish, finishing
समावयवता isomerism
समावयवी isomer
समीकरण equation
सान्द्र concentrated
सान्द्रता concentration
साम्यावस्था equilibrium condition
सिक्तीकरण moistening
सुघट्यता plasticising
सुघट्यताकारक plasticising agent
सूक्ष्मदर्शी microscope

सकीर्ण complex
सग्राही receiver
सघनन condensation
सतुलित equilibrium
सपीड्यता compressibility
सयुक्त अवक्षेपण co-precipitation
सरचना structure, constitution
सवर्धन culture
सवृत closed
सवेदी sensitive
सश्लेषण synthesis
सक्षारक corrosive
स्कन्दन coagulation
स्थायित्व stability
स्थायीकारक stabilizer
स्लरी slurry
स्वभाव-परिवर्तन denaturing
स्वीकरण assimilation
क्षार alkali
क्षार चल-अक alkali labile value
क्षार-अक alkali number